॥ श्रीः ॥

लघुसिद्धान्तकौमुदी।

पण्डितवर्य्यश्रीवरदराजाचार्यविरचिता।

श्रीमत्कान्यकुब्जमिश्रकुलतिलकसुखानन्दसूनुविद्यावारिधि-

पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-

भाषाटीकासमेता।

सेयम्

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

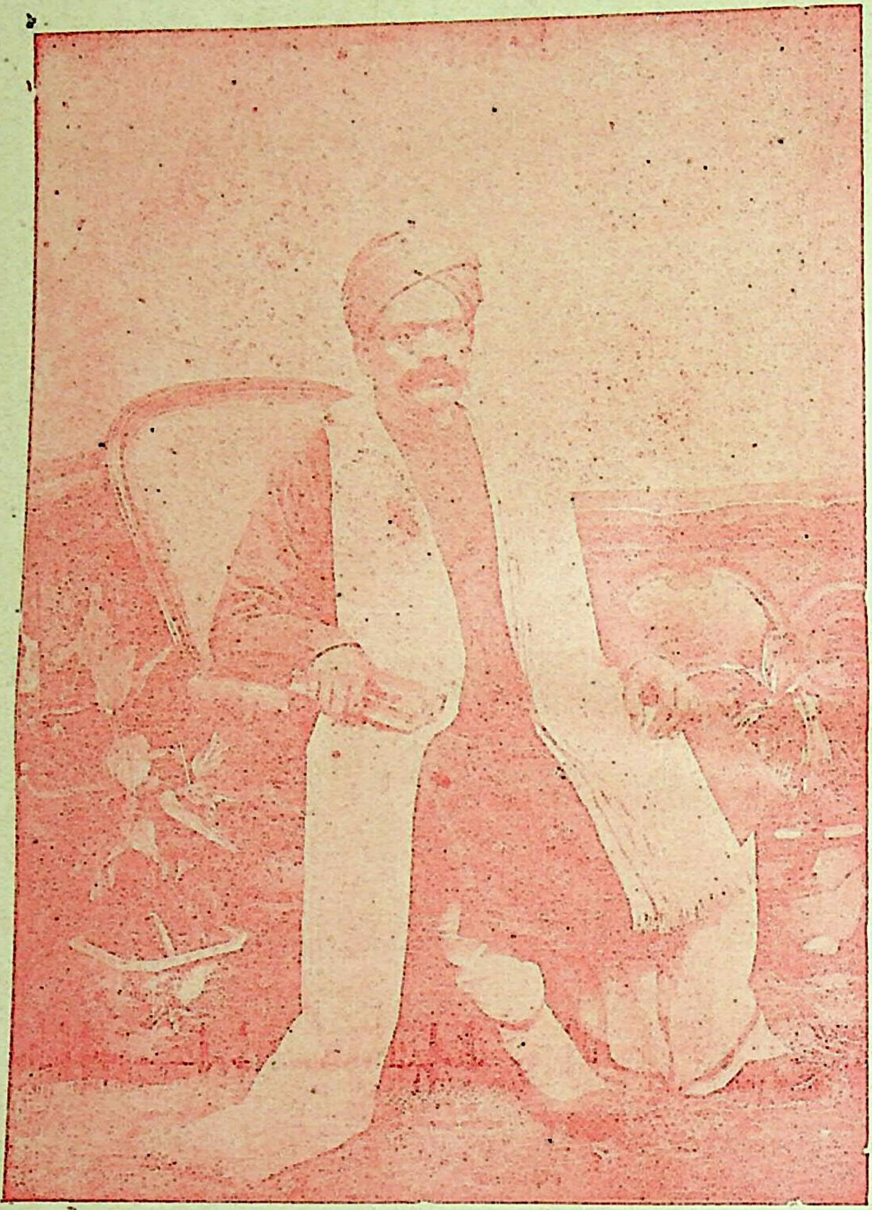
स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता।

(चतुर्थसंस्करणम्.)

संवत् १९७२, शके १८३७.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई. खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन, निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया।



विद्यावारिधि पं०–ज्वालाप्रसादजी मिश्र–मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

LAGHU-SIDDHANT-KAUMUDI

BY

PANDIT VARADARAJ

WITH THE HINDI COMMENTARY

OF

VIDYA VARIDHI

PANDIT JWALAPRASAD MISRA.

Published by

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS,

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS,

BOMBAY.

FOURTH EDITION.

1915.

TO BHAWANISHANKAR
MASTER.

धन्यवादः ।

अद्यावधि संस्कृतभाषाव्याकरणशास्त्रप्रणेतारः पाणिन्यादयो महर्षयोऽनेकेऽभूवन् यैरपारशब्द-सागरे नियमप्रवहणानि निरमीयन्त । परंतु संप्रति सर्वतो व्यग्रचित्ततया व्याकुलीभूतचेतसां जनानां बुद्धिजाड्यमालोच्य श्रीमता श्रीभट्टोजिदीक्षितशिष्यगणान्तःपातिना **वरदराजा**चार्येण सुबोधतया शब्दसिद्धिबोधाय **लघुसिद्धान्तकौमुदी**नामा नवीनो ग्रंथो व्यरचि । अस्य लघुकौमुदीग्रंथस्य हिन्दीभाषायां सुस्पष्टार्थबोधार्थं यदि टीकाभविष्यत्तदाऽध्येतारः सुखेन शास्त्र-मवाघास्यन्त इति मनसि कृत्वा मया मुरादाबादनिवासिनः पण्डिताः श्रीज्वालाप्रसादशर्माणः स्वकीयमभिप्रायमवाबोध्यन्त । तैश्च मदीयमभिप्रायमूरीकृत्यास्य ग्रन्थस्य सुस्पष्टा **हिन्दीभाषा-टीका** व्यरचि मत्समीपे प्राहीयत च । ततश्च मयैतत्तैः प्रहितं पुस्तकं सादरं स्वीकृत्य स्वकीये "**श्रीवेंकटेश्वर**" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्राकाश्यत । यद्यप्यस्य पुस्तकस्यैतादृशः सन्ति सुव्यवस्थया मुद्रिता भाषाटीकास्तथापि हिन्दीभाषायामेतादृशसुव्यस्थितिपुरःसरं मुद्रिते-यमेव प्रथमा भाषाटीकेत्युद्बाहुरुद्घोषयामि । अस्यां भाषाटीकायामेभिः पंडितैर्यावानर्थ-घटना—पदघटनोदाहरणविवरण—परिवर्तनपरिश्रमः कृतोऽस्ति तं परिश्रमं संस्मृत्य तावतं भूयसो धन्यवादान्दातुं सानन्देन मनसोत्सुके ।

क्षेमराज–श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्षः—बंबई.

अथ लघुकौमुदीविषयानुक्रमणिका.

अथ प्रातिपदिक-सूत्राङ्कसूची.

(इतिप्रातिपदिकसूचीसमाप्ता)

अथतिङन्तधातु-सूत्रांकसूची

तिङन्तधातु-सूत्राङ्कसूची ।

इति तिङन्तधातु-सूत्राङ्क सूची सम्पूर्णः ॥

भूमिका ।

शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष यह वेदके छः अंग हैं इनमें "मुखं व्याकरणं प्रोक्तम्" व्याकरण वेदका मुख कहाहै. क्योंकि इसीसे अर्थका ज्ञान होताहै, जिसप्रकार मुखमें भोजन करनेसे अन्य सब इन्द्रिय पुष्ट होजाती हैं, इसीप्रकार व्याकरणशास्त्रके पढ़नेसे दूसरे शास्त्रोंका ज्ञान विशेष करके होजाता है इसीसे यह वेदका मुख कहा है। पूर्वकालमें व्याकरण-शास्त्र महेश्वरसे प्रवृत्त हुआ है उनसे इन्द्रादि महानुभावोंने अध्ययन कर जगत्में प्रचार किया है, इनके सिवाय और भी व्याकरणाचार्य ऋषि मुनि महात्मा प्रगट होकर व्याकरण रचगये हैं जिनकी प्रथा पूर्वकालमें प्रचलित थी परन्तु इस समय इस देशमें पाणिनिमुनि कृत व्याकरणही सर्वोत्कृष्ट और सर्वत्र प्रचलित है, महाभाष्यपर्यन्त अनेक सद्ग्रन्थ टीका टिप्पणी आदि संयुक्त इसीपर बने हैं जिनके अध्ययन करनेसे पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त होती है.

जैसा संस्कृतविद्याका गूढ़ और कार्यसाधक व्याकरण है, वैसा और भाषाओंमें नहीं है, और भाषाओंका व्याकरण पढ़नेसे सर्वथा अर्थज्ञान नहीं होता, किन्तु संस्कृतव्याकरण पढ़नेसे सम्पूर्ण शब्दबोध और अर्थशास्त्रका ज्ञान होजाताहै.

पाणिनिमुनिकृत व्याकरण महाभाष्यादिके सहित एक बृहत् और दीर्घकालसाध्य ग्रंथ है, जिसका अध्ययन करना सुगम बात नहीं है, प्रथम उनके अध्ययन करनेको काशिका और कुछ कालके उपरान्त सिद्धान्तकौमुदीका प्रचार हुआ परन्तु यहभी दोनों ग्रंथ बहुत बृहत् होनेसे प्रथमही बालकोंकी समझमें नहीं आते, इसकारण पण्डितवर वरदराजने सिद्धान्तकौमुदीकी रीतिपर सारभाग लेकर लघु और मध्यकौमुदीकी रचना की, जिससे सिद्धान्तकौमुदी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको बडा सुभीता हुआ, इन दोनोंमें मध्यका प्रचार कम और लघुका अधिक है इसमें थोडा परिश्रम करनेसेही विद्यार्थियोंको सिद्धान्तकौमुदी पढ़नेकी योग्यता प्राप्त होजाती है, और अर्थांशविषयका कुछ बोध होजाता है.

यद्यपि यह ग्रंथ छोटा है तोभी नवीन विद्यार्थियोंको कहीं कहीं इसके आशय समझनेमें बडी कठिनता होती है, और अध्यापकोंसे बारबार पूछनेमें संकुचित होकर उसके तात्पर्यसे वंचित रहजाते हैं, वह त्रुटि सदाके लिये रहजाती है और यहभी सत्यही है कि, बारबार पूछनेसे बहुधा अध्यापकमहाशयोंका शिष्योंके ऊपर क्रोध होता है, और कह बैठते हैं कि कैसी बुद्धिहै जो छोटी बातभी समझमें नहीं आती ? यह दोनों ओरकी कठिनाई देखकर सर्व साधा-रणके समझने योग्य भाषाटीका करनेकी आवश्यकता हुई.

इसी अभिप्राय को हमारे परम अनुग्राहक परमोदार विद्याप्रचारनिरत सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयने प्रगट किया कि, विद्यार्थियोंको अधिक लाभदायक सरल टीका लघुकौमुदीके ऊपर कीजाय, उन महाशयके इस प्रस्तावसे विद्यार्थियोंके परमोपयोगी विवरण-सहित **भाषाटीका** निर्माण किया, जिसमें सम्पूर्ण शब्दोंकी साधनरीति यथोचित दिखलादी है, और आवश्यकीय टिप्पणी आदि जो जहां उचित समझी वहां लिखदीहैं. शब्दसिद्धिमें

जो सूत्र लगते हैं उनके अंक कोष्ठबद्धकर क्रमसे लिखदिये हैं, जिस क्रमसे अंक हैं उसी क्रमसे सूत्र लगानेसे शब्द सिद्ध होजायगा, और जहां नवीन विधि प्रारंभ हुई है वहां उस शब्दादिकी साधनरीति स्पष्ट करके लिखदी है जिससे कोई संदेह न रहे.

संधिके उपरान्त षट्लिंगमें जितने शब्द आये हैं, उनके सम्पूर्ण रूप विशेष उपपत्तिके निमित्त लिखदिये हैं और इसी प्रकार गणोंमें सम्पूर्ण धातुओंके रूप लिखनेकी इच्छा थी, परन्तु ऐसा करनेसे ग्रंथ बहुत बढ़जाता और अधिक मूल्य होनेसे विद्यार्थियोंको यह ग्रंथ सुलभ न होता, यह विचारकर कठिन२ धातुओंके पूरे रूपऔर शेषधातुओंके प्रयोजनीय रूप लिखकर ग्रंथकी पूर्ति की. परन्तु आवश्यकीय कोई रूप छोडा नहीं है और उचित स्थानपर शंका समाधानभी करदियाहै.

पाणिनीयशास्त्रके आठ अध्याय हैं, और प्रत्येक अध्यायमें चार चार पाद हैं, इसी कारण इसको अष्टाध्यायी कहते हैं, सूत्रके आगे पहला अंक अध्यायका फिर पादका पीछे सूत्रोंकी संख्याके अंक हैं, यह अष्टाध्यायीका क्रम लुप्त न होजाय इस कारण लिख दिये गये हैं, और इस सूत्रसंख्याका कार्य बहुत जगह व्याकरणमें आता है, इसकारण इनका लिखना बहुतही आवश्यक है, जहां सूत्रके आगे अंक नहीं है वह कात्यायनमुनिकृत वार्तिक हैं ।

जो कारिका विद्यार्थियोंके उपयोगी हैं वे परिशिष्टमें लिखदी हैं, और उनपर सूत्रोंके अंकभी लगा दिये हैं, जिससे विदित होता है कि, अमुक सूत्रपर यह कारिका है और पीछे सूत्रोंका अकारादि क्रम लिखकर सूत्रोंकी विभक्ति दिखलादी हैं, जिससे सूत्रार्थज्ञानमें सुगमता पड़े, ग्रंथकारकी जीवनी जाननाभी एक प्रधान अंग है, इसकारण भट्टोजिदीक्षित और वरदराजका चरित्रभी कुछ लिखदिया है ।

यद्यपि कोई कोई पण्डित महाशय कहेंगे कि, यह भाषाटीका करके विद्याका गौरव न्यून करना है सो ऐसा समझना विद्वत्ता नहीं है, क्योंकि थोड़े परिश्रमसे इसका आशय समझ कर बोध होनेसे विद्यार्थियोंकी उन्नतिकी संभावना है, और अध्यापकोंको अधिक श्रम करना न पड़े तथा थोड़े परिश्रमसे विद्यार्थीजन समझसकें इसीकारण यह टीका रचीगई है.

यह ग्रंथ सब प्रकारके स्वत्वसहित शेठजी श्रीयुत **खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महाशयको समर्पण कर दिया है जिन्होंने बहुत सावधानीके सहित अपने जगद्विख्यात **"श्रीवेंकटेश्वर"** (स्टीम्) यंत्रालयमें छापकर प्रसिद्ध किया.

पाठकमहाशयोंसे प्रार्थनाहै कि, यदि कहीं भ्रमवश त्रुटि रहगई हो तो अपनी उदारतासे सूचना दें, उचित जानकर आगामीवार शुद्ध करदीजायगी, इसके पढ़नेसे विद्यार्थियोंको लाभ होगा तो मैं अपने परिश्रमको सफल जानूंगा.

अनुगृहीत

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

मोहल्ला दिनदारपुरा

मुरादाबाद N.W.P.

द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थी आवृत्तिकी भूमिका।

व्याकरण शास्त्रके ज्ञाता इस बातको भली भांतिसे जानते हैं कि यह शास्त्र कितना कठिन और गूढ है, और नव्य शैलीसे ऐसे ग्रन्थका उपयोगी अनुवाद करनाभी एक बड़ा कठिन कार्य है, एक वार निबंध बँधजानेसे फिर तो मार्ग सरल हो जाता है, जब इस लघुकौमुदीकी टीका छपकर प्रकाशित हुई तब विद्यारसिक पाठक जन और विद्यार्थियोंने इस ग्रन्थका बहुत सन्मान किया और इसकी शैलीको बहुत सराहा, यद्यपि शीघ्रतासे छपनेके कारण कहीं २ सूत्राङ्कमें अशुद्धि रह गई थी तो भी शुद्धिपत्रके सहारेसे प्रयोग साधनेमें कठिनाई नहीं पडी, शीघ्रही प्रथमबारकी प्रति चुक जानेपर दूसरी बार इसके छापनेकी आवश्यकता होनेपर मैंने बहुत परिश्रमके साथ इसको सब प्रकार शुद्धकर पूर्वकालमें रहे सूत्रभी इसमें सन्निविष्ट कर दिये हैं नये सूत्रोंमें * फूल बना दिया है, अङ्क नहीं डाला है, अङ्क डालनेसे सब अङ्कोंमें गड़बड़ होती अत एव वह ज्योंके त्यों रहने दिये हैं, और जहां कहीं कुछ त्रुटि थी वह सम्यक् प्रकारसे ठीक कर दी गई है, आशा है अबकी वार पाठकगण इसको अवलोकनकर बहुत प्रसन्न होंगे.

इस अनुवादको देखकर नकल करनेवाले असहिष्णु मिथ्या शास्त्रीनामकी घोषणा कर नकल करनेसे नहीं चूकते, और काट छांटकर एक दो भाग बनाकर अनुवादकर्ता रचयिता बनकर मन मनाते हैं परन्तु 'क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः' पुस्तक सन्मुख होनेसे भेद खुलजाता है जब रामायणके टीकेकी नकल किये विना नहीं रहा जाता तो कौमुदीके टीकेकी नकल उड़ानेमें लाज कहांतक काम देती. हमने स्वयं देखा है हमारी अनुवाद की हुई छपी पुस्तकों पर अनुवादक नामधारी पंडितोंने एक दो स्थानों पर एक दो शब्दोंका परिवर्तन करके ज्योंकी त्यों छपी पुस्तकही प्रेसको भेजदी है और प्रेसवालोंने लोभवश उसको छापडाला है ऐसे हमारे पास कई उदाहरण हैं अभीतक तो लोग अपना नाम करनेको दूसरोंसे ग्रन्थ बनवाकर स्वयं ग्रन्थकर्ता बनते थे पर अब तो इतनी लाजको तिलाञ्जलि दीगई है कि जैसे किसीके धनपर डाका डाला जाता हो आगेके लिये हम ऐसे महात्माओंको सावधान किये देते हैं कि अपने हाथसे यश कमानेमें लाभ है न कि इस प्रकारके कर्मसे। स्वयं परिश्रम करनेसे मुख उज्ज्वल होता है अस्तु हम विद्यार्थियोंके लाभकी ओर ध्यान रखकर इस बातको इतनेमेंही समाप्त करते हैं।

सं० १९७२

ज्वालाप्रसाद मिश्र

भट्टोजिदीक्षित ।

भट्टोजिदीक्षितने संस्कृतके साहित्यमें बड़े ऊंचे स्थानको अपने अधिकारमें करलिया है । उन्होंने महर्षि पाणिनिके जगद्विख्यात "अष्टाध्यायी" व्याकरणके सूत्रोंका अवलम्बन कर अति प्रसिद्ध सिद्धान्तकौमुदी बनाई, और इसकी सहायतासे इन महात्माने पाणिनिके माहात्म्यका सारे संसारमें प्रचार किया । आज हम जगद्विख्यात पंडितका जीवनचरित्र व इनके समयका निर्णय करते हैं ।

कन्नौज (कान्यकुब्ज) बहुतकालसे भारतवर्षके इतिहासमें प्रसिद्ध है, भूगोलके जाननेवाले ग्रीकनिवासी टलेमिने (अनुमान १४०—१६० ई० में) प्राचीन कन्नौज नगरीका नाम लिखा है । तबसे लेकर सन् ई० बारह सौके पिछले हिस्सेतक कन्नौजका नाम भारतवर्षके इतिहासमें वारंवार लिखा हुआ दिखलाई देता है । ईसवी चौथी शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौज गुप्त सम्राटोंके अधिकारका एक उत्तम और प्रधान नगर गिना जाता था, फिर चौथी शताब्दीसे लेकर छठीशताब्दीके मध्यम जन्मतक कन्नौज गुप्त महाराजाओंके अधिकारमें रहा । ईसवी पांचवीं शताब्दीके आरम्भमें (३९९, ४१४. ई०) चीनके विख्यात भ्रमण करनेवाले फाहियानने कन्नौजको देखकर अपने भ्रमणवृत्तान्तकी पुस्तकमें उसकी सम्पत्तिका वर्णन किया है, तिस कालमें कन्नौज गुप्तमहाराजाओंके अधिकारमें था । गुप्त महाराज नरसिंहगुप्तका सेनापति और सामंतराज यशोधर्म्म हुनराजके मिहिर कुलको पराजित करके स्वयं महाराज बन बैठा । ज्ञात होता है कि कदाचित् यह मालवेमें गुप्तमहाराजाओंका हाकिम होकर उनपर राज करता था । अपने बाहुबलके द्वारा हुनराजके हाथसे गुप्तराज्यका उद्धार कर सेनापति यशोधर्म्मने पिछले गुप्त सम्राट् दूसरे कुमार गुप्तके हाथसे राज्यका भार अपने हाथमें लेलिया । इसने महाराजाधिराज विष्णुवर्द्धनकी उपाधि धारण करके कन्नौजको अपने अधिकारमें करके राजधानी बनाया । इस यशोधर्म्मके नामकी जो दो शासनलिपि पुरातत्त्ववित् फ्लीट साहबकी कोशिससे मंदसरमें निकली हैं, तिनमें एक ९३३—३४ ई० में खुदी है महाराज विष्णुवर्द्धनके समयसे भारतवर्षके बीच कन्नौज प्रधान नगर गिना जाने लगा । अनुमान ९३०—८० सन् ई० तक पचासवर्षतक विष्णुवर्द्धन कन्नौजका राज करता रहा, गुप्त महाराजाओंकी अवनतिके पीछे इसी भांति वर्द्धनवंशका राजपाट कन्नौजमें प्रतिष्ठित हुआ । इस वर्द्धनवंशका आदिवासस्थान थानेश्वर था.

वर्द्धनवंशकी प्रतिष्ठा और संपत्ति इसके संग बढती रही, ईसवी छठी शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौजकी इज्जत सम्पत्ति बहुत बढगई । तबसे कन्नौज संस्कृतकी चर्चाके विषयमें एक विख्यात स्थान होगया, वर्द्धनवंशका पिछला राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य ६०७—६४८ ई० तक समस्त भारतवर्षका चक्रवर्ती महाराज था, इसी हर्षवर्द्धनके समयमें अर्थात्

सन् ६३४ ई० में हियां सांङ० ने कान्यकुब्जमें आकर भलीभांतिसे उसकी शोभाका वर्णन किया. ऐसा सुननेमें आया है कि, इन्हीं महाराज हर्षवर्द्धनने रत्नावली और नागानन्द नामक संस्कृतके नाटक बनाये । विख्यात बाणभट्टने इन्हीं महाराज हर्षवर्द्धनकी राजसभामें रहकर अपने स्वामीका जीवनचरित्र "हर्षचरित" लिखा. महाकवि चक्रचूडामणि बाणभट्टके पिताका नाम चित्रभानु था । यह अर्थपतिका पोता और कुबेरका परपोता था । हर्षवर्द्धनके आश्रयमें रहकर बाणभट्टने कादम्बरी पार्वतीपरिणय नाटक और चंडिकाशतक बनाया, मयूरभट्टने भी इसी हर्षवर्द्धनकी राजसभामें रहकर "सूर्यशतक" बनाया ।

महाराज हर्षवर्द्धनके पीछे सौवर्षसे कुछ ऊपर ईसवी आठवीं शताब्दीके मध्यभागमें यशोवर्मन् नामक राजा कन्नौजमें राज करता था । काश्मीरके इतिहास या राजतरंगिणीके मतसे काश्मीरके महाराजा ललितादित्यने इस यशोवर्मनको बारंबार पराजित करके अन्तमें राज्यगद्दीसे उतार दिया । महाकवि भवभूति और वाक्पति नामक एक दूसरे कवि इस यशोवर्मन्की सभामें विद्यमान थे । कहते हैं कि, ललितादित्यके समयमें (७१९-९१ ई०, विख्यात महाराज शंकराचार्यजी दिग्विजय करते २ काश्मीरमें आकर कुछ कालतक सरस्वती पीठमें विराजमान रहे । (परन्तु यह शंकराचार्य शंकरस्वामीकी गद्दीके अधिकारीमेंसे होंगे भाष्यकार नहीं कारण कि भाष्यकारको इस संवत् १९७२ में २३९० वर्ष होते हैं *) ।

यशोवर्मन्से राज छूटनेके परेही कन्नौजमें एक नवीन राजवंश देवशक्तिसे आठवीं शताब्दीके पिछले भागमें प्रतिष्ठित हुआ । इस देवशक्तिके नीचेके पंचम वंशधर महेन्द्रपालकी सभामें राजशेखरने बालभारत, बालरामायण, (प्रचण्डपांडव) कर्पूरमंजरी और विद्धशालभंजिका यह चार नाटक बनाये इस कविने बालरामायणमें महाकवि भवभूतिका नाम लिया है ।

---

१ हर्षचरितके आरम्भमें बाणभट्टने अपनेसे पहले हुए कवि सुबन्धुका नाम लिया है । सुबन्धुकी वासवदत्ताके अनुकरणपर बाणभट्टने प्रसिद्ध कादम्बरी बनाई, बाणभट्टसे पहले सुबन्धु ईसवी छठी शताब्दीके शेषभागमें कन्नौजकी राजसभामें आया । पण्डितवर E. E. Hall साहबने वासवदत्ताकी गौरवयुक्त भूमिकामें सबसे पहिले यह बात दिखाई है कि । "कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।" (हर्षचरित १८ श्लोक) ।

१ राजतरंगिणीकी चौथी तरंगमें ललितादित्यके राज्यका वर्णन किया गया है । तिसके सर्ग २ में कन्नौजके स्वामी यशोवर्मन्के पराजित होनेका वृत्तान्तभी लिखा है-

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्द्यताम् ॥
राजतरंगिणी ४ । ११ ।

---

* इसके प्रमाणमें हमाराअनुवाद किया जगन्नाथ माहात्म्य और उसमें दिये हुए महाराज सुधन्वाके ताम्रशासन और उसका अनुवाद देखो ।

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तुमेकताम् ॥
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्त्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥

(बालरामायण १ । १६)

ईसवी नवम शताब्दीके शेषभागमें राजा महेन्द्रपालकी देवसभामें राजशेखर आया । भवभूतिके राजशेखरसे पहले होनेका प्रमाण बालरामायणके उपरोक्त श्लोकसे प्रमाणित होता है ।

देवशक्तिके पिछले वंशधरको पराजित करके बनारससे गाहड़वार राजपूत वंश कन्नौजमें प्रतिष्ठित हुआ । अनुमान १०९० सन् ईसवीमें चन्द्रदेवने काश्यपगोत्री राजवंशको कन्नौजमें प्रतिष्ठित किया । चन्द्रदेवके पिताका नाम चन्द्र, और दादाका नाम यशोविग्रह था । चन्द्रदेवने कन्नौजके राजा साहसांकको पराजित करके कन्नौजमें अपना अधिकार फैलाया. इस चन्द्रदेवके पुत्र राजा मदनपालने १०९७ से लेकर १११४ सन् ई० तक कन्नौजमें राज्य किया । राजा मदनपालने मदनविनोद निघण्टुनामक एक वैद्यकका ग्रंथ बनाया ।

---

१ पंडित आनंदरामके मतसे यह भवभूति महाकवि भवभूतिसे अलग हैं इसका अनुमान यह है कि, महाकवि भवभूतिने ई० सन् ५ वीं शताब्दीमें प्रगट होकर वीरचरित उत्तररामचरित और मालतीमाधव यह तीन नाटक बनाये । यह समस्त नाटक उज्जयिनी नगरके विख्यात "कालप्रियनाथ" महादेवजीके मंदिरमें खेले गए । भवभूति ईसवी पांचवीं शताब्दीमें उज्जयिनीके स्वामी महाराज विक्रमादित्यकी सभामें कालिदास और अमरसिंहकी समान विद्यमान था । और यह बात सत्य भी प्रतीत होती है ।

Mr. A. R. Baruah's Essay on Bhavabhoti and his place in Sanskrit Literature.

जयति मदनपालः सर्वविद्याविशालः
कृतसरसिजमित्रः कर्मधर्मे पवित्रः ।
सुजनपिकरसालस्तुष्टगोपालबालः
रुचिरतरचरित्रश्चारुचातुर्यचित्रः ॥
श्रीसारसाकन्दपतेरवद्या ।
विद्यातरंगपदमव्ययमेव बिभ्रत् ॥

इस मदनपालहीकी सभामें विराजमान रहकर महेश्वरने "साहसाङ्कचरित" और "विश्वकोश" अभिधान रचा विल्सन् साहबके अनुमानसे महेश्वरने सन् ११११ ई० में विश्वकोश बनाया। महेश्वरने "वैद्यराजशेखर" और कविराज परमेश्वर कहकर विश्वकोशके शेषभागमें अपना परिचय दिया। गुजरातके सुप्रसिद्ध जैन नरपतिकुमार पालके सभासद जैनाचार्य हेमचन्द्रके "अभिधानचिन्तामणि" का नानार्थ भाग विश्वकोशसे संगृहीत हुआ है।

महेश्वरकविराजके पिताका नाम ब्रह्मेश्वर और दादाका नाम केशव था, केशवका महेश नामक चचा वैद्यकशास्त्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध होगया। महेशके पिताका नाम दामोदर और दादाका नाम श्रीकृष्ण था, श्रीकृष्ण गाधिपुरकी राजसभामें विद्यमान था, श्रीकृष्णका पिता हरिश्चन्द्र चरकसंहिताकी टीका बनाकर प्रसिद्ध हुआ, विश्वकोशके आरम्भमें कविराज महेश्वरने इस प्रकार अपना परिचय दिया है। शाके १६१९ पौष मासका लिखा हुआ एक विश्वकोश पाया गया है। अबतक जो कुछ लिखागया तिससे यह निश्चित जाना जासकता है कि, प्राचीन समयसे कन्नौज संस्कृतकी चर्चाके लिये विख्यात है। भट्टोजिदीक्षित इसी कन्नौजकी राजसभामें हुए, इसी कारण उनके होनेसे जो कन्नौजमें संस्कृतकी चर्चा होतीथी उसका वर्णन यहांपर लिखा गया। जिस समय महेश्वर कविराजने राजा मदनपालकी राजसभामें विराजमान रहकर "विश्वकोश" अभिधान बनाया उस कालमें हृदयधरभट्ट कन्नौजराजाका मन्त्री था। महाराजा मदनपालकी मृत्युके पीछे उनका पुत्र गोविन्दचन्द्रदेव कन्नौजके सिंहासनपर बैठा। ११२० सन् ई० का खुदाहुआ ताम्रपत्र कि, जिसपर महाराज गोविन्दचन्द्रका नाम लिखा है—पाया गया है। इन्होंने अनुमान सन् १११५ ई० से लेकर सन् ११६० तक कन्नौजमें राज्य किया फिर गोविन्दचन्द्रदेवके पुत्र विजयचन्द्रदेवने ११६० से लेकर ११७६ तक कन्नौजका राज्यभार संभाला। इसही विजयचन्द्रका पुत्र जयचन्द्र कन्नौजका पिछला स्वाधीन राजा हुआ। ११७७–९३ ई० तक सत्रह वर्ष राज करके, महाबुद्धिमान् शहाबुद्दीन गोरीके हाथसे हारकर महाराज जयचन्द्र मारा गया, और अपने रुधिरसेही उत्तम महाराजने स्वदेशद्रोहिता और पापका प्रायश्चित्त किया।

हृदयधरभट्टका पुत्र लक्ष्मीधर महाराज गोविन्दचन्द्रदेवके यहां महासन्धिविग्रहादिकके पदपर नियत था। महाराजकी आज्ञासे इस सुपण्डित ब्राह्मण सचिवने द्वादशकाण्डमें "कृत्यकल्पतरु"

---

१ गाधिपुर, कुशस्थल, महोदय और कान्यकुब्ज यह कन्नौजके प्राचीन नाम हैं। इन नामोंसे यह पाया जाता है कि, महेश्वरके पूर्व पुरुषभी इसी राजसभामें विद्यमान थे। महेश्वरने कविराज भोगीन्द्र, कात्यायन, साहसाङ्क वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमरसिंह, मंगल, शुभाङ्क बोपालित और भाण्डवाके बनाये, कोषसे सहायता लेकर विश्वकोश बनाया। इसमें महेश्वरसे पहले हो गए हुए कोशकारोंका नाम पाया जाताहै, और यहभी जाना जाता है कि महेश्वरके समयमें इन कोषकारोंके बनाये हुए ग्रंथ प्रचलितथे।

नामक प्रसिद्ध और विस्तारित ग्रंथ बनाया. लक्ष्मीवलधरका सुविस्तीर्ण "कृत्यकल्पतरु" नामक ग्रंथ देवगिरनिवासी हेमाद्रिके बनाये "चतुर्वर्गचिन्तामणि" नामक सुप्रसिद्ध स्मृतिग्रन्थसे सौ वर्ष पहले लिखा गया, और संगृहीत हुआ । दक्षिणापथके अन्तर्गत देवगिरीके यदुवंशीय राजा कृष्णके भ्राता राजा महादेवकी (१२६०–७१ ई०) आज्ञासे उनके सभासद हेमाद्रिने ईसवी १३ शताब्दीके शेषभागमें " चतुर्वर्गचिन्तामणि " नामक ग्रंथ बनाया था । सन् ईसवी १२ शताब्दीके शेषभागमें कन्नौजके महाराजा गोविन्दचन्द्रदेवकी आज्ञासे लक्ष्मीधरभट्टने " कृत्यकल्पतरु " संगृहीत किया ॥ चतुर्वर्गचिन्तामणिकी समान लक्ष्मीधरका ग्रंथ कई एक प्रधान भागोंमें विभक्त है । तिनमें " व्यवहार " " काल " और " मोक्षकाण्ड " मिलगया है । १९१० शकाब्द (१९८८ ई०) का लिखा " कृत्यकल्पतरु " का कालकाण्ड नदिया जिलाके उलाग्राममें दीनानाथभट्टाचार्य्यके स्थानपर विद्यमान है ।

इन्हीं लक्ष्मीधरके पुत्र भट्टोजीभट्ट हुए । यह ई० १२ शताब्दीके मध्य और शेषभागमें कन्नौजके स्वामी महाराजा गोविन्दचन्द्र और विजयचन्द्रकी सभामें विद्यमान थे । भट्टोजिदीक्षितने "सिद्धान्तकौमुदी" के सिवाय "शब्दकौस्तुमकारिका" "धात्वर्थ" "तत्त्वकौस्तुम" "पूजाप्रकरण" "तिथिनिर्णय" और "श्राद्धकाण्ड" बनाया, महर्षि पतंजलिके बनायेहुए महाभाष्यके अवलंबनसे पाणिनिके अष्टाध्यायी सूत्रोंकी व्याख्याके रूपसे (शब्दकौस्तुम) बनाया गया, इस पुस्तकमें जो उन्होंने अपना वृत्तान्त लिखा है, प्रयोजनीय समझकर उसको यहांपर उद्धृत किया है. वह व्याकरण और स्मृति दोनोंको भली भांतिसे जानते थे । इन महाशयने "तत्त्वकौस्तुम" में मध्वाचार्यके वेदान्तभाष्यका मत खण्डन करके शंकराचार्यका मत ग्रहण किया है । भट्टोजिभट्टदीक्षित सर्वशास्त्रदर्शी महोपाध्याय पंडित थे वाराणसी नगरमें ब्राह्मणके यहां इनका जन्म हुआ । अतिप्राचीनकालमें बनारसका भट्टवंश संस्कृत चर्चा और पंडिताईके लिये विख्यात है ।

" विश्वेशं सच्चिदानन्दं वन्देऽहं योऽखिलं जगत् ।
चरीकर्ति बरीभर्ति सञ्जरीहर्ति लीलया ॥
नमस्कुर्वे जगद्वन्द्यं पाणिन्यादिमुनित्रयम् ॥
श्रीभर्तृहरिमुख्यांश्च सिद्धान्तस्थापकान्बुधान् ॥
नत्वा लक्ष्मीधरं तातं सुमनोवृन्दवन्दितम् ॥
फणिभाषितभाष्याब्धेः शब्दकौस्तुभमुद्धरे ॥
समर्प्य लक्ष्मीरमणे भक्त्या श्रीशब्दकौस्तुभम् ॥
भट्टोजिभट्टजनुषः साफल्यं लब्धुमीहते ॥

भट्टोजिदीक्षितके समान श्रीहर्षदेवभी महाराजा विजयचन्द्रकी सभामें विद्यमान थे, श्रीहर्षका जन्म बनारसमें हुआ उनके पिताका नाम श्रीहरि और माताका नान मामल्लदेवी

था मामल्लदेवीके भ्राता मम्मटभट्टने "काव्यप्रकाश" नामक अलंकारका विख्यात ग्रंथ बनाया। विजयचन्द्रकी आज्ञासे श्रीहर्षने महाभारतके नलोपाख्यानका अवलंबन कर "नैषधचरित" नामक महाकाव्य बनाया. नैषधचरितके सिवाय इन श्रीहर्षने "नवसाहसांकचरित" "छन्दःप्रशक्ति" "विजयप्रशक्ति" और "खण्डनखण्डखाद्य" रचना किया। इन्होंने अपने बनाये हुए ग्रन्थोंमें कवित्व और दार्शनिकताका अपूर्व मेल दिखाया है ॥

भट्ट वैद्यनाथका "कौस्तुभटीका" और कृष्णमिश्रका "भावप्रदीप" शब्दकौस्तुभके यह दो टीके लिखेगये। भटोजिदीक्षितकी बनाई "सिद्धान्तकौमुदी" का अवलम्बन करके उनके शिष्य वरदराजने मध्यसिद्धान्तकौमुदी और "लघुकौमुदी" बनाई। संवत् १२५० अर्थात् (११९३) ई० में मध्यसिद्धान्तकौमुदी बनी।

> नत्वा वरदराजः श्रीगुरून्भट्टोजिदीक्षितान्।
> करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम् ॥
> कृतिर्वरदराजस्य मध्यसिद्धान्तकौमुदी।
> तस्याः संख्या तु विज्ञेया खबाणकरवह्निभिः ॥

इन वरदराजने बारहवीं शताब्दीके शेषभागमें "व्यवहारनिर्णय" स्मृतिविषयक ग्रन्थ बनाया। शिवानन्दभट्टकी आज्ञासे उनके पुत्र रामभट्टने "मध्यमनोरमा" नामक वरदराजकृत "मध्यसिद्धान्तकौमुदीकी व्याख्या बनाई। "सिद्धान्तकौमुदी" के अवलंबनसे "सारकौमुदी" नामक एक और व्याकरण बनाया। भट्टोजिदीक्षितने अपनी बनाई सिद्धान्तकौमुदीका "प्रौढमनोरमा" नामक टीका बनाया। भट्टोजीके वीरेश्वर और भानुजी नामक दो पुत्र हुए। वीरेश्वरका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, वाघेलवंशीय राजा कीर्तिसिंहदेवकी आज्ञासे भानुजीने अमरकोशकी "व्याख्यासुधा" नामक अत्युत्तम व्याख्या रची। भानुजीने इसमें अपनेसे पहले रायमुकुटादि टीकाकारोंका भ्रम दिखाकर अपनी विज्ञताका परिचय दिया है, भट्टोजिदीक्षितके दूसरे शिष्य महेशमिश्रके पुत्र वनमालीमिश्र नामक एक मैथिल ब्राह्मणने "कुरुक्षेत्रप्रदीप" ग्रन्थमें पुण्यतीर्थ कुरुक्षेत्रके माहात्म्यको वर्णन किया है।

---

१ राजशेखर नामक एक जैन लेखकने सन् १३४८ ई० में प्रबन्धकोष नामक ग्रन्थ बनाया, इस पुस्तकमें उसने कन्नौजके महाराजा जयचन्द्रकी सभामें श्रीहर्षदेवके स्थित होनेका वर्णन लिखाहै यह श्रीहर्ष वंगदेशमें आये हुए पंचगौडोंमें भरद्वाज गोत्रके श्रीहर्षसे अलग हैं, डाक्टर बूलरके मतसे यही जयचंद्र गोविन्दचन्द्रदेवका पुत्र और जयचन्द्रसे अभिन्न है। डा० रामदाससेननेभी इसी बातको मानाहै।

भट्टोजिदीक्षितके पोते और वीरेश्वरके पुत्र हरि दीक्षितने भट्टोजी रचित "प्रौढमनोरमा" टीकाकी "लघुशब्दरत्न" नामक व्याख्या रची, इन हरिभट्टका शिष्य नागेश (नागोजी) भट्ट अतिप्रसिद्ध ग्रंथकार हुआ, नागेशके पिताका नाम शिवभट्ट और माका नाम सतीदेवी था । नागेशभट्टकृत लघुशब्देन्दुशेखर, भाष्यप्रदीपोद्योत, वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा, सप्तशतीव्याख्या और "स्फोटवाद" पायागया है। वैद्यनाथभट्टने "लघुशब्देन्दुशेखर" और "वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा" ग्रंथकी टीका बनाई ।

"अधीत्य फणिभाष्याब्धिं सुधीन्द्रहरिदीक्षितात् ।
न्यायतंत्रं रामरामाद्वादिरक्षोघरामतः ॥
याचकानां कल्पतरोररिकक्षहुताशनात् ।
शृंगबेरपुराधीशाद्रामतो लब्धजीविकः ॥
वैयाकरणनागेशः स्फोटायनऋषेर्मतम् ।
परिचिन्त्योक्तवांस्तेन प्रीयतामुमया शिवः ॥"

(वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा)

शृंगबेरपुरके राजा हिम्मतिवर्म्माके पुत्र रामवर्म्माकी सभाके यह नागेशजी पंडित थे, और उनके गुरुभी थे। इन रामवर्म्माने अध्यात्मरामायणका "सेतु"। नामक एक टीकाभी बनायाहै ।

"बिसेनवंशजलधौ पूर्णः शीतकरोऽपरः ।
नाम्ना हिम्मतिवर्म्माभूद्धैर्य्येण हिमवानिव ॥
तस्माज्जातो रामदत्तश्चन्द्राच्चन्द्र इवापरः ।
मित्राणाञ्च रिपूणाञ्च मानदः प्रथितः प्रभुः ॥
भट्टनागेशशिष्येण बध्यते रामवर्मणा ।
सेतुः परोपकृतयेऽध्यात्मरामायणाम्बुधौ ॥" (सेतु)

भट्टोजिदीक्षितकी "प्रौढमनोरमा" के भाष्यरूपसे "लघुशब्देन्दुशेखर" नागेशभट्टने बनाया ।

"पातञ्जले महाभाष्ये कृतभूरिपरिश्रमः ।
शिवभट्टसुतो धीमान्सतीदेव्यास्तु गर्भजः ॥
नत्वा फणीशं नागेशस्तनुतेऽर्थप्रकाशकम् ।
मनोरमोमार्द्धदेहं लघुशब्देन्दुशेखरम् ॥"

(लघुशब्देन्दुशेखर)

हरिदीक्षितकृत लघुशब्दरत्नकी पायगुण्ड वैद्यनाथभट्टने " भावप्रकाश " नामक टीका बनाई । इन वैद्यनाथने " लघुशब्देन्दुशेखर " ग्रंथकी टीका " चिदस्थिमाला " नामक रची, गंगाधरकृत " लघुशब्देन्दुशेखर " की टीका " इन्दुप्रकाश " और उदयंकरकी बनाई टीका " ज्योत्स्ना " नामसे प्रसिद्ध है ।

जयकृष्णभट्टने " सिद्धान्तकौमुदी " की " सुबोधिनी " नामक टीका बनाई । जयकृष्णके पिताका नाम रघुनाथ और दादाका नाम गोवर्द्धन था । इनका जन्म मौनिकुलमें हुआ । जयकृष्णभट्टने स्फोटचर्टक, कारकवाद, शुद्धिचन्द्रिका और वृत्तिदीपिका बनाई । इनकी माताका नाम जानकी था । जयकृष्णभट्ट माधवेन्द्रसरस्वतीके शिष्य थे, इनके पुत्र राघवेन्द्रभट्टने अमरकोश अभिधानका एक भाष्य बनाया, इनही राघवेन्द्रप्रणीत " अभिज्ञानशकुन्तला " की एक टीका बनारसमें पायीगई है ।

महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षितकी बनाई " सिद्धान्तकौमुदी " का अवलम्बन करके इन्द्रदत्त उपाध्यायने " गूढफक्किकाप्रकाश " नामक टीका बनाई ।

गर्गवंशावतंसो यो वैयाकरणकेसरी ।
उपाध्यायोपनामेन्द्रदत्तस्यैषास्ति सत्कृतिः ॥
इन्द्रदत्तेन विदुषा कृतोऽयं संग्रहो मुदा ।
सिद्धान्तकौमुदीगूढफक्किकार्थः प्रकाश्यते ॥

अबतक जो जो कुछ लिखा गया इससे निश्चय प्रमाणित होता है कि ईसवी १२ शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौजके महाराजा गोविंदचन्द्रदेवके राज्य करनेके समय बनारसमें

---

१ नत्वा गुरुं वैद्यनाथः पायगुण्डाख्यको वृतिम् ।
चिदस्थिमालां तनुते लघुशब्देन्दुशेखरे ॥

२ पित्रोः पादयुगं नत्वा जानकीरघुनाथयोः ।
मौनीश्रीकृष्णभट्टेन तन्यते स्फोटचट्टका ॥
(स्फोटचट्टका)

३ ध्यात्वा व्यासं गुरुं नत्वा माधवेन्द्रसरस्वतीम् ।
मौनीश्रीकृष्णभट्टेन तन्यते वृत्तिदीपिका ॥
(वृत्तिदीपिका)

४ कात्यायनव्याडिश्रीमाधवादीन्कातन्त्रतन्त्राणि विचार्य यत्नात् ।
श्रीराघवेन्द्रोऽमरसिंहकोशे तनोति भाष्यं सुधियां हिताय ॥ १ ॥
(अमरभाष्य)

महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षितने जन्म ग्रहण किया । इनके पिता लक्ष्मीधरभट्ट उस समय बाणातासी राज्यके मंत्री थे । महाराज गोविन्दचन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मीधरने "कृत्यकल्पतरु" नामक स्मृतिका एक बडा संग्रह किया, संभव हैं कि "अद्वैतमकरन्द" नामक वैदान्तिक ग्रन्थमीं इन्हीं लक्ष्मीधरभट्टने बनायाहो, भट्टोजिदीक्षितके शिष्य वरदराजने सन् १९९३ ई० में "मध्यसिद्धान्तकौमुदी" बनाई । इससे भट्टोजिदीक्षितका समय निरूपित होता है । "नैषधचरित" काव्यके बनानेवाले श्रीहर्ष और "व्यवहारनिर्णय" नामक स्मृतिशास्त्रके बनानेवाले वरदाचार्यके समयमें भट्टोजी हुए । यह महामहोपाध्याय पंडित "सिद्धान्तकौमुदी" बनाकर जगत्में विख्यात हुए हैं, जो यह सिद्धान्तकौमुदी न बनाते तो महर्षि पाणिनिके अष्टाध्यायी व्याकरण सूत्रका अनुशीलन रहित होकर संस्कृत साहित्यमेंसे पाणिनिका नाम तक लोप हो जाता ।

भट्टोजिदीक्षितने "तत्त्वकौस्तुभ" में अपने समयके मध्वाचार्यका * मतखण्डन करके शंकराचार्यके कहे अद्वैतब्रह्मवादकी अभ्रांति और सत्यता प्रतिपादन की । व्याकरणदर्शन और स्मृति आदि सर्व शास्त्रोंको भट्टोजी भलीभांतिसे जानते थे । अध्यापक बेनरका मत है कि भट्टोजिदीक्षित १७ शताब्दीमें हुए और तभी सिद्धान्तकौमुदी बनी । डाक्टर जलिका मत है कि ई० १६ शताब्दीके शेष या १७ शताब्दीके आरंभमें दक्षिणापथके तामिलदेशमें वरदराजने उत्पन्न होकर "व्यवहारनिर्णय" नामक स्मृतिग्रंथ बनाया है, कोई कहते हैं कि भट्टोजिदीक्षित सारस्वत ब्राह्मण थे, शालिवाहन शके १६०० शाकेमें विद्यमान थे, कहते हैं कि इन्होंने पंडितराज जगन्नाथको समझायाथा और जगन्नाथ पण्डितराजका समय सन् १६६६ ईसवी है नागोजिभट्टका समय सन् १७०६ है नागोजीभट्टसे भट्टोजिदीक्षित तृतीय पूर्व पुरुष थे इससे वह सन् १६४६ में विद्यमान थे उनका निर्णय वृक्ष यह है ।

शेषश्रीकृष्णः ।

भट्टोजिदीक्षितः	(शिष्यः)	शेषवीरेश्वरः	(पुत्रः)
वीरेश्वरदीक्षितः	(पुत्रः)	पंडितराजजगन्नाथः	(शिष्यः)
हरिदीक्षितः	(पुत्रः)	नागोजीभट्टः	(शिष्यः)

---

* ११९९ ई० (११२१) शकाब्दमें दक्षिणापथके अन्तर्गत तुलवदेशमें वैष्णवसंप्रदायके प्रवर्तक मध्वाचार्यभट्टने जन्मग्रहण किया इनके पिताका नाम मधिजीभट्ट था मध्वाचार्यने शिवमंदिरमें विद्याभ्यास कर अच्युतप्रच आचार्यके उपदेशसे वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो उडदपिनगरका मन्दिर बनाय वहां विष्णुमूर्तिकी प्रतिष्ठा की वैष्णवधर्ममें इनकी सम्प्रदाय पृथक् है ।

इनके वंशके पुरुष महाराष्ट्र देवालयमें पूजा करते थे यह विशेष प्रतिष्ठा प्राप्तिके निमित्त काशीमें जाकर पढ़ने लगेथे थोड़ेही समयमें यह भट्टाचार्य हुए श्रीमद् अप्पयदीक्षितने १६३७ में इनके ग्रन्थ देखकर इनका बड़ा सन्मान किया, शब्दकौस्तुभ लक्ष २ श्लोकोंमें इनका रचा है जो पूरा नहीं मिलता । जो कुछ भी हो दीक्षित महोदयका स्वयंलिखित समय न मिलनेसे दूसरे ग्रन्थोंसे अनुमान करना पड़ता है. अप्पयदीक्षितके समयका इसमेंभी विरोध है इन लोगोंके अनुमानका अमूलक न होना इस प्रबंधमें भलीभांतिसे दिखाया गया है । यह पुरातन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे लिखागया, यदि कोई महाशय और निर्णय लिख भेजेंगे तो वह उनके धन्यवाद सहित इसमें लिखाजायगा.

निवेदक,

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

इति

भट्टोजिदीक्षितसामान्यचरित

समाप्त।

परिशिष्टम् ।

शृङ्गवद्बालवत्सस्य कुमारीस्तनयुग्मवत् ॥
नेत्रवत्कृष्णसर्पस्य विसर्गोऽयमिति स्मृतः ॥ १ ॥
तुंबिकातृणकाष्ठं च तैलं जलमुपागतम् ॥
स्वभावादूर्ध्वमायाति रेफस्यैतादृशी गतिः ॥ २ ॥
एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ॥
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रकम् ॥ ३ ॥
ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ॥
आ ङानुबन्धो विज्ञेयो वाक्यस्मरणयोर्न तु ॥ ४ ॥
अवीलक्ष्मीतरीतंत्रीह्रीधीश्रीणामुणादितः ॥
अपि स्त्रीलिंगजातीनां सुलोपो न कदाचन ॥ ५ ॥
सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान्भवेत् ॥
परेण पूर्वबाधो वा प्रायशो दृश्यतामिह ॥ ६ ॥
यन्निमित्तमुपादाय पुँल्लिंगे तु प्रवर्तते ॥
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यात्तद्धि भाषितपुंसकम् ॥ ७ ॥
शुचि भूमिगतं तोयं शुचिर्नारी पतिव्रता ॥
शुचिर्धर्मपरो राजा ब्रह्मचारी सदा शुचिः ॥ ८ ॥
परतः केचिदिच्छंति केचिदिच्छंति पूर्वतः ॥
उभयोः केचिदिच्छंति केचिन्नेच्छन्ति चोभयोः ॥ ९ ॥
लक्षणवीप्सेत्थंभूतेऽभिर्भागे च परि प्रति ॥
अनुरेषु सहार्थे च हीने चोपश्च कथ्यते ॥ १० ॥
शिखया बटुमद्राक्षीच्छेतच्छत्रेण भूपतिम् ॥
केशवं शंखचक्राभ्यां त्रिभिर्नेत्रैः पिनाकिनम् ॥ ११ ॥
संयमाय श्रुतं धत्ते नरो धर्माय संयमम् ॥
धर्मं मोक्षाय मेधावी धनं दानाय भुक्तये ॥ १२ ॥

॥श्री॥

द॰ भवानीशंकर शर्मा

वस्तुवाचीनि नामानि मिलित्वा युक्तमुच्यते ॥
समासाख्यं तदेतत्स्यात्तद्धितोत्पत्तिरेव च ॥ १३ ॥
चकारबहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्मधारयः ॥
यत्र द्वित्वं बहुत्वं च स द्वन्द्व इतरेतरः ॥ १४ ॥
पदयोस्तु पदानां वा विभक्तिर्यत्र लुप्यते ॥
स समासस्तु विज्ञेयः कविभिः परिकीर्तितः ॥ १५ ॥
विभक्तयो द्वितीयाद्या नाम्ना परपदेन तु ॥
समस्यन्ते समासो हि ज्ञेयस्तत्पुरुषः स च ॥ १६ ॥
यत्र द्वित्वं बहुत्वं च स द्वंद्व इतरेतरः ॥
समाहारो भवेदन्यो यत्रैकत्वनपुंसके ॥ १७ ॥
बहुव्रीह्यव्ययीभावौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ द्विगुः ॥
कर्मधारय इत्येते समासाः षट् प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥
लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम् ॥
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्था धातव एते कर्मविहीनाः ॥ १९
क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम् ॥
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्या
सन्मात्रं भावलिंगः स्यादसंपृक्तं तु कारकैः ॥
धात्वर्थः केवलः शुद्धो भाव इत्यभिधीयते ॥ २१ ॥
रोदितिः स्वपितिश्चैव श्वसितिः प्राणितिस्तथा ॥
जक्षितिश्चेति विज्ञेयो रुदादिः पञ्चको गणः ॥ २२ ॥
गुपो वधेश्च निन्दायां क्षमायां च तथा तिजः ॥
संशये च प्रतीकारे कितः सन्नभिधीयते ॥ २३ ॥
जिज्ञासावज्ञयोरेव मानदानो विधीयते ॥
निशानेर्थे तथा शानो नायमर्थान्तरे क्वचित् ॥ २४ ॥

इति ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदी.

भाषाटीकासमेता ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

गौरीपुत्रं नमस्कृत्य शारदामभिवंद्य च । क्रियते लघुकौमुद्या भाषाटीका मनोरमा ॥१॥

पदानि—नत्वा—अव्ययपदम् । सरस्वतीम्—द्वितीयान्तम् । देवीम्—द्वितीयान्तम् । शुद्धाम्—द्वितीयान्तम् । गुण्याम्—द्वितीयान्तम् । करोमि—क्रियापदम् । अहम्—प्रथमान्तम् । पाणिनीयप्रवेशाय—चतुर्थ्यन्तम् । लघुसिद्धान्तकौमुदीम्—द्वितीयान्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—अहं लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि । किं कृत्वा सरस्वतीं देवीं नत्वा । कथम्भूतां सरस्वतीं देवीं शुद्धाम् । पुनः कथम्भूतां सरस्वतीं देवीं गुण्याम् । कस्मै प्रयोजनाय पाणिनीयप्रवेशाय ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(अहम्) मैं वरदराज (लघुसिद्धान्तकौमुदीम्) छोटी सिद्धान्तकौमुदीको (करोमि) निर्माण करताहूं (किं कृत्वा) क्या करकै (सरस्वतीं देवीं नत्वा) सरस्वती देवीको नमस्कार करके (कथंभूतां सरस्वतीं देवीम्) कैसी सरस्वतीदेवीको (शुद्धाम्) सवप्रकार पवित्रको (पुनः कथम्भूतां सरस्वतीं देवीम्) फिर कैसी सरस्वतीदेवीको (गुण्याम्) श्रेष्ठगुणवालीको (कस्मै प्रयोजनाय) किस प्रयोजनके लिये (पाणिनीयप्रवेशाय) पाणिनिके बनाये हुए व्याकरणशास्त्रमें प्रवेशके निमित्त ॥ १ ॥

सरलार्थः—मैं शुद्ध और अच्छे गुणवाली सरस्वती देवीको नमस्कार करकैं, पाणिनिमुनिकृत व्याकरणमें प्रवेशकरनेके निमित्त छोटी सिद्धान्तकौमुदीको बनाताहूं ॥ १ ॥

भावार्थः—' समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेदिति ' अर्थात् ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्ति हो इस कारण मङ्गलाचरण करना चाहिये इस वाक्यको लेकर वरदराजने सरस्वती देवीकी वंदना की है । ग्रंथके आदिमें देवताको नमस्कार करना मंगल है और वाणीकी देवता सरस्वती है, इस कारण व्याकरणशास्त्रमें सरस्वतीकी कृपासे प्रवृत्ति हो इससे नमस्कार किया ॥ १ ॥

अथ संज्ञाप्रकरणम् ।

(१) अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ॥

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि ।

(इति माहेश्वराणि) यह शिवजीसे आये हुए (सूत्राणि) चौदह सूत्र (अणादि) अण् अक् आदि (संज्ञार्थानि) संज्ञाके निमित्त हैं जो मूल ८ के सूत्रसे सिद्ध होती है ॥ १ ॥

(२) एषामन्त्या इतः ॥

(एषाम्) इन चौदह सूत्रोंके (अन्त्याः) अन्तके (ण् क् ङ् च् ट् ण् म् ञ् ष् श् व् य् र् ल्) अक्षर (इतः) इत्संज्ञावाले हैं ॥ २ ॥

(३) हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः ॥

(हकारादिषु) हकारादिकोंमें (अकारः) जो अकार है सो (उच्चारणार्थः) उच्चारणके वास्ते है; विना अकार लगाये उच्चारण नहीं हो सक्ता, हयवरट्से हल् पर्यन्त हकारादि कहाते हैं ॥ ३ ॥

(४) लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः ॥

(लण्मध्ये तु) लण्सूत्रमें तो लके अन्तगत जो अकार है सो (इत्संज्ञकः) इत्संज्ञा वाला है इसका विवरण ३६ वें सूत्रमें देखो ॥ ४ ॥

(५) हलन्त्यम् । १ । ३ । ३ ॥

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ॥

(उपदेश) उपदेशमें (अन्त्यम्) अन्तका जो (हल्) हल् अक्षर है सो (इत्स्यात्) इत्संज्ञावाला हो (आद्योच्चारणम्) पतञ्जलि पाणिनि और कात्यायन इन तीनों व्याकरण-

---

१-हकारो द्विरुपात्तोऽयमटिशल्यपि वाञ्छता । अर्हेणाधुक्षदित्यत्र द्वयं सिद्धं भविष्यति ॥

२-नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारान् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥
संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥
प्रतिषेधोनुवादश्च विभाषा च निपातनम् ।
एतच्चतुष्टयं क्षिप्त्वा दशधा सूत्रमुच्यते ॥

३-धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम् ।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥

कर्ताओंने जो उच्चारण किया है सो (उपदेशः) उपदेश है । (सूत्रेषु) सूत्रोंमें (अदृष्टं पदम्) जो पद नहीं देखा है वह (सूत्रान्तरात्) दूसरे सूत्रोंसे (अनुवर्तनीयम्) लाना चाहिये (सर्वत्र) सब जगह । जैसे 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' १ । ३ । २ । यह सूत्र पाणिनीय अष्टाध्यायीके पहले अध्यायके तीसरे पादका दूसरा है, इसमें उपदेशमें अनुनासिक अच्की इत् संज्ञा की है इसके आगे 'हलन्त्यम्' १ । ३ । ३ । सूत्र है इसमें पाणिनिने इत्का नाम नहीं लिया है तथापि वृत्तिकारने उपदेश और इत् यह दो पद 'उपदेशे०' इस सूत्रसे लिये हैं वारम्वार कथन न करना पडे इस कारण अनुवृत्ति लाते हैं ॥ ५ ॥

(६) अदर्शनं लोपः । १ । १ । ६० ॥

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ॥

(प्रसक्तस्य) विद्यमानके (अदर्शनम्) न दीखनेकी लोपसंज्ञा (स्यात्) हो अर्थात् जो वस्तु होकर जाती रहै उसको लोप कहते हैं ॥ ६ ॥

(७) तस्य लोपः । १ । ३ । ९ ॥

तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

(तस्य) शिवजीके चौदह सूत्रोंमें जिन ण्क्च् आदिकी इत् संज्ञा की है उस (इतः) इत्का (लोपः) लोप (स्यात्) हो । (णादयः) णादिक (अणाद्यर्थाः) अणादि प्रत्याहार सिद्ध करनेके निमित्त हैं ॥ ७ ॥

(८) आदिरन्त्येन सहेता । १ । १ । ७१ ॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथाऽणिति अइउवर्णानां संज्ञा । एवमक्-अच्-अल्-हलित्यादयः ॥

(अन्त्येन इता) अन्त्य इत् करके (सहितः) सहित जो (आदिः) आदिका वर्ण है सो (मध्यगानाम्) वीचके अक्षरोंकी और (स्वस्य च) अपनीभी (संज्ञा) संज्ञावाला (स्यात्) हो, जैसे 'अ इ उ ण्' इस सूत्रमें अन्त्यका इत्संज्ञावाला ण् और आदिका अ उच्चारणकरनेसे इसके वीचके अक्षर इ और उ इसी अण्के साथमें आगये इसी प्रकारसे अक्प्रत्याहार अच् अल् और हल् प्रत्याहार जानने. अच्प्रत्याहारमें इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ यह मध्यके अक्षर अ प्रथमका अक्षर गणनामें आये हैं, इनमें ण् क् ङ् च् यह इत्संज्ञावाले हैं, अच्प्रत्याहारमें सब स्वर और हल्प्रत्याहारमें सब व्यंजन आगये हैं ॥ ८ ॥ *

ऽ यह चिह्न अव्ययका है ।

* १ अण्-अ इ उ ।

२ अक्-अ इ उ ऋ ऌ ।

३ अच्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ।
४ अट्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ।
५ अण्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ।
६ अम्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न ।
७ अश्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।
८ अल्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।
९ इक्-इ उ ऋ ऌ ।
१० इच्-इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ।
११ इण्-इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ।
१२ उक्-उ ऋ ऌ ।
१३ एङ्- ए ओ ।
१४ एच्-ए ओ ऐ औ ।
१५ ऐच्-ऐ औ ।
१६ हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।
१७ हल्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ झ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।
१८ यण्-य व र ल ।
१९ यम्-य व र ल ञ म ङ ण न ।
२० यञ्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ ।
२१ यय्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
२२ यर्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।
२३ वश्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।
२४ वल्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।
२५ रल्-र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।
२६ मय्-म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
२७ ङम्-ङ ण न ।
२८ झष्-झ भ घ ढ ध ।
२९ झश्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।
३० झय्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
३१ झर्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।
३२ झल्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।
३३ भष्-भ घ ढ ध ।
३४ जश्-ज ब ग ड द ।
३५ बश्-ब ग ड द ।

(९) ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः । १ । २ । २७ ॥

उश्च ऊश्च उ३श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ॥

कुक्कुटके शब्दमें कु कू कु ३ उच्चारण होता है. योंही इसमें उ ऊ उ ३ यह तीन उकार हैं, इन तीनोंका नाम (वः) है (वां काल इव) तीनों उकारके उच्चारणकालकी समान (कालो यस्य) उच्चारणकाल है जिसका (सोऽच्) वह अच् (क्रमात्) क्रमसे (ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः) ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञावाला (स्यात्) हो. एक मात्राका ह्रस्व, दोमात्राका दीर्घ, तीनमात्राका प्लुत जानना । (सः) वह अच् (प्रत्येकम्) एक एकके प्रति (उदात्तादिभेदेन) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन भेदोंसे (त्रिधा) तीन प्रकारका है ॥ ९ ॥

(१०) उच्चैरुदात्तः । १ । २ । २९ ॥

(उच्चैः) जो ऊँचेस्वरसे बोला जाय उसको (उदात्तः) उदात्त कहते हैं अर्थात् मुखके ताल्वादिस्थानके ऊपरभागसे जो स्वर उच्चारण हो सो उदात्त है ॥ १० ॥

(११) नीचैरनुदात्तः । १ । २ । ३० ॥

(नीचैः) मुखके तालु आदि स्थानके नीचे भागसे जो स्वर उच्चारण हो उसे (अनुदात्तः) अनुदात्त कहते हैं ॥ ११ ॥

(१२) समाहारः स्वरितः । १ । २ । ३१ ॥

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

(समाहारः) उदात्त और अनुदात्त यह वर्णधर्म जिस अच्में समान रहै उसे (स्वरितः) स्वरित कहते हैं, इसके पूर्वमें उदात्त और उत्तरभागमें अनुदात्त होताहै, इसप्रकारसे (नवविधः) नौप्रकारका (अपि) भी (सः) वह अच् (प्रत्येकम्) एकएकके प्रति (अनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्याम्) अनुनासिक और अननुनासिक भेदोंसे (द्विधा:) दो प्रकारका है,इस प्रकारसे अच्के अठारह भेद हुए ॥ १२ ॥

---

३६ खय्– ख फ छ ठ थ च ट त क प।
३७ खर्–ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
३८ छव्–छ ठ थ च ट त।
३९ चय्–च ट त क प।
४० चर्–च ट त क प श ष स।
४१ शर्–श ष स।
४२ शल्–श ष स ह।

स्वरभेदज्ञापककोष्ठमिदम् ।

अक्षराणि	अ इ उ ऋ ऌ	अ इ उ ऋ ए औ ऐ ओ	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ
भेदाः	ह्रस्वोदात्तानुनासिकः ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः ह्रस्वानुदात्तानुनासिकः ह्रस्वानुदात्ताननुनासिकः ह्रस्वस्वरितानुनासिकः ह्रस्वस्वरिताननुनासिकः	दीर्घोदात्तानुनासिकः दीर्घोदात्ताननुनासिकः दीर्घानुदात्तानुनासिकः दीर्घानुदात्ताननुनासिकः दीर्घस्वरितानुनासिकः दीर्घस्वरिताननुनासिकः	प्लुतोदात्तानुनासिकः प्लुतोदात्ताननुनासिकः प्लुतानुदात्तानुनासिकः प्लुतानुदात्ताननुनासिकः प्लुतस्वरितानुनासिकः प्लुतस्वरिताननुनासिकः

(१३) मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः । १ । १ । ८ ॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम् । अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । ऌवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाऽभावात् । एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् ॥

(मुखसहितनासिकया) मुखसहित नासिकासे (उच्चार्यमाणः) उच्चारण किया (वर्णः) अक्षर (अनुनासिकसंज्ञः) अनुनासिकसंज्ञावाला (स्यात्) हो । (तदित्थम्) सो इसप्रकार अ इ उ ऋ (एषाम्) इन (वर्णानाम्) अक्षरोंके (प्रत्येकम्) एक एकके प्रति (अष्टादश भेदाः) अठारह भेद हैं (ऌवर्णस्य) ऌ अक्षरके (द्वादश) बारह भेद हैं (तस्य) तिसके (दीर्घाभावात्) दीर्घ न होनेसे (एचामपि) ए ओ ऐ औ इनकेभी (द्वादश) बारह भेद हैं (तेषाम्) तिन्हके (ह्रस्वाभावात्) ह्रस्व न होनेसे ॥ १३ ॥

(१४) तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् । १ । १ । ९ ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात ॥ ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ॥

जिन अक्षरोंके (ताल्वादिस्थानम्) तालु आदि स्थान और (आभ्यन्तरप्रयत्नश्च) आभ्यन्तरप्रयत्नभी (एतद्द्वयम्) यह दोनों (यस्य) जिसके (येन) जिससे (तुल्यम्) बराबर हों (तत्) सो (मिथः) परस्पर (सवर्णसंज्ञम्) (सवर्णसंज्ञावाला) स्यात् (हो । (ऋऌवर्णयोः) ऋ ऌ अक्षरोंकी (मिथः) परस्पर (सावर्ण्यम्) सवर्णसंज्ञा (वाच्यम्) कहनी । यद्यपि ऌका दंत ऋका मूर्द्धा स्थान है, परन्तु प्रयोजनसे सवर्णसंज्ञा की है । २७ सूत्र देखो ॥ १४ ॥

(१५) अकुहविसर्जनीयानां कंठः ।

अ आ (कु) कवर्ग क ख ग घ ङ ह और (विसर्जनीयानाम्) विसर्गोंका (कंठः) कंठस्थान है ।

इचुयशानां तालु ।

इ ई (चु) चवर्ग च छ ज झ ञ और (यशानाम्) य और शका (तालु) तालुस्थान है ।

ऋटुरषाणां मूर्द्धा ।

ऋ ॠ (टु) टवर्ग ट ठ ड ढ ण (रषाणाम्) र और षका (मूर्द्धा) मूर्द्धास्थान है ।

लृतुलसानां दन्ताः ।

लृ (तु) तवर्ग त थ द ध न (लसानाम्) ल और सका (दन्ताः) दंतस्थान है ।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।

उ ऊ (पु) पवर्ग प फ ब भ म (उपध्मानीयानाम्) उपध्मानीय ≍ प ≍ फ इनका (ओष्ठौ) ओष्ठ स्थान है ।

ञमङणनानां नासिका च ।

ञ म ङ ण न इनका (नासिका च) नासिका स्थान भी है । च कहनेका यह तात्पर्य है कि अपने २ वर्गका स्थान भी है और नासिकाभी है ।

एदैतोः कंठतालु ।

(एदैतोः) ए और ऐका (कंठतालु) कंठ तालु स्थान है ।

ओदौतोः कंठोष्ठम् ।

(ओदौतोः) ओ और औका (कंठोष्ठम्) कंठ और ओष्ठ स्थान है ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ।

(वकारस्य) वकारका (दंतोष्ठम्) दन्त और ओष्ठ स्थान है ।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।

(जिह्वामूलीयस्य) जिह्वामूलीय ≍ क ≍ ख का (जिह्वामूलम्) जिह्वामूल स्थान है ।

नासिकाऽनुस्वारस्य ।

(अनुस्वारस्य) अनुस्वारका (नासिका) नासिका स्थान है ॥ १५ ॥

(१६) यत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पंचधा । स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् ।

---

१ अआ इत्यादि जो दो दो लिखेहैं इनमें प्लुत लगानेसे तीन प्रकारके स्वर समझना ।

यत्न अर्थात् प्रयत्न दोप्रकारका है (आभ्यन्तरः) मुखके अन्तर और (बाह्यः) कंठ आदिमें । उसमें पहला आभ्यन्तर प्रयत्न पांच प्रकारका है । स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत ।

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम । ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम् । ईषद्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणाम् । ह्रस्वस्याऽवर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव ।

(१) सो स्पृष्ट प्रयत्न (जिसमें जिह्वा स्थानोंको स्पर्श करती है) स्पर्शवर्णोंका है (२) ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न (किंचित् स्पृष्ट) अन्तःस्थोंका है (३) ईषद्विवृत (जिसमें जिह्वा स्थानोंसे थोडी अलग रहै) प्रयत्न ऊष्मोंका है (४) स्वरोंका विवृतप्रयत्न है (विवृतमें जिह्वा स्थानोंका स्पर्श नहीं करती) (५) ह्रस्व अकार बोलनेमें संवृतप्रयत्न है परन्तु साधन दशामें विवृत है, यह न होता तो अकारकी सवर्णसंज्ञा और किसी अक्षरसे असंभावित होती ।

बाह्यस्त्वेकादशधा । विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति ।

बाह्य प्रयत्न तौ (एकादशधा) ग्यारह प्रकारका है, विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।

(२) खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च ।

खर प्रत्याहार (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) का विवार श्वास और अघोष प्रयत्न है ।

(३) हशः संवारा नादा घोषाश्च ।

हश् प्रत्याहार (हयवरल ञमङणन झभघढध जबगडद) का संवार, नाद, घोष प्रयत्न है ।

(४) वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाऽल्पप्राणाः ।

वर्गोंका पहला तीसरा पांचवां अक्षर (क च ट त प ग ज ड द ब ङ ञ ण न म) और यण्प्रत्याहार (य व र ल) का अल्पप्राण प्रयत्न है ।

(५) वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः ।

वर्गोंका दूसरा चौथा वर्ण (ख छ ठ थ फ घ झ ढ ध भ) और शल्प्रत्याहार (श ष स ह) का महाप्राण प्रयत्न है ।

प्रयत्नज्ञापकयन्त्रम् ।

बाह्याः प्रयत्नाः	विवारः श्वासः अघोषः अल्पप्राणः	विवारः श्वासः अघोषः महाप्राणः		संवारो नादो घोषोल्पप्राणः				संवारो नादो घोषो महाप्राणः	
					उदात्तः अनुदात्तः स्वरितः				
अक्षराणि	क च ट त प	ख छ ठ थ फ	श ष स	ग ङ ज ञ ड ण द न ब म	अ	इ ए उ ओ ऋ ऐ ऌ औ	य व र ल	घ झ ढ ध भ	
आभ्यन्तर-प्रयत्नाः	स्पृष्टः		ईषद्वि-वृतः	स्पृष्टः	ह्रस्वस्तु संवृतः	विवृतः	ईष-त्स्पृष्टः	स्पृष्टः	ईषद्वि-वृतः

(६) कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।

(कादयः) कसे लेकर (मावसानाः) मपर्यन्त पचीस अक्षर (स्पर्शाः) स्पर्श कहलाते हैं ।

(७) यणोऽन्तस्थाः ।

(यणः) यण्प्रत्याहार (यवरल) के अक्षर (अन्तस्थाः) अन्तस्थ कहलाते हैं ।

(८) शल ऊष्माणः ।

(शलः) शल्प्रत्याहार (श ष स ह) के अक्षर (ऊष्माणः) ऊष्मा कहलाते हैं ।

(९) अचः स्वराः ।

(अचः) अच्प्रत्याहारके अक्षर (स्वराः) स्वर कहलाते हैं ।

(१०) ᳵक ᳵख इति कखाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः ।

क और खसे पहिले ᳵ आधे विसर्गके समान जिह्वामूलीय कहलाते हैं ।

(११) ᳵप ᳵफ इति पफाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः ।

प और फसे पहले ᳵ आधे विसर्गके समान उपध्मानीय कहाते हैं ।

(१२) अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौं ।

अं और अः यह अचूसे परे अनुस्वार और विसर्ग हैं ॥ १६ ॥

(१७) अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः । १ । १ । ६९ ॥

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः । तदेवम् 'अ' इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवम् लृकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् । अनुनासिकाऽननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाऽनुनासिकाऽननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ॥

किसी शब्दादिकी सिद्धिके लिये जो विधान किया जाय उसे प्रत्यय कहते हैं । विधान न कियेहुए अणूप्रत्याहार (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल) और जिन अक्षरोंका उकार इत्संज्ञकहै (कु चु टु तु पु) यह सवर्णकी संज्ञावाले हों । केवल इसी सूत्रमें अणूप्रत्याहार पर णकार तक जानना । कु (कवर्ग) चु (चवर्ग) टु (टवर्ग) तु (तवर्ग) पु (पवर्ग) यह उदित् है । इस प्रकारसे अ-के अठारह भेद हुए; जैसे-ह्रस्वउदात्त, ह्रस्वअनुदात्त, ह्रस्वस्वरित; दीर्घउदात्त, दीर्घअनुदात्त, दीर्घस्वरित; प्लुतउदात्त, प्लुतअनुदात्त प्लुतस्वरित; यह नौ हुए; फिर अनुनासिक और निरनुनासिक दो भेद मिलाकर नौ निरनुनासिक और नौ अनुनासिक, इस प्रकार अठारह भेद होते हैं । इसीप्रकार इ उ के भी अठारह भेद हैं, ऋ और लृकी परस्पर सवर्णसंज्ञा है, ऋके अठारह भेद और लृका दीर्घ न होनेसे बारह भेद यह दोनों मिलकर ऋकारकी तीस प्रकारकी संज्ञा हुई । इसी प्रकार लृकारभी तीस प्रकारकी संज्ञाका बोधक है । एच्प्रत्याहारके अक्षर प्रत्येक बारह बारहके बोधक हैं । य व ल यह प्रत्येक अनुनासिक और अननुनासिक भेदसे दोदो प्रकारकी संज्ञावाले हैं इसीसे य व ल यह अनुनासिक और अननुनासिक अपनी दोनों संज्ञाओंको ग्रहण करते हैं ॥ १७ ॥

(१८) परः संनिकर्षः संहिता । १ । ४ । १०९ ।

वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात् ॥

(वर्णानाम्) अक्षरोंकी (अतिशयितः) अत्यन्त (सन्निधिः) निकटता (संहितासंज्ञः संहितासंज्ञा (स्यात्) हो । जहां अक्षर अत्यन्त निकट होते हैं वह संहिता कहाती है ॥ १८ ॥

(१९) हलोऽनन्तराः संयोगः । १ । १ । ७ ॥

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः ॥

(अज्भिः) अचोंसे (अव्यवहिताः) व्यवधान रहित (हलः) हल् अक्षर (संयोगसंज्ञाः) संयोगसंज्ञावाले (स्युः) हों अर्थात् जिन हलोंके मध्यमें स्वर न होवे परस्पर मिलजायँ ॥ १९ ॥

(२०) सुप्तिङन्तं पदम् । १ । ४ । १४ ॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ॥

(सुबन्तम्) जिसके अन्तमें सुप्प्रत्याहारके प्रत्यय और (तिङ्न्तं च) तिङ्प्रत्याहार अर्थात् क्रिपापदकी प्रत्ययभी अन्तमें हो वह (पदसंज्ञम्) पदसंज्ञावाला (स्यात्) हो। यह प्रत्यय अजन्तपुँल्लिग और भ्वादिगणके प्रारम्भमें लिखैंगे ॥ २० ॥

॥ इति संज्ञाप्रकरणम् ॥

अथाच्[१]संधिः ।

(२१) इको यणचि । ६ । १ । ७७ ॥

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी उपास्य इति स्थिते ॥

इक्प्रत्याहारके स्थानमें यण्प्रत्याहार हो अच्प्रत्याहार परे हुए सन्ते संहिता के विषय में। जैसे सुधी उपास्य ऐसे दो पद हैं इसमें सकारके 'उ' से परे धकारमें 'ई' अच् है इससे उ और उपास्यके 'उ' से परे पकारका 'आ' अच् है तव किस इक्को यण् हो तो अर्थात् इस प्रयोगमें तीन इक् हैं तीनोंसे अच् परे हैं ऐसी शंकामें अगला सूत्र समाधानको लगा ॥ २१ ॥

(२२) तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य । १ । १ । ६६ ॥

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥

सप्तमी विभक्तिसे जो कार्य विधान किया है, वह दूसरे वर्णके व्यवधानरहित उसीको हो जो सप्तम्यन्तपदार्थके पूर्व रहै, अर्थात् उसके आगे कोई और अक्षर न हो अच्ही हो, इससे सकारके उके आगे धकार बीचमें पडा है, और उपास्यके उके आगे 'प' बीचमें पडा है, इससे इन दोनों स्थानोंमें नहीं हो सक्ता, परन्तु सुधीकी ईके आगे उपास्यका उकार सप्तमीसे दिखाया हुआ अच्ही है, बीचमें कोई व्यवधान नहीं, तव इसी ईके स्थानमें यण् होगा, परन्तु यण्प्रत्याहारमें (यरलव) चार अक्षर हैं इनमेंसे कौनसा हो तव ॥ २२ ॥

(२३) स्थानेऽन्तरतमः । १ । १ । ५० ॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध्य् उपास्य इति जाते ॥

जहां किसी आदेशकी प्राप्ति हो तो उसमें जो बहुतही सदृश हो वही आदेश हो।

१–दो वर्ण परस्पर निकटस्थ होनेसे मिल जाते हैं, उसका नाम संधि है उसमें जिसमें स्वरोंका योग होताहै वह स्वरसंधि. जिसमें व्यञ्जनोंका योग होता है वह हल्संधि कहाती है।

(आदेश होनेमें पहला अक्षर नहीं रहता, आगमनें रहजाता है) (शत्रुवदादेशः, मित्रवदागमः) तौ अब इनका स्थान प्रयत्न मिलाया इकारका तालुस्थान और यणोंमें यकारका तालुस्थान है, तब ईके स्थानमें य् हुआ जिससे सुध्य् उपास्य ऐसा रूप हुआ ॥ २३ ॥

(२४) अनचि चँ । ८ । ४ । ४७ ॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् ॥

अच्से परे यदि यर्प्रत्याहार हो तौ उसे विकल्प करके द्वित्व होजाय, यदि उससे आगे अच् न हो तौ । यहां सकारके 'उ' से परे यर् प्रत्याहारके ध् और य् दोनों अक्षर हैं परन्तु धकारहीको द्वित्व होगा कारण कि धकारसे परे अच् नहीं है तौ सुध्ध्य् उपास्य यह रूप हुआ॥२४॥

(२५) झलां जश् झशि । ८ । ४ । ५३ ॥

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ॥

हल् प्रत्याहारके स्थानमें जश् हो झश्परे हो तो । यहां झल् प्रत्याहारमे दोनों धकार हैं परन्तु पहले धकारको जश् होगा, कारण कि उससे आगे झश् है, जश् प्रत्याहारमें भी (जबगडद) इतने अक्षर हैं कौनसा हो तब (२३) सूत्रसे ध्के स्थानमें द् हुआ तौ सुद्ध्य् उपास्य यह रूप हुआ ॥ २५ ॥

(२६) संयोगान्तस्य लोपः । ८ । २ । २३ ॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात ॥

जिस (२०) पदके अन्तमें संयोग (१९) हो और वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें हो उसका लोप हो इस विधिसे सुदधय पदके अन्तमें संयोग (१९) हैं तौ इन सब अक्षरोंका लोप होना चाहिये ॥ २६ ॥

(२७) अलोऽन्त्यस्य । १ । १ । ५२ ॥

षष्ठीनिर्दिष्टाऽन्त्यस्यादेशः स्यात् ॥

संयोगान्तस्य (२६) इस षष्ठीसे बतानेवाला लोपरूप आदेश पदके अन्तिम वर्णमें करना चाहिये, अर्थात् अन्तके अक्षरका लोप हो तब सुद्ध्य् के अन्तिम वर्ण यकारका लोप प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥

(२८) यणः प्रतिषेधो वाच्यः ।

कात्यायन मुनि कहते हैं कि यदि संयोगान्त पदका अक्षर यण् प्रत्याहारका हो तौ उसका लोप न हो यहां यकार यण् प्रत्यहारका है, इससे लोप न होकर सुद्ध्युपास्यः सिद्ध हुआ । और जब

ककारको द्वित्व न हुआ तौ सुध्युपास्यः सिद्ध हुआ। इसी प्रकार मधु+अरिः में उके स्थानमें यण्प्रत्याहारका (२१, २३) व हुवा तव मध्व्+अरिः फिर (२४) सूत्रसे धकारको द्वित्व हुआ तब (२९) ध्को द् हुआ, तव मद्ध्व् ३ अरिः हुआ, तौ मद्ध्वरिः सिद्ध हुआ। जव (२४सू.) से द्वित्व न हुआ तौ मध्वरिः हुआ। इसी प्रकार धातृ+अंशः=धात्र् (२१, २३) +अंशः=धात्त्रंशः धात्रंशः (१९) लृ+आकृतिः=ल् (२१, २३) +आकृतिः=लाकृतिः (१९) ॥ २८ ॥

(२९) एचोऽयवायावः । ६ । १ । ७८ ॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

एच् प्रत्याहार (ए ओ ऐ औ) को क्रमसे अय्, अव्, आय्, आव्, यह आदेश हों अच् परे होय तौ ॥ २९ ॥

(३०) यथासंख्यमनुदेशः समानाम् । १ । ३ । १० ॥

समसम्बंधी विधिर्यथासंख्यं स्यात् ॥

समान सम्वंधवाली विधि यथासंख्यवाली हो अर्थात् विधानकिये पदार्थोंकी संख्या जो तुल्य हो तौ उनका सम्बन्ध पहलेको पहला, दूसरेको दूसरा इस क्रमसे हो, यहां एच् प्रत्याहारमें चार अक्षर हैं, और उनको चारही आदेश हुए हैं तो यह क्रमानुसार होंगे, इस कारण पहले ए के स्थानमें अय् और ओ के स्थानमें अव् आदेश हुआ इत्यादि, शब्दसिद्धि जैसे हरे+ए चतुर्थीविभक्तिका प्रत्यय इसमें ए–को (२९ सू०) से अय् हुआ तव हर्+अय्+ए होकर 'हरये' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार विष्णो+ए=विष्ण्+अव् (२९)+ ए=विष्णवे। यहां दूसरेको दूसरा नै+अकः=न्+आय् (२९)+अकः=नायकः। यहां तीसरेको तीसरा आदेश हुआ। पौ+अकः=प्+आव् (२९) +अकः=पावकः। यहां चौथेको चौथा आदेश हुआ ॥ ३० ॥

(३१) वान्तो यि प्रत्यये । ६ । १ । ७९ ॥

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः ॥

यकार है आदिमें जिसके ऐसा प्रत्यय [१] (१३९) परे होनेसे ओ और औ के स्थानमें अव् और आव् क्रमसे आदेश हों।

जैसे गो+यम्=ग्+अव्+यम्=गव्यम्। नौ+यम्=न्+आव्+यम्=नाव्यम् ॥ ३१ ॥

(३२) अध्वपरिमाणे च ॥

मार्गके परिमाण अर्थमें गोशब्दके आगे यूतिशब्द हो तौ ओकारको अव् आदेश हो। जैसे गो+यूतिः=ग्+अव्+यूतिः=गव्यूतिः–दो कोश ॥ ३२ ॥

१–यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे–अल्ग्रहणे सप्तम्यन्ते विशेषणीभूते यो विधिर्विधीयते स तदादौ ज्ञेयः तदन्तविधेरपवादोऽयम्।

(३३) अदेङ् गुणः । १ । १ । २ ॥

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

अत् ह्रस्व अकार और एङ् (ए, ओ) गुणसंज्ञावाले हों अर्थात् इनको गुण कहते हैं ॥३३॥

(३४) तपरस्तत्कालस्य । १ । १ । ७० ॥

तः परो यस्मात् स च तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥

जिस स्वरसे परे तकार होय, अथवा तकारसे परे जो स्वर होय सो उसी उच्चारण कालवालेके (९) समकालकी संज्ञावाला हो जैसे अकारके अठारह भेद (१७) हैं परन्तु यदि तकारसे पहले आवै तो अत् ह्रस्व अकारके समकालकाही बतानेवाला होगा ॥ ३४ ॥

(३५) आद्गुणः । ६ । १ । ८७ ॥

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात् ॥

अवर्णसे अच् परे हो तौ पूर्व और परके स्थानमें एक गुण (३३) आदेश हो; जैसे उप+इन्द्रः इसमें पके अन्तके अकारके आगे इन्द्रः की इ है इस अ और इके स्थानमें एक गुण (अ ए ओ) आदेश होनाचाहिये, तब स्थान प्रयत्न (७) मिलानेसे 'अ इ' का कण्ठ और तालुस्थान है गुणोंमें कण्ठतालुस्थानी ए होनेसे यही आदेश हुआ (१४) तब उप्+ए +न्द्रः=उपेन्द्रः हुआ । इसी प्रकार गंगा+उदकम् । आ और उका कंठोष्ठस्थान है गुणोंमें कण्ठ और ओष्ठ स्थानी 'ओ' है तब ओ आदेश होनेसे गंग्+ओ+दकं=गंगोदकम् हुआ ॥३५॥

(३६) उपदेशेऽजनुनासिक इत् । १ । ३ । २ ॥

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्य्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ॥

उपदेशमें (९) जो अच् अनुनासिक हो उसका नाम इत् हो । पाणिनीयसूत्रोंमें अनुनासिकका चिह्न दृष्ट नहीं आता, परन्तु उनकी प्रतिज्ञासे जाना जाता है, लण्सूत्रमें जो अनुनासिक तथा इत्संज्ञक अकार है तिसके साथ हयवरट् सूत्रके रट्का रेफ मिलकर रप्रत्याहार बनता है. इसमें र् और ल इन दो अक्षरोंका ग्रहण होता है अर्थात् चौदह सूत्रोंमेंके पांचवें सूत्रके रकारसे मिलानेपर वह लण्सूत्रके ल् अन्तर्गत अकारतकका रप्रत्याहार (८) बना है, तिसमें र् तथा ल् इन दो अक्षरोंका ग्रहण होता है ॥ ३६ ॥

(३७) उरण् रपरः । १ । १ । ५१ ॥

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्, तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते ॥

१-तेन अत् इत् उत् इत्यादयः षण्णां षण्णां संज्ञाः

ऋकारकी तीस प्रकारकी संज्ञा (१७) कही है उसके स्थानमें जो अण् (अ इ उ) आदेश हो सो रपर होता हुआ प्रवृत्त हो, अर्थात् उससे परे रप्रत्याहारका अक्षर (३६) भी होवे, जैसे ' अर् इर् उर् ' इसमें अण् प्रत्याहारके अक्षरोंसे परे र दिखाया है, उदाहरण जैसे कृष्ण+ऋद्धिः इसमें आद्गुणः (३९) से गुण हुआ, तब 'उरण्रपरः' इस सूत्र से अकार और ऋके स्थानमें अर् गुण हुवा तो 'कृष्णर्द्धिः' सिद्ध हुआ । इसी प्रकार तव+ऌकारः=तव्=अल्+कारः=तवल्कारः । ऋको र् और ऌको ल् आदेश हुए ॥ ३७ ॥

(३८) लोपः शाकल्यस्य । ८ । ३ । १९ ।

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ॥

अकार अथवा आकार है पूर्वमें जिसके ऐसे पदान्त (२०) यकार और वकारका विकल्पसे लोप हो अश् प्रत्याहार परे हुए सन्ते, शाकल्यमुनिके मतमें । जैसे हरे+इह=हरय् (२९)+इह इसमें यकारका लोप करनेसे ' हर इह ' और विष्णो+इह=विष्णव् (२९)+इह इसमें वकारका लोप होनेसे ' विष्ण इह ' हुआ । अब इस प्रयोगमें (३९) सूत्रसे गुणकी प्राप्ति हुई परन्तु—॥ ३८ ॥

(३९) पूर्वत्राऽसिद्धम् । ८ । २ । १ ॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् ॥

पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायीमें सवासात अध्यायके सामने पौन अध्याय अर्थात् तीन पाद असिद्ध हैं । जो कार्य त्रिपादीका सूत्र करचुका वह सवासात अध्यायके सूत्रोंकी दृष्टिमें हुआ नहीं है, प्राप्तभी नहीं हो इसी प्रकार त्रिपादीमेंभी पूर्वसूत्रकी अपेक्षा परसूत्रका कार्य असिद्ध है। 'हर इह' और 'विष्ण इह' इन प्रयोगोंमें गुणकी प्राप्ति है, परन्तु 'आद्गुणः' सूत्र छठे अध्यायके पहले पादका ८७ सत्तासीवां है । यह सवासात अध्यायके अन्तर्गत आगयाहै, यह त्रिपादीके सूत्रके कार्यको नहीं देख सकता, और ' लोपः शाकल्यस्य ' यह आठवें अध्यायके तीसरे पादका उन्नीसवां सूत्र है, तौ सवासात अध्यायके सामने यह सूत्र असिद्ध है और (३९) वें सूत्रकी दृष्टिमें मानो यकार और वकारका लोप नहीं हुआ और जब लोप न माना तौ यकार और वकारके व्यवधानसे गुणादेशकी प्राप्तिभी न रही, इस कारण गुणादेश न हुआ, तब 'हर इह' और 'विष्ण इह' रूप सिद्ध हुए, परन्तु लोप विकल्प करके होता है जब यकार वकारका लोप न हुवा तौ 'हरयिह, विष्णविह' रूप सिद्ध हुए ॥ ३९ ॥

(४०) वृद्धिरादैच् । १ । १ । १ ॥

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥

आ और ऐच् (ऐ औ) वृद्धिसंज्ञावाले हों ॥ ४० ॥

(४१) वृद्धिरेचि । ६ । १ । ८८ ॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः ॥

अ अथवा आ से एच् (ए ओ ऐ औ) परे हों तो पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो यह सूत्र गुणका बाधक है, यदि यहांभी 'आद्गुणः' सूत्र लगे तौ वृद्धिकी सफलता कहां हो, इससे वृद्धिमें गुणका निवारण है, उदाहरण कृष्ण+एकत्वम् यहां अकारसे आगे एच् है तब पूर्वपरके स्थानमें कंठतालुस्थानी वृद्धिके ऐ अक्षरकी प्राप्ति हुई, तब कृष्णैकत्वम् सिद्ध हुआ, इसी प्रकार गंगा+ओघः=गङ्गौघः इसमें आकार और ओकारके स्थानमें औ वृद्धि हुई । देव+ऐश्वर्यम्=देव्[1]+अ+ऐश्वर्यम्=देवैश्वर्यम् । कृष्ण+औत्कण्ठयम्=कृष्ण्+अ+औत्कण्ठयम्=कृष्णौत्कण्ठयम् ॥ ४१ ॥

(४२) एत्येधत्यूठ्सु । ६ । १ । ८९ ॥

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ॥

अकार अथवा आकारसे, एच् है आदिमें जिनके ऐसे इण् और एधधातुके एति एधतिशब्द और ऊठ् परे होनेपर भी पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो, इस विधिके करनेका कारण यह है कि आगेके (९०) वें सूत्रसे वृद्धिका निवारण होता है, इस कारण इससे इन दोनों धातुओंसे फिर वृद्धिका विधान किया,-जैसे उप+एति इस प्रयोगमें अकारसे आगे एच् है आदिमें जिसके ऐसा इण् धातुका एति शब्द है, तौ अ और एके स्थानमें ऐ वृद्धि होकर उपैति सिद्ध हुआ । इसी प्रकार उप+एधते=उपैधते । प्रष्ठ+ऊहः (वह धातुको 'वाह ऊठ्' इस सूत्रसे ऊठ् आदेश हुआ है)=प्रष्ठौहः ॥ प्रश्न । **एजाद्योः किम् ?** । एच् आदिमें हो ऐसा क्यों कहा तो उसका उत्तर यह है कि इन शब्दोंका पहला अक्षर कभी कभी इकारभी रहता है तो उस अवस्थामें वृद्धि न हो, जैसे-उप+इतः=उप्+अ+इतः=**उपेतः** । प्र+इदिधत्=प्र+अ+इदिधत्=**प्रेदिधत्** यहां गुण होगया ॥ ४२ ॥

(४३) अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् ॥

अक्षशब्दसे ऊहिनीशब्द परे हो तो पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि हो, जैसे-अक्ष+ऊहिनी=अक्ष्+अ+ऊहिनी=अक्षौहिणी[2] (सेना) ॥ ४३ ॥

(४४) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ॥

१-कच्चे रूप लिखनेके पीछे जो दूसरे रूप स्वर अलग करके दिखाये हैं वह इस लिये हैं कि, जिससे बालक समझ जाय कि इन इन अचोंके मिलनेसे यह अच् होकर हल् अक्षरमें मिला है शब्दोंके यथार्थ भाग पहले संधि तोडकर लिखे हैं यथा देव+ऐश्वर्यम् आगे देव अ+ऐश्वर्यम् ये देव शब्दको हलन्त न जाने यह स्वरसंधि ज्ञानके निमित्त लिखा है. ऐसाही आगे जानना ।

२-अक्षाणामूहिनीति विग्रहे अक्षौहिणीति । अक्षाणामूहोऽस्यास्तीति विग्रहे तु अक्षौहिणी इत्येव, तत्रार्थवदूहिनीपरत्वाभावात् ।

प्र० (४८) शब्दसे परे ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य शब्द परे हों तो पूर्व परके स्थानमें वृद्धिरूप एकादेश हो । जैसे–प्र+ऊहः=प्र्+अ+ऊहः=प्रौहः । प्र+ऊढः=प्र्+अ+ऊढः=प्रौढः । प्र+ऊढिः=प्र्+अ+ऊढिः=प्रौढिः । प्र+एषः=प्र्+अ+एषः=प्रैषः । प्र+एष्यः=प्र्+अ+एष्यः=प्रैष्यः ॥ ४४ ॥

(४५) ऋते च तृतीयासमासे ॥

यदि तृतीयासमास (९८६) में अकार वा आकारसे परे ऋत शब्द हो तो पूर्व परके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो । जैसे–(सुखेन ऋतः) सुख+ऋतः यहां वृद्धिमें आर् (रपर आ हुआ) तब सुख्+आर्+तः=सुखार्तः सिद्ध हुआ । **तृतीयेति किम् ?** तृतीयासमास कहनेका कारण यह कि विना तृतीयासमासके और समासमें ऋत शब्द परे हो तो वृद्धि न हो जैसे परम+ऋतः यहां कर्मधारय समास (१००३) के कारण वृद्धि न होकर अर् गुण होकर परमर्तः सिद्ध हुआ (समासके बीचमें विभक्तिका लोप हो जाता है) ॥ ४५ ॥

(४६) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे ॥

प्रादीनां शब्दानाम् ऋणे परतः वृद्धिः स्यात् ॥

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश इनसे परे ऋणशब्द हो तो पूर्वपरके स्थानमें वृद्धिएकादेश हो, जैसे–प्र+ऋणम्=प्र्+आर्+णम्=प्रार्णम् । वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम् । कम्बल+ऋणम्=कम्बलार्णम् । वसन+ऋणम्=वसनार्णम् । ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् । दश+ऋणम्=दशार्णम् ॥ ४६ ॥

(४७) उपसर्गाः क्रियायोगे । १ । ४ । ५९ ॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः ॥

प्रादिक (४८) क्रियाके योगमें उपसर्गसंज्ञावाले हों ।

(४८) प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि । अधि । अपि । अति । सु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । **एते प्रादयः ।** यह बाईस प्रादि कहलाते हैं ॥ ४७ ॥

(४८) भूवादयो धातवः । १ । ३ । १ ॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

जो क्रियाके कहनेवाले शब्द हैं और भू आदि गणोंमें पढ़े हैं, उनकी धातुसंज्ञा है ॥४८॥

(४९) उपसर्गादृति धातौ । ६ । १ । ९१ ।

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ॥

अवर्ण है अन्तमें जिसके ऐसे उपसर्ग (४७) से ऋकार है आदिमें जिसके ऐसे धातुके परे हुए सन्ते वृद्धि एकादेश हो, जैसे–प्र+ऋच्छति इसमें (प्र) अवर्णान्त उपसर्ग है, ऋच्छति ऋकारादिधातु है, तो पूर्व परको वृद्धि होगई प्र्+आर्+च्छति=प्रार्च्छति ॥ ४९ ॥

(५०) एङि पररूपम् । ६ । १ । ९४ ॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

अवर्णान्त उपसर्ग (४७) से एङ् (ए ओ) है आदिमें जिसके ऐसा धातु परे होनेसे पररूप एकादेश हो । यथा–प्र+एजते इस प्रयोगमें प्र अवर्णान्त उपसर्ग है उससे एङादिधातु परे है तो अकारभी पररूप एकारसें मिलगया, तो प्रेजते सिद्ध हुआ । इसी प्रकार उप+ ओषति=उपोषति ॥ ५० ॥

(५१) अचोऽन्त्यादि टि । १ । १ । ६४ ॥

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् ॥

अचोंके मध्यमें जो अन्तका अच् है सो जिसकी आदिमें हो उसके साथ उस अन्त्य अच्की टिसंज्ञा हो ॥ जैसे–मनस्+ईषा इस शब्दमें नकारके अन्तर्गत अकार अन्तका अच् है उससे आगे सकार हल् है उसके सहित अस्की टि संज्ञा हुई । शक इस शब्दमें ककारके अन्तर्गत 'अ' पिछला अच् है परन्तु इससे परे हल् नहीं इससे शकके अकारकी हीं टि संज्ञा हुई ॥ ५१ ॥

(५२) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् । तच्च टेः ॥

शकन्ध्वादि गणमें पररूप एक आदेश हो और वह पररूप टिको हो । शक+अन्धुः इस प्रयोगमें (५५) सूत्रसे दीर्घ एकादेशकी प्राप्ति थी, परन्तु उसे बाधकर क के अन्तर्गत टिसंज्ञक अकारके स्थानमें पररूप एक आदेश 'अ' हुआ तो 'शकन्धुः' सिद्ध हुआ इसी प्रकार कर्क+ अन्धुः+कर्क्+अ=अन्धुः=कर्कन्धुः । मनस् + ईषा इसमें अस् टिके स्थानमें पररूप हुआ तो मनीषा हुआ । लाङ्गल + ईषा = लाङ्गल् + अ + ईषा = लाङ्गलीषा । **आकृतिगणोयम्** । भाष्यकार पतञ्जलिका यह अभिप्राय है कि टि संज्ञा होकर जिन शब्दोंको पररूप होता है वे शब्द शकन्ध्वादिगणके हैं, पाणिनिके गणपाठमें शकन्ध्वादिगण नहीं है, अनुमान होता है कि गणपाठमें उन्होंने अवश्य लिखा होगा परन्तु अब वह लोप हो गया परन्तु टिके स्थानमें पररूप होना ही उसकी पहचान है, जहां ऐसा हो वह शकन्ध्वादि गणका शब्द जानना । जैसे 'मार्तण्डः' यह शब्द शकन्ध्वादिगणका है इस मार्त+अण्डः इसमें त के अन्तर्गत टिसंज्ञक अ के स्थानमें पररूप अ हुआ है ॥ ५२ ॥

(९३) ओमाङोश्च । ६ । १ । ९५ ॥

ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

अकारसे परे ओम् अथवा आङ् शब्द आवै तो पूर्व परके स्थानमें पररूप एक आदेश हो । जैसे—शिवाय+ओम्+नमः । इसमें यकारका अकार पररूप ओकार होगया तो शिवायोन्नमः सिद्धहुआ ॥ शिव + आङ् + इहि=शिव् + अ + आ + इहि= (ङकारकी इत्संज्ञा होकर लोप हुआ) शिव + एहि इसमें यह शंका होती है कि यहां ओम् और आङ् नहीं है तव यह सूत्र कैसे लगा इसपर अगला सूत्र है ॥ ९३ ॥

(९४) अन्तादिवच्च । ६ । १ । ८५ ॥

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत् ॥

जो यह एकादेश है सो पूर्वको अन्तवत् और परको आदिवत् हो इसकारण एहिमें जो आ + इ मिलकर 'ए' यह एक गुणादेश हुआहै इसको आदिवत् मानकर अर्थात् 'आ' जानकर एहिमें आङ्ही जानना चाहिये, और आङ् जानकर आकारका पररूप होनेसे 'शिवेहि' सिद्ध हुआ ॥ ९४ ॥

(९५) अकः सवर्णे दीर्घः । ६ । १ । १०१ ॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् ॥

अक् (अ इ उ ऋ ऌ) से सवर्ण अच् परे हुए सन्ते पूर्व परके स्थानमें दीर्घ एकादेश हो । जैसे—दैत्य+ अरिः=दैत्य् + अ + अरिः = दैत्यारिः । श्री + ईशः = श्रीशः । विष्णु + उदयः = विष्णूदयः । होतृ + ऋकारः=होतॄकारः ॥ ९५ ॥

(९६) एङः पदान्तादति । ६ । १ । १०९ ॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ॥

पदान्त (२०) एकार ओकारसे परे ह्रस्व अकार हो तो पूर्वरूप एकादेश हो । जैसे—हरे+ अव=हर् + ए+अव = हरेऽव । यहां ह्रस्व अकार पूर्वरूप एकार होगया, पूर्वरूपमें अकारका 'ऽ' यह चिह्न करदेते हैं । विष्णो + अव = विष्णोऽव (हे विष्णो हमारी रक्षा करो)॥९६॥

(९७) सर्वत्र विभाषा गोः । ६ । १ । १२२ ॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते ॥

लोक और वेदमें, एङ् प्रत्याहार है अन्तमें जिसके ऐसे गोशब्दको ह्रस्व अकारके परे रहते प्रकृतिभाव विकल्प करके हो । पदान्तमें प्रकृतिभाव नाम ज्योंका त्यों रहै । गो+अग्रम्=गोअग्रम् । (प्रकृतिभाव) गो+अग्रम्=गोऽग्रम् पूर्वरूप हुआ। **एङन्तस्य किम् ?** एङन्त गोशब्द क्यों कहा तो उत्तर यह है—जहां एङन्त गोशब्द न हो वहां प्रकृतिभाव न हो । जैसे—चित्रगु+अग्रम्=चित्र-

ग्वग्रम् (२१) यहां यण् हुआ । **पदान्ते किम्?** पदान्त क्यों कहा । तो गो+अस्=गोः यहां गोशब्दका ओकार पदान्त (२०) नहीं इस कारण (१९३) से पूर्वरूप होकर 'गोः' सिद्ध हुआ ॥ ५७ ॥

(५८) अनेकाल्शित्सर्वस्य । १ । १ । ५५ ॥

अनेकाल् आदेशः शिदादेशश्च सर्वस्थाने भवति ॥

जिस आदेशके इत्संज्ञावाले अक्षरोंको छोडकर अनेक अल् हों अथवा जिसके शकारकी इत्संज्ञा हो वह सम्पूर्ण स्थानीके स्थानमें हो, इससे सबके स्थानमें आदेश पाया तब ॥ ५८ ॥

(५९) ङिच्च । १ । १ । ५३ ॥

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ॥

जिस अनेकाल् (५८) आदेशके ङकारकी इत्संज्ञा हो सो आदेश सबको न होकर अन्त्यके अल्हीको हो ॥ ५९ ॥

(६०) अवङ् स्फोटायनस्य । ६ । १ । १२३ ॥

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि ॥

पदान्त (२०) एङन्त गोशब्दको अवङ् आदेश विकल्प करके स्फोटायनके मतमें हो । अच् परे हुए संते ॥ गो+अग्रम् इस प्रयोगमें सम्पूर्ण गोशब्दको अवङ् आदेश (५८) पाया, परन्तु अवङ्के ङकारकी इत्संज्ञा है और इसमें अनेक अल्भी हैं इस कारण (५९) सूत्रसे गोशब्दके अन्त्य अल् ओकारको अवङ् आदेश हुआ, तब ग्+ओ+अग्रम्=ग्+अव+अग्रम्=गवाग्रम् (५५) सिद्ध हुआ और जब अवङ् आदेश न हुआ तब गो+अग्रम्=गोऽग्रम् (५७) हुआ **पदान्ते किम्?** पदान्त क्यों कहा इसका उत्तर यह कि गो+इ (सप्तमीका एक वचन है) यहां गोशब्दका ओकार पदान्त नहीं है, इससे अवङ् आदेश न हुआ तब (२९) सूत्र लगकर 'गवि' सिद्ध हुआ ॥ ६० ॥

(६१) इन्द्रे च । ६ । १ । १२४ ॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रे ॥

इन्द्र शब्द परे हो तो भी गोशब्दको अवङ् आदेश हो, जैसे गो+इन्द्रः=ग्+ओ+इन्द्रः=ग्+अव+इन्द्रः=गवेन्द्रः (३९) ॥ ६१ ॥

(६२) दूराद्धूते च । ८ । २ । ८४ ॥

दूरात् संबोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् ॥

दूरसे पुकारनेमें जो वाक्य हो उस वाक्यकी टि (५१) को विकल्प करके प्लुत (९) हो जिसको पुकारैं उसका कहनेवाला जो शब्द उसकी भी जो वही टि हो तो यथा, एहि देवदत्त ३ यहां प्लुत होता है और 'देवदत्त एहि' यहां, नहीं होता ॥ ६२ ॥

(६३) प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् । ६ । १ । १२५ ॥

एते अचि प्रकृत्या स्युः ॥

प्लुत (९) संज्ञक और प्रगृह्य (६४) संज्ञक अच्से परे अच् आवै तो नित्य प्रकृतिभाव हो । यथा आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति यहां कृष्ण ३+अत्र । वाक्यकी टिको प्लुत होनेके कारण संधि न होकर प्रकृतिभाव हुआ ॥ ६२ ॥

(६४) ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । १ । १ । ११ ॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू ॥

ईकारान्त ऊकारान्त और एकारान्त जो द्विवचन शब्द हैं उनकीभी प्रगृह्य संज्ञा (६२) हो. हरी+एतौ=हरी एतौ । विष्णू+इमौ विष्णू इमौ । गङ्गे+अमू=गङ्गे अमू । इन उदाहरणोंमें 'हरी, विष्णू, गंगे' शब्दोंमें ई, ऊ, ए प्रगृह्यसंज्ञक हैं, क्योंकि द्विवचन हैं इससे प्रकृतिभाव होकर (६२) ज्योंके त्यों रहे ॥ ६४ ॥

(६५) अदसो मात् । १ । १ । १२ ॥

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः ॥

अदस् (३८६) शब्दके मकारके परे जो ईकार और ऊकार हों तो वे भी प्रगृह्य (६२) संज्ञावाले हों; जैसे–अमी+ईशाः=अमी ईशाः।रामकृष्णौ अमू+आसाते=रामकृष्णावमू आसाते।इन उदाहरणोंमें अदस् शब्दके अमी और अमूके मकारसे परे ईकार और[1] ऊकार हैं सो इनकी प्रगृह्यसंज्ञा होकर (६२) से प्रकृतिभाव हुआ । **मात्किम्** मकारसे परे क्यों कहा ? (उ०) अमुकेऽत्र । मकारका ग्रहण जो न करते तो यहां (६४) से एकारकीभी अनुवृत्ति होजाती और इसकी प्रगृह्यसंज्ञा हो जाती (और यहां मकारका ग्रहण नहीं होसकता[1]) और इस उदाहरणमें जो (५६) वाँ सूत्र लगकर यह रूप सिद्ध हुआ है यह सूत्र न लगता; इस कारण (६५) वाँ सूत्र पृथक् बनाना पडा ॥ ६५ ॥

(६६) चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ॥

जिनका द्रव्य (लिंग,संख्या,कारक) अर्थ नहींहै ऐसे च आदि अव्यय निपात संज्ञावालेहों॥६६॥

(६७) प्रादयः । १ । ४ । ५८ ॥

एतेऽपि तथा ॥

प्र आदि (४८) इसी प्रकार निपात (६६) संज्ञावाले हों ॥ ६७ ॥

---

१ माद्ग्रहणाभावे सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिरिति न्यायेन ईदूदेद्द्विवचनमिति सूत्राद्यथा ईदूदित्यस्यानुवृत्तिस्तथैवेकारस्यापि स्यात्तथा च अमुकेत्रेत्यत्र प्रगृह्यसंज्ञा स्यात्तस्यां च सत्यां प्रकृतिभावः स्यात् सति तु माद्ग्रहणे तस्मात् परैकाराभावादेवानुवृत्तिरिति तत्त्वम् ।

(६८) निपात एकाजनाङ् । १ । १ । १४ ॥

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । वाक्यस्मरणयोरङित् ॥

एकअच्वाला निपात आङ्को छोडकर प्रगृह्य (६३) संज्ञक हो । जैसे--इ+इन्द्रः=इ इन्द्रः इसमें प्रथम इकारकी प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे संधि न हुई. उ+उमेशः=उ उमेशः यहां प्रथम उकारकी प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे संधि न हुई. आङ्में भेद है वाक्य और स्मरणके अर्थमें आकारके साथ इत्-संज्ञक ङकार न जानना, इससे वाक्य और स्मरण इन दोनों अवस्थाओंमें आकारभी प्रगृह्य होता है. यथा-आ एवं नु मन्यसे । क्या अब ऐसा मानते हो ? आ एवं किल तत्-हां सत्य ऐसा होता है, यहां 'आ' स्मरणमें और ऊपरके वाक्यमें वाक्यार्थमें है इससे यहां प्रगृह्य हुआ **अन्यत्र ङित्** अन्यत्र आ निपात ङित् है. उस दशामें उसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती. यथा-आ+उष्णम्=ओष्णम् (९, ३९) यहां आङ् थोडे वाचकके अर्थमें है ॥ ६८ ॥.

(६९) ओत् । १ । १ । १५ ॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः ॥

ओकारान्त जो निपात (६६) है सोभी प्रगृह्य (६३) संज्ञक हो । यथा-अहो+ईशाः= अहो ईशाः । यहां जो प्रगृह्यसंज्ञक होनेसे संधि न हुई (२९) सूत्र न लगा ॥ ६९ ॥

(७०) सँम्बुद्धौ शाकल्यस्येतौवनार्षे । १ । १ । १६ ॥

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिक इतौ परे ॥

सम्बुद्धि (१९१) निमित्तक जो ओकार है सो विकल्प करके प्रगृह्य (६३) संज्ञक हो, यदि उससे परे वेदभिन्न इति शब्द हो तो, विष्णो इति यहां लौकिक इति शब्द परे होनेसे सम्बोधनके ओकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई तो विष्णो इति ऐसा रहा । विकल्पमें विष्णविति (२९) सूत्र लगा । और जब (३८) सूत्रसे वकारका लोप हुआ तब विष्ण इति इस प्रकार तीन रूप बने ॥ ७० ॥

(७१) मयँ उञो वो वा । ८ । ३ । ३३ ॥

मयः परस्य उञो वो वा अचि ॥

मय् प्रत्याहारके आगे उञ्के उकारको विकल्प करके वकार आदेश हो अच् परे होनेपर । यथा-किमु+उक्तम्=किम्+उ+उक्तम्=किम्+व्+उक्तम्=किम्वुक्तम् ॥ जब वकार न हुआ तब 'किमु उक्तम्' (६८) हुआ ॥ ७१ ॥

(७२) इकोऽसँवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च । ६ । १ । १२७ ।

---

१ ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः । एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ।

पदान्त इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि ॥

पदान्त (२०) इक्को ह्रस्व विकल्प करके हो जो उससे परे असवर्ण अच् हो तो । **ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः** । यहां ह्रस्व करनेका तात्पर्य यह है कि, ह्रस्व होकर फिर सन्धि न हो, ज्योंका त्यों रहजाय । यथा—चक्री+अत्र=चक्रि अत्र । यहां ह्रस्व होकर सन्धि न हुई, और जब ह्रस्व न हुआ तव (२१) सूत्रसे 'चक्र्यत्र' हुआ । **पदान्ता इति किम् ?** पदान्त क्यों कहा गौरी+औ=गौर्यौ इसमें 'री' के अन्तर्गत ईकार पदान्त नहीं है इस कारण इस प्रयोगमें यह सूत्र न लगा ॥ ७२ ॥

(७३) अचो रहाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः ॥

अच् प्रत्याहारसे परे जो रेफ हकार और इससे परे यर् प्रत्याहारको विकल्प करके द्वित्व हो यथा—हर्य्+अनुभवः=हर्य्यनुभवः । और जव द्वित्व न हुआ तव 'हर्यनुभवः' । इसी प्रकार गौरी+औ=गौर्य्यौ अथवा गौर्यौ यहां रेफसे परे यकारको विकल्प करके द्वित्व हुआ ॥ ७३ ॥

(७४) न समासे ॥

समास(९१२)में यह शाकल्यमुनिका ह्रस्व (७२) विधि नहीं लगता, यथा—वाप्याम्+अश्वः=वापी+अश्वः=वाप्यश्वः ॥ ७४ ॥

(७५) ऋत्यकः । ६ । १ । १२८ ॥

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा ॥

पदान्त अक्से परे ऋकार होय तो विकल्प करके प्रकृतिभाव हो. यथा—ब्रह्म+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः । जव न हुआ तव (३९, ३७) से 'ब्रह्मर्षिः' हुआ. **पदान्ताः किम् ?** पदान्त अक् क्यों कहा? उसका उत्तर यह कि, 'आ+ऋच्छत्=आर्च्छत्' इसमें आ पदान्त नहीं है इससे प्रकृतिभाव न होकर 'आटश्च' इस (२१८) से वृद्धि हुई ॥ ७५ ॥

॥ इत्यच्संधिः ॥

अथ हल्संधिः ।

(७६) स्तोः श्चुना श्चुः । ८ । ४ । ४० ॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः ॥

सकार और तवर्गको शकार चवर्गके योगमें शकार चवर्ग हों । सकारको शकार और तवर्गको चवर्ग क्रमसे हों । यथा—रामस्+शेते=रामश्शेते । रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति । सत+चित्=सच्चित् । शार्ङ्गिन्+जय=शार्ङ्गिञ्जय ॥ ७६ ॥

(७७) शात् । ८ । ४ । ४४ ॥

शात्परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् ॥

शकारसे परे तवर्गका योग हो तो तवर्गको चवर्ग न हो । यथा—विश्+नः=विश्नः । प्रश्+नः= प्रश्नः ॥ ७७ ॥

(७८) ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ ॥

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् ॥

यदि सकार तवर्गसे षकार टवर्गका योग हो तो सकार तवर्गको षकार टवर्ग हो । यथा—रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः । रामस्+टीकते=रामष्टीकते । पेष्+ता=पेष्टा । तत्+टीका=तट्टीका । चक्रिन्+ढौकसे+चक्रिण्ढौकसे ॥ ७८ ॥

(७९) न पदान्ताट्टोरनाम् । ८ । ४ । ४२ ॥

पदान्ताट्टवर्गात्परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् ॥

पदान्त टवर्गसे परे नाम् शब्दके नकारको छोडकर सकार तवर्गको षकार टवर्ग नहो ।यथा—षट्+सन्तः=षट् सन्तः । षट्+ते=षट् ते । **पदान्तात् किम् ?** पदान्तसे क्यों कहा ? तो ईड्+ते= ईट् (९०)+ते=ईट्टे (७८) । **टोः किम् ?** टवर्ग क्यों कहा ? सर्पिष्+तमम्=सर्पिष्टमम्(७८) यहां टवर्ग हुआ ॥ ७९ ॥

(८०) अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥

(७९)पिछले सूत्रमें एक नामही छोडा था, परन्तु उसके साथमें नवति नगरी इन शब्दोंकोंभी छोडना चाहिये । यथा षड्+नाम्=षण्णाम् । षड्+नवतिः=षण्णवतिः षड्+नगर्यः= षण्णगर्यः ॥ ८० ॥

(८१) तोः षि । ८ । ४ । ४३ ॥

तवर्गस्य षकारे परे ष्टुत्वं न ॥

तवर्गसे षकार परे हो तो षकार टवर्ग (७८) न हों । यथा सन् षष्ठः सन्षष्ठः । यहां तवर्गसे षकार परे है इसे ष्टुत्व न हुआ ॥ ८१ ॥

(८२) झलां जशोऽन्ते । ८ । २ । ३९ ॥

पदान्ते झलां जशः स्युः ॥

पदान्त झल् प्रत्याहारके स्थानमें जश् प्रत्याहार हो । यथा—वाक्+ईशः=वागीशः ॥ ८२ ॥

(८३) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । ८ । ४ । ४५ ॥

यरः पदान्तस्यानुनासिके परे अनुनासिको वा स्यात् ॥

पदान्त यर्को अनुनासिक परे हुए सन्ते विकल्प करके अनुनासिक हो । यथा एतद्+मुरारिः =एतन्मुरारिः जब अनुनासिक न हुआ तब एतद्मुरारिः ॥ ८३ ॥

(८४) प्रत्यये भाषायां नित्यम् ॥

अनुनासिकादि प्रत्यय (१३९) परे हो तो लोकमें अर्थात् वेदको छोडकर सब ग्रन्थोंमें नित्य अनुनासिक (८३) हो । यथा–तद्+मात्रम् (यह प्रत्यय है)+तन्मात्रम् । चित्+मयम्=चिन्मयम् यहां मयट् प्रत्यय है ॥ ८४ ॥

(८५) तोर्लि । ८ । ४ । ६० ॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः । नस्यानुनासिको लः ।

तवर्गको लकार परे हुए सन्ते तवर्गके स्थानमें परका सवर्ण हो । तद्+लयः=तल्+लयः=तल्लयः । विद्वान्+लिखति=विद्वाल्ँ+लिखति=विद्वाँल्लिखति । नकारके स्थानमें अनुनासिक (१७) लकार हुआ है ॥ ८५ ॥

(८६) उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य । ८ । ४ । ६१ ॥

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः ॥

उद् उपसर्ग (४७) से परे स्था और स्तंभ शब्दको पूर्वका सवर्ण हो ॥ ८६ ॥

(८७) तस्मादित्युत्तरस्य । १ । १ । ६७ ॥

पंचमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णांतरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

पञ्चम्यन्तपदके निर्देशसे जो कार्य विहित है सो उसीको हो जो पञ्चम्यन्त पदार्थसे परे हो उसके बीचमें किसी दूसरे वर्णका व्यवधान न हो ॥ ८७ ॥

(८८) आदेः परस्य । १ । १ । ५४ ॥

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् ॥

जो कार्य परको कहा है सो उसके पहले अक्षरको जानना चाहिये जैसे–उद्०स्थानम् इस प्रयोगमें उद् यह दो अक्षर हैं तब किसका सवर्ण हो (८७) सूत्रके अनुसार स्था शब्दके पूर्व उद्का दकार है, उसका सवर्ण तवर्गका 'थ्' अक्षर 'स्था' के स्थानमें पाया, परन्तु (८८) सूत्रके दकारके परे जो स्थाका सकार उसीके स्थानमें 'थ्' हुआ, कारण कि, सकारका विवार-श्वास, अघोष तथा महाप्राण प्रयत्न है (२३, १६–२–९) इसमें इन्ही चार प्रयत्नवाला तवर्गका 'थ' है. तब थकार होकर उद्+थ्+थानम् ऐसी स्थिति हुई. इसी प्रकार उद्+स्तंभनम्में उद्+थ्+तंभनम् हुआ ॥ ८८ ॥

(८९) झरो झरि सवर्णे । ८ । ४ । ६५ ॥

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि ॥

हल्से परे झर् प्रत्याहारका लोप विकल्प करके हो, जो सवर्ण झर् परे हो ॥ उद्+थ्+थानम्=उद्+थानम् । उद्+थ्+तंभनम्=उद्+तम्भनम् ॥ ८९ ॥

(९०) खँरि च । ८ । ४ । ५५ ॥

खरि झलां चरः स्युः ॥

खर् प्रत्याहार परे हो तो झलोंको चर् हों । यथा-उद्+थानम्=उत्+थानम्=उत्थानम् । उद्+तम्भनम्=उत्+तम्भनम्=उत्तम्भनम् । जब लोप न हुआ तब उत्थ्थानम्, उत्त्तम्भनम्९०

(९१) झयो होऽन्यतरस्याम् । ८ । ४ । ६२॥

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः ॥ नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः । वाग्घरिः । वाग्हरिः ॥

झय् प्रत्याहारसे परे हकारके स्थानमें विकल्प करके पूर्वका सवर्ण हो । प्रत्येक वर्गमें चौथा चौथा अक्षर नाद घोष संवार और महाप्राण प्रयत्नवाला हकारके सदृश है (१६) (२) इस कारण वाग्+हरिः=वाग्घरिः । पक्षमें वाग्हरिः अर्थात् झय्से परे हरिके हकारको पूर्व ककारका सवर्ण नादादिसे घकार हुआ फिर 'झलाञ्जशोन्ते' से ककारको गकार हुआ. तब वाग्घरिः हुआ विकल्प पक्षमें (८२) से वाग्हरिः रहा ॥ ९१ ॥

(९२) शँश्छोऽटि । ८ । ४ । ६३ ॥

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि । तद्शिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि च' इति जकारस्य चकारः ॥

झय् प्रत्याहारसे परे शकारके स्थानमें विकल्प करके छकार हो, अट्प्रत्याहार परे हो तो, यथा-तद्+शिवः इस प्रयोगमें (७६) सूत्रसे दकारके स्थानमें चवर्गी 'ज' और (९०) सूत्रसे जके स्थानमें चकार हुआ तब तच्+शिवः=तच्+छिवः=तच्छिवः । इस प्रयोगमें झय्से परे शिका शकार है और शकारसे आगे इकार अट् है इससे 'श्' के स्थानमें 'छ्' हुआ, और जब यह सूत्र न लगा तब तच्शिवः रूप हुआ ॥ ९२ ॥

(९३) छत्वममीति वाच्यम् ॥

पूर्व सूत्र (९२) में अट् प्रत्याहार परे रहते छत्व कहा है वहां अम् प्रत्याहार जानना उचित है, यथा-तद्+श्लोकेन (७६) तज्+श्लोकेन (९०) तच्+श्लोकेन=तच्छ्लोकेन ॥ ९३ ॥

(९४) मोऽनुस्वारः । ८ । ३ । २३ ।

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि ।

मकार अन्तवाले पदको अनुस्वार हो हल्परे हुए सन्ते । यथा-हरिम्+वंदे=हरिं वंदे॥९४॥

(९५) नँश्चापदान्तस्य झँलि । ८ । ३ । २४ ॥

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः ॥

अपदान्त (२०) नकार मकारसे परे झल् हो तो नकार मकारके स्थानमें अनुस्वार हो. यथा—यशान्+सि=यशांसि । आक्रम्+स्यते=आक्रंस्यते ॥ ९५ ॥

(९६) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८ । ४ । ५८ ॥

यय् प्रत्याहार परे हो तो अनुस्वारको परका सवर्ण हो. यथा—शाम्+तः=शां+ (९५) तः= शान्तः । अनुस्वारसे परे तकार है उसका सवर्ण 'न' हुआ ॥ ९६ ॥

(९७) वा पदान्तस्य । ८ । ४ । ५९ ॥

पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात् ॥

पदान्त अनुस्वारको यय् प्रत्याहार परे होनेसे विकल्प करके परका सवर्ण हो. त्वम्+करोषि= त्वङ्करोषि । पक्षमें (९४) त्वं करोषि ॥ ९७ ॥

(९८) मो राजि समः क्वौ । ८ । ३ । २५ ॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् ॥

क्विप् प्रत्यय (८९६) जिसके हो ऐसी राज् धातु सम् (४८) से परे आवे तो सम्के मकारको मकारही हो (९४) से अनुस्वार न हो । यथा—सम्+राट्=सम्राट् (राज् धातुसे क्विप् प्रत्यय करनेसे राट् बना है) ॥ ९८ ॥

(९९) हे मपरे वा । ८ । ३ । २६ ॥

मपरे हकारे परे मस्य मो वा ॥

मकार है परे जिससे ऐसे हकारके परे होनेसे मकारके स्थानमें विकल्प करके मकार हो. यथा- किम्+ह्मलयति=किम्ह्मलयति । अथवा (९४) से किं ह्मलयति ॥ ९९ ॥

(१००) यवलपरे यवला वा ॥

यवलपरे हकारे परे मस्य यवला वा भवन्ति ॥

यकार वकार लकार हैं परे जिससे ऐसे हकारके परे हुए सन्ते मकारके स्थानमें विकल्प करके य, व, ल, हों. यथा—किम्+ह्यः=कियँ+ह्यः=कियँह्यः । अथवा किंह्यः (९४) किम्+ह्वल- यति=किवँ+ह्वलयति=किवँह्वलयति [वा] किंह्वलयति । किम्+ह्लादयति=किलँ+ ह्लादयति= किलँह्लादयति । (वा) किंह्लादयति ॥ १०० ॥

(१०१) नपरे नः । ८ । ३ । २७ ॥

नपरे हकारे परे मस्य नो वा ॥

नकार है परे जिससे ऐसे हकार परे हुए सन्ते मकारको नकार विकल्प करके हो । यथा— किम्+ह्नुते=किन्+ह्नुते=किन्ह्नुते; अथवा (९४) किंह्नुते ॥ १०१ ॥

(१०२) ड्ः सि धुट् । ८ । ३ । २९ ।

डात्परस्य सस्य धुड्वा ॥

डकारसे परे सकारको विकल्प करके धुट्का आगम हो. आगम मित्रके समान होता है, जिसके होनेसे शब्दमें कुछ विकार नहीं होता, वह आगम कहलाता है ॥ १०२ ॥

(१०३) आद्यन्तौ टकितौ । १ । १ । ४६ ॥

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः ॥

जिस आगमका टकार अथवा ककार इत्संज्ञक (९) हो वह जिसको कहा हो उसके आदि और अन्तमें क्रमसे हो अर्थात् टित् आदिमें और कित् अन्तमें हो । धुट्में टकार इत्संज्ञक है इससे सकारके आदिमें हुआ. यथा-षड्+सन्तः=षड्+धुट्+सन्तः (सू० ९, ३६, ६, ७) से धुट्के टकार और उकारका लोप होकर ध् शेष रहा ॥ तब षड्+ध्+सन्तः प्रयोगमें (९०) से धकारके स्थानमें तकार हुआ और ड् के स्थानमें ट् हुआ तब षट्+त्+सन्तः=षट्त्सन्तः । पक्षमें षट् (९०) सन्तः (७८) सूत्रसे सकारको षकारकी प्राप्ति थी सो (७९) से न हुई ॥ १०३ ॥

(१०४) ङ्णोः कुक्टुक् शरि । ८ । ३ । २८ ॥

ङकारणकारयोः कुक्टुकौ आगमा वा स्तः शरि परे । चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् ॥

ङकार और णकारको कुक् टुक्का आगम विकल्प करके हो शर् परे हुए सन्ते, ङकारको कुक् और णकारको टुक्का आगम हो पौष्करसादि आचार्यके मतमें॥ चय् प्रत्याहारको वर्गके दूसरे अक्षर हों । यथा-'प्राङ्+षष्ठः' यहां कुक्मेंसे (९, ३६, ७) उक्का लोप होकर 'क' ङकारके अन्त (१०३) में हुआ. प्राङ्क् + षष्ठः क् और ष् मिलनेसे क्ष हुआ तो प्राङ्क्षष्ठः, जब वर्गका दूसरा अक्षर हुआ तो प्राङ्ख् षष्ठः । पक्षे प्राङ् षष्ठः । सुगण्+षष्ठः । टुक्मेंसे उक् निकलकर 'ट्' शेष रहा वह णकारके अन्तमें हुआ सुगण्+ट्+षष्ठः=सुगण्ट् षष्ठः, वर्गका दूसरा अक्षर होनेसे सुगण्ठ्षष्ठः (पक्षमें) सुगण् षष्ठः ॥ १०४ ॥

(१०५) नश्च । ८ । ३ । ३० ॥

नान्तात परस्य सस्य धुड् वा ॥

नकारान्त शब्दसे परे सकारको विकल्प करके धुट्का आगम हो । यथा-सन्+सः=सन्+ध्+सः=सन्+त्+सः=सन्त्सः । पक्षे सन्सः । यहांभी धुट्मेंसे उट् जाता रहा ॥ १०५ ॥

(१०६) शि तुक् । ८ । ३ । ३१ ॥

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा ॥

पदान्त नकारको शकार परे होनेसे विकल्प करके तुक्का आगमहो. तुक्में से उक्की इत्संज्ञा होकर (९, ३६, ६, ७) लोप हुआ, तकार शेष रहा सो (१०३) सूत्रसे नकारके अन्तमें हुआ. यथा—सन्+शम्भुः=सन्+त्+शम्भुः (७६) सूत्रसे तकारके स्थानमें चकार हुआ सन्+च्+शम्भुः (९२) से 'श्' के स्थानमें 'छ्' हुआ सन्+च्+छम्भुः (७६) सें नकारके स्थानमें ञ् हुआ, तब सञ्+च्+छम्भुः=फिर 'झरो झरि सवर्णे' से चकारका लोप होकर 'सञ् छम्भुः' रूप हुआ । चलोपके अभावमें सञ्च्छंभुः ॥ 'शश्छोटि' के न लगनेमें (७६) चुत्वहोनेपर सञ्च्शम्भुः । तुक्के न होनेपर नकारको (७६) से ञकार होकर सञ्शम्भुः । इस प्रकार चार रूप हुए ॥ १०६ ॥

(१०७) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् । ८ । ३ । ३२ ॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ङमुट् ॥

ह्रस्वसे परे ङम् प्रत्याहारके अक्षर (ङ, ण, न,) जिसके अन्तमें हों ऐसा जो पद उससे परे अच् हो तो उसे ङमुट्-अर्थात् ङुट्, णुट् और नुट्का आगम क्रमसे हो इन तीनों आगमोंके उट्का लोप (९, ३६, ७,) से हुआ ङ्, ण्, न्, शेष रहे सो (१०३) से आदि भागमें हुए. यथा—प्रत्यङ्+आत्मा=प्रत्यङ्+ङ्+आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्+ईशः=सुगण्+ण्+ईशः=सुगण्णीशः । सन्+अच्युतः=सन्+न्+अच्युतः=सन्नच्युतः ॥ १०७ ॥

(१०८) समः सुटि । ८ । ३ । ५ ॥

समो रुः सुटि ॥

सम् शब्दके मकारके स्थानमें रु हो सुट्का आगम परे हुए सन्ते ॥ १०८ ॥

(१०९) अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८ । ३ । २ ॥

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा ॥

इस रुके प्रकरण (१२४) में रुसे पूर्व वर्णको विकल्प करके अनुनासिक हो ॥ १०९ ॥

(११०) अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः । ८ । ३ । ४ ॥

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ॥

अनुनासिक होनेवाले पक्षको छोडकर रुसे पूर्ववर्णसे परे अनुस्वारका आगम हो ॥ ११० ॥

(१११) खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८ । ३ । १५ ॥

खरि अवसाने च पदान्तस्य रस्य विसर्गः ॥

खर् प्रत्याहार परे और अवसान (१४४) हो तो पदान्तके रकारको विसर्ग हो ॥ १११ ॥

(११२) सम्पुम्कानां सो वक्तव्यः ॥

सम् (१०८) पुम् (११३) और कान् (११९) इन तीन शब्दोंके म्, म् और न् के स्थानमें रकार होय और रकारको विसर्ग हुआ होय तो विसर्गके स्थानमें नित्य सकार हो। यथा-सम्+कर्ता में (७२८) से सुट्का आगम हुआ तब उट् जाकर सकार रहनेसे सम्+स्+कर्ता प्रयोग हुआ, तब (१०८) से 'म्' के स्थानमें 'रु' का र् (३६, ७) रहा तो सर्+स्+कर्ता हुआ, फिर (१०९) से रकारसे पूर्व अनुनासिक किया तो सँर्=स् कर्ता विकल्प करके हुआ, और न किया तो (११०) से रकारके पूर्ववर्ण पर अनुस्वार हुआ, तो संर्+स्+कर्ता हुआ, (१११) से रकारके स्थानमें विसर्ग हुआ तो सँः+स्+कर्ता अथवा संः+स्+कर्ता रूप हुआ. फिर (११५) सूत्रकी प्राप्ति हुई उसको (१२३) ने बाधा इसको बाधकर (११२) से विसर्गको स् हुआ तव, सँस्+स्+कर्ता=सँस्स्कर्ता । अथवा संस्+स्+कर्ता=संस्स्कर्ता सिद्ध हुआ ॥ ११२ ॥

(११३) पुमः खँय्यम्परे । ८ । ३ । ६ ॥

अम्परे खयि पुमो रुः ॥

अम् है परे जिससे ऐसे खय् प्रत्याहार परे हुए सन्ते पुम्के मकारको रु हो. यथा पुम्+कोकिलः=पुर्+कोकिलः (१०९) से रकारसे पूर्व अनुनासिक हुआ तो पुँर्+कोकिलः । अथवा (११०) से पुंर्+कोकिलः (१११) से विसर्ग होनेसे पुँः+कोकिलः अथवा पुंः+कोकिलः=(११२) से विसर्गको सकार होनेसे पुँस्+कोकिलः=पुँस्कोकिलः । अथवा पुंस्+कोकिलः=पुंस्कोकिलः ॥ ११३ ॥

(११४) नँश्छँव्यप्रशान् । ८ । ३ । ७ ॥

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः ॥

अम् है परे जिससे ऐसा छव् प्रत्याहर परे होनेसे नान्त पदके नकारको रु हो परन्तु प्रशान् शब्दके नकारको न हो । चक्रिन्+त्रायस्व=चक्रिर्+त्रायस्व (१०९) से रकारसे पूर्व अनुनासिक हुआ चक्रिँर्+त्रायस्व (१११) से रकारको विसर्ग हुआ तब चक्रिंः+त्रायस्व, पक्षमें चक्रिं+त्रायस्व ॥ ११४ ॥

(११५) विसर्जनीयस्य सः । ८ । ३ । ३४ ॥

विसर्जनीयस्य सः स्यात् खरि परे ॥

विसर्गको सकार हो खर् प्रत्याहार परे हुए सन्ते (११४) के उदाहरणमें विसर्गको स् हुआ तव चक्रिँस्+त्रायस्व=चक्रिँस्त्रायस्व । अथवा चक्रिंस्+त्रायस्व=चक्रिंस्त्रायस्व । **अप्रशान् किम्?** प्रशान्का निषेध करनेसे प्रशान्+तनोति=प्रशान्तनोति । यहां पदान्तका

नकार होनेसे यह विधि न लगी. यथा—हन्+ति इसमें नकारसे परे ति अन्तर्गत त् छव् प्रत्याहार है, उससे परे इ अम् है परन्तु हन्का नकार अपदान्त (२०) है इससे 'न्' को 'रु' न होकर 'हन्ति' रूप हुआ ॥ ११५ ॥

(११६) नॄन् पे । ८ । ३ । १० ॥

नॄनित्यस्य रुर्वा पे ॥

नॄन् शब्दके नकारके स्थानमें विकल्प करके रु (र्) हो पकार परे हुए सन्ते । यथा—नॄन्+पाहि=नॄर्+पाहि=(१०९) से नॄँर्+पाहि, अथवा (११०) से नॄंर्+पाहि (१११) से नॄः+पाहि, अथवा नॄँःपाहि हुआ; और जब यह सूत्र न लगा तो नॄन्पाहि रूप हुआ॥ ११६॥

(११७) कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च । ८ । ३ । ३७ ॥

कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ≍ क ≍ पौ स्तः । चाद्विसर्गः ॥

कवर्ग पवर्ग परे होनेसे विसर्गके स्थानमें क्रमसे जिह्वामूलीय उपध्मानीय हों; (च) ग्रहणसे एक पक्षमें विसर्गभी हो ।

(११६) सूत्रके उदाहरणमें नॄः+पाहि अथवा नॄंः=पाहि इनके=नॄँ≍ पाहि अथवा नॄं≍ पाहि रूप हुए ॥ ११७ ॥

(११८) तस्य परमाम्रेडितम् । ८ । १ । २ ॥

द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं स्यात् ॥

दोबार जो कहा गया है उसके दूसरे अंशकी आम्रेडित संज्ञा हो ॥ ११८ ॥

(११९) कानाम्रेडिते । ८ । ३ । १२ ॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते । काँस्कान्, कांस्कान् ॥

आम्रेडित (११८) परे हुए संते कान् शब्दके नकारके स्थानमें रु हो ।

यथा—कान्+कान् इसमें आम्रेडित परे रहते पहले कान्के नकारको रु (र्) हुआ, कार्+कान् (१०९) से काँर्+कान् अथवा कांर्+कान् (११०) फिर (१११) से रकारको विसर्ग हुआ तब काँः+कान् अथवा कांः कान् रूप हुए, फिर 'सम्पुंकानां (११२)' से विसर्गको सकार हुआ तब काँस्कान् अथवा कांस्कान् यह रूप बने ॥ ११९ ॥

(१२०) छे च[1] । ६ । १ । ७३ ॥

ह्रस्वस्य छे तुक् ॥

ह्रस्वपरसे परे छकार हो तो ह्रस्वस्वरको तुक्का आगम हो । यथा—शिव+छाया इसमें 'व' के अन्तर्गत अकारसे परे छ है तो तुक्में उक्की इत्संज्ञा होकर 'त्' शेष रहा (१०३) सूत्रसे

---

१ ह्रस्वस्य पिति कृति तुगित्यस्मात् ह्रस्वस्य तुगनुवर्त्याह—ह्रस्वस्येति तुगागमो बोध्यः ।

अकारके अन्तमें त् हुआ शिव्+अत्+छाया तब शिवद् (८२) +छाया, फिर, शिवज् (७६) +छाया=शिवच् (९०)+छाया=शिवच्छाया ॥ १२० ॥

(१२१) पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७६ ॥

दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग् वा ॥

छकार परे रहते पदान्त दीर्घस्वरसे विकल्प करके तुक्का आगम हो। यथा—लक्ष्मी+छाया= लक्ष्मीत्+छाया, लक्ष्मीद् (८२)+छाया। लक्ष्मीज् (७६)+छाया। लक्ष्मीच् (९०)+ छाया=लक्ष्मी च्छाया; तुक्का आगम न किया तो लक्ष्मी छाया रूप हुआ ॥ १२१ ॥

॥ इति हल्सन्धिः ॥

अथ विसर्गसन्धिः।

(१२२) विसर्जनीयस्य सः । ८ । ३ । ३४ ॥

खरि ॥

विसर्गको सकार हो खर् प्रत्याहार परे हुए संते। (११९ सूत्र पुनः आया) यथा— विष्णुः+त्राता इसमें त्रमें तकार खर् है तो विष्णुस्+त्राता=विष्णुस्त्राता ॥ १२२ ॥

(१२३) वा शरि । ८ । ३ । ३६ ॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा ॥

शर् प्रत्याहार परे हुए सन्ते विसर्गको विसर्ग विकल्प करके हो। यथा—हरिः+शेते इसमें शेतेका शकार शर् प्रत्याहारका है, तो हरिः शेते; अथवा (११९) से विसर्गको खर् प्रत्या-हार परे होनेसे स् हुआ, तव हरिस्+शेते हुआ तब (७६) से स्को श् होकर हरिश्+शेते= हरिश्शेते सिद्ध हुआ ॥ १२३ ॥

(१२४) ससजुषो रुः । ८ । २ । ६६ ॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ॥

(२०) पदान्तके सकारको और सजुष् शब्दके सकारको रु (र्) हो। यथा—शिवस्+ अर्च्यः=शिवरु+अर्च्यः ॥ १२४ ॥

(१२५) अतो रोरप्लुतादप्लुते । ६ । १ । ११३ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति ॥

अप्लुत (९) अकारसे परे रुके स्थानमें उकार हो, अप्लुत अकार परे होय तो। यथा— (१२४) उदाहरणमें शिवरु+अर्च्यः इसमें वकारके अन्तर्गत अप्लुत अकारसे परे रु है उससे आगे अप्लुत अकार है तो रुके स्थानमें 'उ' हुआ तब, शिवउ+अर्च्यः हुआ. तब

(३९) से अ और उके स्थानमें गुण होकर शिव् ओ+अर्च्यः फिर (९६) से शिवो+ऽर्च्यः=शिवोऽर्च्यः सिद्ध हुआ. (पूर्वत्रा० से रुके प्रकरणमें अनुस्वार और अनुनासिक न हुए) ॥ १२५ ॥

(१२६) हशिँ च । ६ । १ । ११४ ॥

अप्लुतात् अतः परस्य रोः उः स्यात् हशि परे ॥

अप्लुत अत्से परे रुको उकार हो हश् प्रत्याहार परे रहतेभी । यथा—शिवस्+वन्द्यः इसमें प्रथम सकारके स्थानमें (१२४) से रु हुआ तब शिव रु+वन्द्यः । शिवशब्दके वकारके अन्तर्गत अकार अप्लुत है उससे परे रु है उससे परे वन्द्यःका वकार हश् प्रत्याहारके अन्तर्गत है तब रुके स्थानमें (उ) हुआ, शिव उ+वन्द्यः तव (३९) से गुण हुआ तो शिव्+ओ+वन्द्यः=शिवो वन्द्यः हुआ ॥ १२६ ॥

(१२७) भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ८ । ३ । १७ ॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः तेषां रोर्यत्वे कृते ।

भोस् भगोस् अघोस् यह (६६) सकारान्त निपातवाले तथा अ (१७) जिसके पूर्व होय उस सकारके स्थानमें रुको य् आदेश हो, यथा—देवास्+इह (१२४) देवा रु+इह (१२७) से=देवाय्+इह=देवायिह, अथवा (३८) से यकारका लोप होकर 'देवा इह' हुआ भोस् भगोस् आघोस् इनके सकारको (१२७) से यकार करनेपर—॥ १२७ ॥

(१२८) हलिँ सर्वेषाम् । ८ । ३ । २२ ॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि ॥

सब वैयाकरणोंके मतमें यकारसे पूर्व भोस् भगोस् अघोस् अथवा अवर्ग (१७) रहे और उसके आगे हल् प्रत्याहार हो तो यकारका लोप हो. यथा—भोस्+देवाः (१२४) से सकारके स्थानमें ' रु ' (१२७) रुके स्थानमें ' य ' होनेपर भोय्+देवाः रूप हुआ फिर (१२८) सूत्र लगा तो यकारसे पूर्व भोस् और उससे आगे हल्का दकार होनेसे यकारका लोप होकर भो+देवाः=भो देवाः हुआ, इसी प्रकार भगोस्+नमस्ते=भगो रु (१२४) नमस्ते=भगो (१२७) य+नमस्ते भगो (१२८)+नमस्ते=भगोनमस्ते । इसी प्रकार अघोस्+याहि=अघोरु (१२४)+याहि=अघोय् (१२७)+याहि अघो (१२८)+याहि=अघोयाहि ॥ १२८ ॥

(१२९) रोऽसुँपि । ८ । २ । ६९ ॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि ॥

अहन् शब्दसे परे सुप् (१३७) विभक्तिका प्रत्यय न हो तो नकारके स्थानमें रेफ आदेश हो. यथा—अहन्+अहः=नकारके स्थानमें (र्) हुआ तो अहर्+अहः=अहरहः । अहन्+गणः='न्' के स्थानमें र् होनेसे अहर्+गणः=अहर्गणः ॥ १२९ ॥

(१३०) रो रि । ८ । ३ । १४ ॥

रेफस्य रेफे परे लोपः ॥

रकारसे परे रकार हो तो रकारका लोप हो । यथा—पुनर्+रमते=पुन+रमते ॥ १३० ॥

(१३१) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः । ६ । ३ । १११ ॥

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते, हरी रम्यः, शम्भू राजते । अणः किम् । तृढः, वृढः । मनस्+रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति रेफलोपे च प्राप्ते ।

यदि ढकार वा रेफके लोपका निमित्त क्रमसे ढकार अथवा रेफ (१३०, ९८८) परे हो तो उससे पहले अण्को दीर्घ हो । जो कि (१३०) के उदाहरणमें रेफका लोप करके पुन+रमते रूप कियाथा सो उसमें लोप पानेवाले रेफसे पूर्व नकारके अन्तर्गत 'अ' अण् है उसे दीर्घ होकर पुना+रमते=पुना रमते सिद्ध हुआ । इसी प्रकार हरिस्+रम्यः=हरिर् (१२४) =रम्यः=हरि (१३०) +रम्यः होकर (१३१) सूत्र लगकर रिकारके अन्तर्गत इकारको दीर्घ होकर हरीरम्यः हुआ. इसी प्रकार शम्भुस्+राजते=शम्भुर् (१२४)+राजते=शम्भु (१३०)+राजते=शम्भू (१३१)+राजते=शम्भू राजते । अण् कहनेका तात्पर्य यह है कि (अ इ उ) के सिवाय और दीर्घ न हो यथा—तृह्+तस् में (८७६) से हकारके स्थानमें ढ् होकर तृढ्+तस् हुआ तो (९८७) से त्के स्थानमें ध होकर तृढ्+धस् हुआ. फिर (७८) से ध् के स्थानमें ढ् हुआ तव तृढ्+ढस् हुआ; फिर (९८८) से प्रथम ढकारका लोप हुआ. तब तृ+ढस्=तृढस्=तृढः रूप सिद्ध हुआ. इसमें तृ अन्तर्गत ऋकार, लोपके निमित्त ढकारसे पूर्व है, परन्तु अण् न होनेसे उसे (१३१) सूत्र लगकर दीर्घ न हुआ ॥ इसी प्रकार 'वृढः' रूप सिद्ध हुआ. इसमेंभी लोप निमित्त ढकारके पूर्व ऋको दीर्घ न हुआ ॥ मनस्+रथः इस उदाहरणमें सकारके स्थानमें (१२४) रुत्व हुआ फिर (१२६) से रुको उकार फिर (१३०) से रेफका लोप प्राप्त हुआ तो ॥ १३१ ॥

(१३२) विप्रतिषेधे परं कार्यम् । १ । ४ । २ ॥

तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् ॥

बरावर बलवाले सूत्रोंके विरोधमें अष्टाध्यायीके क्रमानुसार जो पर हो वह कार्य करें, (१२६) सूत्र से जो उत्व प्राप्त हुआ है वह अष्टाध्यायीके छठे अध्यायका सूत्र है, और रुके लोप (१३०) का आठवें अध्यायका है तो पर कार्य होना चाहिये तथापि (३९) सूत्रसे (१३०) सूत्र असिद्ध है तो उसकी कही विधि नहीं लगती तो (१२६) से

उकारही हुआ तब मन उ+रथः (३९) सूत्रसे गुण होकर ' ओ ' हुआ । तो मन्+ओ+रथः=मनोरथः हुआ ॥ १३२ ॥

(१३३) एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ।६।१।१३२॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे ॥

ककाररहित एतद् शब्द और तद् शब्दकी प्रथमा विभक्ति सु (१३७) का लोप हो हल् प्रत्याहार परे रहते परन्तु नञ् (१०१०) समासमें लोप न हो. यथा—एष+सु+विष्णुः=(सु परे होनेसे २१३ और ३३८ सूत्रसे एतद्का रूप एष हुआ है), एष+सु+विष्णुः=एष विष्णुः ।

इसी प्रकार स+सु+शम्भुः (२१३, ३३८ सूत्रसे तद्के स्थानमें स हुआ है) स+सु+शम्भुः=स शम्भुः । **अकोः किम् ?** ककाररहित क्यों कहा ? इसका आशय यह कि, ककारसहित होनेमें यह विधि नहीं लगती; यथा—एषक+सु+रुद्रः=एषक+स् (३६)+रुद्रः=एषक+रु (१२४)+रुद्रः=एषक+उ (१२६)+रुद्रः=एषको (३९)+रुद्रः एषको रुद्रः । **अनञ्समासे किम् ?** नञ्समासका निषेध क्यों किया ? तात्पर्य यह कि नञ्समासमें यह विधि नहीं लगती. यथा—असस+सु+शिवः (यहां नञ्समास है) असस+स् (३६)+शिवः=असस+र् (१२४)+शिवः=असस+ (१११) +शिवः=असस+ (१२२)स्+शिवः=असस+(७६) श्+शिवः=अससश्शिवः सिद्ध हुआ । **हलि किम् ?** हल् कहनेका कारण यह कि, विना हल् परे हुए यह विधि नहीं लगती. यथा—एतद्+सु+अत्र=एष (३३८)+स्+(३६) अत्र=एष+रु (१२४)+अत्र=एष+उ (१२९)+अत्र=एष्+ओ (३९)+अत्र=एष्+ओऽत्र (९६)=एषोऽत्र ॥ १३३ ॥

(१३४) सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् । ६ । १ । १३४ ॥

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत ॥

सस् (तद्) शब्दकी प्रथमा विभक्ति सुसे परे अच् हो और श्लोक अथवा वेदमंत्रका चरण ठीक न बैठे और सकारके लोपसे ठीक हो जाय तो उस सस्के सुका लोप हो । यथा—' सः इमामविड्ढि प्रभृतिम्' इसमें सकारके आगे विसर्ग है और प्रथमा विभक्ति सुके स्थानमें हुआ है. यदि इसका लोप न किया जाय तो अनुष्टुप् छन्दका एक चरण आठ अक्षरका नहीं बन सकता क्योंकि, इस प्रयोगमें नौ अक्षर हैं तब विसर्गका लोप करके सके अन्तर्गत अकार और इमाम् की इको (३९) गुण करके 'सेमामविड्ढि प्रभृतिम्' यह आठ अक्षरका पाद हुआ. इसी प्रकार ' सः एष दाशरथी रामः ' इसमें विसर्गका लोप कर सके अन्तर्गत अ और एषके स्थानमें (४१) वृद्धि ऐ होकर नौ अक्षर के स्थानमें आठ अक्षर होगये (सैष दाशरथी रामः) यह श्लोकका चौथा चरण सिद्ध हुआ ॥ १३४ ॥

॥ इति विसर्गसंधिः ॥

अथ षड्लिङ्गाः ।

(१३५) अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १ । २ । ४५ ॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ॥

धातु (४९) प्रत्यय (१३९) और प्रत्ययान्तको छोडकर अर्थवाले शब्दोंकी प्रातिपदिक संज्ञा हो ॥ १३५ ॥

(१३६) कृत्तद्धितसमासाश्च । १ । २ । ४६ ॥

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः ॥

कृदन्त और तद्धितप्रत्ययान्त और समास इनकीभी प्रातिपदिक संज्ञा हो ॥ १३६ ॥

(१३७) स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् । ४ । १ । २ ॥

इन इक्कीस प्रत्ययोंका नाम सुप् प्रत्याहार है ।

विभक्ति ।	एकवच.[141]	द्विवच.[141]	बहुवचन.[141]	शब्दोंमें लगकर नीचे लिखा रूप होताहै.
प्रथमा ।	सु	औ	जस्	स् (३६, ७) औ अस् (१४८, ७)
द्वितीया ।	अम्	औट्	शस्	अम् औ असँ (१९९, ७)
तृतीया ।	टा	भ्याम्	भिस्	आ (१४८, ७) भ्याम् भिस् अथवा भिः
चतुर्थी ।	ङे	भ्याम्	भ्यस्	ए (१९९, ७) भ्याम् भ्यस् अ० भ्यः
पंचमी ।	ङसि	भ्याम्	भ्यस्	अस् (१९९, ७) भ्याम् भ्यस् अ० भ्यः
षष्ठी ।	ङस्	ओस्	आम्	अस् (१९९, ७) ओस् आम्
सप्तमी ।	ङि	ओस्	सुप्	इ (१९९,७) ओस् सु (९,७). ॥ १३७ ॥

(१३८) ङ्याप्प्रातिपदिकात् । ४ । १ । १ ॥

यह अधिकारसूत्र है (१४०) सूत्रमें अर्थ देखो ॥ १३८ ॥

(१३९) प्रत्ययः । ३ । १ । १ ॥

यह अधिकारसूत्र है, आगे इसका काम सर्वत्र होगा । जो प्रकृतिके अथवा अपने अर्थको कहै उसे प्रत्यय कहते हैं, जिससे प्रत्यय किया जाय उसे प्रकृति कहते हैं ॥ १३९ ॥

(१४०) परश्च । ३ । १ । २ ।

इत्यधिकृत्य । ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः ॥

यहभी अधिकारसूत्र है. ङ्यन्त (ङीप् ङीष् अथवा ङीन्) आबन्त (आप्—टाप्—डाप् और चाप् जिसके अन्तमें हों) उससे परे और प्रातिपदिक (१३९) से परे सु (१३७) इत्यादिक प्रत्यय हों । यह तीनों सूत्रोंको मिलाकर अर्थ हुआ ॥ १४० ॥

(१४१) सुपः । १ । ४ । १०३ ॥

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥

सुप् प्रत्याहारके जो तीन तीन भाग हैं वह क्रमसे एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञावाले हों यथा—सु एकवचन औ द्विवचन और शस् बहुवचन है ॥ १४१ ॥

(१४२) द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने । १ । ४ । २२ ॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ॥

दोकी अपेक्षामें द्विवचन और एककी अपेक्षामें एकवचन हों ॥ १४२ ॥

(१४३) बहुषु बहुवचनम् । १ । ४ । २१ ॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् ॥

बहुतकी विवक्षामें बहुवचन हो ॥ १४३ ॥

(१४४) विरामोऽवसानम् । १ । ४ । ११० ॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् ॥

वर्णोंके अभावकी अवसान संज्ञा है। (१३५, १३६) सूत्रसे राम[1] शब्दकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई (१३८, १३९, १४०) सूत्रसे राम शब्दके आगे सुप् प्रत्याहारकी सातों विभक्तियां आईं उनमें एक रामकी विवक्षामें (१४२) सूत्रसे राम शब्दके आगे सु प्रत्यय लानेसे राम+सु हुआ, (३६) सूत्रसे सुके अन्तर्गत उकारकी इत्संज्ञा हुई (७) से उसका लोप हुआ तब राम+स् हुआ, (२०) से स् पदान्त होनेसे (१२४) से सकारके स्थानमें रु आदेश हुआ, तब राम+रु हुआ इससे रुके अन्तर्गत उकारकी (३६) से इत्संज्ञा होकर (७) से लोप हुआ राम+र् रहा तब (१४४) से रकारके आगे अवसान है तो (१११) से रका-

---

१ सम्पूर्ण शब्दोंमें दो पक्ष हुआ करते हैं उनमें एक व्युत्पत्तिपक्ष दूसरा अव्युत्पत्तिपक्ष सो यदि राम शब्दमें रमु क्रीडायाम् धातुसे घञ् प्रत्यय करके रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः—इसप्रकार व्युत्पत्ति करके व्युत्पत्ति पक्ष किया जाय तो (१३६) से प्रातिपदिक संज्ञा होगी और यदि राम ऐसा किसी पुरुष विशेषका नामहै तो (१३५) से प्रातिपादिक संज्ञा होगी सब शब्दोंमें यही क्रम जानना चाहिये.

रको विसर्ग होकर राम+ः=रामः प्रथमाविभक्तिका एकवचन सिद्ध हुआ. अर्थ—एक राम॥ १४४॥

(१४५) सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ । १ । २ । ६४ ॥

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ॥

एकविभक्तिमें जितने समान रूप देखे जांय उनमें एकही शेष रहै, और नहीं । दो रामकी विवक्षा होनेमें राम राम (१४२) ऐसी स्थिति हुई परन्तु (१४९) से एकही राम शब्द रहकर उसके आगे द्विवचनका औ प्रत्यय आया । राम+ औ, (४१) से मकारके अन्तर्गत अकार और औ के स्थानमें वृद्धि प्राप्त थी परन्तु ॥ १४५ ॥

(१४६) प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । ६ । १ । १०२ ॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् ॥

अक्से प्रथमाद्वितीयासम्बन्धी अच् परे हुए सन्ते पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो । यहां प्रथमासम्बन्धी अच् परे होनेसे मके अकारको दीर्घकी प्राप्ति हुई परन्तु ॥ १४६ ॥

(१४७) नादिचि । ६ । १ । १०४ ॥

आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

अवर्णसे इच्परे हुए सन्ते पूर्वसवर्ण दीर्घ न हो । जब दीर्घ न हुआ तो (४१) से वृद्धि होकर राम+औ+रामौ यह प्रथमाका द्विवचन सिद्ध हुआ. अर्थ—दो राम । बहुवचनकी विवक्षामें दशबीस राम कहनेमें आते परन्तु (१४९) से एक राम रहकर उसमें आगे बहुवचनका जस् प्रत्यय किया. यथा राम+जस् ॥ १४७ ॥

(१४८) चुटू । १ । ३ । ७ ॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः ॥

प्रत्ययके आदिके चवर्ग टवर्ग इत्संज्ञावाले हों. जस् प्रत्ययके आदिमें जकार चवर्गका अक्षर है इसकी इत्संज्ञा होकर (७) से लोप हुआ तब राम+अस् हुआ ॥ १४८ ॥

(१४९) विभक्तिश्च । १ । ४ । १०४ ।

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः ॥

सुप् (१३७) तथा तिङ् (४०८) विभक्तिसंज्ञावाले हों ॥ १४९ ॥

(१५०) न विभक्तौ तुस्माः । १ । ३ । ४ ॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेतः ॥

विभक्तिमें स्थित तवर्ग सकार और मकार इत्संज्ञावाले न हों राम+अस् यह रूप (१४८) हुआ, इसमें अस्का सकार विभक्तिका होनेसे इसकी इत्संज्ञा न हुई और लोपभी न

हुआ. और (१४६) से मके अन्तर्गत अ अकूसे प्रथमा विभक्तिके अस्का अ अच् परे है तो पूर्वसवर्णदीर्घ 'आ' आदेश होकर रामा+स् हुआ तब (१२४, १११) स्के स्थानमें र् होकर उसे विसर्ग होकर प्रथमाका बहुवचन 'रामाः' सिद्ध हुआ, अर्थ-बहुत राम ॥ १९० ॥

(१९१) एकवचनं सम्बुद्धिः । २ । ३ । ४९ ॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ॥

सम्बोधनमें प्रथमाके एकवचनकी सम्बुद्धि संज्ञा हो ॥ १९१ ॥

(१९२) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् । १ । १ ।४ ॥

यः प्रत्ययो यस्मात्क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात् ॥

जिस शब्दसे परे जो प्रत्यय किया जाता है वह प्रत्यय जिससे परे रहे उस समुदाय शब्द-स्वरूपकी उसी प्रत्ययके परे रहते अंगसंज्ञा हो । यथा-राम शब्दसे सु आया तो सु प्रत्यय परे रहते राम शब्दकी अंगसंज्ञा हुई; कारण कि, राम+सुके मध्यमें और कोई प्रत्यय नहीं है कि उस शब्दसमूहकी सु परे रहते अंगसंज्ञा हो । इसका फल-॥ १९२ ॥

(१९३) एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः । ६ । १ । ६९ ॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् ॥

एङन्त तथा ह्रस्वान्त अङ्ग (१९२) से परे सम्बुद्धि (१९१) का हल् हो तो उसका लोप हो । हे राम+स्=यहां ह्रस्वान्त अङ्ग रामसे परे सुके स् का सम्बुद्धि होनेसे लोप होकर 'हे राम' सिद्ध हुआ. हे रामौ । हे रामाः । राम+अम् द्वितीयाका एकवचन. (९९) सूत्रसे दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु-॥ १९३ ॥

(१९४) अमि पूर्वः । ६ । १ । १०७ ॥

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः ॥

अक् प्रत्याहारसे परे जो अम्सम्बन्धी अच् हो तो पूर्वरूप एकादेश हो । राम+अम्=रामम् द्वितीयाका एकवचन (रामको) । रामौ (४१) द्वितीयाका द्विवचन (दो रामोंको) । राम+शस् द्वितीयाके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १४४ ॥

(१९५) लशक्वतद्धिते । १ । ३ । ८ ॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः ॥

तद्धितके प्रत्ययोंको छोडकर प्रत्ययके आदि ल, श और कवर्ग इत्संज्ञावाले हों । राम+शस्+इसमें प्रत्ययके आदिके शकारकी इत्संज्ञा होकर लोप हुआ तब राम+अस्+(१४६) से रामास् ॥ १९५ ॥

(१५६) तस्माच्छसो नः पुंसि । ६ । १ । १०३ ॥

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि ॥

पूर्वसवर्णदीर्घसे परे जो शस्का सकार उसको नकार हो पुँल्लिंगमें रामास्=रामान् यहां पूर्वसवर्णदीर्घसे परे शस्का सकार था उसको नकार हुआ ॥ १५६ ॥

(१५७) अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । ८ । ४ । २ ॥

अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासंभवमिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे ॥

अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् (उपसर्ग), नुम्का अनुस्वार यह सब अलग अलग वा मिले हुये रेफ षकार और नकारके बीचमें हों तोभी एकपदमें स्थित रकार षकारसे परे नकारको णकार हो. 'रामान्' इस प्रयोगमें रकारके अन्तर्गत 'आ' अट् प्रत्याहारका है उससे परे मकार पवर्ग है उसके अन्तर्गत आकार अट् है उससे परे नकार है तो र् और नकारके मध्यमें आम् अव्यवधानरूप है तो व्यवधान होनेसेभी रकारसे परे नकारको णकार् पाया परन्तु-॥ १५७ ॥

(१५८) पदान्तस्य । ८ । ४ । ३७ ॥

नस्य णो न ॥

पदान्त नकारके स्थानमें णकार न हो । रामान्में नकार पदान्त है इससे नकारको णकार न हुआ, रामान् द्वितीयाका बहुवचन सिद्ध हुआ. अर्थ-बहुत रामोंको । राम+टा तृतीयाके एकवचनका प्रत्यय ॥ १५८ ॥

(१५९) टाङसिङसामिनात्स्याः । ७ । १ । १२ ॥

अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः ॥

अदन्त शब्दसे परे टा, ङसि और ङस्को क्रमसे इन आत् स्य आदेश हों । राम+इन=(३९) रामेन=(१५७) रामेण तृतीयाका एकवचन, अर्थ-रामकरके । राम+भ्याम् तृतीयाके द्विवचनका प्रत्यय ॥ १५९ ॥

(१६०) सुपि च । ७ । ३ । १०२ ॥

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः ॥

यञ् आदि विभक्तिके प्रत्यय अदन्त अंगसे परे आवें तो अंगके अन्तर्गत अकारको दीर्घ हो राम अकारान्त शब्दसे परे भ्याम् प्रत्ययका भकार यञ् प्रत्याहारका है तो 'म' के अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ तब रामाभ्याम् सिद्ध हुआ. अर्थ-दो राम करके राम+भिस् तृतीयाके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १६० ॥

(१६१) अतो भिस ऐस् । ७ । १ । ९ ॥

अदन्तात् अंगात्परस्य भिस ऐस् स्यात् ॥

अदन्त अंगसे भिस् प्रत्यय आवे तो उसके स्थानमें ऐस् आदेश हो । राम+ऐस् (२७, ८८, ९८) रामैः (४१, १२४, १११) तृतीयाका वहुवचन अर्थ—वहुत रामोंकरके । राम+ङे चतुर्थी विभक्तिके एकवचनका प्रत्यय ॥ १६१ ॥

(१६२) ङेर्यः[1] । ७ । १ । १३ ।

अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ॥

अकारान्त अङ्गसे परे ङेके स्थानमें य आदेश हो. यथा—राम+य ॥ १६२ ॥

(१६३) स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ । १ । १ । ५६ ॥

आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ ॥

आदेश स्थानिवत् हो, परन्तु स्थानीके अवयव अथवा स्थानीरूप अल्के धर्मको स्वीकार कर जहां कार्य किया जाय वहां आदेश स्थानिवत् न हो । यथा—राम+ङे इसमें ङे सुप् है, इसके स्थानमें यकार आदेश सुप्वत् हुआ. राम+य इस प्रयोगमें यको सुप्भाव मानकर (१६०) से मके अन्तर्गत अकारको दीर्घ होकर रामा+य=रामाय रूप हुआ. ऊपर अल्का भाव यह है कि, य केवल अल् नहीं है किन्तु अकारविशिष्ट है, उसमें अल् (य् अ) है, एक वर्णहो तो अल्विधि हो सकता है वहां स्थानिवत् भाव सुप् हुआ. राम+भ्याम्=रामाभ्याम् चतुर्थीका द्विवचन. अर्थ—दो रामके निमित्त । राम + भ्यस् चतुर्थीके वहुवचनका प्रत्यय ॥ १६३ ॥

(१६४) बहुवचने झल्येत् । ७ । १ । १०३ ॥

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः ॥

झलादि बहुवचन सुप् परे हो तो अकारान्त अंगको एकार हो । राम्+अ+भ्यस्=राम्+ए+भ्यस्=रामेभ्यस् (१२४, १११) से रामेभ्यः । **सुपि किम् ?** सुप् ग्रहण क्यों किया ? जो सुप्का ग्रहण न करते तो सुप्के विनाभी दूसरे स्थानमें यह विधि लगजाती. यथा—पच+ध्वम् इसमें ध्वम् प्रत्यय सुप् नहीं किन्तु तिङ् है, तो इससे अकारको एकार न होकर 'पचध्वम्' हुआ. राम+ङसि=राम+आत् (१९९, ९८) 'रामात्' पंचमीका एकवचन, अर्थ—रामसे ॥ १६४ ॥

(१६५) वाऽवसाने । ८ । ४ । ५६ ॥

अवसाने झलां चरो वा ॥

---

१ सुपि च इति दीर्घे कर्तव्ये सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य इति परिभाषा न प्रवर्तते कष्टाय क्रमणे इत्यादिनिर्देशात् ।

अवसान हो तो विकल्प करके झलोंको चर् हों । 'रामात्' प्रयोगमें त् के स्थानमें द् (८२) नित्यही था परन्तु त् के आगे अवसान होनेसे विकल्प करके त् को द् हुआ तो रामात् और चर् न किया तो 'रामाद्' हुआ । राम+भ्याम् (१६०) रामाभ्याम् पंचमीका द्विवचन. अर्थ—दो रामोंसे । रामेभ्यः (१६४) पंचमीका बहुवचन । अर्थ—बहुतसे रामोंसे । राम+ङस्=रामस्य (१९९, ९८) रामस्य । षष्ठीका एकवचन । अर्थ—रामका । राम+ओस् षष्ठीका द्विवचन ॥ १६९ ॥

(१६६) ओसि च । ७ । ३ । १०४ ॥

अतोऽङ्गस्यैकारः ॥

ओस् प्रत्यय परे हो तो अदन्त अंगको एकारहो । राम+ओस्=राम्+ए+ओस्=राम्+अय् (२९)+ओस्=रामयोस् (१२४, १११) से रामयोः । अर्थ—दो रामका । राम+आम् षष्ठीके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १६६ ॥

(१६७) ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४ ॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः ॥

ह्रस्वान्त (९) नद्यन्त (२१९) और आवन्त (१३४२) अङ्गसे परे आम्को नुट्का आगमहो, नुट्मेंसे उकारकी इत्संज्ञा (३६, ७) से होकर लोप हुआ, ट्का (९, ७) से लोप हुआ, शेष न् रहा सो (१०३) से टित् होनेसे आम् के आदिमें हुआ तव राम+न्+आम्=राम+नाम हुआ ॥ १६७ ॥

(१६८) नामि । ६ । ४ । ३ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः ॥

नाम् प्रत्यय परे होनेसे अजन्त अंगको दीर्घ हो । राम्+अ+नाम्=राम्+आ+नाम्=रामानाम्=(१९७) रामाणाम् षष्ठीका बहुवचन. अर्थ—बहुतसे रामोंका । राम+ङि सप्तमीका एकवचन, यहां (१९९, ७) से ङि के ङकारका लोप हुआ तो राम+इ (३९) से 'रामे' सप्तमीका एक वचन सिद्ध हुआ । अर्थ—राममें । राम+ओस्=रामे+(१६६) ओस्=रामयो (१३९) स्=रामयोः (१२४, १११) सप्तमीका द्विवचन । अर्थ—दो रामोंमें । राम+सुप् सप्तमीके बहुवचनका प्रत्यय (९, ७) से सुप्के पकारका लोप हुआ तब राम+सु (१६४) से मके अकारके स्थानमें 'ए' हुआ तव रामेसु ॥ १६८ ॥

(१६९) आदेशप्रत्यययोः । ८ । ३ । ५९ ॥

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः ॥

इण् प्रत्याहार कवर्गसे परे अपदान्त आदेशरूप सकार वा अपदान्त प्रत्ययका अवयव सकार आवे तो उसके स्थानमें मूर्द्धन्य आदेश हो. सकारका ईषद्विवृत प्रयत्न है उसके समान षकार आदेश होकर 'रामेषु' सिद्ध हुआ. अर्थ=बहुत रामोंमें। इसी प्रकार अकारान्त पुँल्लिंग **कृष्ण मुकुन्द** आदिके रूप जानने ॥ १६९ ॥

(१७०) सर्वादीनि सर्वनामानि । १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः ॥

सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। सर्वादि शब्दस्वरूपोंकी सर्वनाम संज्ञा है; वह सर्वादिगण लिखतेहैं (सर्व) सम्पूर्ण (विश्व) संसार (उभ) दो (उभय) दो अवयवविशिष्ट (डतर डतम) यह दोनों प्रत्ययहैं, इससे इनके अन्तवाले शब्द लिये जाते हैं. यथा—कतर कतम। (अन्य) दूसरा (अन्यतर) दोमेंसे एक (इतर) दूसरा (त्वत्, त्व) दूसरा (नेम) आधा (सम) संपूर्ण।

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥

पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर यह सात शब्द जो व्यवस्थामें हों और किसीकी संज्ञामें न हों तो सर्वादिगणमें इनका पाठ जानना, अन्यथा नहीं। **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्।** स्वशब्दका अर्थ जब आत्मा और आत्मीय हो तो सर्वादिगणमें इसका पाठ जानना. ज्ञाति और धनका अर्थ हो तो सर्वादिगणमें पाठ न जानना। **अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः** अन्तर शब्दका अर्थ जो बहिर्योग बाह्य अर्थवाचक और उपसंव्यान (पहरने) का वाचक हो तो सर्वादिगणमें जानना। त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्। (त्यद्) वह (तद्) वह (यद्) जो (एतद्) यह (इदम्) यह (अदस्) वह (एक) एक (द्वि) दो (युष्मद्) तू (अस्मद्) मैं (भवतु) आप (किम्) कौन। इन सबकोभी सर्वादिगणमें जानना।

सर्वनाममें विभक्ति लगानेकी विधि।

प्रथमा—सर्वः। सर्वौ रामवत् सर्व+जस् ॥ १७० ॥

(१७१) जसः शी । ७ । १ । १७ ॥

अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। सर्वे ॥

अदन्त सर्वनामसे परे जस्को शी हो। शी अनेकाल् है इस कारण संपूर्ण जस्को हुआ सर्व+शी (९८)=(१६६, ७) से सर्व+ई (३९) से 'सर्वे' प्रथमाका बहुवचन द्वितीया—सर्वम्। सर्वौ। सर्वान्। तृतीया—सर्वेण। सर्वाभ्याम्। सर्वैः। चतुर्थी—सर्व+ङे ॥ १७१ ॥

(१७२) सर्वनाम्नः स्मै । ७ । १ । १४ ॥

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै ॥

अदन्त सर्वनामसे परे ङेके स्थानमें स्मै हो । सर्व+स्मै=सर्वस्मै । सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः । पंचमी-सर्व+ङसि ॥ १७२ ॥

(१७३) ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ । ७ । १ । १५ ॥

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः ॥

अदन्त सर्वनामसे परे ङसि और ङस्के स्थानमें क्रमसे स्मात् और स्मिन् आदेश हों सर्व+स्मात्=सर्वस्मात् । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । षष्ठी-सर्वस्य । सर्वयोः । सर्व+आम् ॥ १७३ ॥

(१७४) आमि सर्वनाम्नः सुट् । ७ । १ । ५२ ॥

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः ॥

अवर्णान्त अंगसे परे सर्वनामसे विहित आम्को सुट् हो । सुट्मेंसे (३१, ९, ७) सूत्रसे स् रहा वह (१०३) से आदिमें हुआ तब सर्व+स्+आम्=सर्वासाम् (१६४) सर्वेषाम् (१६९) सप्तमी-सर्व+ङि=सर्व+स्मिन् (१७३)=सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु । **एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः** । इसी प्रकार विश्वआदि अदन्त सर्वनाम (१७०) शब्दोंके रूप जानने । **उभ शब्दो नित्यं द्विवचनान्तः** । उभ शब्द नित्य द्विवचनान्त है । उभौ २ प्रथमा तथा द्वितीयाका द्विवचन । उभाभ्याम् ३ तृतीया, चतुर्थी तथा पंचमीका द्विवचन । उभयोः २ षष्ठी तथा सप्तमीका द्विवचन ।

तस्येह पाठोऽकजर्थः । सर्वनामगणका एकवचन और बहुवचनमेंही फल है, कारण कि एकवचन और बहुवचनमेंही रूपोंका भेद पडताहै, जब यह द्विवचन है तो सर्वनाममें रखनेका प्रयोजन क्या ? उत्तर-उभशब्दकी टि (९२) के पूर्व सर्वनामका अकच् प्रत्यय (१३२२) होताहै । जो उभ सर्वनाममें परिगणित न होता तो टिके पूर्व अकच्भी न हो सकता । **डतरडतमौ प्रत्ययौ** । डतर और डतम प्रत्ययहैं । **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः** । यह जिस शब्दके अन्तमें लगै उसकाभी ग्रहण सर्वनामसंज्ञामें हो । इस कारण इन प्रत्ययोंका ग्रहण किया । **नेम इत्यर्धे**-नेम शब्दका अर्थ आधा है । **समः सर्वपर्यायः तुल्यपर्यायस्तुन, समानामिति ज्ञापकात्** । सम शब्दका अर्थ सर्ववाचक होय तो उसकी गणना सर्वनाममें करना, और तुल्यवाचक होय तो सर्वनाममें गणना न करनी, कारण कि, पाणिनिनें तुल्यवाचक इस शब्दकी षष्ठीमें 'समानाम्' ऐसा उच्चारण कियाहै (**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**) । और सर्ववाचक सम शब्दकी षष्ठीका बहुवचन 'समेषाम्' होताहै ॥ १७४ ॥

---

१ कतर कतम यतर यतम ततर ततम एकतर एकतम एते शब्दा ग्राह्याः ।

(१७५) पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायाँमसंज्ञाँयाम्। १। १। ३४॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्॥

पूर्व—प्रथम पूर्वदिशा, पूर्वदिशावर्ती वा। पर—परदिशा, परदिशावर्ती। अवर—पश्चात्‌दिशा, पश्चात्‌दिशावर्ती। दक्षिण—दक्षिणदिशा, दक्षिणदिशावर्ती। उत्तर—उत्तरदिशा, उत्तरदिशावर्ती। अपर—ऊपरकी दिशा वा दूसरी दिशावर्ती। अधर—नीचे। इन शब्दोंकी (१७०) सूत्रसे व्यवस्थामें और असंज्ञामें सर्वनामसंज्ञा सर्वत्र प्राप्तहै, सो जस् प्रत्यय परे होनेसे विकल्प करके हो। यथा—पूर्वे (१७१, ३९) सर्वनामसंज्ञामें प्रथमाका बहुवचन। पूर्वाः—रामशब्दके समान यहां सर्वनाम संज्ञा न हुई। इसी प्रकार ऊपर लिखे दूसरे शब्दोंका रूप जानना। **असंज्ञायां किम्?** पूर्व आदि शब्दोंकी असंज्ञामें सर्वनामसंज्ञा क्यों कही। उत्तर,—**उत्तराः कुरवः**। (उत्तरकुरु देश) यह देशकी संज्ञा होनेसे सर्वनामसंज्ञा न हुई नहीं तो (उत्तरे) होता। **स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था**। इन सातों शब्दोंके अर्थसे अपेक्षित सामान्यविधिके निश्चयको व्यवस्था कहते हैं। **व्यवस्थायां किम्?** व्यवस्थामें सर्वनामसंज्ञा हो ऐसा क्यों कहा? उत्तर—'**दक्षिणा गायकाः**' (चतुरगानेवाले) इस उदाहरणमें दक्षिण शब्द व्यवस्थावाचक नहीं इससे सर्वनामसंज्ञा न होकर रामशब्दके समान रूप हुआ॥ १७५॥

(१७६) स्वमज्ञातिधनाख्याँयाम्। १। १। ३५॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा॥

ज्ञाति और धनवाचकको छोडकर अन्य अर्थवाची स्वशब्दकी सर्वनाम संज्ञा सर्वत्रहै सो जसूके परे विकल्प करके हो। यथा—'स्वे' (१७१, ३९) सर्वनाम संज्ञाका रूप, 'स्वाः' विकल्पका रूप सर्वनाम संज्ञा न होनेमें हुआ। (आत्मीय आत्मान इति वा), (आप वा अपना) **ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वज्ञातयोऽर्था वा.** ज्ञाति और धन अर्थमें एकही रूप होताहै (स्वाः)=ज्ञाति वा धन। यहां सर्वनाम संज्ञा न हुई॥ १७६॥

(१७७) अन्तरं बहिर्योगोपसंव्याँनयोः। १। १। ३६॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा॥

अन्तर शब्द बाहरके अर्थ वा वस्त्र पहरनेका वाचक होय तो इसकी सर्वत्र सर्वनाम संज्ञाहै, परन्तु जसूके परे विकल्प करके हो। यथा—अन्तरे (१७१, ३९) अथवा अन्तराः रामवत्॥ १७७॥

(१७८) पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा । ७ । १ । १६ ॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः ॥

पूर्वादि नौ शब्दोंकी पंचमी तथा सप्तमीके प्रत्यय ङसि और ङिके स्थानमें विकल्प करके स्मात्, स्मिन् आदेश हों. यथा—पूर्वस्मात् अथवा पूर्वात् पंचमीका एकवचन । पूर्वस्मिन् अथवा पूर्वे सप्तमीका एकवचन इसी प्रकार दूसरे आठ शब्दोंके रूप जानने । **शेषं सर्ववत्** । शेष सर्वशब्दके समान रूप जानने ॥ १७८ ॥

(१७९) प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च । १ । १ । ३३ ॥

एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः ॥

प्रथम चरम तयप्रत्ययान्त शब्द अल्प अर्ध कतिपय और नेम इन शब्दोंके आगे जस् प्रत्यय आवे तो विकल्प करके सर्वनाम संज्ञावाले हों; यथा—प्र० ब० प्रथमे (१७१, ३९) अथवा प्रथमा रामवत् । तयप्रत्ययान्त—द्वितये अथवा द्वितयाः । **शेषं रामवत्** । शेष रूप रामशब्दवत् । नेमे अथवा नेमाः । **शेषं सर्ववत्** । बाकी सर्वशब्दके समान जानने ॥ १७९ ॥

(१८०) तीयस्य ङित्सु वा ॥

तीयप्रत्ययान्त (१२६३, १२६४) शब्दोंसे परे ङित् (चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमीके एक वचनके) प्रत्यय आवेंतो विकल्प करके सर्वनाम संज्ञाहो यथा—द्वितीय+ङे= द्वितीयाय+स्मै (१७२) द्वितीयस्मै अथवा द्वितीयाय (१६२, १६३, १६०)।इसी प्रकार तृतीयशब्दका रूप जानना । द्वितीय+ङसि=द्वितीय+स्मात् (१७३) द्वितीयस्मात् पंचमीका एकवचन । जब सर्वनामसंज्ञा न हुई तो रामशब्दवत् 'द्वितीयात्' रूप हुआ । षष्ठीके एकवचनमें द्वितीयस्य षष्ठीका कार्य पुँल्लिङ्गके एकवचनमें नहीं होता इस कारण द्वितीयस्य हुआ । द्वितीय+ङि=द्वितीय+स्मिन् (१७३) द्वितीयस्मिन् सप्तमीका एकवचन । जब सर्वनामसंज्ञा न हुई तो रामवत् 'द्वितीये' रूप हुआ ॥ १८० ॥

निर्जर ।

प्र० निर्जर+सु=निर्जरः । निर्जर+औ=निर्जरौ । अथवा—

(१८१) जराया जरसन्यतरस्याम् । ७ । २ । १०१ ॥

अजादौ विभक्तौ जराशब्दस्य जरसादेशो वा स्यात् ॥

जराशब्दके आगे अजादिविभक्ति आवे तो विकल्प करके जरस् आदेश हो ।

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च । निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥

पदाधिकार और अंगाधिकार (१९२) इन दोनोंमें जिस शब्दको जो आदेश होता है वह तदन्तको भी होताहै. इसकारण जराशब्दको जो जरस् आदेश होताहै वह निर्जरको भी

---

१ षष्ठीप्रकृतिजन्यप्राथमिकोपस्थितिविषयत्वं निर्दिश्यमानत्वम् ।

हुआ. प्र० तो सम्पूर्ण निर्जर शब्दको मेटकर जरस् आदेश होना चाहिये ? उत्तर–जिसके निमित्त सूत्रने कहाहै उसीके स्थानमें आदेश हुआ करते हैं, सूत्रमें जरा शब्दको जरस् आदेश कहा है इस कारण निर्जर शब्दके अवयव जरकोही जरस् हुआ । प्रश्न–निर्जर शब्दमें तो जरा नहीं है किन्तु जर है ? उ०–**"एकदेशविकृतमनन्यवत्" इति जराशब्दस्य जरस्** । जो एकदेशमें विकारको प्राप्त होता है वह दूसरेके तुल्य नहीं होता; जैसे–पूंछ कटा कुत्ता कुत्ताही रहता है इससे जरकोही जरस् हुआ. निर्जरस्+औ=निर्जरसौ प्र० द्विवचन. इसप्रकार अजादिविभक्ति परे रहते एक पक्षमें और हलादि विभक्तिमें रामशब्दके समान जानो ॥ अकारान्त **विश्वपा** शब्द, विश्वपा+सु=विश्वपाः । विश्वपा+औ (१४६) औके स्थानमें आ प्राप्त हुआ १८१

(१८२) दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०५ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

दीर्घसे परे जस् प्रत्यय वा इच् प्रत्याहारके अक्षर हों तो, पूर्वसवर्णदीर्घ न हो; तब दीर्घ न होकर (४१) वृद्धि हुई विश्वपा+औ=विश्वपौ प्रथमाका द्विवचन । विश्वपा+जस्=विश्वपा+अस् (१४, ९९)=विश्वपाः रामवत् प्रथमाका बहुवचन । हे विश्वपा+सु=हे विश्वपा+स् सम्बोधनमें 'विश्वपा' एङन्त तथा ह्रस्वान्त नहीं है इसकारण सुका लोप (१९३) से न हुआ ।

हे विश्वपाः हे विश्वपौ हे विश्वपाः

द्वितीया । विश्वपाम् विश्वपौ विश्वपा+अस् [३५६] ॥ १८२ ॥

(१८३) सुडनपुंसकस्य । १ । १ । ४३ ॥

स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

सु औ जस् अम् औट् यह पांच प्रत्यय हैं, नपुंसकलिंगको छोड सर्वनामस्थान संज्ञावालेहों १८३

(१८४) स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । १ । ४ । १७ ॥

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात् ॥

सर्वनामस्थानके प्रत्यय (१८३) सु (१३७) प्रत्ययसे लेकर कप्प्रत्ययतक जितने प्रत्यय अष्टाध्यायीमें मिलते हैं, उनसे पूर्वकी पद संज्ञा है ॥ १८४ ॥

(१८५) यचि भम् । १ । ४ । १८ ॥

यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ॥

सर्वनामस्थानको छोडकर सुसे लेकर कप्प्रत्ययतक जितने यकारादि अजादि और स्वादि प्रत्यय हैं तिनसे पहिलेकी भसंज्ञा हो । अब यहां–विश्वपा+अस् इस प्रयोगमें (१८४) से पद संज्ञा प्राप्त हुई, और (१८५) से भसंज्ञा प्राप्त हुई, तो कौनसी हो ? इसपर सूत्र–॥ १८५ ॥

(१८६) आ कडारादेका संज्ञा । १ । ४ । १ ॥

इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च ॥

अष्टाध्यायीके क्रमसे पहले अध्यायके चौथे पादके पहले सूत्र (१८६) **कडाराः कर्मधारये** तक जो एकस्थानमें अनेक संज्ञा प्राप्तहों, तो एकी हो जो संज्ञा पर हो और जिसके और कहीं होनेका अवकाश न हो वही हो. जिसकी और स्थानमें प्राप्ति न हो उसे अनवकाश कहतेहैं, यथा, पदसंज्ञाके विषयको त्यागकर भसंज्ञाकी प्राप्ति अन्य स्थानमें नहीं है, तो जो सबही स्थानमें पद संज्ञा हो जाय तो भसंज्ञा कहां होगी, इसे कहीं और तो अवकाश हैही नहीं, तो अचू आदिविभक्ति परे रहते पदसंज्ञाको बाधकर भसंज्ञा (१८९) हुई और परे विभक्ति हलादि पद संज्ञा जानना चाहियें ॥ १८६ ॥

(१८७) आतो धातोः । ६ । ४ । १४० ॥

आकारांतो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः स्यात् (अलोऽन्त्यस्य) विश्वपः ॥

आकारान्त धातु (४९) जिसके अन्तमें है, ऐसे भसंज्ञक (१८९) अंग (१९२) के अन्तका लोप हो. यथा–विश्वपा+अस् इसमें पा आकारान्त धातु है सो जिसके अन्तमें है वह भसंज्ञक अंग विश्वपा है । तिसके अन्तके आकारका लोप (२७) से हुआ. तब विश्वप्+अस्=विश्वपस्=विश्वपः (१२४, १११) द्वितीयाका बहुवचन । तृ० ए० विश्वपा+टा=विश्वपा+आ (१४८, ७)=विश्वप् (१८९, १८७, २७)+आ=

विश्वपा विश्वपाभ्याम् विश्वपाभिः

चतु० ए० विश्वपा+ङे=विश्वपा+ए (१९९, ७)=विश्वप् (१८९, १८७, २७) ए=

विश्वपे विश्वपाभ्याम् विश्वपाभ्यः

पञ्चमी विश्वपः (१३७, १९९, ७, १८९, १८७, २७) विश्वपाभ्याम् विश्वपाभ्यः । षष्ठी विश्वपः (१३७, १९९, ७, १८९, १८७, २७) विश्वपोः (१८९, १८७, २७, १२४, १११) विश्वपाम्.

सप्तमी विश्वपि (१३७, १९९, ७, १८९, १८७, २७) विश्वपोः । विश्वपासु । **एवं शंखध्मादयः** । इसी प्रकार शंखध्मा आदि शब्दोंके रूप जानने । **धातोः किम् ?** धातुके आकारका लोप हो, यह क्यों कहा ? इसका कारण यह कि, धातुके विना आकारका लोप न हो; यथा–हाहा (गन्धर्व) ।

प्रथमा	हाहाः हाहौ हाहाः	पं०	हाहाः (अस्) हाहाभ्याम् हाहाभ्यः
द्वितीया	हाहाम् हाहौ हाहान्	ष०	हाहाः हाहौः हाहाम्
तृतीया	हाहा (आ) हाहाभ्याम् हाहाभिः	स०	हाहे (ङि=गुण) हाहौः हाहासु
चतुर्थी	हाहै (वृद्धिः) हाहाभ्याम् हाहाभ्यः	सम्बो०	हे हाहाः हे हाहौ हे हाहाः

ह्रस्व इकारान्त हरिशब्द।

प्रथमा—हरि+सु=हरिः (१२४, १११)। हरि+औ हरी (१४६)। हरि+जस्॥ १८७॥

(१८८) जसि च।७।३।१०९॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि परे॥

जस् प्रत्यय परे हुए सन्ते ह्रस्वान्त अंगको गुण हो। हरि+जस्=हरि+अस् (९, १९०, १४८, ७) हरे (१८८)+अस्=हरयः-(२९, १२४, १११)। सम्बोधन हे हरि+सु॥ १८८॥

(१८९) ह्रस्वस्य गुणः।७।३।१०८॥

ह्रस्वस्य गुणः स्यात् सम्बुद्धौ॥

सम्बोधनका १ वचन परे हो तो ह्रस्वान्त अंगको गुण हो। हे हरे (१९३)। हे हरी। हे हरयः। द्वितीया—हरिम्। हरी। हरीन्। तृतीया—हरि+टा॥ १८९॥

(१९०) शेषो घ्यऽसखि।१।४।७॥

अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात्॥

नदीसंज्ञासे रहित ह्रस्व इ और उ अन्तवाले शब्दोंकी घि संज्ञा हो सखिशब्दको छोडकर॥ १९०॥

(१९१) आङो नाऽस्त्रियाम्।७।३।१२०॥

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। आङिति टासंज्ञा॥

स्त्रीलिङ्ग शब्दको छोडकर घिसंज्ञक प्रातिपदिक (१३९, १३६) से परे जो आङ् (टा) उसके स्थानमें ना आदेश हो। हरि+टा=(१४८, ७) हरि+आ (१९०) से घिसंज्ञा हुई तब हरि+ना (१९१) हरि+णा (१९७)=हरिणा। हरिभ्याम्। हरिभिः। (१२४, १११) चतुर्थी—हरि=ङे=हरि+ए (१९९, ७)॥ १९१॥

(१९२) घेर्ङिति।७।३।१११॥

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः॥

ङित् सुप् (ङे ङसि ङस् ङि) परे रहते घि (१९०) संज्ञक शब्दको गुण हो। हर्+ए+ए=हरय् (२९)+ए=हरये। हरिभ्याम्। हरिभ्यः॥

पञ्चमी–हरि+ङसि=हरि+अस् (१९९, ३६, ७) इसकी (१९०) से घि संज्ञा है, हरे (१९२)+अस्=हरे+अः (१२४, १११) ॥ १९२ ॥

(१९३) ङसिङसोश्च । ६ । १ । ११० ॥

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ॥

एङ्से परे ङसि ङस् सम्बन्धी अकार हो तो पूर्वरूप एकादेश हो । हरे+अः=हरेः । हरिभ्याम् । हरिभ्यः ॥

षष्ठी–हरेः (पंचमीके समान) हरि+ओस् (९, १९०, २१) हर्य्=ओस्=हर्योस्+ हर्योः (१२४, १११) अथवा (७३) से यकारको द्वित्व होकर हर्य्योः । हरि+आम् (११८, ११७, १९७)=हरीणाम् ॥

सप्तमी–हरि+ङि (१९२) से गुण प्राप्त हुआ. परन्तु–॥ १९३ ॥

(१९४) अच्च घेः । ७ । ३ । ११९ ॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरत् ॥

इकार उकारसे परे ङिके स्थानमें औकार हो, तथा घि (१९०) संज्ञक शब्दको अकार हो, हरि+औ=हर+औ=हरौ । हर्योः वा हर्य्योः । हरिषु (११९) । **एवं कव्यादयः** ॥ इसी प्रकार कवि रवि अग्नि आदिशब्दोंके रूप जानने ॥ **सखि**शब्दकी घि संज्ञा नहीं है उसके रूप । प्रथमा–सखि+सु ॥ १९४ ॥

(१९५) अनङ् सौ । ७ । १ । ९३ ॥

सख्युरंगस्यानङादेशोऽसंबुद्धौ सौ ॥

असंबुद्धि सुप्रत्यय परे हुए सन्ते सखिरूप अङ्ग (१९२) को अनङ् (९८, ९९) आदेश हो । अनङ्में अङ्की (३६) से इत्संज्ञा है (७) से लोप होकर अन् शेष रहा । सो (९८, ९९) से सखिशब्दके खिके अन्तर्गत इकारके स्थानमें हुआ; सख्+अन्+स् (३६, ७ ॥ १९५ ॥

(१९६) अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा । १ । १ । ६५ ॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ॥

अन्त्य अल्से पूर्वसवर्णकी उपधा संज्ञा हो । सख् अन्में अन्त्य अल् नकार है, उसके पूर्व अकारकी उपधा संज्ञा हुई ॥ १९६ ॥

(१९७) सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ । ६ । ४ । ८ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

नान्तकी उपधाको दीर्घ हो असंबुद्धि सर्वनामस्थान परे हुए सन्ते; सख् अन्+स्=सख्+आन् (१९७)+स्=सखान्+स् ॥ १९७ ॥

(१९८) अपृक्त एकाल् प्रत्ययः । १ । २ । ४१ ॥

एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात् ॥

जिस प्रत्ययमें एकही अल् है उसकी अपृक्त संज्ञा हो । सखान्+स् यहां सकारकी अपृक्त संज्ञा हुई ॥ १९८ ॥

(१९९) हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् । ६ । १ । ६८ ॥

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते ॥

हलन्तशब्दसे परे सु ति सि तथा दीर्घ ङी (२५६) और आप् (टाप् १३४२ प्रभृति) यह स्त्रीलिंगके प्रत्यय जिसके अन्तमें हो उन शब्दोंसे परे सु इन प्रत्ययोंका जो अपृक्त(१९८) हल् आवे तो उसका लोप हो । सखान्+स् इस प्रयोगमें नकारहल्से परे स्, सुका अपृक्त हल् है इसका लोप होकर ' सखान् ' रूप रहा ॥ १९९ ॥

(२००) नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात् ॥

प्रातिपदिकसंज्ञावाले पदके अन्तके नकारका लोप हो । सखान् यह (१३५, १३६) से प्रातिपदिकसंज्ञक पदहै इसके नकारका लोप हुआ । तब 'सखा ' यह प्रथमाका एकवचन सिद्ध हुआ । सखि+औ प्रथमाका द्विवचन ॥ २०० ॥

(२०१) सख्युरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ९२ ॥

सख्युरङ्गात्परं संबुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् ॥

सखि अंगसे परे सम्बुद्धि (१९१) रहित सर्वनामस्थान (१८३) प्रत्यय आवे तो णित्के तुल्यहै अर्थात् इत्संज्ञक णकारवालेको मानकर जो कार्य होताहै सो इसकोभी हो । सखि+औ इसमें औ प्रत्यय सर्वनामस्थान है यह णित्के तुल्य हुआ ॥ २०१ ॥

(२०२) अचो ञ्णिति । ७ । २ । ११५ ॥

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च प्रत्यये परे ॥

ञकार अथवा णकार जिसका इत्संज्ञकहो उस प्रत्ययके परे रहते अजन्त अंगको वृद्धि हो । सखि+औ वृद्धि होनेसे ' ऐ ' हुई तब सखै+औ=सखाय् (२९) +औ=सखायौ प्रथमाका द्विवचन । प्र० ब०–सखि+जस्=सखि+अस् (१४८) फिर (२०१, २०२) से सखै+अस्=सखाय् (२९)+अस्+सखायः (१२४, १११) हुआ ॥

संबोधन–हे सखे (१८९, १९३)　　　　हे सखायौ हे सखायः ।

द्वितीया–सखायम् (२०१, २०२, २९) सखायौ सखीन् (१४६, १९६)

तृतीया-सख्या (२१) सखिभ्याम् सखिभिः ।
चतुर्थी-सख्ये (२१) सखिभ्याम् सखिभ्यः ।
पंचमी-सखि+ङसि=सखि+अस् (१९९, ७) सख्य् (२१)+अ:(१२४,१११) ॥२०२॥

(२०३) ख्यत्यात्परस्य । ६ । १ । ११२ ॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसि ङसोरत उः ।

जिनको यण् (२१) आदेश कियागयाहै, ऐसे खि, ति, खी और ती शब्द उनसे परे ङसि और ङस्का अकार तिसको उ हो ।

सख्य्+उः=सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्यः
षष्ठी-सख्य्+उः=सख्युः सख्योः सखीनाम् (१६८, १६७)
सप्तमी-सखि+ङि-॥ २०३ ॥

(२०४) औत् । ७ । ३ । ११८ ॥

इतः परस्य ङेरौत् ॥

ह्रस्व इकारान्त अंगसे परे ङि प्रत्यय आवै तो उसके स्थानमें औकार हो । सखि+औ=सख्य् (२१)+औ=सख्यौ । सखिषु ॥ २०४ ॥

(२०५) पतिः समास एव । १ । ४ । ८ ॥

पतिशब्दः समासे एव घिसंज्ञः ।

पतिशब्दकी (९६४) समासमेंही घि (१९०) संज्ञा है, जिस समय पतिशब्दकी घिसंज्ञा नहीं है वह रूप लिखते हैं-

प्रथमा ।	पतिः	पती	पतयः	(१८८, २९, १२४, १११)
द्वि०-	पतिम्	पती	पतीन्	(१४६, १९६)
तृ०-	पति+आ= पत्य्+आ= पत्या		पतिभ्याम् पतिभिः	
च०-	पति+ए = पत्य्+ए = पत्ये		पतिभ्याम् पतिभ्यः	
पं०-	पति+अस्= पत्य्+ उः=पत्युः		पतिभ्याम् पतिभ्यः	
ष०-	पत्युः	पत्योः	पतीनाम् (१६८, १६७)	
स०	पत्यौ (२१, २०४)	पत्योः	पतिषु	
सं०-	हे पते (१८९, १९३)		हे पती हे पतयः	

समासे तु भूपतये । भूपतिशब्द समासवाचक है उसकी घि संज्ञा होकर चतुर्थीमें भूपतये चतुर्थीके एकवचनमें हरिके समान होगा । **कति** (कितने) यह संख्यावाचक विशेषण सदा बहुवचनान्त है. कति+जस्=प्रथमाके बहुवचनका प्रत्यय ॥ २०५ ॥

(२०६) बहुगणवतुडति संख्या । १ । १ । २३ ॥

बहु गण वतु डति एते संख्याः स्युः ॥

बहुशब्द, गणशब्द, जिनके अन्तमें वतु तथा डति प्रत्यय हों वह संख्या संज्ञावाले हों॥२०६॥

(२०७) डति च । १ । १ । २५ ॥

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ॥

जो डत्यन्त संख्या (२०६) है वह षट् (३२४) संज्ञक हो, कतिशब्द डति प्रत्ययान्त है, इससे इसकी षट् संज्ञा हुई ॥ २०७ ॥

(२०८) षड्भ्यो लुक् । ७ । १ । २२ ॥

षड्भ्यः परयोः जस्शसोर्लुक् स्यात् ॥

जस् और शस् प्रत्यय षट्संज्ञकशब्दसे परे आवै तो जस् और शस्का लोपहो ॥ २०८ ॥

(२०९) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः । १ । १ । ६१ ॥

लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं स्यात् ॥

लुक् श्लु और लुप् शब्दोंसे जो प्रत्ययका अदर्शन (अभाव) किया हो तो उनकी क्रमसे लुक् श्लु और लुप् संज्ञाहो ॥ २०९ ॥

(२१०) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ ॥

प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात् ॥

प्रत्ययके लोप होनेमेंभी उसके आश्रित अंगका कार्य हो । कति+जस् इसमें जस्का लुक् (२०८) से हुआ, फिर (१८८) से गुण प्राप्त हुआ, परन्तु—॥ २१० ॥

(२११) न लुमताऽङ्गस्य । १ । १ । ६३ ॥

लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् ॥

लुशब्द जिसमें हो उसको लुमान् कहतेहैं, तिसकरके अर्थात् लुक्श्लु और लुप् (२०९)इन शब्दोंकरके जहां प्रत्ययका लोप हुआहो, वहां लुप्त प्रत्ययको मानकर जो कार्य होताहै, सो अंगकार्य न हो । इससे अंगकार्य जो गुण है सो न हुआ ॥

'कति' प्रथमा तथा द्वितीयाका बहुवचन । कतिभिः तृतीयाका बहुवचन हरिवत् । कतिभ्यः चतुर्थी पंचमीका बहुवचन । कतीनाम् (१६७, १६८) ष० बहुवचन । कतिषु सप्तमीका बहुवचन । **युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः** । युष्मद् अस्मद् तथा षट्संज्ञक (२०७, ३२४) शब्दोंके रूप तीनों लिङ्गोंमें समान रहते हैं ॥

त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रिशब्द नित्य बहुवचनान्त है । त्रयः (१८८) प्र० ब० । त्रीन् (१४३, १९६) द्वि०ब० । त्रिभिः—तृ+ब० । त्रिभ्यः—चतुर्थी तथा पंचमीका बहुवचन । त्रि+आम् षष्ठीके बहुवचनका प्रत्यय ॥ २११ ॥

(२१२) त्रेस्त्रयः । ७ । १ । ५३ ॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि ॥

आम् प्रत्यय परे हुये सन्ते त्रिशब्दको त्रय आदेश हो । त्रय+आम् (१६७, १६८, १९७) त्रयाणाम् ष० बहुवचन । त्रिषु (१६९) स० ब० । **गौणत्वेपि** । जहां त्रिशब्दको गौणत्व है अर्थात् मुख्यता नहीं वहांभी बहुव्रीहिसमासमें 'प्रियत्रयाणाम्' रूप होता है इस स्थलमेंभी त्रिशब्दको त्रय आदेश होताहै । **द्वि**शब्द द्विवचनान्त है इसका एकवचन और बहुवचन नहीं है द्वि+औ प्रथमाके द्विवचनका प्रत्यय ॥ २१२ ॥

(२१३) त्यदादीनामः । ७ । २ । १०२ ॥

एषामकारोऽन्तादेशः स्यात् विभक्तौ परतः । द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ।

विभक्ति प्रत्यय परे होंतो त्यदादि (१७०) को अकार अन्तादेश हो ।

त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । यह आठ सर्वनाम त्यदादि हैं, इन्हींमें यह विधि लगे, यह महाभाष्यकारका अभिप्राय है ।

द्व्इ+औ=द्व्अ[२१३]+औ=द्व+औ+द्वौ (१४६,४१) प्रथमा तथा द्वितीयाका द्विवचन । द्वाभ्याँ (१६०) तृतीया, चतुर्थी तथा पंचमीका द्विवचन ।

द्वि+ओस्=द्व[२१३]+ओस्=द्वे[१३३]+ओस्=द्वय्+ओस्=द्वयो:,षष्ठी तथा सप्तमीका द्विवचन । **पाति लोकमिति पपीः सूर्यः** । लोकका रक्षण करनेवाला सूर्यवाचक दीर्घ ईकारान्तक पपीशब्द । **प्रथमा**–पपीः । पपी=औ (१४६) से पूर्वसवर्णदीर्घता पाई परन्तु–॥ २१३ ॥

(२१४) दीर्घाज्जसि । ६ । १ । १०५ ॥

दीर्घात् जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

दीर्घसे परे जस् तथा इच्[१४] होय तो पूर्वसवणदीर्घ न हो ॥

पप्[२१]य्+औ=पप्यौ[२१४ २१] पप्यः

द्वि० पपीम्[१५४] पप्यौ पपीन् (१९६)
तृ० पप्या पपीभ्याम् पपीभिः
च० पप्ये पपीभ्याम् पपीभ्यः
पं० पप्यः पपीभ्याम् पपीभ्यः
ष० पप्यः पप्योः पप्याम्

दीर्घत्वान्नुडभावः । दीर्घ होनेके कारण (१६७) से नुट् न होकर यण् हुआ ।

स० पपी (९९) पप्योः पपीषु (१६९)
सं० हे पपीः हे पप्यौ हे पप्यः ।

इसी प्रकार **वातप्रमी** (एकप्रकारके हरिणकी जाती) के रूप जानने । **बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी** । जिसके पास बहुतसी कल्याण करनेवाली स्त्री हों उसे बहुश्रेयसी कहतेहैं ॥ २१४ ॥

(२१५) यू स्त्र्याख्यौ नदी । १ । ४ । ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिंगौ नदीसंज्ञौ स्तः । प्रथमलिंगग्रहणं च ॥

दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त नित्य स्त्रीलिंग शब्द नदीसंज्ञावाले हों। श्रेयसीशब्द नित्यस्त्रीलिंगहै, परन्तु बहुव्रीहिसमाससे पुरुषका विशेषणहो पुँल्लिंग होगयाहै, परन्तु भाष्यकारका अभिप्राय है कि ऐसे शब्दोंमें प्रथमलिंगकाभी ग्रहणहो अर्थात् जो शब्द पहले स्त्रीलिंग हों समासादिमें विशेषण होकर पुँल्लिंग होजायँ तोभी वे पहले स्त्रीवाचक थे इस कारण नदीसंज्ञकहों तो बहुश्रेयसीशब्दकी पुरुषवाचक होनेसेभी नदी संज्ञा हुई, कारण कि यह पहले स्त्रीलिंग श्रेयसी शब्द था, बहुश्रेयसी+सु=(१९९) से सकारका लोप होकर बहुश्रेयसी, बहुश्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः । सं०—हे बहुश्रेयसी+सु ॥ २१५ ॥

(२१६) अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । ७ । ३ । १०७ ॥

अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ ॥

अम्बार्थ (मातावाचक) और नद्यन्त शब्दोंसे परे सम्बुद्धि प्रत्यय आवै तो उसको ह्रस्व होय ।

	हे बहुश्रेयसि (१९३)	हे बहुश्रेयस्यौ	हे बहुश्रेयस्यः
द्वितीया	बहुश्रेयसीम्	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयसीन्
तृतीया	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभिः
चतुर्थी	बहुश्रेयसी+ङे ॥ २१६ ॥		

(२१७) आण्नद्याः । ७ । ३ । ११२ ॥

नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः ॥

नद्यन्त शब्दसे परे ङित् (ङे ङसि ङस् ङि)प्रत्यय आवें तो तिन्हें आट्का आगम हो आट्मेंसे (९, ७) से आ शेष रहा तब बहुश्रेयसी+आ+ए ॥ २१७ ॥

(२१८) आटश्च । ६ । १ । ९० ॥

आटोचि परे वृद्धिरेकादेशः ॥

आट् (२१७) से अच् परे हुये सन्ते पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो ।

बहुश्रेयसी+ऐ=बहुश्रेयस्य्+ऐ=बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयसीभ्याम् । बहुश्रेयसीभ्यः

पं० बहुश्रेयस्याः (२१७, २१८, २१, १२४, १११) बहुश्रेयसीभ्याम् । बहुश्रेयसीभ्यः

ष० बहुश्रेयस्याः (,,) बहुश्रेयस्योः । बहुश्रेयसीनाम्

नद्यन्तान्नुट्—नदीसंज्ञक होनेके कारण नुट् हुआ ।

स० बहुश्रेयसी+ङि ॥ २१८ ॥

(२१९) ङेराम्नद्याम्नीभ्यः । ७ । ३ । ११६ ॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दात्परस्य ङेराम् ॥

नद्यन्त (२१५) आबन्त और नीशब्दसे परे ङिको आम् आदेश हो । बहुश्रेयसी+आम्= बहुश्रेयस्याम् (२१)।बहुश्रेयस्योः। बहुश्रेयसीषु।**अङ्यन्तत्वान्नसुलोपः**।अतिलक्ष्मीः।लक्ष्मीका अतिक्रमण करनेवाला । प्रथमा तथा संबोधनके एकवचनमें सुके सकारका लोप (१९९) से प्राप्त था सो न हुआ कारण कि, अतिलक्ष्मी शब्द ङ्यन्त नहीं है इससे सुका लोप न हुआ तब अति लक्ष्मीः हुआ । शेष बहुश्रेयसीके समान. इसी प्रकार **श्री** तथा **धी**के रूप जानने । प्रधी-(महा-बुद्धिवाला) ईकारान्त शब्द.

प्रथमा-प्रधीः प्रधी+औ ॥ २१९ ॥

(२२०) अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ। ६ । ४ ।७७॥

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रूइत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते ॥

अजादि प्रत्यय परे रहते जिस अंगके अन्तमें श्नु प्रत्यय हो वा इवर्णान्त उवर्णान्त धातुहो उसके स्थानमें और भ्रू अंगको इयङ्, उवङ् (९९) आदेश हो. प्रधी+औ यहां अन्तमें इव-र्णान्त धातु है तब यह सूत्र लगा परन्तु-॥ २२० ॥

(२२१) एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य । ६ । ४ । ८२ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्त-स्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये ।

जिस अंगके अन्तमें असंयोगपूर्व (पूर्वमें संयुक्त अक्षर न हो) धातुका अवयव इकारान्त आवै वह धातु जिस अनेकाच् अंगके अन्तमें हो उससे परे अजादि प्रत्यय हो तो इकारान्तको यण् आदेश हो । प्रधी शब्द अनेकाच् अंगवाला है, अन्तमें इवर्णान्त धातुभी है, धीके ईकारसे पहले धातुका अवयव संयोग (१९) भी नहीं है इसकारण अजादि प्रत्यय परे रहते प्रधीके ईकारको यण् हुआ ॥

प्रधी+औ=प्रध्य्+औ=प्रध्यौ प्रध्यः ।

द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः	**ष०**	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः				
च०	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः	**स०**	प्रध्यि (२२१)	प्रध्योः	प्रधीषु
पं०	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः	**सम्बो०**	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः ।

इसी प्रकार **ग्रामणी** (गावोंमें श्रेष्ठ अधिपति) शब्दके रूप जानने षष्ठीतक सुधीके समान जानने ।

सप्तमी-ग्रामणी+ङि । न्यन्त है इसकारण (२१९) से ग्रामणी+आम्=ग्रामण्याम् (२२१) ग्रामण्योः, ग्रामणीषु (२२१)में(**अनेकाचः किम् ?**)अनेकाच् क्यों कहा कारण यह है कि अनेकाच् न हो तो यण् आदेश न हो जैसे **नी**शब्दमें एक अच् है तो (२२०)से इयङ् आदेश हुआ.

प्रथमा । नीः नी+औ इयङ् इसमेंसे अङ् जाता रहा तो नूइय्+औ=नियौ, नियः

द्वितीया ।	नियम्	नियौ	नियः	**षष्ठी ।**	नियः	नियोः	नियाम्
तृतीया ।	निया	नीभ्याम्	नीभिः	**सप्तमी ।**	नियाम्[२१९]	नियोः	नीषु
चतुर्थी ।	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः				
पंचमी ।	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः	**सम्बो०**	हे नीः	हे नियौ,	हे नियः

असंयोगपूर्वस्य किम् ? असंयोगपूर्व क्यों कहा ? (उ.) जब संयोगपूर्व रहे तब यण् नहीं होता (२२०) से इयङ् आदेश होता है । **सुश्री** शब्द (जिसकी श्रेष्ठ शोभा है)

प्र०	सुश्रीः	सुश्रियौ (२२०)	सुश्रियः	**पं०**	सुश्रियः	सुश्रीभ्याम	सुश्रीभ्यः
द्वि०	सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रियः	**ष०**	सुश्रियः	सुश्रियोः	सुश्रियाम्
तृ०	सुश्रिया	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभिः	**स०**	सुश्रियि	सुश्रियोः	सुश्रीषु
च०	सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः	**सं०**	हे सुश्रीः	हे सुश्रियौ	हे सुश्रियः

इस प्रकार **यवक्री** (जौ लेनेवाला) शब्दके रूप जानने । **शुद्धधी** शब्द (जिसकी श्रेष्ठ बुद्धि है) प्र० शुद्धधीः शुद्धधी+औ (२२१) यण् प्राप्त हुआ परन्तु-

(२२२) गतिश्च । १ । ४ । ६० ॥

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ।

प्र (४८) आदि उपसर्ग क्रियाके योगमें गति संज्ञावाले हों यद्यपि शुद्धशब्दकी गति संज्ञा नहीं है परन्तु **गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते** । भाष्यकारने कहा है कि जिस अंगका पूर्वपद गति वा कारकसे अन्य है तिसको यण् (२२१) न हो यहां शुद्धधी शब्दमें धीशब्दसे पहले शुद्धशब्दकी गतिसंज्ञा तथा कारक नहीं है इससे यण् न होकर (२२०) इयङ् आदेश हुआ (वरदराज और सिद्धान्तकौमुदीकारके मतमें प्रथमा कारक नहीं कहाता है) शुद्ध ध्+इय्+औ=शुद्धधियौ । शुद्धधियः शेषरूप सुश्रीशब्दके समान हैं । **सुधी** शब्द (श्रेष्ठबुद्धिमान्) प्र० सुधीः सुधी+औ धीके पूर्व सु उपसर्ग गतिसंज्ञक है (२२२) से तो यण् (२२१) प्राप्त हुआ परन्तु-

(२२३) न भूसुधियोः । ६ । ४ । ८५ ॥

एतयोरचि सुपि यण्न स्यात् ।

अजादि सुप् परे रहते भू और सुधी शब्दको यण् न हो । तो यण्का निषेध होकर(२२०) से इयङ् आदेश हुआ, तब सुध् इय्+औ=सुधियौ सुधियः इत्यादि. शेषरूप सुश्री शब्दके समान जानने । **सुखमिच्छतीति सुखीः** (सुखकी इच्छा करनेवाला) **सुतमिच्छतीतिसुती:** (पुत्रकी इच्छा करनेवाला) (२२१) से यण् आदेश हुआ ।

प्रथमा ।	सुखीः	सुख्यौ	सुख्यः	**पं०**	[२२१ २०३] सुख्युः	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः
द्वितीया ।	सुख्यम्	सुख्यौ	सुख्यः	**ष०**	सुख्युः	सुख्योः	सुख्याम्
तृतीया ।	सुख्या	सुखीभ्याम्	सुखीभिः	**स०**	[२२१] सुख्यि	सुख्योः	सुखीषु
चतुर्थी ।	सुख्ये	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः	**सं०**	हे सुखीः	हे सुख्यौ	हे सुख्यः

इसी प्रकार **सुती** शब्दके रूप जानने । **शम्भुर्हरिवत् ।** शम्भु शब्द हरिशब्दके समानहै.

ह्रस्व उकारान्त शम्भु (शिव) शब्द-

प्र०	शंभुः	[१४६] शम्भू	शम्भवः (१८८ । २९ । १२४ । १११)
द्वि०	शम्भुम्	[१४६] शम्भू	शम्भून्
तृ०	शम्भुना (१९०।१९१)	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
च०	शम्भवे (१९२)	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
पं०	शम्भोः (१९३)	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
ष०	शम्भोः	शम्भ्वोः	शम्भूनाम् (१६८)
स०	शम्भौ (१९४)	शम्भ्वोः	शम्भुषु
सं०	हे शम्भो (१८९)	हे शम्भू	हे शम्भवः

एवं भान्वादयः । इसीप्रकार भानु आदि शब्दोंके रूप जानने । **क्रोष्टु** (शृगाल)शब्द;

(२२४) तृज्वत्क्रोष्टुः । ७ । १ । ९५ ॥

असंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ।

सम्बुद्धि (१९१) को छोडकर सर्वनामस्थान परेहुए सन्ते **क्रोष्टु**शब्दके स्थानमें तृज्वत् अर्थात् क्रोष्टृशब्दका प्रयोग करना । प्रथमा क्रोष्टृ+सु-॥ २२४ ॥

(२२५) ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः । ७ । ३ । ११० ॥

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च ।

ऋदन्त अंगसे परे सर्वनामस्थानसंज्ञक तथा ङिप्रत्यय आवै तो ऋकारान्तके स्थानमें गुणहो इससे क्रोष्टृ को गुण प्राप्त हुआ तब-

(२२६) ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च । ७ । १ । ९४ ॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसंबुद्धौ सौ ॥

ऋकारान्त शब्द, उशनस् पुरुदंसस् तथा अनेहस् इनको अनङ् आदेश हो जो असम्बुद्धिका सु परे होय तो । अनङ्के अङ्का लोप होकर शेष अन् क्रोष्टृ शब्दके अन्तर्गत ऋकारके स्थानमें हुआ तब क्रोष्ट्+अन्+स्=क्रोष्ट्+अन्+(१९९)

(२२७) अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् । ६ । ४ । ११ ॥

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

अप् शब्द, तृन् प्रत्ययान्त अथवा तृच् प्रत्ययान्त और स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ इन अंगोंसे परे असम्बुद्धि सर्वनामस्थान प्रत्यय आवे तो इनके अंगकी उपधा (१९६) को दीर्घ हो, क्रोष्टुशब्द तृज्प्रत्ययान्त है क्रोष्ट्+अन्में अ उपधा है उसे दीर्घ हुआ तो—

क्रोष्ट् आन्=क्रोष्टान्=क्रोष्टा[२००] ।

क्रोष्टृ[२४४]+औ=क्रोष्टर्+(३७, २२९) औ=क्रोष्टार्[२२७]+औ=क्रोष्टारौ क्रोष्टारः ।

द्वि०—क्रोष्टारम् क्रोष्टारौ क्रोष्टून् (१४६; १९६)

तृ०—क्रोष्टु+टा=क्रोष्टु+ना (१४८ १९१) क्रोष्टुना अथवा क्रोष्टु+आ—

(२२८) विभाषा तृतीयादिष्वचि । ७ । १ । ९७ ॥

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् ॥

तृतीया आदिके अजादिप्रत्यय परे हों तो क्रोष्टुशब्दको विकल्पकर तृज्वत् भाव हो । तब क्रोष्टृ और क्रोष्टु यह रूप रहे । क्रोष्टृ+आ (१४८) क्रोष्ट्र् (२१)+आ=

क्रोष्ट्रा क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभिः

चतुर्थी—क्रोष्टवे[१९२] [२९] क्रोष्ट्रे[२२८] क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्यः

पं०—क्रोष्टु+ङसि=क्रोष्टो[१९२]+अस्=क्रोष्टो[१५५७-१९३]+स्=क्रोष्टोः (१२४, १११)

अथवा (२२८) क्रोष्टृ+अस्—

(२२९) ऋत उत् । ६ । १ । १११ ॥

ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः ॥

ऋदन्त अङ्गसे ङसि तथा ङस् प्रत्ययका अकार आवे तो ऋकारके स्थानमें उकार एक आदेश हो सू० (३७) से उर् हुआ तो क्रोष्ट्+उर्=स्—

(२३०) रात्सस्य । ८ । ८ । २४ ॥

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रस्य विसर्गः ॥

रकारसे परे संयोग (१९) के अन्तके सकारमात्रका लोप हो अन्यका नहीं । रकारको विसर्ग हो ।

क्रोष्टुः (१११) क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्यः

षष्ठी—क्रोष्टोः क्रोष्टुः । क्रोष्ट्वोः क्रोष्ट्रोः । क्रोष्टु+आम्—

(२२८) से तृज्भाव हुआ तो (१६८) से नुट्का आगम हुआ, फिर (१३२) से परकार्य तृच् है सो वही होना चाहिये परन्तु—

(२३१) नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन ।

वार्तिककारकी आज्ञा है कि आम् परे हो तो नुम् (२७१) अच् परे रहते रभाव (२४९) और तृज्वद्भाव (२२८) इन तीनोंको बाधकर नुट्का आगम हो । (१३२) सूत्रमें **विप्रतिषेधे परं कार्यम् ।** तुल्य बलवाले सूत्रोंके विरोधमें परकार्य कहा है, परन्तु वार्तिककारकी आज्ञा है कि क्रोष्टुआदि शब्दोंसे परे आम् हो तो पूर्वविप्रतिषेधसे इसे बाधकर नुट् ही हो ।

क्रोष्टु+आम् में नुट्का आगम किया; क्रोष्टु+न्+आम्=क्रोष्टूनाम् (१६७, १६८)

स०—क्रोष्टौ अ० क्रोष्टरि (२२८ । २२९) क्रोष्ट्वोः अ० क्रोष्ट्रोः क्रोष्टुषु

सं०—हे क्रोष्टो हे क्रोष्टारौ हे क्रोष्टारः ।

पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । पक्षमें और हलादि सुप् परे रहते शम्भुवत् रूप हुए.

हूहू (गन्धर्व)

प्र०	हूहूः	हूह्वौ (२१)	हूह्वः	**पं०**	हूह्वः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
द्वि०	हूहूम्	हूह्वौ	हूहून्	**ष०**	हूह्वः	हूह्वोः	हूह्वाम्
तृ०	हूह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः	**स०**	हूह्वि	हूह्वोः	हूहूषु
च०	हूह्वे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः	**सं०**	हे हूहूः	हे हूह्वौ	हे हूह्वः

अतिचमू शब्द (सेनाका अतिक्रमण करनेवाला) **अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः ।** अतिचमू शब्दमें चमू शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है इससे (२१९) से उसमें नदीसंज्ञाका कार्य विशेष होता है.

प्र०	अतिचमूः	अतिचम्वौ	अतिचम्वः	**पं०**	अतिचम्वाः	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
द्वि०	अतिचमूम्	अतिचम्वौ	अतिचमून्	**ष०**	अतिचम्वाः	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम्
तृ०	अतिचम्वा	अतिचमूभ्याम्,	अतिचमूभिः	**स०**	अतिचम्वाम्	अतिचम्वोः	अतिचमूषु
च०	अतिचम्वै २१८	अतिचमूभ्याम्,	अतिचमूभ्यः	**सं०**	हे अतिचमु	हे अतिचम्वौ	हे अतिचम्वः

खलपू शब्द (दुष्टोंका पवित्र करनेहारा)

प्रथमा खलपूः खलपू+औ—

(२३२) ओः सुँपि । ६ । ४ । ८३ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि ॥

जिस अंगके अन्तमें असंयोगपूर्व उकारान्त धातुका अवयव आवे ऐसा धातु जिस अनेकाच् अंगके अन्तमें हो उससे परे अजादि प्रत्यय (सुप् आवे तो अंगके अन्त उकारको यण् आदेश हो):।

	खलप्व्+औ=खलप्वौ,		खलप्वः	पं०	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
द्वि०	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः	ष०	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
तृ०	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः	स०	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु
च०	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः	सं०	हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः

इसी प्रकार **सुल्लू** (अच्छी प्रकार काटनेवाला) आदि शब्द जानने.

स्वभू (स्वयं उत्पन्न होनेवाले विष्णु)शब्द.

प्रथमा स्वभूः (२३३) से यण् न हुआ । स्वभ्+उव् (२२०)+औ=स्वभुवौ । स्वभुवः

द्वि०	स्वभुवम्	स्वभुवौ	स्वभुवः	ष०	स्वभुवः	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
तृ०	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः	स०	स्वभुवि	स्वभुवोः	स्वभूषु
च०	स्वभुवे	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः	सं०	हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः
पं०	स्वभुवः	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः				

वर्षाभू (वर्षामें उत्पन्न होनेवाला) शब्द

प्रथमा वर्षाभूः । वर्षाभू+ औ (२२३) से यण्का निषेध पाया परन्तु--

(२३३) वर्षाभ्वश्च । ६ । ४ । ८४ ॥

अस्य यण् स्यादचि सुपि ॥

वर्षाभू शब्दको यण् (२२३) आदेश हो अजादि सुप् प्रत्यय परे रहते. वर्षाभ्व्+औ= वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः । शेषरूप खलपूशब्दके सदृश जानने ।

दृन्भू (हिंसक उत्पन्न होनेवाला सांप) शब्द

(२३४) दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः ।

एवं करभूः। पुनर्भूः ।

भू शब्दसे पूर्व दृन् कर अथवा पुनर् आवे तो उसे यण् हो । इस वार्तिकके अनुसार दृन्भू करभू और पुनर्भू शब्दोंके रूप वर्षाभूके समान जानने ।

ऋकारान्त **धातृ**शब्द (पोषण करनेवाला)

प्रथमा । धातृ+सु=धातृ आन्+स्=धातॄ+आ=धाता, धातारौ (२२९, २२७) धातारः

द्वि०	धातारम्	धातारौ	धातॄन्	**पं०**	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
तृ०	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः	**ष०**	धातुः	धात्रोः	धातृ+आम्=
च०	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः		धातॄ+न् आम् (१६७)		

(२३५) ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् ।

ऋवर्णसे परे नकारके स्थानमें णकार कहना । धातॄ+ण्+आम्=धातॄणाम्

सप्तमी । धातरि धात्रोः । धातृषु ।

संबोधन । हे धातः (२२९, १९९, १११) हे धातारौ । हे धातारः ।

इसी प्रकारसे (२२७) **नप्तृ** (पौत्र) शब्दके रूप जानने । (२२७) से इनकी उपधाको दीर्घ होता है। **नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थं तेनेह न। उद्गातृशब्दस्य तु भवत्येव समर्थसूत्रे उद्गातार इति भाष्यप्रयोगात्।** पितृ भ्रातृ जामातृ शब्दोंका उपधासंज्ञक अकार दीर्घ (२२७) नहीं होता (प्रश्न) जब कि नप्त्रादिकोंका पाठ उणादिमें है और उणादिमें तृन् तथा तृच्प्रत्ययान्त शब्दोंको दीर्घ होताहीहै फिर नप्त्रादिग्रहण क्यों किया?(२२७) में। (उत्तर) इनके ग्रहण करनेका कारण यह है कि व्युपत्तिपक्षमें जो उणादिसिद्ध तृन्नन्त तृजन्त को दीर्घ हो तो केवल नप्त्रादिको दीर्घ हो अन्यको नहीं इसीसे जो उणादि शब्द तृन् तृच् प्रत्ययोंसे सिद्ध होते हैं तिनको दीर्घ नहीं होता।कारण कि उणादिमें तृन् तृच् प्रत्ययान्त पितृ भ्रातृ जामातृ भी हैं इनको दीर्घ न हो । क्यों कि नप्तृसे लेकर प्रशास्तृतकहीको दीर्घ हो अन्य जामातृ आदिको नहीं क्योंकि **(सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमार्थः)**।सिद्ध होनेपर फिर उसमें कोई विधि आरंभ कीजाय तो नियमके निमित्त होता है परन्तु उद्गातृ शब्दकी उपधाको तो दीर्घ होताही है कारण कि समर्थ सूत्रमें'उद्गातारः' ऐसा भाष्यकारने प्रयोग दिया है । यदि ऐसा न होता तो 'उद्गातरः' ऐसा लिखते ।

प्रथमा ।	पिता	पितरौ	पितरः	**पंचमी** ।	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
द्वितीया ।	पितरम्	पितरौ	पितॄन्	**षष्ठी** ।	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
तृतीया ।	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः	**सप्तमी** ।	पितरि	पित्रोः	पितृषु
चतुर्थी ।	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः	**संबोधन** ।	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

इसी प्रकार **जामातृ भ्रातृ** शब्दोंके रूप जानने ।

ऋकारान्त **नृ** शब्द (मनुष्य)

प्रथमा ।	ना	नरौ	नरः	**चतुर्थी ।**	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
द्वितीया ।	नरम्	नरौ	नन्	**पंचमी ।**	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
तृतीया ।	ना	नृभ्याम्	नृभिः	**षष्ठी ।**	नुः	न्रोः	नृ+आम्=नृन्आँम्=नृनाम्

(२३६) नॄँ च । ६ । ४ । ६ ॥

अस्य नामि वा दीर्घः स्यात् ॥

नाम् परे हुए सन्ते नृके अन्तर्गत ऋकारको विकल्प करके दीर्घ हो । नॄणाम्, जब दीर्घ न हुआ तब नृणाम् ।

सप्तमी ।	नरि	न्रोः	नृषु	**सम्बो० ।**	हे नः ।	हे नरौ ।	हे नरः ।

ओकारान्त गोशब्द (बैल)

(२३७) गोतो णित् । ७ । २ । ९० ॥

ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् ।

गोशब्दके समान ओकारान्त शब्दसे परे जो सर्वनामस्थान प्रत्यय आवे सो णिद्वत् हो-

प्रथमा । गौः (२०२) गावौ (२०२ । २९) गावः । **द्वितीया ।** गो+अम् ।

(२३८) औतोऽम् शसोः । ६ । १ । ९३ ॥

ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः ।

अम् अथवा शस् प्रत्ययका अकार ओकार से परे रहे तो दोनोंके स्थानमें आकार एकादेश हो । ग+आम्=गाम् गावौ (२३७, २०२, २९) गाः (२३८)

तृतीया ।	गवा (२९)	गोभ्याम्	गोभिः	**षष्ठी ।**	गोः	गवोः	गवाम्
चतुर्थी ।	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः	**सप्तमी ।**	गवि	गवोः	गोषु
पंचमी ।	गोः (१९३)	गोभ्याम्	गोभ्यः	**सम्बो० ।**	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

ऐकारान्त **रै** शब्द (धन)

प्रथमा । रै+सु–

(२३९) रायोहलि । ७ । २ । ८५ ॥

अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ ।

हलादि विभक्ति परे रहते रै शब्दको आकार आदेश हो ।

प्रथमा ।	राः	रायौ (२९)	रायः	**पंचमी** ।	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
द्वितीया ।	रायम्	रायौ	रायः	**षष्ठी** ।	रायः	रायोः	रायाम्
तृतीया ।	राया	राभ्याम्	राभिः	**सप्तमी** ।	रायि	रायोः	रासु
चतुर्थी ।	राये	राभ्याम्	राभ्यः	**संबोध०**	हे राः	हे रायौ	हे रायः

औकारान्त **ग्लौ** शब्द (चन्द्रमा)

प्रथमा ।	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः	**पंचमी** ।	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
द्वितीया ।	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः	**षष्ठी** ।	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
तृतीया ।	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः	**सप्तमी** ।	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
चतुर्थी ।	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः	**संबोध०**	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	ग्लावः

॥ अजन्त पुँल्लिङ्ग समाप्त ॥

अजन्त स्त्रीलिंग ।

आकारान्त **रमा** शब्द (लक्ष्मी)

प्रथमा । रमा (१३७ । ३६ । १९९) रमा+औ-

(२४०) औङ आपः । ७ । १ । १८ ॥

आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात् । आङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा ।

आबन्त अङ्गसे परे जो औङ् (प्रथमा द्वितीयाके द्विवचनका प्रत्यय) उसके स्थानमें शी हो (औङ् औ और औट् इन दो विभक्तियोंका नाम हैं)

रमा+शी=रमा+(१९९) ई+रमे (३९) रमाः । **सम्बोधनम्**-हे रमा+सु-

(२४१) संबुद्धौ च । ७ । ३ । १०६ ॥

आप एकारः स्यात्संबुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपः ।

संबोधनमें सुप्रत्यय परे हुए सन्ते आबन्त अंगको एकार हो ।

हे रमे (१९३) हे रमे (२४०) हे रमाः । **द्वितीया** रमाम् (१९४) रमे रमाः

तृतीया रमा+टा=रमा+आ (२४९)

(२४२) आङि चापः । ७ । ३ । १०५ ॥

आङि ओसि चाप एकारः ।

आङ् (टा) और ओस् प्रत्यय परे रहते आबन्त अंगको एकार हो ।

रमे+आ=रम् अय् (२९)+आ=रमया, । रमाभ्याम् रमाभिः । **चतुर्थी** रमा + ङे= रमा + ए (१९९)

(२४३) याडापः । ७ । ३ । ११३ ॥

आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः स्यात् ।

आबन्त अंगसे परे ङित् (ङे ङसि ङस् ङि) प्रत्ययोंको याट्का आगम हो ।

याट्में से टकारका लोप हुआ । या आदेश टित् है सो प्रत्ययके पूर्वमें हुआ. रमाया+ए=

	रमायै (४१)	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पंचमी ।	रमायाः (१३७, २४३)	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी ।	रमायाः	रमयोः (१३७,२४२,२९)	रमाणाम् (१६७,१९७)
सप्तमी ।	रमायाम् (२१९)	रमयोः	रमासु

इसी प्रकार **दुर्गा, अम्बिका** आदि शब्दोंके रूप जाननें ।

सर्वा स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम ।

प्रथमा ।	सर्वा	सर्वे	सर्वाः	तृतीया ।	सर्वया	सर्वाभ्याम्—सर्वाभिः
द्वितीया ।	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः	चतुर्थी ।	सर्वा+ङे—	

(२४४) सर्वनाम्नः स्याड् ढ्रस्वश्च । ७ । ३ । ११४ ॥

आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः ।

आबन्त सर्वनामसे ङित् सुप् परे हो तो उसको स्याट्का आगम और आबन्त अंगको ह्रस्व हो । स्याट्मेंसे टकारका लोप हुआ स्या टित् है इस कारण ङेके पूर्व हुआ और आबन्त सर्वाके स्थानमें सर्व आदेश हुआ.

सर्व+स्या+ए=सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः	स०	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
पंचमी । सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः	सं०	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः
षष्ठी । सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्				

इसी प्रकार **विश्वा**आदि आबन्त स्त्रीलिंग शब्द जानने ।

उत्तरपूर्वाशब्द उत्तर और पूर्वके बीचकी दिशा (ईशानकोण)

(२४५) विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ । १ । १ । २८ ॥

अत्र सर्वनामता वा स्यात् ।

दिशावाचक शब्दोंके अन्तर अर्थमें बहुव्रीहि समासकी विकल्पकरके सर्वनामसंज्ञा हो.

प्रथमा ।	उत्तरपूर्वा	उत्तरपूर्वे	उत्तरपूर्वाः
द्वितीया ।	उत्तरपूर्वाम्	उत्तरपूर्वे	उत्तरपूर्वाः
तृतीया ।	उत्तरपूर्वया	उत्तरपूर्वाभ्याम्	उत्तरपूर्वाभिः

चतुर्थी ।	उत्तरपूर्वायै (२४३)	उत्तरपूर्वाभ्याम्	उत्तरपूर्वाभ्यः
	उत्तरपूर्वस्यै (२४९, २४४)		
पंचमी ।	उत्तरपूर्वायाः (२४३)	उत्तरपूर्वाभ्याम्	उत्तरपूर्वाभ्यः
	उत्तरपूर्वस्याः (२४९, २४४)		
षष्ठी ।	उत्तरपूर्वायाः (२४३)	उत्तरपूर्वयोः	उत्तरपूर्वासाम् उत्तरपूर्वाणाम्
	उत्तरपूर्वस्याः (२४९ २४४)		
सप्तमी ।	उत्तरपूर्वायाम् (२४३)	उत्तरपूर्वयोः	उत्तरपूर्वासु
	उत्तरपूर्वस्याम् (२४९, २४४)		
संबोधन ।	हे उत्तरपूर्वे	हे उत्तरपूर्वे	हे उत्तरपूर्वाः

तीयस्येति वा संज्ञा । ङित्प्रत्यय परे हो तो तीयप्रत्ययान्त शब्दोंकी विकल्पकरके सर्वनामसंज्ञा हो ।

द्वितीया (दूसरी)

प्रथमा ।	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
द्वितीया ।	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः
तृतीया ।	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
चतुर्थी ।	द्वितीयायै (२४३)	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
	द्वितीयस्यै (१८०, २४४)		
पंचमी ।	द्वितीयायाः (२४३)	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
	द्वितीयस्याः (१८०, २४४)		
षष्ठी ।	द्वितीयायाः (२४३)		
	द्वितीयस्याः (१८० । २४४)	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
सप्तमी ।	द्वितीयायाम्	द्वितीययोः	द्वितीयासु
	द्वितीयस्याम्		
संबोधन ।	हे द्वितीये	हे द्वितीये	हे द्वितीयाः

इसीप्रकार **तृतीया** शब्दके रूप जानने ।

अम्बा शब्दके रूप रमावत् जानने पर (२१६) से सम्बोधनमें ह्रस्व होता है

हे अम्ब   हे अम्बे   हे अम्बाः

इसी प्रकार **अक्क अल्ल** आदि अम्बावाचक शब्दोंके रूप जानने ।

जरा शब्द (वृद्धपन)

प्रथमा ।	जरा	(१९९) जरे विकल्प जरसौ (१८१)	जराः विकल्प जरसः
द्वितीया ।	जराम् वि० जरसम् (१८१)	जरे वि० जरसौ	जराः वि० जरसः
तृतीया ।	जरया वि० जरसा	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी ।	जरायै " जरसे	जराभ्याम्	जराभ्यः
पंचमी ।	जरायाः " जरसः	जराभ्याम्	जराभ्यः
षष्ठी ।	जरायाः " जरसः	जरयोः जरसोः	जराणाम् जरसाम्
सप्तमी ।	जरायाम् " जरसि	जरयोः जरसोः	जरासु
संबोधन ।	हे जरे	हे जरे, हे जरसौ	हेजराः, हे जरसः

गोपा शब्दके रूप विश्वपा पुँल्लिङ्ग (१८१) शब्दके समान जानने.

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग **मति**शब्द (बुद्धि)

प्रथमा ।	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया ।	मतिम्	मती	[१४६] मतीः
तृतीया ।	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः

चतुर्थी । मति+ङेः मतये(१९, १९२) अथवा

(२४६) ङिति ह्रस्वश्च । १ । ४ । ६ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इ-वर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति ।

स्त्री शब्दको छोड़कर नित्य स्त्रीलिङ्ग इकारान्त उकारान्तको इयङ् उवङ् (२२०) आदेश प्राप्त हुआ होय तथा स्त्रीवाचक इ उ वर्णांत होय और इनसे परे ङित् प्रत्यय आवे तो यह विकल्प करके नदीसंज्ञावाले हों ।

(चतुर्थी)	मत्यै (२१७, २१८)	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पंचमी।	मत्याःवि०मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी ।	मत्याः, मतेः	मत्योः	[१६७।१६८] मतीनाम्

सप्तमी । मतौ (१९४) वि०मति+ङि—

(२४७) इदुद्भ्याम् । ७ । ३ । ११७ ॥

इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम् ।

नदीसंज्ञक इकारान्त अङ्गसे परे ङिको आम् (२१९) आदेश हो ।

(सप्तमी)	मत्याम्	मत्योः	मतिषु
संबोधन ।	हे मते (१८९)	हे मती	हे मतयः

एवं बुद्ध्यादयः । इसी प्रकार बुद्धि आदि शब्दोंके रूप जानने ।

त्रि (तीन) **चतुर्** (चार)

(२४८) त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ । ७ । २ । ९९ ॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ ।

स्त्रीलिङ्गवाचक त्रि तथा चतुर् शब्दोंसे परे विभक्ति प्रत्यय आवे तो त्रिको तिसृ चतुर्को चतसृ आदेश हों ।

प्रथमा० तिसृ+जस्=तिसृ+अस् । इसका एकवचन और द्विवचन नहीं होता.

(२४९) अचि र ऋतः । ७ । २ । १०० ॥

तिसृ चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि ।

तिसृ और चतसृ शब्दके ऋकारके स्थानमें अच् परे हुए सन्ते गुण (२२९) दीर्घ (१४६) और उकार (२२९) को बाधकर रेफ आदेश हो ।

तिसृर्+अस्=तिस्रः (१२४, १११) प्रथमा द्वितीयाका बहुवचन । तृतीया—तिसृभिः । चतुर्थी पंचमी—तिसृभ्यः । षष्ठी तिसृ+आम् तिसृ+न् (१६७) आम् (१६८) से दीर्घकी प्राप्ति हुई परन्तु—

(२५०) न तिसृचतसृ । ६ । ४ । ४९ ॥

एतयोर्नामि दीर्घो न स्यात् ।

नाम् प्रत्यय परे हुए सन्ते तिसृ चतसृ शब्दोंको दीर्घ आदेश न हो। तिसृणाम् (२३९) सप्तमी तिसृषु—

प्र० द्वि० चतस्रः । **तृ०** चतसृभिः । **च० पं०** चतसृभ्यः । **ष०** चतसृणाम् । **स०** चतसृषु ॥ **द्वि** (दो) यह शब्द द्विवचनमात्रमें है ।

प्र० द्वि+औ=द्व (२१३)+औ । कौमुदीकारने कहा है कि द्विशब्दको अ आदेश हो पीछे स्त्रीलिंगमें आ प्रत्यय हो सो होकर द्व+आ+औ=द्वा+औ फिर (२४०) से शी आदेश होकर ई शेष रहा द्वा+ई=द्वे ।

द्वि० द्वे तृतीया चतुर्थी पंचमी—द्वाभ्याम् । षष्ठी सप्तमी—द्वयोः (२४२, २९)

ईकारान्त गौरी शब्द (पार्वती)

प्र०	गौरी (१९९)	गौर्यौ (२१४)	गौर्यः
द्वि०	गौरीम्	गौर्यौ	गौरीः
तृ०	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
च०	गौर्यै (२१९, २१७, २१८)	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
पं०	गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
ष०	गौर्याः	गौर्योः	गौरीणाम्
स०	गौर्याम् (२१९)	गौर्योः	गौरीषु
सं०	हे गौरि (२१६)	हे गौर्यौ	हे गौर्यः

एवं नद्यादयः । इसी प्रकार नदी वाणी आदि शब्दोंके रूप जानने ।

लक्ष्मी शब्द ।

प्रथमा लक्ष्मीः ङीबन्त न होनेके कारण (१९९) से लोप न हुआ लक्ष्म्यौ लक्ष्म्यः **सं०** हे लक्ष्मीः हेलक्ष्म्यौ हे लक्ष्म्यः । **शेषं रूपं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादयः ।**

इसी प्रकार तरी (नौका) तन्त्री (वीणा) शब्दोंके रूप लक्ष्मीवत् जानने ।

स्त्री शब्द ।

प्रथमा । स्त्रीः (१९९) स्त्री+औ—

(२५१) स्त्रियाः । ६ । ४ । ७९ ॥

अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे ।

स्त्री शब्दके आगे अजादि प्रत्यय आवे तो उसे इयङ् आदेश हो ।

स्त्री इय्+औ=स्त्रियौ । स्त्रियः। द्वितीया—स्त्री+अम्=स्त्रीम् (१९४) अथवा स्त्री+अम्—

(२५२) वाम्शसोः । ६ । ४ । ८० ॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात ।

अम् तथा शस् परे रहते स्त्री शब्दको विकल्प करके इयङ् आदेश हो ।

स्त्रीइय्+अम्=स्त्रियम् । स्त्रियौ स्त्रियः अ० स्त्रीः (१४६)

तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	परत्वान्नुट् (२५१) से पर होनेके
च०	स्त्रियै [२२७ २१८]	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	कारण (१६७) से नुट्ही हुआ ।
पं०	स्त्रियाः [२५१]	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	स० स्त्रियाम् स्त्रियोः स्त्रीषु
ष०	स्त्रियाः [२५१]	स्त्रियोः	स्त्रीणाम् [१६७]	सं० हे स्त्रि (२१५,२१६) हे स्त्रियौ हे स्त्रियः

श्री शब्द (लक्ष्मी)

प्रथमा । श्रीः श्रियौ (२२०) श्रियः

संबो० हे श्री+सु=श्रीः (२१६) से ह्रस्वता प्राप्त हुई कारण कि (२१५) से नदीसं० ज्ञक है परन्तु—

(२५३) नेयङुवङ्स्थानावस्त्री । १ । ४ । ४ ॥

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री ।

स्त्री शब्दको छोडकर जिन ईकारान्त ऊकारान्त शब्दोंको इयङ् उवङ् आदेश होते हों उनकी नदी (२१५) संज्ञा न हो ।

	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः
द्वितीया ।	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया ।	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी ।	श्रियै (२४६, २१७, २१८) श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पंचमी ।	श्रियः अ० श्रियाः (२४६, २१७, २१८)	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी ।	श्रियः अ० श्रियाः (,,)	श्रियोः	श्री+आम्—

(२५४) वामि । १ । ४ । ५ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री ॥

स्त्रीशब्दको छोडकर स्त्रीवाचक ईकारान्त ऊकारान्त शब्दोंको इयङ् उवङ् (२२०) आदेश होते हैं सो आम् परे रहते विकल्प करके नदीसंज्ञक (२१९) हों (१६७, १९७) श्रीणाम् अथवा श्रियाम्

सप्तमी, श्रियाम् श्रियि, श्रियोः श्रीषु । **धेनुर्मतिवत् ।**

स्त्रीलिंग उकारान्त **धेनु** शब्द (गाय)

प्र०	धेनुः	धेनू[146]	धेनवः[188]	पं०	धेन्वाः अ० धेनोः,	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
द्वि०	धेनुम्	धेनू[146]	धेनूः[146]	ष०	धेन्वाः अ० धेनोः,	धेन्वोः	धेनूनाम्
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	स०	धेन्वाम् अ० धेनौ,	धेन्वोः	धेनुषु
च०	धेनवे अ० धेन्वै[246],	धेनुभ्याम्,	धेनुभ्यः	सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

क्रोष्टु (शृगाली)

(२५५) स्त्रियां च । ७ । १ । ९६ ॥

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते ॥

स्त्रीवाचक क्रोष्टुशब्दके रूप तृजन्तवत् (२२४) हों । यथा क्रोष्टृ ।

(२५६) ऋन्नेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ ॥

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् ॥

ऋकारान्त और नकारान्त शब्दोंसे जो स्त्रीलिङ्गकी विवक्षा होय तो उससे परे ङीप् प्रत्यय हो । क्रोष्टृ+ङीप्=क्रोष्टृ+ई (१९, ७, ९)=क्रोष्ट्री । **शेषं गौरीवत् ।** इसके शेष रूप गौरी (२५०) वत् जानने ।

भू शब्दके रूप (२२०) से श्रीशब्दवत् होते हैं परन्तु उवङ् आदेश होता है ।

प्र०	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः	पं०	भ्रुवाः	भ्रुवः, भ्रुभ्याम्	भ्रूभ्यः
द्वि०	भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः	ष०	भ्रुवाः	भ्रुवः, भ्रुवोः	भ्रूणाम् भ्रुवाम्
तृ०	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः	स०	भ्रुवाम् भ्रुवि,	भ्रुवोः	भ्रूषु
च०	भ्रुवै भ्रुवे,	भ्रूभ्याम	भ्रूभ्यः	सं०	हे भ्रूः	हे भ्रुवौ	हे भ्रुवः

स्वयम्भूः स्वभूवत् । स्वयम्भू शब्द पुँल्लिंग स्वभू शब्द (२३२) के समान जानना ॥ ऋकारान्त **स्वसृ** शब्द (बहन) (२५६) से ङीप् प्राप्त हुआ परन्तु–

(२५७) न षट्स्वस्रादिभ्यः ।४।१।१०।

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्टापौ न स्तः।

षट्संज्ञक तथा स्वस्रादि शब्दोंसे परे स्त्रीलिंगके प्रत्यय ङीप् तथा टाप् न हों।

प्र०	स्वसा[२२६ २२७ १९९ २००]	स्वसारौ	स्वसारः	पं०	स्वसुः[२२९]	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
द्वि०	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः[१४६]	ष०	स्वसुः[२२९] स्वस्रोः	स्वसॄणाम् (२३१; २२९)	
तृ०	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः	स०	स्वसरि[२२]	स्वस्रोः	स्वसृषु
च०	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः	सं०	हे स्वसः[२२५ ३७]	हे स्वसारौ[२३० १११]	हे स्वसारः

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा। याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥ १ ॥ स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ, यह स्वस्रादिगणके शब्द हैं.

मातृ शब्दके रूप पितृ (२३९) वत् परन्तु द्वि० ब० शस् परे रहते मातॄः होता है।

द्यो (स्वर्ग) गोवत् (२३७। २३८) **रै** पुंवत् (२३९) **नौ** (नाव) ग्लौ-(२३९) वत्

॥ इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

अजन्तनपुंसकलिङ्गाः।

ज्ञानशब्द।

प्रथमा ज्ञान+सु-

(२५८) अतोऽम् ।७।१।२४।

अतोऽङ्गात्क्लीबात्स्वमोरम्।

अकारान्त नपुंसकलिंग अंगसे परे सु और अम् प्रत्यय आवें तो उनके स्थानमें अम् आदेश हो.

ज्ञान+अम्=ज्ञानम् (१९४) ज्ञान+औ—

(२५९) नपुंसकाच्च ।७।१।१९।

क्लीबादौङः शी स्यात्।

नपुंसकलिंग अंगसे परे औङ् (२४०) के स्थानमें शी हो.

ज्ञान+शी=ज्ञान+ई (१९९)। (१८९, १८३) से ज्ञानकी भ संज्ञा हुई परन्तु-

(२६०) यस्येति च ।६।४।१४८॥

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः।

ईकार अथवा तद्धित प्रत्यय परे होय तो भसंज्ञक शब्दके इवर्ण अवर्णका लोप हो ज्ञान+ई इसमें नके अन्तर्गत अकारका लोप हुआ।

(२६१) औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः ॥

वार्त्तिककार कहते हैं कि औङ्के स्थानमें शी (२९९) का आदेश हो तो लोप विधि (२६०) का निषेध हो ।

ज्ञान+ई=(३९) से ज्ञाने । ज्ञान+जस्—

(२६२) जश्शसोः शिः । ७ । १ । २० ॥

क्लीबादनयोः शिः स्यात् ।

नपुंसकलिङ्गसे परे जस् तथा शस् आवें तो उनके स्थानमें शी आदेश हो ज्ञान+शि-

(२६३) शि सर्वनामस्थानम् । १ । १ । ४२ ।

शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ।

शिकी सर्वनामस्थानसंज्ञा हो ।

(२६४) नपुंसकस्य झलचः । ७ । १ । ७२ ॥

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ।

सर्वनामस्थान प्रत्यय परे हुए सन्ते झलन्त तथा अजन्त नपुंसकलिंगको नुम्का आगम होय।

(२६५) मिदचोऽन्त्यात्परः । १ । १ । ४७ ॥

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्स्यात् ।

अचोंके मध्यमें जो अन्त्य अच् हो उससे परे उसीके अन्त्यका अवयव मित् (जिस आगमका मकार इत् संज्ञक हो) सो हो ।

नुम्मेंसे उम्का लोप होकर न् शेष रहा, ज्ञानमें नके अन्तर्गत अन्त्य अच् (अ) से परे नुम्का आगम होकर नुम्का नकार ज्ञान शब्दका अवयव होगया ।

=ज्ञानन्+शि=ज्ञानान्+इ=ज्ञानानि ।

द्वि०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
तृ०	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
च०	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पं०	ज्ञानात्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
ष०	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
स०	ज्ञाने	ज्ञानयोः	ज्ञानेषु
सं०	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

एङ्ह्रस्वादिति हल्मात्रलोपः(१९३) हल्मात्रका संबोधनमें लोप हुआ । **एवं धन-वनफलादयः ।**

इसी प्रकार **धन वन फल** इत्यादि शब्दोंका रूप जानना ।

कतर (कौन) प्रथमा कतर+सु—

(२६६) अड्डतरादिभ्यः पंचभ्यः । ७ । १ । २५ ॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् ।

डतर डतम अन्य अन्यतर और इतर इन पांच नपुंसकलिङ्गोंसे परे सु तथा अम् आवें तो इनके स्थानमें अद्ड् आदेश हो ।

किम् शब्दसे डतर प्रत्यय होकर कतर रूप हुआ उससे परे सु आया उसके स्थानमें अद्ड् आदेश होकर अद्ड्मेंसे अद् शेष रहा अथवा. (१६९) से अत् दकारको तकार आदेश होकर (१८९) से भसंज्ञा हुई.

(२६७) टेः । ६ । ४ । १४३ ॥

डिति भस्य टेर्लोपः ।

भसंज्ञक अंगसे परे डित् प्रत्यय आवे तो अंगकी टि (९२) का लोप हो ।

प्रथमा । द्वितीया । कतर+अत्=कतरत्–द् कतरे कतराणि (२६२, २६४,२६९)

संबोधन । हे कतरत्–द् हे कतरे हे कतराणि

शेष रूप सर्व शब्दके समान जानना–

इसी प्रकार **कतमत् इतरत् अन्यत्** और **अन्यतरत्** शब्दोंके रूप जानने तथा **अन्यतमके** रूप ज्ञान शब्दके समान जानने । **अन्यतमशब्दस्य अन्यतममित्येव** अन्यतम शब्दका तो अन्यतमम् ऐसाही रूप होता है तमप् प्रत्ययान्त होनेसे (२६६)का कार्य नहीं होता.

(२६८) एकतरात्प्रतिषेधः ॥

एकतर शब्दसे अद्ड् आदेश न हो उसके रूप सर्व शब्दके समान हों. एकतरम् एकतरे एकतराणि ॥

नपुंसकलिंग आकारान्त **श्रीपा** शब्द (लक्ष्मीका पालनेवाला)

(२६९) ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । १ । २ । ४७ ॥

क्लीबे प्रातिपदिकस्याजन्तस्य ह्रस्वः स्यात् ।

नपुंसकलिंगमें जो प्रातिपदिकके अन्तमें दीर्घ अच् हो उसके स्थानमें ह्रस्व हो (ज्ञानवत्) श्रीपाके स्थानमें श्रीप हुआ तब इसके रूप ज्ञानशब्दके समान हुए श्रीपम् श्रीपे श्रीपाणि इत्यादि ॥

वारि शब्द (जल)

प्रथमा । वारि+सु–

(२७०) स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ ॥

क्लीबात् स्वमोर्लुक् स्यात् ।

अकारान्त शब्दोंको छोडकर शेष नपुंसकलिंग शब्दोंसे परे सु तथा अम् प्रत्ययका लोप हो । वारि, वारि+औ=वारि+शी (२९९)=वारि+ई–

(२७१) इकोऽचि विभक्तौ । ७ । १ । ७३ ॥

इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ ।

इकारान्त नपुंसकलिंगशब्दोंसे परे अजादि विभक्ति आवे तो उसे नुम्का आगम हो। वारिन्+ई= वारिणी (१९७) वारीणि (२६२, २६३, १९७, १९७)

सम्बो० हे वारि+सु=(२७०) से सुका लोप हुआ परन्तु (१८९) से गुण प्राप्त होकर (२१०) सूत्र लगकर (२११) से निषेध पाया तथापि। **न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः** । कोई वैयाकरण 'नलुमतांगस्य २११' इस सूत्रको नित्य नहीं मानते इससे पक्षमें (२१०) सम्बुद्धिनिमित्तक कार्य (१८९) होगा.

हे वारि, हे वारे । हे वारिणी हे वारीणि ।

द्वि० वारि वारिणी वारीणि **तृ०** वारिणा (१९१) वारिभ्याम् वारिभिः

च० वारि+ए (ङे) **घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते । वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।** 'घेर्ङिति' इस (१९२) से गुण प्राप्त हुआ (२०२) वृद्धि (१९४) औत्व (२२४) तृज्वद्भाव इन सबको बाधकर (१३२) से पूर्वविप्रतिषेध मानकर नुम् (२७१) हो । वारिन्+ए=वारिणे, और **नुमचिरेति नुट्** । आम् परे रहते नुट् (२३१, १९७) से वारीणाम्। (१६८) यह षष्ठीका बहुवचन है । **पक्षे हलादौ हरिवत्**। हलादि विभक्ति परे पक्षमें हरिवत् रूप जानने ।

	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	**ष०** वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
पं०	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	**स०** वारिणि	वारिणोः	वारिषु

इकारान्त **दधि** शब्द (दही)

प्र०	दधि[२७०]	दधिनी[२५२]	[२७१]दधीनि (२६२, २६३, २६४)
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि

तृ० दधि+आ (टा)

(२७२) अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः । ७ । १ । ७५ ॥

एषामनङ् स्याट्टादावचि ।

अस्थि, दधि, सक्थि (जंघा) इन शब्दोंको टा आदि अजादि विभक्ति परे रहते उदात्त अनङ् आदेश हो ।

दध्+अन्+आ=(२७२)

(२७३) अल्लोपोऽनः । ६ । ४ । १३४ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः ।

जो अन् अङ्गका अवयव हो, उससे परे सर्वनामस्थानको त्यागकर यकारादि वा सुआदि प्रत्यय परे रहते अन्के अकारका लोप हो ।

दध् न्+आ=दध्न्+आ=

	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	ष०	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः	स०	दध्नि	अथवा दध् अन् (२७३)	
पं०	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः				

(२७४) विभाषा ङिश्योः । ६ । ४ । १३६ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः ।

सर्वनामस्थान जिससे परे न हो ऐसा जो अन् अङ्गका अवयव तिसके अकारका लोप विकल्प करके हो ङि शी विभक्ति परे हुए सन्ते ।

दधनि	दध्नोः	दधिषु	सं० हे दधे, हे दधि, हे दधिनी हे दधीनि

एवम् अस्थि सक्थ्यक्षि । इसी प्रकार अस्थि सक्थि और अक्षिशब्दोंके रूप जानने ।

ईकारान्त नपुंसकलिङ्ग **सुधी** शब्द (श्रेष्ठबुद्धिवाला)

प्र०	सुधि[२६९]	सुधिनि	सुधीनि	द्वि०	सुधि	सुधिनी	सुधीनि

सुधी+टा–

तृतीयादिषुँ भाषितपुंस्कम्पुंवद्गालवस्य । ७ । १ । ७४ ॥

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा टादावचि ।

पुँल्लिंगमें कथित इगन्त नपुंसकलिंग शब्दप्रवृत्तिके निमित्तकी एकतामें पुँल्लिंगके सदृश हो टा आदि अच् परे रहते गालव आचार्यके मतमें ।

प्रवृत्तिके निमित्तकी एकता यह–जो तीनों लिंगोंमें एक अर्थ दे जैसे सुधीके अर्थ तीनों लिंगोंमें शोभन बुद्धिवाले हैं यही प्रवृत्तिके निमित्तकी एकता है पीलु शब्द ऐसा नहीं वह पुँल्लिंगमें वृक्ष और नपुंसकमें फलके अर्थको लेकर प्रवृत्त होताहै ।

तृ० सुधिना[१९१] सुधियाँ[२२०], सुधिभ्याम् सुधिभिः	ष० " " सुधिनोः-योः, सुधीनाम् सुधियाम्
च० सुधिने[२२०] सुधिये, सुधिभ्याम् सुधिभ्यः	स० सुधिनि सुधियि, सुधिनोः सुधियोः, सुधिषु
पं० सुधिनः सुधियः, सुधिभ्याम् सुधिभ्यः	सं० हे सुधे हे सुधि, हे सुधिनी हे सुधीनि

नपुंसकलिंग ऋकारान्त **धातृ**शब्द.

प्र० धातृ	धातृणी	धातॄणि	**पं०** धातृणः धातुः,	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
द्वि० धातृ	धातृणी	धातॄणि	**ष०** धातृणः धातुः,	धातृणोः-त्रोः,	धातॄणाम्
तृ० धातृणा धात्रा,	धातृभ्याम्	धातृभिः	**स०** धातृणि धातरि	धातृणोः-त्रोः,	धातृषु
च० धातृणे धात्रे,	धातृभ्याम्	धातृभ्यः	**सं०** हे धातः हे धातृ,	हे धातृणी	हे धातॄणि

इसी प्रकार **ज्ञातृ** आदि शब्दोंके रूप जानने । उकारान्त **मधु** (शहद) शब्द.

प्र० मधु	मधुनी	मधूनि	**पं०** मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
द्वि० मधु	मधुनी	मधूनि	**ष०** मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
तृ० मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः	**स०** मधुनि	मधुनोः	मधुषु
च० मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः	**सं०** हे मधो हे मधु,	हे मधुनी	हे मधूनि

इसी प्रकार **सुलू** शब्द । (२६९) से लूके अन्तर्गत ऊ को ह्रस्व होकर सुलु हुआ रूप मधुवत् सुलु सुलुनी सुलूनि इत्यादि ॥ २७४ ॥

(२७५) एच इग्घ्रस्वादेशे । १ । १ । ४८ ॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात् ।

जब एच् (ए ओ ऐ औ) को ह्रस्व आदेश हो तब उसे अनुक्रमसे ह्रस्व इक् (इ उ) हो अर्थात् ए ऐ को इ और ओ औ को उकार हो ॥ २७५ ॥

ओकारान्त **प्रद्यो** शब्द यहां ओकारके स्थानमें ह्रस्व होकर प्रद्यु रूप हुआ तब प्रद्यु प्रद्युनी प्रद्यूनि प्रद्युना इत्यादि रूप मधुवत् जानने ।

नपुंसकलिंग एकारान्त **प्ररै** शब्द (जिसके पास बहुत द्रव्य है)

(२७५) से रै के अन्तर्गत ऐके स्थानमें ह्रस्व इकार हुआ तब प्ररि रूप हुआ तब इसके रूप वारिवत् हुए.

प्र० प्ररि प्ररिणी प्ररीणि । **द्वि०** प्ररि प्ररिणी प्ररीणि

एकदेशविकृतमनन्यवत् । एकदेशके विकारसे वस्तु दूसरी नहीं होजाती जैसे कुत्ते-की पूँछ काटनेसे कुत्तेका कुत्तापन नहीं जाता रहता ऐसे पूर्व (१८१) में कह आये हैं इसी प्रकार प्ररै शब्दको प्ररि विकार होनेपरभी प्ररै मूलरूप न जाता रहा इस कारण जैसे (२३९) सूत्रसे हलादि विभक्ति भ्याम् और भिस् परे रहते पुँल्लिंगमें रैके अन्तर्गत एकारको आकार आदेश हुआ है इसी प्रकार नपुंसकमें यहां प्ररिके इकारको आकार हुआ तो प्रराभ्याम प्रराभिः यह रूप बदले यथा—

तृ०	प्ररिणा	प्रराभ्याम्	प्रराभिः	ष०	प्ररिणः	प्ररिणोः	प्ररीणाम्
च०	प्ररिणे[१]	प्रराभ्याम्	प्रराभ्यः	स०	प्ररिणि	प्ररिणोः	प्ररासु
पं०	प्ररिणः	प्रराभ्याम्	प्रराभ्यः	सं०	हे प्ररे–रि	हे प्ररिणी	हे प्ररीणि

औकारान्त **सुनौ** शब्द (२७९) से नौके अन्तर्गत औके स्थानमें उकार हो सुनु रूप होकर मधुवत् रूप जानने (२७९) सुनु सुनुनी सुनूनि, सुनुना, हे सुनो हे सुनु ।

॥ इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

अथ हलन्ताः पुँल्लिंगाः ।

लिह् (चाटनेवाला)

प्र० लिह्+सु–

(२७६) हो ढः । ८ । २ । ३१ ॥

हस्य ढः स्यात् झलि पदान्ते च ।

हकार पदान्तमें वर्तमान होय अथवा उससे परे झल् होय तो ह्के स्थानमें ढकार हो । लिढ्+(१९९)=लिड् (८२) अथवा. लिट् (१६९)

		लिहौ	लिहः	पं०	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
द्वि०	लिहम्	लिहौ	लिहः	ष०	लिहः	लिहोः	लिहाम्
तृ०	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः	स०	लिहि	लि॰ :, लिट्सु	लिट्त्सु[१०२, ९०]
च०	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः	संबो०	हे लिट्–ड्,	हे लिहौ	हे लिहः

दुह् शब्द (दुहनेहारा)

प्र० दुह्+स्=(सु)

(२७७) दादेर्धातोर्घः । ८ । २ । ३२ ॥

झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः ।

झल् परे रहते अथवा पदान्त विषयमें उपदेश (९) में जो दकारादि धातु तिसके हकारको घकार हो

दुघ्+स्—

---

१ अनडुह् (२८४) शब्दमें यह सूत्र नहीं लगता ।

(२७८) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः । ८ । २ । ३७ ॥

धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च ।

पदान्तके विषे स तथा ध्व परेहुए सन्ते धातुका अवयव जो एकाच् झषन्त तिसका अवयव जो वश् तिसके स्थानमें भष् हो ।

दुघ् शब्दमें दु धातुका अवयव है इसमें उ एक अच्वाला वश् है उसके अन्तमें झष्में घ् है उससे परे स् है तो दकारके स्थानमें झष् ध हुआ धुघ्+स् (८२) से घ् झल् है उसके स्थानमें जश्का ग् हुआ फिर (१६९) से ग् झल् है उसके स्थानमें चर् क् विकल्प करके हुआ धुग् अथवा धुक् (१९९) ।

प्र० धुग्–क्	दुहौ	दुहः	पं० दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
द्वि० दुहम्	दुहौ	दुहः	ष० दुहः	दुहोः	दुहाम्
तृ० दुहा	धुग्भ्याम् २७८,२८२	धुग्भिः	स० दुहि	दुहोः २७७,२७८,९०,२६९	धुक्षु
च० दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः	सं० हे धुग्–क्	हे दुहौ	हे दुहः

द्रुह् (द्रोही)

(२७९) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् । ८ । २ । ३३ ॥

एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च ।

द्रुह्, मुह् (मोह करना) ष्णुह् (वमन करना) ष्णिह् (स्नेह करना) इन धातुओंके हकार को विकल्प करके घ् हो झल् परे रहते वा पदान्त में ।

प्र० द्रुह्+स् (सु)=ध्रुघ्+स्–

(२७९) से ह्के स्थानमें विकल्प करके घ् हुआ जब न हुआ तो (२७६) से ढ् हुआ घ्के स्थानमें ग् और ग् के स्थानमें (१६९) से विकल्पकर क् हुआ ।

ध्रुक्–ग्=ट्–ड् १६९ ।	द्रुहौ	द्रुहः	पं० द्रुहः	ध्रुग्-ड्-भ्याम्	ध्रुग्-ड्-भ्यः
द्वि० द्रुहम्	द्रुहौ	द्रुहः	ष० द्रुहः	द्रुहोः	द्रुहाम्
तृ० द्रुहा	ध्रुग्–ड्–भ्याम्	ध्रुग्-ड्-भिः	स० द्रुहि	द्रुहोः ध्रुट्त्सु	ध्रुट्सु, ध्रुक्षु
च० द्रुहे	ध्रुग्-ड्-भ्याम्	ध्रुग्-ड्-भ्यः	सं० हेध्रुक्-ग्-ट्-ड्,	हे द्रुहौ	हे द्रुहः

इसी प्रकार मुह्के रूप जानने। ष्णुह् ।

प्र० ष्णुह्+स् (सु) (१९९)

(२८०) धात्वादेः षः सः । ६ । १ । ६४ ॥

धातोः आदेः षस्य सः स्यात् ।

धातुके आदि षकार के स्थानमें स हो—

जब षकारको सकार हुआ तो इसी प्रकार णके स्थानमें नकार होकर स्नुह्+स् ह्कारके स्थानमें घ् विकल्प करके हुआ पक्षमें ढ् हुआ.

घ् के स्थानमें ग् ग्के स्थानमें विकल्प करके क् हुआ.

प्र० स्नुक्-ग्-ट्-ड्	स्नुहौ	स्नुहः	पं० स्नुहः	स्नुग्–ड्-भ्याम्	स्नुग्–ड्-भ्यः
द्वि० स्नुहम्	स्नुहौ	स्नुहः	षं० स्नुहः	स्नुहोः	स्नुहाम्
तृ० स्नुहा	स्नुग्-ड्-भ्याम्	स्नुग्-ड्-भिः	स० स्नुहि	स्नुहोः	स्नुट्सु. स्नुट्त्सु स्नुक्षु
च० स्नुहे	स्नुग्-ड्-भ्याम्	स्नुग्-ड्-भ्यः	सं० हे स्नुक्-ग्-ट्-ड्	हे स्नुहौ	हे स्नुहः

इसी प्रकार **स्निह्** शब्दके रूप जानने.

विश्ववाह् शब्द (सब संसारका धारण करनेवाला) (२७६) से ह् के स्थानमें ढ् फिर उस (८२) से ड् फिर विकल्प करके ट् (१६९) से हुआ । प्र० विश्ववाड्-ट् । विश्ववाहौ । विश्ववाहः । द्वि० विश्ववाहम् । विश्ववाहौ । विश्ववाह्+अस्–

(२८१) इग्यणः सम्प्रसारणम् । १ । १ । ४५ ॥

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् ।

यण्के स्थानमें जो इक् किया गया है उसकी संप्रसारण संज्ञा हो ।

(२८२) वाह ऊठ् । ६ । ४ । १३२ ॥

भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ् ।

भसंज्ञक जो वाह् शब्द तिसको संप्रसारण ऊठ् हो ।

(१८९) से वाह् शब्द भसंज्ञक है, और (२७१) से वाह् शब्दान्तर्गत वकार यण् है इससे व् के स्थानमें ऊठ्का ऊ इक् संज्ञक है हुआ तो विश्व ऊ आह्+अस्–

(२८३) सम्प्रसारणाच्च । ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः ।

संप्रसारणसे परे अच् हो तो पूर्वरूप एकादेश हो ।

इससे आ ऊरूप हुआ विश्व ऊह्+अस् (४२) से श्व अन्तर्गत अकारसे परे ऊठ् है इसको (४२) से और एकादेश हुआ अमें ह् मिला सकारको विसर्ग विश्वौहः ।

तृ० विश्वौहा,	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः	ष० विश्वौहः	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
च० विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः	स० विश्वौहि	विश्वौहोः	विश्ववाट्त्सु–सु
पं० विश्वौहः	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः	सं० हे विश्ववाड्–ट्	हे विश्ववाहौ	हे विश्ववाहः

अनडुह् शब्द (बैल)

प्र० अनडुह्+स् (सु)

(२८४) चतुरनडुहोरामुदात्तः । ७ । १ । ९८ ॥

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे ।

चतुर् और अनडुह् शब्दोंको सर्वनामस्थान परे रहते आम् आदेश हो.

(२६९) आम् मित् है उसका शेष भाग अनडु अन्तर्गत उसे परे हुआ अनडु आ-ह्+स् (सु)

(२८५) सावनडुहः । ७ । १ । ९९ ॥

अस्य नुम् स्यात् सौ परे ।

अनडुह् शब्दसे परे सु प्रत्यय आवे तो नुम् (न) का आगम हो । (२६९) से नुम्का नकार आसेपर हुआ अनडु आन्ह्+स् (१९९) से सु (स्) का लोप हुआ (२६) से हकारका लोप हुआ नकार प्रातिपदिकके अन्तमें है, यहां (२००) सूत्र लगता परन्तु (२६) से हकारका लोप होकर (३९) से असिद्ध होकर नकारका लोप न हुआ.

अनडु+आन्=डुके उकारके स्थानमें यण् व् हुआ.

अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाहः । सं० हे अनडुह्+सु-

(२८६) अम् सम्बुद्धौ । ७ । १ । ९९ ॥

चतुरः अनडुहः अम् स्यात् सम्बुद्धौ ।

चतुर् और अनडुह् शब्दोंको अम्का आगम हो सम्बुद्धिका प्रत्यय परे हो तो । हे अन-डुह्+सु इसमें प्रथमाके एकवचनके अनुसार आम् आदेश होता परन्तु उसके बदले संबोधनमें अम् हुवा ।

सं० हे अनड्वन् हे अनड्वाहौ हे अनड्वाहः । **द्वि०** अनड्वाहम् अनड्वाहौ अनुडुहः । **तृ०** अन डुहा । अनडुह्+भ्याम्-

(२८७) वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः । ८ । २ । ७२ ॥

सान्तस्य वस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदांते ।

सान्त (सकारान्त) वसुप्रत्यायान्त तथा स्रंसु (गिरना) ध्वंसु (नीचे गिरना) और अनडुह् इन शब्दोंको पदान्तमें दकार आदेश हो ।

(१८४) अनडुह्का पद सज्ञा हुई तो । अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिः

च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः	**ष०**	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
पं०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः	**स०**	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु

सान्तेति किम् ? सकारान्त वसु प्रत्ययान्त क्यों कहा, इसका कारण यह है कि 'विद्वान्' यह वसु प्रत्ययान्त तो है परन्तु सान्त नहीं है इस कारण यहां दकार हुआ

पदान्ते किम् ? पदान्त, क्यों कहा ? **स्रस्तम् ध्वस्तम्** यहां पदान्त नहीं है इससे दकार न हुआ।

तुरासाह् शब्द (इन्द्र)

प्र० तुरासाह स् (सु)

(२७६) से ह् के स्थान में ढ् हुआ फिर उसे (८२) से ड् विकल्पकरके ट् (१६९) से हुआ फिर (१९९) से सकारका लोप होकर—तुरासाड्—ट् रूप सिद्ध हुआ.

(२८८) सहेः साडः सः। ८। ३। ५६॥

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्।

साड्रूप (जो ह्के स्थानमें ड् ट् हुआ है) सह् धातुके सकारके स्थानमें मूर्द्धन्य ष आदेश हो।

प्र०	तुराषाड्—ट्	तुरासाहौ	तुरासाहः	पं०	तुरासाहः	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः
द्वि०	तुरासाहम्	तुरासा हौ	तुरासाहः	ष०	तुरासाहः	तुरासाहोः	तुरासाहाम्
तृ०	तुरासाहा	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भिः	स०	तुरासाहि	तुरासाहोः	तुराषाट्त्सु-ट्सु
च०	तुरासाहे	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः	सं०	हे तुराषाट्—ड्	हे तुरासाहौ	हे तुरासाहः

सुदिव् शब्द (श्रेष्ठ स्वर्ग)

प्र० सुदिव्+स् (सु)।

(२८९) दिव औत्। ७। १। ८४॥

दिविति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ परे।

दिव् प्रातिपदिकसे परे सु प्रत्यय आवे तो दिव्को औत् आदेश हो 'अलोन्त्यस्य' करके व् के स्थानमें औ आदेश हुआ तब सुदि औ+स् (२१) से इक्के स्थानमें यण् होकर सकारको विसर्ग हुआ.

प्र०	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः	तृ०	सुदिवा	सुदिव्+भ्याम्—
द्वि०	सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः			

(२९०) दिव उत्। ६। १। १३१॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते।

पदान्तमें दिव् शब्दको उकार अन्तादेश हो.

व्के स्थानमें उ हुआ, पीछे दि अन्तर्गत इ (इक्के) स्थानमें यण्का य् हुआ,

	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः	ष०	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
च० व०	सुदिवे सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः	स०	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु
पं०	सुदिवः सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः	सं०	हे सुद्यौः	हे सुदिवौ	हे सुदिवः

चतुर् शब्द (चार) बहुवचनान्त ।

प्र० चतुर्+अस्=चतु आर् (२८४)+अस् (२१) से यण् उको व्=चत्वारः

द्वि० व० चतुरः । तृ० ब० चतुर्भिः । च० पं० व० चतुर्भ्यः ष० ब० चतुर्+आम्=

(२९१) षट्चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ॥

एभ्य आमो नुडागमः ।

षट् (३२४) संज्ञक और चतुर् शब्दसे परे आम् प्रत्यय आवे तो प्रत्ययको नुट्का आगम हो नुट्का न् (१०३) से आम्के पूर्व हुआ चतुर् न्+आम्—

(२९२) रषाभ्यां नो णः समानपदे । ८ । ४ । १ ॥

एकपदस्थाभ्यां रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समानपदे ।

रकार और षकारसे परे एकपदमें नकार आवे तो उसको णकार हो । चतुर् ण्+आम्= चतुर्णाम् ।

(२९३) अचो रहाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ।

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः ।

अच्से परे रकार हकार हो उससे परे यर् हो तो यर्को विकल्प करके द्वित्व हो. चतुर्ण्णाम् ।

स० चतुर्+सु (सुप्)

(२९४) रोः सुपि । ८ । ३ । १६ ॥

सप्तमीबहुवचने परे रोः एव विसर्गः नान्यस्य ।

रुसे परे सप्तमी बहुवचन प्रत्यय आवे तो रुके स्थानमें विसर्ग हो केवल रकारके स्थानमें नहीं हो । तो (१११) से विसर्ग न हुआ, क्योंकि चतुर् शब्दमें रकार है (१२४) में रुको विसर्ग होता है, यहां न होनेसे न हुआ तब चतुर्+सु रूप रहा (१६९) से सुके स्थानमें षु और (२९३) से षकारको द्वित्व पाया परन्तु—

(२९५) शरोऽचि । ८ । ४ । ४९ ॥

अचि परे शरो न द्वे स्तः ।

शर् प्रत्याहारसे अच् परे हो तो शर्को द्वित्व न हो । चतुर्षु ।

सं० हे चत्वारः ।

प्रशाम् शब्द (अतिशान्त)

प्र० प्रशाम्+स् (सु) (१९९) से सकारका लोप (२०) से पद संज्ञा हुई ।

(२९६) मो नो धातोः । ८ । २ । ६४ ॥

धातोर्मस्य नः पदान्ते ।

पदान्तमें धातुके मकारको नकार हो ।

प्र०	प्रशान्	प्रशामौ	प्रशामः	पं०	प्रशामः	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
द्वि०	प्रशामम्	प्रशामौ	प्रशामः	ष०	प्रशामः	प्रशामोः	प्रशामाम्
तृ०	प्रशामा	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भिः	स०	प्रशामि	प्रशामोः	प्रशान्सु
च०	प्रशामे	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः	सं०	हे प्रशान्	हे प्रशामौ	हे प्रशामः

किम् शब्द (कौन)

प्र० किम्+स्–

(२९७) किमः[६] कः[१] । ७ । २ । १०३ ॥

किमः कः स्यात् विभक्तौ ।

विमक्ति परे हुए सन्ते किम् शब्दको क आदेश हो । क+स्=पुँल्लिंग सर्व शब्दके समान रूप हुए.

प्र०	कः	कौ	के[१७१३५]	पं०	कस्मात्[१७३]	काभ्याम्	केभ्यः
द्वि०	कम्	कौ	कान्	ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः				
च०	कस्मै[१७२]	काभ्याम्	केभ्यः	स०	कस्मिन्[१७३]	कयोः	केषु

त्यद् आदि (२१३) का सम्बोधन नहीं होता.

इदम् शब्द (यह)

प्रथमा । इदम्+स् (२१३) से म्के स्थानमें अकार प्राप्त हुआ परन्तु–

(२९८) इदमो मः । ७ । २ । १०८ ॥

इदम् शब्दसे सु प्रत्यय आवे तो मकारको म्ही आदेश हो । **त्यदाद्यपवादः ।** 'त्यदादीनामः' इसका अपवाद सूत्र है.

(२९९) इदोऽय्[१] पुंसि[८] । ७ । २ । १११ ॥

इदम इदोऽय् सौ पुंसि ।

पुँल्लिंगवाचक इदम् शब्दसे परे सु प्रत्यय आवे तो इद् भागके स्थानमें अय् आदेश हो, अय् अम्+सु यकार अमें मिला (१९९) से सकारका लोप हुआ । अयम् । इदम्+औ=इद् अ अ (२१३)+औ–

(३००) अतो गुणे । ६ । १ । ९७ ॥

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः ।

अपदान्त अ से परे गुण आवे तो पररूप एकादेश हो ।

द अन्तर्गत असे परे अ गुण है तो पूर्व परके स्थानमें पररूप अ एक आदेश हुआ इद+औ–

(३०१) दश्च । ७ । २ । १०९ ॥

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ ।

इदम् शब्दसे परे विभक्ति प्रत्यय आवे तो दकारके स्थानमें मकार हो.
इम+औ=इमौ इमे[१७१] द्वि० इमम् इमौ इमान् तृ० इदम्+टा-

(३०२) अनाप्यकः । ७ । २ । ११२ ॥

अककारस्येदम इदोऽनापि विभक्तौ ।

ककाररहित (१३२२) इदम्शब्दसे परे आप् (तृतीयाके टा से सुप्तक) प्रत्यय आवें तो इद्के स्थानमें अन् आदेश हो । इद्+अम् (२१३) से मके स्थानमें अ हुआ=इद् अ अ (३००) पहला अ दूसरेमें गुण हो मिला तब इद् अ=अन् (३०२) अ=अन+इन (१९९) अनेन । इद+भ्याम्=इद् अ=भ्याम्-

(३०३) हलि लोपः । ७ । २ । ११३ ॥

अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ ।

ककार (१३२२) रहित इदम् शब्दसे परे तृतीया आदि हलादि विभक्ति आवें तो इदम् शब्दके इद् भागका लोप हो (२७) से दकारका लोप पाया परन्तु-

(३०४) नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥

यह 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र अभ्यास विकार (४२८, ९०९) को छोडकर अनर्थकमें नहीं लगता. यहां इद् अनर्थकही है इस कारण अन्त्य दकारका लोप न होकर सम्पूर्ण इद्का लोप हुआ अ शेष रहा तब अ+भ्याम् हुआ (१६०) सूत्रसे अकी दीर्घता पाई परन्तु यह अदन्त अंग है कि नहीं यह शंका हुई तो अकारको अदन्तत्व प्रतिपादन करनेको अगला सूत्र लिखा-

(३०५) आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । १ । २१ ॥

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् ।

एक वर्णमेंभी वही कार्य किया जाय-जैसा आदि और अन्तमें कार्य किया जाता है इससे (१६०) से जो कार्य अदन्त अंगको होता है सो इस अकारमेंभी हो.आभ्याम् । इद+भिः-

(३०६) नेदमदसोरकोः । ७ । १ । ११ ॥

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न ।

ककार (१३२२) रहित इदम् तथा अदस् शब्दसे परे भिस् प्रत्यय आवे तो उसके स्थानमें ऐस् आदेश (१६१) से न हो (३०३) से इदम्के इद्का लोप हुआ शेष 'अ' रहा अ+भिः (१६४) से अकारके स्थानमें एकार हुआ एभिः तृतीया बहुवचन.

२३३ ३०० ३०२ १६६ २९

च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः	ष०	अस्य	अनयोः	एषाम्
पं०	अस्मात्-द्	आभ्याम्	एभ्यः	स०	अस्मिन्	अनयोः	एषु

(३०७) द्वितीयाटौस्स्वेनः । २ । ४ । ३४ ॥

द्वितीयायां टौसोश्च परतः इदमेतदोः एन आदेशः स्यात् अन्वादेशे ।

इदम् और एतद् शब्दोंसे परे द्वितीया तथा तृतीयाका एकवचन षष्ठी तथा सप्तमीके द्विवचनका प्रत्यय आवे तो इदम्, एतद् शब्दको एन आदेश हो अन्वादेशका प्रसंग होय तो । **किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति । अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति।** कोई कार्य बोधन करनेको कथितका दूसरे कार्यके बोधन करनेके लिये जो फिर कहना उसको अन्वादेश कहतेहैं, यथा—इसने व्याकरण पढा है इसे वेद पढाओ । इन दोनोंका कुल पवित्र है और (एनयोः) इन दोनोंके धन बहुत है ।

द्वि०	एनम्	एनौ	एनान्	ष०	एनयोः
तृ०	एनेन			स०	एनयोः

राजन् शब्द (राजा)

प्र० राजन्+स् (१९९) (१९७) से जके अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ राजान् (२००) से नकारका लोप हुआ तो । राजा राजानौ राजानः (१९७) सं० हे राजन्+स्—

(३०७) न ङिसंबुद्ध्योः । ८ । २ । ८ ।

नस्य लोपो न ङौ संबुद्धौ च ॥

सप्तमीके एकवचन ङि तथा सम्बोधनमें (२००) से नकारका लोप जो होता है सो न हो.

हे राजन् हे राजानौ हे राजानः

(३०८) ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

ङि (सप्तमीके एकवचन) परे रहते उत्तरपदमें यह विधि न लगै अर्थात् उत्तरपद परे रहते ङि विभक्ति आवै तो नकारका लोप हो, यह वार्तिककारका वचन है । यथा—ब्रह्मणि+निष्ठा बहुव्रीहि समास यहां ब्रह्मन् शब्दकी सप्तमीके एकवचनका ब्रह्मणि रूप है, परन्तु णि अन्तर्गत इ ङि के उत्तरपदनिष्ठ है तो (३०७) से नकारके लोपका निषेध न होनेसे नकारका लोप होकर समासमें ब्रह्मनिष्ठ हुआ.

द्वि० राजानम् राजानौ राजन्+अस् (शस्)

(१९२) से राजन् शब्दकी अङ्गसंज्ञा हुई राज् अन् इसमें अन् अङ्गका अवयव है तथा (२७३) की संपूर्ण प्राप्ति है तब अन्के अकारका लोप हुआ तब राजन्+अः (सुके विसर्ग)

(७६) से नूके स्थानमें ञ् हुआ ज् और ञ् मिलकर ज्ञ् हुआ, यह अमें मिलकर राज्ञः सिद्ध हुआ, तृ० राज्ञा । राजन्+भ्याम्=राज (२००)+भ्याम् नकारका लोप सिद्ध है इससे (१६०) से ज अन्तर्गत अकारको दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु-

(३०९) नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति । ८ । २ । २ ॥

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र

सुप्विधि (विभक्तिविषयक कार्यविधि), स्वरविधि, संज्ञाविधि (३२४) और कृत्प्रत्यय (८२८) परे रहते तुक्विधि (८२९) करनेमें (२००) से नकारका लोप असिद्ध (३९) होता है अन्यत्र नहीं. इससे नकारकी स्थिति पाई परन्तु (१६०) से अदन्त अङ्ग नहीं हैं इससे ज अन्तर्गत अको दीर्घता प्राप्त न हुई तब यह सिद्ध हुआ-

राजभ्याम् राजभिः

च० राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः	ष० राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
पं० राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः	स० राजन्+इ (ङि)		

(२७४) से ज अन्तर्गत अकारका विकल्प करके लोप हुआ

राजनि-राज्ञि राज्ञोः राजसु । राजन्+अश्व-

यहां षष्ठीतत्पुरुष समास करनेमें (३०९) कही कोई विधि नहीं है तो (२००) से नकारका लोप सिद्ध होकर (९९) से ज अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ तब राजाश्वः (राजाका घोडा) रूप सिद्ध हुआ। **इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न** । जहां सुप्विधि है वह (१६०) से आत्व (१६४) से अके स्थानमें ए और (१६१) से भिस्के स्थानमें ऐस् न हुआ । **यज्वन्** (यज्ञ करनेवाला)

प्र० यज्वा[१९६][१९७] यज्वानौ यज्वानः । द्वि० यज्वानम् यज्वानौ यज्वन्+अस्(शस्)

(३१०) न संयोगाद्वमन्तात् । ६ । ४ । १३७ ॥

वमन्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न ॥

वकारान्त और मकारान्त संयोगसे परे अन्के अकारका लोप (जो २७३ से होताहै) न हो

द्वि० ब० यज्वन+अस्=यज्वनः १९९ । १२४ । १११ ॥

तृ०	यज्वना	यज्वभ्याम्	यज्वभिः	ष०	यज्वनः	यज्वनोः	यज्वनाम्
च०	यज्वने	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः	स०	यज्वनि	यज्वनोः	यज्वसु
पं०	यज्वनः	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः	सं०	हे यज्वन्	हे यज्वानौ	हे यज्वानः

---

१ सुप् विधिमें दोप्रकारका समास होता हे यथा सुप्के परे रहते जो विधि और सुप्के स्थानमें जो विधि । सुप्के परे रहते यथा राजभ्याम् यहां ' सुपि च ' से जो दीर्घता प्राप्त है सो नलोप असिद्ध होनेसे दीर्घ नहीं होता, सुप्के स्थानमें विधि राज-भिस् यहां 'अतो भिस ऐस्' से भिस्के स्थानमें ऐस् प्राप्त है सो नहीं होता । स्वरविधि वैदिकीमें आवैगा ।

इसी प्रकार **ब्रह्मन्** शब्द (ब्रह्मा) के रूप जानने।

वृत्रहन् (इन्द्र) प्र० वृत्रहन्+सु–

(३११) इन्हन्पूषार्यम्णां शौ । ६ । ४ । १२ ॥

इन् हन् पूषन् अर्यमन् एषां शौ एव उपधाया दीर्घो न अन्यत्र।

इन्प्रत्ययान्त हन् अन्त शब्द, पूषन् (सूर्य) अर्यमन् (सूर्य) इन शब्दोंके आगे शि प्रत्यय आवे तो (१९७) से उपधाको दीर्घ हो अन्यत्र नहीं इससे दीर्घका निषेध प्राप्त हुआ–

(३१२) सौ च । ६ । ४ । १३ ॥

इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सौ परे।

सम्बोधनके सुप्रत्ययके विना इन् आदि (३११) से परे प्रथमाका एकवचन सु प्रत्यय आवे तो इन् आदि की उपधाको दीर्घ हो. तो हके अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ (२००) से नकारका लोप हुआ.

वृत्रहा, वृत्रहन्+औ–

(३१३) एकाजुत्तरपदे णः । ८ । ४ । १२ ॥

एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः ॥

जिस समासके पूर्व पदमें रकार अथवा षकार (२९२) हो और उसके एकाच् उत्तरपदमें प्रातिपदिकान्त न अथवा नुम् (२६४) का नकार वा विभक्तिका (१४९) नकार होय तो नके स्थानमें णकार हो। वृत्रहन् (वृत्र राक्षसका मारनेवाला) इस प्रकार यह समासान्त शब्द है इसके पूर्वपदमें रकार है और हन् उत्तरपदमें ह अन्तर्गत अ एक अच् है तो न् को ण् हुआ–

वृत्रहणौ वृत्रहणः। द्वि० वृत्रहणम् वृत्रहणौ वृत्रहन्+अस् (शस्)

(२७३) से हके अन्तर्गत अकार का लोप हुआ तब वृत्रह्न्+अः–

(३१४) हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु । ७ । ३ । ५४ ॥

ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेः हकारस्य कुत्वम् ॥

हन् धातुसे परे ञकार और णकार जिसका इत् हो ऐसा प्रत्यय आवे अथवा ह्से परे नकार आवे तो हकारके स्थानमें कवर्ग हो। (१६) से ह् के स्थानमें घ् हुआ, हकारका संवार नाद और घोष (१६–३) प्रयत्न है तथा (१६–९) के अनुसार महाप्राण है; यही प्रयत्न कवर्गमें घकारका है।

तो ह्के स्थानमें घ् हुआ। वृत्रघ्न्+अः=वृत्रघ्नः।

तृ०	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः	ष०	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
च०	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः	स०[313]	वृत्रहणि	वृत्रघ्नि, [274] वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
पं०	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः	सं०	हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः

एवं शार्ङ्गिन् यशस्विन् अर्यमन्, पूषन्। इसी प्रकार **शार्ङ्गिन्** (शार्ङ्गधनुष्-धारी विष्णु), **यशस्विन्** (कीर्तिमान्) **अर्यमन्, पूषन्** (सूर्य) इन शब्दोंके रूप जानने।

मघवन् शब्द (इन्द्र) प्र० मघवन्+स्-

(३१५) मघवा बहुलम् । ६ । ४ । १२८ ॥

मघवञ्छब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः स्यात् ॥

मघवन् शब्दको तृ अन्तादेश विकल्प करके हो ।

न् को तृ आदेश हुआ तो मघवतृ रूप हुआ (३६) से तृ अन्तर्गत ऋका लोप होकर मघवत्=मघवत्+सु हुआ—

(३१६) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः । ७ । १ । ७० ॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे ॥

उक् (उ ऋ ऌ) जिसके इत् संज्ञक हो ऐसे धातुभिन्न शब्दसे परे वा जिसका लुप्त नकार हो ऐसे अञ्च् धातुसे परे सर्वनामस्थान (१८३) प्रत्यय आवे तो नुम्का आगम हो ।

मघवतृ इसमें ऋ इत्संज्ञक है, (३६) से उसका लोप हुआ, उससे परे सर्वनाम-स्थानका सु प्रत्यय आया है, तब व और त् के बीचमें (२६९) से नुम् (न्) का आगम हुआ मघवन् त् (२६) से तकारका लोप होकर मघवन् रहा (१९७) से व अन्तर्गत अके उपधाको दीर्घ हुआ, तो मघवान्+सु रूप हुआ (१९९) से सकारका लोप हुआ.

प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः	पं०	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः	ष०	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः	स०	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः	सं०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः

तृत्वाभावे सुटि राजवत्। जब (३१५) से न्के स्थानमें तृ आदेश न हुआ तब— औट्तक राजन् शब्दके समान रूप होंगे शसादिमें विशेष है सो लिखते हैं—

प्र० मघवा मघवानौ मघवानः । द्वि० मघवानम् मघवानौ मघवन्+अस्-

(३१७) [१]श्वयुवमघोनामतद्धिते । ६ । ४ । १३३ ॥

अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् ॥

श्वन् युवन् और मघवन् जो अन् अन्त भसंज्ञक शब्द हैं उनसे परे अतद्धित प्रत्यय आवे तो (२८१) से संप्रसारण हो. मघवन् शब्दमें व यण् है उसके स्थानमें इक्‌में उ हुआ तब मघउन्+अस् (३९) से मघोन+अस्=मघोनः ।

तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः	ष०	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः	स०	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
पं०	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः	सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

युवन् शब्द (तरुण)

(१९७) से व अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ (२००) से नकारका लोप हुआ. प्र० युवा युवानौ युवानः । द्वि० युवानम् युवानौ युवन्+अस्–

(३१७) से वकारको संप्रसारण होकर उसके स्थानमें उ हुआ तब यु उन्+अस् रूप हुआ यु अन्तर्गत यकार यण् है उसे संप्रसारण प्राप्त हुआ परन्तु–

(३१८) न संप्रसारणे संप्रसारणम् । ६ । १ । ३७ ॥

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न स्यात् ॥

एक संप्रसारण परे हुए सन्ते पूर्व यण्को संप्रसारण न हो । यूनः

तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः	ष०	यूनः	यूनोः	यूनाम्
च०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः	स०	यूनि	यूनोः	युवसु
पं०	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः	सं०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

अर्वन् (घोडा) प्र० अर्वा (१९७, २००) अर्वन्+औ–

(३१९) अर्वणस्त्रसावनञः । ६ । ४ । १२७ ॥

नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ ॥

नञ्‌रहित अर्वन् शब्द अंग अथवा अर्वन् शब्दान्त अंगको तृ अन्तादेश हो परन्तु सु परे हो तो न हो. अर्वन्+औ, तृ अन्तर्गत ऋकार (३६) से इत्संज्ञक हुआ (७) से उसका लोप हुआ (३१६) से नूका आगम (२६९) से व और तूके मध्यमें हुआ तो अर्वन्तौ । अर्वन्तः ।

द्वि०–अर्वन्तम् अर्वन्तौ अर्वतः

---

१ यदि कहो कि प्रथम यकारकोही संप्रसारण करके पश्चात् वकारको संप्रसारण करलेंगे सो ठीक नहीं कारण कि इसी (३१९) सूत्रके विधानसे पहले अन्त्य यण्को संप्रसारण होता है, अर्थात् यकारको 'इ' करनेसे (३१८) व्यर्थ होजायगा ।

शेष रूप मघवन्के प्रथम रूपके समान जानने। **अनञः किम्? अनर्वा यज्ववत्।** नञ् भिन्न कहनेसे अनर्वन् शब्दके रूप यज्वन्के समान होंगे।

पथिन् शब्द (मार्ग) पथिन्+सू (सु)

(३२०) पथिमथ्यृभुक्षामात्। ७। १। ८५॥

एषामाकारोन्तादेशः स्यात् सौ परे॥

पथिन्, मथिन् (मथनेवाला) और ऋभुक्षिन् (इन्द्र) इन शब्दोंसे परे सु आवे तो आकार अन्तादेश हो। पथि आ+स् यणको बाधकर-

(३२१) इतोत्सर्वनामस्थाने। ७। १। ८६॥

पथ्यादेरिकारस्याकारः सर्वनामस्थाने परे॥

पथिन् मथिन् ऋभुक्षिन् शब्दोंके इकारके स्थानमें अकार हो सर्वनामस्थान परे हुऐ सन्ते। पथ् अ+आ+स्-

(३२२) थो न्थः। ७। १। ८७॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे॥

पथिन् तथा मथिन् शब्दोंसे परे सर्वनामस्थान प्रत्यय आवें तो उनके थ के स्थानमें न्थ आदेश हो, पन्थ आ+स्-

पन्थाः (९९) पन्थानौ पन्थानः | **द्वि०** पन्थानम् पन्थानौ पथिन्+अस् यहां इन् मात्रकी टि संज्ञा होकर-

(३२३) भस्य टेर्लोपः। ७। १। ८८॥

भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्॥

भसंज्ञक (१८९) पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दकी टिका लोप हो. पथिन्के इन्का लोप हुआ तो पथ् रहा, पथ्+ अस्= पथः

तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	**ष०**	पथः	पथोः	पथाम्
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः	**स०**	पथि	पथोः	पथिषु
पं०	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः	**सम्बो०**	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

इसी प्रकार **मथिन्** और **ऋभुक्षिन्के** रूप जानने।

पंचन् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। बहुवचनान्त **पंचन् शब्द** (पांच) पंचन्+अस् प्रथमाका बहुवचन-

(३२४) ष्णान्ता षट्। १। १। २४॥

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात्॥

षकारान्त तथा नकारान्त संख्यावाचक शब्दकी षट् संज्ञा हो (२०८) से अस्का लोप (२००) से नकारका लोप हुआ इसी प्रकार द्वितीयाके बहुवचनके शस् प्रत्ययका लोप हुआ

प्र० व० पञ्च। द्वि० व० पञ्च। तृ० व० पञ्चभिः। च० व० पञ्चभ्यः। पं० ब० पञ्चभ्यः। ष० व० पंचन्+आम् (२९१) से नुट्का आगम (१०३) से आम्के पूर्व हुआ पञ्चन्+न्आम्=पञ्चन्+नाम्—

(३२५) नोपधायाः। ६। ४। ७॥

नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि॥

नान्त संख्यावाचक शब्दकी उपधाको दीर्घ हो नाम् परे हुए सन्ते। च के अन्तर्गत अ को दीर्घ हुआ (२००) से नकारका लोप पञ्चानाम्। स० व० पञ्चसु (२००) **एवं सप्तन् नवन् दशन् प्रभृतयः।** ऐसेही सप्तन् (सात) नवन् (नौ) दशन् (दश) शब्दोंके रूप जानने।

अष्टन् (आठ) प्र० अष्टन्+जस्—

(३२६) अष्टन आ विभक्तौ। ७। २। ८४॥

अष्टन आत्वं वा स्यात् हलादौ विभक्तौ॥

अष्टन् शब्दसे परे हलादि विभक्ति आवे तो अष्टन् शब्दको विकल्प करके आकार हो. अष्टा+जस्—

(३२७) अष्टाभ्य औश्। ७। १। २१॥

कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश् स्यात्॥

आकार आदेश किये हुए अष्टन्शब्दसे आगे जस् और शस् विभक्ति आवे तो उनके स्थानमें औश् (औ) आदेश हो। **अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वग्रहणं जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति।** यद्यपि आत्व (३२६) की प्राप्ति जस् शस् परे रहते नहीं है परन्तु पूर्वमें जो सूत्रकारने एकमात्राका लाघव पाकरभी 'अष्टभ्यः' न पढकर 'अष्टाभ्यः' पढा इससे ही विदित हुआ जश् शस् परे रहते भी आत्व हो।

प्र० व० अष्टौ	तृ० व० अष्टाभिः	पं० ब० अष्टाभ्यः	स० व० अष्टासु। जब आत्व (३२६)
द्वि० व० अष्टौ	च० व० अष्टाभ्यः	ष० ब० अष्टानाम्	से न हुआ तब पञ्चन् वत् रूप जानने।

(३२८) ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च। ३। २। ५९॥

ऋत्विज्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, अञ्चु, युज्, क्रुञ्च्, एभ्यः क्विन्॥

ऋत्विज् (होम करनेवाला), दधृष् (धारण करनेवाला), स्रज् (माला), दिश् (दिशा), उष्णिह् (एक जातिका छन्द), अञ्चु (गति पूजा वाचक धातु), युज् (मिलना), क्रुञ्च (कुटिलता वा अनादर), इनसे कर्तृत्वपन करनेमें अर्थात् सिद्धिमें क्विन् प्रत्यय हो। **अञ्चेः सुप्युपपदे।** अञ्च धातुके पूर्वमें सुबन्त उपपद होय तो क्विन् प्रत्यय होय। **युजिक्रुञ्चोः केवलयोः।** युज् और क्रुञ्च् धातुमें केवलहीसे क्विन् प्रत्यय हो उपपदकी अपेक्षा नहीं रहती। **क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते।** क्रुञ्च धातुमें (३६३) से नकारका लोप नहीं

होता क्योंकि इसमें हल् ञ् है वही न के स्थानमें हुआ है। **कनावितौ।** क्विन् प्रत्ययमें (१९९) से क् की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ, नकारकी (९) से इत्संज्ञा होकर लोप हुआ. (३६) से इत् का लोप होकर शेष 'व्' रहा।

(३२९) कृदतिङ्। ३। १। ९३॥

अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्॥

तिङ् (४०८) छोडकर धातुके (८१७) इस अधिकारमें अर्थात् (**धातोः** ३। २। ९२) इसके अधिकारमें तिङ्भिन्न तीसरे अध्यायकी समाप्तितक जो प्रत्यय हैं वे कृदन्त संज्ञावाले हों।

(३३०) वेरपृक्तस्य। ६। १। ६७॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः॥

अपृक्त (१९८) वकारका लोप हो।

क्विन् प्रत्ययमेंसे जो वकार शेष रहा था उसका भी लोप हुआ कुछभी शेष न रहा परन्तु (३२९) से कृदन्त होनेसे (१२६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर विभक्तिके प्रत्यय आये ऋत्विज्+स्—

(३३१) क्विन्प्रत्ययस्य कुः। ८। २। ६२॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते॥

जिस शब्दसे परे क्विन् प्रत्यय हो उसको पदान्तमें कवर्ग अन्तादेश हो. यथा ऋत्विज् शब्दसे (३२८) क्विन् प्रत्यय हुआ उससे परे प्रथमाका एकवचन सुका स् प्रत्यय हलादि विभक्ति आई जकार चवर्गका तीसरा है उसके स्थानसे कवर्गका तीसरा ग् हुआ परन्तु यह सूत्र **(अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम्)** 'चोः कुः' सूत्रकी अपेक्षा असिद्ध है इस कारण कुत्वही होताहै (१६९) से विकल्प और (१९९) से सकारका लोप हुआ.

प्र०	ऋत्विक्—ग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः	**पं०**	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः	**ष०**	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः	**स०**	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु
च०	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः	**सं०**	हे ऋत्विक्-ग्	हेऋत्विजौ	हेऋत्विजः

युज् (मिलनेवाला) युज्+स्—

(३३२) युजेरसमासे। ७। १। ७१॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे।

समासको छोडकर युज् शब्दको सर्वनामस्थान परे रहते नुम्का आगम हो।

यु न् ज्+स् (१९९) से सकारका लोप (२९) से ज्का लोप (३२८) से क्विन् प्रत्यय (३३१) से न्के स्थानमें कवर्गका ङ् अन्तादेश हुआ ।

प्र०	युङ्	युञ्जौ[1]	युञ्जः	पं०	युजः	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
द्वि०	युञ्जम्	युञ्जौ	युजः	ष०	युजः	युजोः	युजाम्
तृ०	युजा	युग्भ्याम्[31]	युग्भिः	स०	युजि	युजोः	युक्षु[2]
च०	युजे	युग्भ्याम्	युग्भ्यः	सं०	हे युङ्	हे युञ्जौ	हे युञ्जः

असमासे किम् ? असमास क्यों कहा तो **सुयुक् सुयुग्** यहां नुम् नहीं होता यहां सुके साथ समास है ।

(३३३) चोः[६] कुः[९] । ८ । २ । ३० ॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

चवर्गको कवर्ग हो झल् प्रत्याहार परे रहते वा पदान्तमें ।

सुयुज् इसमें ज्के स्थानमें ग् हुआ और (९०) से ग्के स्थानमें क् हुआ (१६९) से विकल्प और सकारका लोप (१९९) से हुआ.

प्र०	सुयुक्-ग्	सुयुजौ	सुयुजः	पं०	सुयुजः	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भ्यः
द्वि०	सुयुजम्	सुयुजौ	सुयुजः	ष०	सुयुजः	सुयुजोः	सुयुजाम्
तृ०	सुयुजा	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भिः	स०	सुयुजि	सुयुजोः	सुयुक्षु
च०	सुयुजे	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भ्यः	सं०	हे सुयुक्-ग्	हे सुयुजौ	हे सुयुजः

खजि धातुमें (४९८) से इ इत् होकर उसका लोप और नुम्का आगम (३१६) से होता है, तब खन्ज् रूप हुआ खन्ज् (लूला) प्र० ख न् ज्+सु इसमें (७६) से नकारको ञकार हुआ तब खञ् ज्+सु (२६) से जकारका लोप जब जकार न रहा तो नकारको ञकार हुआथा सोभी न रहा कारण कि **'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः'** जब निमित्तका अभाव होताहै तब निमित्तके आश्रयीभूत कार्यका भी अभाव होजाताहै (३३३) की विधि (३९) से असिद्ध है (१९९) से सकारका लोप हुआ.

प्र०	खन्	खञ्जौ[७६]	खञ्जः	पं०	खञ्जः	खन्भ्याम्	खन्भ्यः
द्वि०	खञ्जम्	खञ्जौ	खञ्जः	ष०	खञ्जः	खञ्जोः	खञ्जाम्
तृ०	खञ्जा	खन्भ्याम्	खन्भिः	स०	खञ्जि	खञ्जोः	खन्सु
च०	खञ्जे	खन्भ्याम्	खन्भ्यः	सं०	हे खन्	हे खञ्जौ	हे खञ्जः

---

१ युज्+औ (३३२) से नुम्का आगम तब युनज्+औ (७६) से न्के स्थानमें ञ् हुआ ।

२ युज्+सु (३३१) से ज्के स्थानमें ग् (३२८) से क्विन् होकर सबका लोप (९०) से ग्-के स्थानमें क् (१५९) से स्के स्थानमें ष्, क् ष् मिलनेसे क्ष् हुआ.

राज् (दीप्तिमान्) प्र० राज्+स्-

(३३४) व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः । ८ । २ । ३६ ॥

व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

व्रश्च (छेदना) भ्रस्ज् (रांधना) सृज् (उत्पन्न करना), मृज् (मांजना), यज् (यज्ञ करना) राज् भ्राज् (शोभायमान वा प्रकाशमान) तथा छ् और श् जिसके अन्तमें आवें इन शब्दोंसे परे झल् अथवा पदान्त (हलादि विभक्ति) हो तो इन सबको ष् अन्तादेश हो ।

राज्में ज्के स्थानमें ष् हुआ (८२) से ष्के स्थानमें ड् (९०) से ड्के स्थानमें ट् हुआ (१६९) से विकल्प हुआ.

प्र०	राट्-ड्	राजौ	राजः	पं०	राजः	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
द्वि०	राजम्	राजौ	राजः	ष०	राजः	राजोः	राजाम्
तृ०	राजा	राड्भ्याम्	राड्भिः	स०	राजि	राजोः	राट्त्सु राट्सु
च०	राजे	राड्भ्याम्	राड्भ्यः	सं०	हे राट्-ड्	हे राजौ	हे राजः ::

(एवं) इसी प्रकारसे **विभ्राट्** (महाशोभायुक्त), **देवेट्** (देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेवाला) **विश्वसृट्** (जगत् उत्पन्न करनेवाला) इन शब्दोंके रूप जानने । विभ्राट् भ्राज् धातुके जकारको (९०) से टकार (१६९) से विकल्प ट्को ड् हुआ । **परिव्राज्** (संन्यासी जो सबको त्याग कर जाय)

(३३५) परौ व्रजेः षः पदान्ते ॥

परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि ॥

व्रज् धातु से पूर्व जब परि (४८) उपसर्ग होय तो व्रज् धातुसे क्विप् प्रत्यय हो व्र अन्तर्गत अ दीर्घ और पदान्त (हलादिविभक्ति) परे रहते षकारभी हो तब 'परिव्राष्' रूप हुआ (८२) से ष्के स्थानमें ड् के (१६९) से ड्के स्थानमें ट् विकल्प करके हुआ (३३४) से राज् शब्दके समान रूप जानने ।

(३३६) विश्वस्य वसुराटोः । ६ । ३ । १२८ ॥

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद् वसौ राट्शब्दे च परे ।

विश्व शब्दसे परे वसु तथा राट् (३३४) शब्द आवे तो दीर्घ अन्तादेश हो सूत्रमें यह राट् पदान्तका उपलक्षण होताहै कि जहां अन्तमें सिद्ध राट् शब्द हो वहां दीर्घ हो

प्र०	विश्वाराट्-ड्	विश्वराजौ	विश्वराजः
द्वि०	विश्वराजम्	विश्वराजौ	विश्वराजः
तृ०	विश्वराजा	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भिः
च०	विश्वराजे	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भ्यः
पं०	विश्वराजः	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भ्यः
ष०	विश्वराजः	विश्वराजोः	विश्वराजाम्
स०	विश्वराजि	विश्वराजोः	विश्वाराट्त्सु-विश्वाराट्सु
सं०	हे विश्वाराट्-ड्	हे विश्वराजौ	हे विश्वराजः

भ्रस्ज् (पकाना) प्र० भ्रस्ज्+स्–

(३३७) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च । ८ । २ । २९ ॥

पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्योः स्कोर्लोपः ॥

पदके अन्तमें वा झल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते जो संयोग है यदि तिसकी आदिमें सकार ककार हों तो उनका लोप हो । भ्रज्+स् रूप रहा । (३३४) से ज् के स्थानमें ष् (८२) से ष् के स्थानमें ड् हुआ (९०) तथा (१६९) से ड् के स्थानमें ट् विकल्प करके हुआ. (१९९) से सकारका लोप हुआ.

प्र०	भृट्-ड्	भृज्जौ	भृज्जः	पं०	भृज्जः	भृड्भ्याम्	भृड्भ्यः
द्वि०	भृज्जम्	भृज्जौ	भृज्जः	ष०	भृज्जः	भृज्जोः	भृज्जाम्
तृ०	भृज्जा	भृड्भ्याम्	भृड्भिः	स०	भृज्जि	भृज्जोः	भृट्त्सु-भृट्सु
च०	भृज्जे	भृड्भ्याम्	भृड्भ्यः	सं०	हे भृट्-ड्	हे भृज्जौ	हे भृज्जः

त्यद् शब्द (वह)

प्र० त्यद्+स् (२१३) से अ होकर (३००) से त्य रूप हुआ त्य+स्–

(३३८) तदोः सः सावनन्त्ययोः । ७ । २ । १०६ ॥

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ परे ॥

त्यदादि (२१३) के अन्तमें न होनेवाले तकार दकारसे सु प्रत्यय आवे तो त् द् के स्थानमें स् हो । सो अन्तमें न होनेवाले त् के स्थानमें स् हुआ स्य+स्–

---

१ (३३४) से हलादि विभक्तिका प्रत्यय आवे तो अन्तादेश ष् हो (८२, ९०, १६५) से द ड् हुए, अच् आदि विभक्ति आनेपर कुछ न्यूनाधिक नहीं होता इससे राज् रूप रहा तो विश्वमें श्व अन्तर्गत अकारको दीर्घ न हुवा.

२ (६७६) से रेफके स्थानमें संप्रसारण ऋकार हुआ तो भ्रको भृ हुआ.

३ (७६) से सके स्थानमें श् (२५) से शुको ज् हुआ.

प्र०	स्यः	त्यौ	त्ये	पं०	त्यस्मात्	त्याभ्याम्	त्येभ्यः
द्वि०	त्यम्	त्यौ	त्यान्	ष०	त्यस्य	त्ययोः	त्येषाम्
तृ०	त्येन	त्याभ्याम्	त्यैः	स०	त्यस्मिन्	त्ययोः	त्येषु
च०	त्यस्मै	त्याभ्याम्	त्येभ्यः				

तद् शब्द (वह) तद्+सु-

(२१३) से त् अ रूप हुआ (३००) से त रूप हुआ (३३८) से त् के स्थानमें सकार हुआ पुँल्लिङ्ग सर्ववत् रूप जानो ।

प्र०	सः	तौ	ते	पं०	तस्मात्-द्	ताभ्याम्	तेभ्यः
द्वि०	तम्	तौ	तान्	ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः	स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः				

यद् शब्द (जो)

(२१३) से य् अ रूप हुआ (३००) से य रूप हुआ उससे सु प्रत्ययका स् आया उसे विसर्ग होकर पुँल्लिङ्ग सर्वशब्दवत् रूप जानो । यः यौ ये इत्यादि-

एतद् शब्द (यह)

(२१३) तथा (३००) से एत रूप हुआ (३३८) से तके स्थानमें स् (१६९) से स् को ष् हुआ.

प्र०	एषः	एतौ	एते	पं०	एतस्मात्-द्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
द्वि०	एतम्	एतौ	एतान्	ष०	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
तृ०	एतेन	एताभ्याम्	एतैः	स०	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः		अन्वादेशमें एनम् एनौ एनान् एनेन एनयोः		

युष्मद् (तू) **अस्मद्** (मैं) शब्द । युष्मद्+सु, अस्मद्+सु इसमें-

(३३९) ङे प्रथमयोरम् । ७ । १ । २८ ॥

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः ॥

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दसे परे प्रथमा द्वितीया विभक्तिके सब प्रत्यय और चतुर्थीके ङे प्रत्ययके स्थानमें अम् आदेश हो.

प्रथमा । युष्मद्+अम् । अस्मद्+अम्-

(३४०) त्वाहौ सौ । ७ । २ । ९४ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः सौ परे ।

युष्मद् अस्मद् शब्दके मपर्यन्तभागको त्व तथा अह आदेश अनुक्रमसे हों । युष्म्+अद्+अम्=त्व+अद्+अम् । अस्म्+अद्+अम्=अह+अद्+अम् (३००) से त्वद्+अम् (३००) से अहद्+अम्–

(३४१) शेषे लोपः । ७ । २ । ९० ॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतः युष्मदस्मदोः अन्त्यस्य लोपः ।

आत्व (३४३) यत्व (३४८) निमित्तसे अन्य विभक्ति प्रत्यय आवे तो युष्मद् अस्मद् शब्दोंके अन्तका लोप हो । अ (३००) से पररूपको प्राप्त हुवा द् शेष रहा उसका लोप हुआ त्व+अम् । तथा अह+अम् रूप हुआ (१९४) से त्वम् तथा अहम् प्रथमाके एकवचनमें सिद्ध हुए प्र० द्वि० युष्मद्+औ । अस्मद्+औ । युष्मद्+अम् अस्मद्+अम्–

(३४२) युवावौ द्विवचने । ७ । २ । ९२ ॥

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे सातों विभक्तियोंके द्विवचनके प्रत्यय आवें तो उनके मपर्यन्त भागको क्रमसे युव और आव आदेश हों । युव+अद्+अम् । आव+अद्+अम् । युवद् (३००) +अम् । आवद् (३००)+अम्–

(३४३) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् । ७ । २ । ८८ ॥

औङ्येतयोरात्वं लोके ।

प्रथमाके द्विवचन परे रहते युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंको आकार हो लोकमें अर्थात् वेदमें न हो । युव+आ+अम्=युवाम् (१९४) आव+आ+अम्=आवाम् । प्र० बहु० युष्मद्+अम् (३३९) (जस्) । अस्मद्+अम् (३३९) (जस्)—

(३४४) यूयवयौ जसि । ७ । २ । ९३ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो जसि ।

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंके मपर्यन्त भागको यूय और वय आदेश हों जस् परे रहते । यूय+अद्+अम् । वय+अद्+अम् । यूयद् (३००) + अम् । वयद् (३००)+अम् (३४१) से दकारका लोप और (३००) से यूयम् । वयम् । द्वि० एक० युष्मद्+अम् । अस्मद्+अम्—

(३४५) त्वमावेकवचने । ७ । २ । ९७ ॥

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे एकवाचक विभक्ति परे रहते उनके मपर्यन्तभागको त्व म आदेश हों । त्व+अद्+अम् । म+अद्+अम् । त्वद् (३००)+अम् । मद् (३००)+अम् (३४१) से दकारका लोप त्व+अम् । म+अम्—

(३४६) द्वितीयायाँ च । ७ । २ । ८७ ॥

अनयोः आकारोऽन्तादेशः स्यात् द्वितीयायाम् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे द्वितीया विभक्ति आवे तो उन शब्दोंको आकार अन्तादेश हो, त्वा+अम्=त्वाम् (१९४) और मा+अम्=माम् । द्वि० द्वि० युवाम् । आवाम् । द्वि० ब० युष्मद्+शस् । अस्मद्+शस्—

(३४७) शसो न । ७ । १ । २९ ॥

आभ्यां शसो नः स्यात् अमोऽपवादः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे शस्के स्थानमें (३३९) से प्राप्त हुए अम्का बाधक न् हो शस्का अस् (१९९) से रहा (८७, ८८) से अके स्थानमें न् हुआ युष्मद्+न्स् । अस्मद् + न्स् (३४१) से द्का लोप (३४६) से म अन्तर्गत अको आत्व हुआ (२६) से सकारका लोप होकर युष्मान् अस्मान् सिद्ध हुए । तृ० ए० युष्मद्+आ । अस्मद्+आ । (३४५) से त्व म आदेश त्व+अद्+आ । म+अद्+आ त्वद् (३००)+आ । मद् (३००)+आ—

(३४८) योऽचि । ७ । २ । ८९ ॥

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे जिसको कुछ आदेश नहीं हुआ ऐसी अजादि विभक्ति आवे तो युष्मद् अस्मद् शब्दोंको यकार आदेश हो (२७) से द्के स्थानमें य् आदेश होकर त्वय्+आ=त्वया । मय्+आ=मया ।

तृ० द्वि० युष्मद्+भ्याम् । अस्मद्+भ्याम्=युव+अद्+भ्याम् । आव+अद्+भ्याम् । युवद् (३००)+भ्याम् । आवद् (३००)+भ्याम्—

(३४९) युष्मदस्मदोरनादेशे । ७ । २ । ८६ ॥

अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे विना आदेशकी हलादिविभक्ति आवे तो उन शब्दोंको आकार आदेश हो । (३४२) से युव+आ+भ्याम्=युवाभ्याम् । आव+आ+भ्याम्=आवाभ्याम् ।

तृ० व० युष्मद्+भिः। अस्मद्+भिः (३४९) से द्के स्थानमें आ आदेश हुआ। युष्माभिः। अस्माभिः च० ए० युष्मद्+ङे। अस्मद्+ङे—

(३५०) तुभ्यमह्यौ ङयि। ७।२।९५॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यावेतावादेशौ स्तो ङयि।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे ङे प्रत्यय आवे तो मपर्यंत उन शब्दोंको क्रमसे तुभ्य और मह्य आदेश हों। तुभ्य+अद्+ङे। मह्य+अद्+ङे=तुभ्यद् (३००)+ङे। मह्यद् (३००)+ङे (३४१) से दका लोप (३३९) से ङेके स्थानमें अम् आदेश हुआ। तुभ्य+अम् तुभ्यम्। मह्य+अम्=मह्यम्। च० द्वि० युवाभ्याम् (३४९) आवाभ्याम्। च० व० युष्मद्+भ्यस्। अस्मद्+भ्यस्—

(३५१) भ्यसोऽभ्यम्[१]। ७।१।३०॥

आभ्याम् परस्य भ्यसः भ्यम् अभ्यम् वा आदेशः स्यात्।

युष्मद् अस्मद् शब्दसे परे भ्यस् प्रत्यय आवे तो भ्यस्के स्थानमें भ्यम् अथवा अभ्यम् आदेश हो (३४१) से अद्का लोप किया अभ्यम् आदेश हुआ द्का लोप किया (३००)से अ अन्तर्गत अ पररूप हुआ और (३४१) से दका लोप किया तो भ्यम् आदेश हुआ. युष्मभ्यम् अस्मभ्यम्। पं० ए० युष्मद्+ङसि। अस्मद्+ङसि—

(३५२) एकवचनस्य च। ७।१।३२॥

आभ्यां ङसेरत् स्यात्।

युष्मद् अस्मद् शब्दसे परे ङसि प्रत्यय आवे तो प्रत्ययके स्थानमें अत् आदेश हो (३४९) मपर्यन्तके त्व और म आदेश हुआ, त्व+अद्+अत्। म+अद्+अत्। त्वद् (३००)+अत्। मद् (३००)+अत् (३४१) से द्का लोप हुआ तो त्वत् मत् (३००) पं० द्वि० युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। पं० व० युष्मद्+भ्यस्। अस्मद्+भ्यस्—

(३५३) पञ्चम्या अत्[१]। ७।१।३१॥

आभ्यां पंचम्या भ्यसोऽत्स्यात्।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे पंचमीका भ्यस् प्रत्यय आवे तो भ्यस्के स्थानमें अत् आदेश हो। युष्मद्+अत्। अस्मद्+अत् (३४१) से द्का लोप=युष्मत्। अस्मत्। ष० ए० युष्मद्+ङस्। अस्मद्+ङस्—

१–अंक (३४१) में म–तक आदेश हुए पीछेके शेषका लोप देखा जाताहै तिसमें अकार सहित मकारके स्थानमें आदेश करनेमें आवै तो द शेष रहता है और म् हलन्ततक आदेश किया जावे तो अद् शेष रहताहै और (३००) के अनुसार अकारका पररूप होतेही शेष रहता उसका लोप होताहै.

(३५४) तवममौ ङसि । ७ । २ । ९६ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे ङस् आवे तो इन शब्दोंके मपर्यंत भागको तव मम आदेश हों तव+अद्+ङस् । मम+अद्+ङस्=तवद् (३००)+ङस् । ममद् (३००)+ङस् । तव (३४१)+ङस् । मम (३४१)+ङस्-

(३५५) युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् । ७ । १ । २७ ॥

अनयोः परस्य ङसः अश् आदेशः स्यात् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे ङस् आवे तो ङस्के स्थानमें अश् आदेश हो । तव+अश् । मम+अश् (९-६) श् का लोप (३००) से वमके अन्तर्गत अकारको पररूप हुआ तव ष० ए० तव, मम रूप हुये । युष्मद्+ओः । अस्मद्+ओः । (३४२) से मपर्यन्त युवको आव आदेश हुआ तव युव+अद्+ओः । आव+अद्+ओः-युवद् (३००)+ओः । आवद् (३००)+ओः (३४८) द्के स्थानमें य् हुआ तब युवय्+ओः=युवयोः । आवय् +ओः=आवयोः । ष० व० युष्मद्+आम् । अस्मद्+आम् (३४१) से द्का लोप (१७४) से (सुट्) स् आम्के पूर्व हुआ । युष्म+स्+आम्=युष्म+साम् । अस्म+स्+आम्= अस्म+साम्—

(३५६) साम आकम् । ७ । १ । ३३ ॥

आभ्यां परस्य साम आकं स्यात् ।

भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थं ससुट्कनिर्देशः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे साम् आवे अर्थात् विद्यमान जो आम् और भविष्यत् जो सुट् उसके स्थानमें आकम् आदेश हो । होनेवाला सुट् न हो इसलिये सुट् सहित (साम्) कहा ष० व०युष्म+आकम्=युष्माकम् । अस्म+आकम्=अस्माकम् । स० ए० युष्मद्+इ । अस्मद्+इ (३४९) से मपर्यन्त त्व, म, आदेश यथा-त्व+अद्+इ । म+अद्+इ । त्वद् (३००)+इ मद् (३००)+इ(३४८)से द्के स्थानमें य् । त्वय्+इ=त्वयि । मय्+इ=मयि । स० द्वि० युवयोः । आवयोः । स० व० युष्मद्+सु । अस्मद्+सु । (३०१) से द्का लोप (३४९) म अन्तर्गत अकारको आकार हुआ तब युष्मा+सु=युष्मासु । अस्मा+सु=अस्मासु सिद्ध हुए ।

(३५७)युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ।८।१।२०॥

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोरनयो- र्वान्नावौ इत्यादेशौ स्तः ।

जब युष्मद् अस्मद् शब्द किसी पदसे परे हों परन्तु किसी श्लोकके चरण (पाद) के आदिमें न हों षष्ठी चतुर्थी और द्वितीया युक्त हों तो उन शब्दोंके स्थानमें वाम् और नौ आदेश हों । यह सूत्र नीचे लिखे तीन सूत्रोंसे बाधित होकर केवल द्विवचनमें ही लगता है ।

(३५८) बहुवचनस्य वस्नसौ । ८ । १ । २१ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ।

वान्नावोरपवादः । (३५७) विधिमें षष्ठी आदि बहुवचन युक्त युष्मद् अस्मद् शब्द हों तो उनके स्थानमें वस् और नस् आदेश हों अर्थात् जो षष्ठी आदिमें सब वचनोंको (३५७) वाम् और नौ कहा था यह उसका अपवाद है कि द्वितीया चतुर्थी और षष्ठीके बहुवचनमें वस् नस् हों ।

(३५९) तेमयावेकवचनस्य । ८ । १ । २२ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः ।

(३५७) में कहे विधिमें युष्मद् अस्मद् शब्द षष्ठी चतुर्थी और द्वितीयाके एकवचन युक्त हों तो इनको वस् नस् आदेश हों ।

(३६०) त्वामौ द्वितीयायाः । ८ । १ । २३ ॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः ।

(३५७) में कहे विधिके विषयमें युष्मद् अस्मद् शब्द द्वितीयाके एकवचनयुक्त होंय तो उनको क्रमसे त्वा, मा आदेश हों (३५७ से ३६०) तकका उदाहरण.

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ॥
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥ १ ॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ॥
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥ २ ॥

(श्रीशः) लक्ष्मीके स्वामी, (त्वा) तुझको, (मा) मुझको, (अवतु) रक्षा करे, (इह) यहां, (ते) तुझे, (मे) मुझे, (शर्म) सुख, (दत्तात्) दे, (सः) वह, (हरिः) नारायण, (ते) तेरा, (मे) मेरा, (स्वामी) स्वामी है । (विभुः) वह सामर्थ्यवान् ईश्वर, (वां) तुम दोनोंको, (नौ) हम दोनोंको, (पातु) पालन करै ॥ १ ॥

(ईशः) ईश्वर, (वां) तुम दोनोंको, (नौ) हम दोनोंको, (सुखं) सुख, (ददातु) दे, (हरिः) ईश्वर, (वां) तुम दोनोंका, (नौ) हम दोनोंका, (पतिः) स्वामी है । (सः) वह, (वः) तुमको, (न) हमको, (अव्यात्) पाले, और (वः) तुमको, (नः) हमको, (शिवम्) कल्याण, (दद्यात्) देवै, (अत्र) यहाँ, (वः) तुम्हारे, (नः) हमारे, (सः) वह, (सेव्यः) सेवा करनेयोग्य है ॥ २ ॥ इन श्लोकोंमें ऊपर लिखे जो जो आदेश हुए हैं उनके नीचे (–) ऐसा चिह्नकर दिया है ।

(३६१) एकवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंको जो आदेश (३५७,से ३६० तक) कहे हैं सो एकवाक्यमेंही हों । **एकतिङ् वाक्यम्** । जिसमें एक क्रिया मुख्य हो उसको वाक्य कहते हैं । यथा **शालीनां ते**

ओदनं दास्यामि । मैं (ते) तुझे चावलोंका भात दूंगा, यहां एक क्रिया होनेसे । (ते) आदेश हुआ । **ओदनं पच, तव भविष्यति ।** (चावल पकाओ, तेरा होगा) यहां पर वाक्य नहीं है । **तेनेह न ।** इस कारण यहां आदेश न हुआ कारण कि 'पच' और 'भविष्यति' इसमें दो क्रिया हैं । **एते वांनावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः ।** जहां अन्वादेश नहीं होता वहां तो यह आदेश विकल्प करके हों परन्तु । **अन्वादेशे तु नित्यं स्युः ।** अन्वादेश (३०६) में यह आदेश नित्य हों । यथा **धाता ते भक्तोस्ति धाता तव भक्तोस्ति ।** (ब्रह्मा तुम्हारा भक्त है) । ऊपरके वाक्यमें 'अस्ति' क्रियापद है इससे वह वाक्य है इसकारण विकल्प करके तवके स्थानमें ते आदेश हुआ । **तस्मै ते नमः** (तस्मै) तिस (ते) तेरे निमित्त (नमः) नमस्कार है यहां तस्मैके उपरान्त ते आनेसे अन्वादेश हुआ तव तवके स्थानमें नित्य ते हुआ ।

सुपाद् शब्द (जिसके श्रेष्ठ चरण हों)

प्र० सुपाद्-त् (१६९) सुपादौ । सुपादः । **द्वि०** सुपादम् सुपादौ सुपाद्+अस्—

(३६२) पादः पत् । ६ । ४ । १३० ॥

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः स्यात् ।

जिसके अन्तमें पाद् शब्द हो ऐसे भसंज्ञक (१८९) अंगके अवयव पाद् शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो । सुपद्+अस्=सुपदः ।

तृ०	सुपदा	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भिः	**ष०**	सुपदः	सुपदोः	सुपदाम्
च०	सुपदे	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भ्यः	**स०**	सुपदि	सुपदोः	सुपात्सु
पं०	सुपदः	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भ्यः	**सं०**	हे सुपाद्-त्	हे सुपादौ	हे सुपादः

अग्निमथ् शब्द (अग्नि मथनेहारा)

प्र० अग्निमथ्+स् (१९९) से सकारका लोप (८२) से थ्के स्थानमें द् (१६९) से द्के स्थानमें विकल्प करके त् हुआ.

प्र०	अग्निमद्-त्	अग्निमथौ	अग्निमथः	**पं०**	अग्निमथः	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः
द्वि०	अग्निमथम्	अग्निमथौ	अग्निमथः	**ष०**	अग्निमथः	अग्निमथोः	अग्निमथाम्
तृ०	अग्निमथा	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भिः	**स०**	अग्निमथि	अग्निमथोः	अग्निमत्सु
च०	अग्निमथे	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः	**सं०**	हे अग्निमद्-त्	हे अग्निमथौ	हे अग्निमथः

प्र-अन्च् (प्र+अन्च) (पूर्व दिशा) ।

(३६३) अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति । ६ । ४ । २४ ॥

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति ।

हलन्त अंग जो इदित् न हो अर्थात् जिसके इकारकी इत् संज्ञा न हुई हो तिस अंगकी उपधा (१९६) के नकारका लोप हो कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते । (३२८) से

कर्तृत्व करनेमें क्विन् प्रत्यय होकर फिर प्र अन्च् मेंसे नकारका लोप होकर प्रअच् रहा (३१६) से नुम्का आगम होकर (२६९) से प्र अन् च् हुआ (१९९) से सुके सकारका लोप (२६) से च्का लोप (३३१) से न्को ङ् और (९९) से प्र अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ ।

प्र० प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः । द्वि० प्राञ्चम् प्राञ्चौ । प्राञ्चौ में न् पदान्त न था इससे (३३१) से नके स्थानमें ङ् न हुआ. (७६) से ञ् हुआ । प्र अन्च्+शस् (३६३) से अच्+अस्—

(३६४) अचः । ६ । ४ । १३८ ॥

लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः ।

अञ्च् धातुके नकारका लोप हुआ होय तो उसके भसंज्ञक (१८९) अकारका लोप हो. प्रच्+अस्—

(३६५) चौ । ६ । ३ । १३८ ॥

लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः ॥

अञ्च् धातुके अकार नकारका लोप हुआ होय तो उसके पूर्व अण् (अ इ उ) को दीर्घ हो प्राच्+अस्=प्राचः ।

तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः	ष० प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः	स० प्राचि	प्राचोः	३३३,८२,प्राक्षु
पं०	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः	सं० हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

प्रत्यङ् (प्रति अञ्च्) शब्द (पश्चिम दिशा)

प्र०	३६३ प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः	पं० प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः	ष० प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
तृ०	३६५ प्रतीचा	२५ ३३३ प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः	स० प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु
च०	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः	सं० हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्चः

उदङ् (उद्+अञ्च्) शब्द (उत्तर दिशा).

प्र० उदङ् उदञ्चौ उदञ्चः । द्वि० उदञ्चम् उदञ्चौ । उद् अन् च्+अस् (शस्) (३६३) से नका लोप तब उद् अच्+अस्—

(३६६) उद ईत् । ६ । ४ । १३९ ॥

उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकाराञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् ।

उद् शब्दसे परे नकार लोप हुआ है जिसका ऐसी अञ्च् धातु भसंज्ञक (१८९) के अका स्थानमें ईत् आदेश हो. उद्+ईच्+अस्=उदीचः ।

तृ० उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः	ष० उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
च० उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः	स० उदीचि	उदीचोः	उदक्षु
पं० उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः	सं० हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः

सम् अन् च् (३२८) से क्विन् (०) प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्र० ए० सु आया सम् अन् च्+सु-

(३६७) समः समि[१] । ६ । ३ । ९३ ॥

अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ ॥

अप्रत्यय (अर्थात् जब अञ्च् धातुसे परे प्रत्यय न हो) और सम्‌से परे अञ्चु धातु हो तो सम्के स्थानमें समि आदेश हो । समि अन् च्+सु (३६३) से न्का लोप । (३१६) से नुम् (२६) से च्का लोप होकर समि+अन् रूप होकर (२१) से सम्यन् हुआ (३३१) से न्के स्थानमें ङ् हुआ-

प्र० सम्यङ्	सम्यञ्चौ	सम्यञ्चः	पं० समीचः	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
द्वि० सम्यञ्चम्	सम्यञ्चौ	समीचः	ष० समीचः	समीचोः	समीचाम्
तृ० समीचा[३६५]	सम्यग्भ्याम्[३३३]	सम्यग्भिः	स० समीचि	समीचोः	सम्यक्षु
च० समीचे	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः	सं० हे सम्यङ्	हे सम्यञ्चौ	हे सम्यञ्चः

सह अन् च् शब्द (साथ चलनेवाला)

(३६८) सहस्य सध्रिः । ६ । ३ । ९५ ॥

अप्रत्ययेऽञ्चतौ परे सहस्य सध्रिः आदेशः स्यात् ।

सहसे परे प्रत्ययरहित अञ्चु धातु आवे तो सहके स्थानमें सध्रि आदेश हो । सध्रि अन् च् (३६७) सम्यङ् शब्दके समान रूप हुए ।

प्र० सध्र्यङ्	सध्र्यञ्चौ	सध्र्यञ्चः	पं० सध्रीचः	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः
द्वि० सध्र्यञ्चम्	सध्र्यञ्चौ	सध्रीचः	ष० सध्रीचः	सध्रीचोः	सध्रीचाम्
तृ० सध्रीचा	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भिः	स० सध्रीचि	सध्रीचोः	सध्र्यक्षुः
च० सध्रीचे	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः	सं० हे सध्र्यङ्	हे सध्र्यञ्चौ	सध्र्यञ्चः

तिरस् अन् च् (तिरछी गतिवाला)

(३६९) तिरसस्तिर्यलोपे । ६ । ३ । ९४ ॥

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ अप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः ।

जिसके अकारका लोप (३६४) से नहीं हुआ और जिसके अन्तमें प्रत्यय नहीं ऐसे अन् च् धातुके परे तिरसके स्थानमें तिरि आदेश हो । तिरि अन् च्+स--

(१९९) से स्का लोप (३६७) की सब विधि (३६३) से न्का लोप (३१६) से नुम् (२६) से चकारका लोप रि अन्तर्गत इको य् (२१) हुआ (३३१) से न्के स्थानमें ङ् हुआ.

प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः	पं०	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः	ष०	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः	स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः	सं०	हे तिर्यङ्	हे तिर्यञ्चौ	हे तिर्यञ्चः

प्र अन्च् (पूजावाचक अन्च् धातु)

(३७०) नाञ्चेः पूजायाम् । ६ । ४ । ३० ॥

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न ॥

पूजा अर्थवाले अन्च् धातुके उपधाभूत नकारका (३६३) से लोप न हो (१९९) से स्–का लोप (२६) से चकारका लोप (३३१) से न्के स्थानमें ङ् (९९) से प्र अन्तर्गत अकारको आकार हुआ.

प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	पं०	प्राञ्चः	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	ष०	प्राञ्चः	प्राञ्चोः	प्राञ्चाम्
तृ०	प्राञ्चा	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भिः	स०	प्राञ्चि	प्राञ्चोः	प्राङ्षु-क्षु
च०	प्राञ्चे	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः	सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः । इसी प्रकार प्रत्यङ् आदि पूजार्थ अञ्च् धातुके शब्दोंके रूप जानने. (यथा–सम्यङ् सध्र्यङ् और तिर्यङ्)

क्रुन्च् (कुटिलगामी)

प्र०	क्रुङ्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः	पं०	क्रुञ्चः	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः
द्वि०	क्रुञ्चम्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः	ष०	क्रुञ्चः	क्रुञ्चोः	क्रुञ्चाम्
तृ०	क्रुञ्चा	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भिः	स०	क्रुञ्चि	क्रुञ्चोः	क्रुङ्षु-क्षु
च०	क्रुञ्चे	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः	सं०	हे क्रुङ्	हे क्रुञ्चौ	हे क्रुञ्चः

१–(१६४) से अकारका लोप होनेसे तिरि आदेश (३६९) से न हुआ । २–(१८५) से भसंज्ञा न हुई इससे अकारका लोप न हुआ तो (३६९) की विधि लगी । ३–(नलोपाभावादलोपो न) (३६४) से नकारका लोप न हुवा तो अकाभी न हुआ तव (७६) से न्को ञ् हुवा । ४–(२६) से च्का लोप (३३३) से न् के स्थानमें ङ् हुवा । ५–(२६) च्का लोप (३३३) से न्के स्थानमें ङ् (१०४) से कुक्का आगम विकल्पकरके हुवा (१५९) से सुके स्थानमें षु हुवा क मिलकर क्षु हुवा ।

पयोमुच् शब्द (मेघ)

(३३३) से च्के स्थानमें क् (१६९) से क्के स्थानमें विकल्पकरके ग् हुआ.

प्र०	पयोमुक्-ग्	पयोमुचौ	पयोमुचः	पं०	पयोमुचः	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः	ष०	पयोमुचः	पयोमुचोः	पयोमुचाम्
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः	स०	पयोमुचि	पयोमुचोः	पयोमुक्षु
च०	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः	सं०	हे पयोमुक्-ग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः

महत् (मह + तृ) शब्द (बडा)

पृषत् महत् बृहत् और जगत् इन शब्दोंको शतृप्रत्ययान्त कार्य होता है. शतृमेंसे श् और ऋका लोप होकर अत् बाकी रहा तब मह+अत्=महत्. महत्+स् (१९९) से स्का लोप (३१६) से नुम् हुआ (२६) से त्का लोप होकर महन् हुआ.

(३७१) सान्तमहतः संयोगस्य । ६ । ४ । १० ॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे ॥

सम्बुद्धिरहित सर्वनामस्थान परे रहते सान्तसंयोग और महत्शब्दके नकारकी उपधाको दीर्घ हो इससे ह अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ.

प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः	पं०	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः	ष०	महतः	महतोः	महताम्
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः	स०	महति	महतोः	महत्सु
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः	सं०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः

धीमत् शब्द (बुद्धिमान्) धीमत्+सु-

(३७२) अत्वसन्तस्य चाधातोः ६ । ४ । १४ ॥

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासंबुद्धौ सौ परे ॥

अत् जिसके अन्तमें होय ऐसा शब्द तथा धातुको छोडकर अस् जिस शब्दके अन्तमें होय तिन शब्दोंसे परे संबुद्धिभिन्न सु प्रत्यय आवे तो तिनकी उपधाको दीर्घ हो.

धीसे मतुप् करनेसे धीमत् शब्द हुआ इससे परे प्रथमा विभक्तिका सु प्रत्यय आया (३१६) से नुम्का न् आगम मकार अन्तर्गत मकारसे परे हुआ (१९९) सुके शेष भाग सकारका लोप हुआ (२६) से त्का लोप (३७२) से म अन्तर्गत अकारकी उपधाको दीर्घ हुआ तब धीमान् रूप सिद्ध हुआ. शेष रूप महत् (३७१) शब्दके समान जानो.

मा धातुसे परे डवतु होकर (२६७) से मा अन्तर्गत टिसंज्ञक आकारका लोप हुआ, डवतुमें से अवत् रहा तब (३७२, ३१६, १९९, २६) से भवान् (आप) रूप सिद्ध हुआ, जो भवत् शब्द शतृ (८८३) प्रत्ययान्त होय तो उसकी उपधाको दीर्घ न हो तब भवन् रूप होगा. शेष रूप महत् शब्दके समान जानो । ददत्+सु–

(३७३) उभे अभ्यस्तम् । ६ । १ । ५ ॥

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः ।

अष्टाध्यायीके छठे अध्यायमें जो द्वित्वप्रकरण कहा है अर्थात् जो किसी सूत्रसे द्वित्व हुआ है उससे पूर्व तथा उत्तर रूपकी अभ्यस्त संज्ञा हो अर्थात् दोनों इकट्ठाकी अभ्यस्त संज्ञा हो ।

(३७४) नाभ्यस्ताच्छतुः । ७ । १ । ७८ ॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न स्यात् ।

अभ्यस्तसंज्ञकसे परे शतृ प्रत्यय आवे तो नुम् (३१६) का आगम न हो. दा धातुसे शतृ प्रत्यय आया तब उसको द्वित्व होकर ददत् रूप हुआ.

ददत् (दान देनेवाला)

प्र०	ददत्–द्	ददतौ	ददतः	पं०	ददतः	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
द्वि०	ददतम्	ददतौ	ददतः	ष०	ददतः	ददतोः	ददताम्
तृ०	ददता	ददद्भ्याम्	ददद्भिः	स०	ददति	ददतोः	ददत्सु
च०	ददते	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः	सं०	हे ददत्-द्	हे ददतौ	हे ददतः

(३७५) जक्षित्यादयः षट् । ६ । १ । ६ । ॥

षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः ।

छः धातु अन्य और सातवां जक्षिति (जक्ष्) इन सबकी अभ्यस्त संज्ञा हो । जक्षत् (खानेवाला) जाग्रत् (जागनेवाला) दरिद्रत् (कंगालीवाला) शासत् (शिक्षा करनेवाला) चकासत् (प्रकाश पानेवाला) इन सब शब्दोंके रूप ददत्के समान जानने । जक्षत् जक्षद्, जक्षतौ जक्षतः । जक्षत्सु । गुपू (छिपानेवाला) इसके रूप ददत् शब्दके समान जानने- गुप् गुब् गुपौ गुपः । हलादि विभक्ति (८२) से प्के स्थानमें ब् हुआ गुब्भ्याम् इत्यादि । **तादृश्** (उस सरीखा) ।

(३७६) त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च ।३।२। ६०॥

त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद्दृशेः कञ् चात् क्विन् ॥

त्यद् आदि सर्वनाम (१७०) शब्द अज्ञानार्थ दृश् धातुके उपपदमें होय तो दृश् धातुसे परे कञ् अथवा क्विन् प्रत्यय हो.

तद्+दृश्+कञ्+अथवा क्विन् प्रत्ययका सर्वापहारी लोप हुआ ।

(३७७) आ सर्वनाम्नः । ६ । ३ । ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद्दृग्दृशवतुषु ।

सर्वनामसंज्ञक शब्दोंसे परे दृग् दृश् शब्द और वतु प्रत्यय आवे तो उसे आकार अन्तादेश हो ।

तद्+दृश्=तादृश (२७ । ९९) तादृश्+सु (१९९, ३३४, ८२, ३३१, १६९)

प्र०	तादृक्-ग्	तादृशौ	तादृशः	पं० तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः	ष० तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	स० तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु
च०	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः	सं० हे तादृक्-ग्	हे तादृशौ	हे तादृशः

व्रश्चेतिषः । जश्त्वचर्त्वे । विश् शब्द (प्रवेश करनेवाला) विश्+सु—

(३३४) ष् अन्तादेश हुआ. (८२, १६९) से विड् विट् ।

प्र०	विट्-ड्	विशौ	विशः	पं० विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
द्वि०	विशम्	विशौ	विशः	ष० विशः	विशोः	विशाम्
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः	स० विशि	विशोः	विट्सु-त्सु
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः	सं० हे विट्-ड्	हे विशौ	हे विशः

नश् (नाश पानेवाला) ।

(३७८) नशेर्वा । ८ । २ । ६३ ॥

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते ।

पदान्तके विषे नश् को कवर्ग अन्तादेश विकल्प करके हो ।

प्र०	नक्-ग्-नड्-ट् (३३४, ८२, १६९)	नशौ	नशः	पं० नशः	नड्-ग्-भ्याम्	नड्-ग्-भ्यः
द्वि०	नशम्	नशौ	नशः	ष० नशः	नशोः	नशाम्
तृ०	नशा	नड्-ग्-भ्याम्	नड्-ग्-भिः	स० नशि	नशोः	नक्षु-नट्सु-त्सु
च०	नशे	नड्-ग्-भ्याम्	नड्-ग्-भ्यः	सं० हे नक्-ग्-नड्-ट्		हे नशौ हे नशः

घृतस्पृश् शब्द (घीका स्पर्श करनेवाला)

घृतस्पृश्+सु—

(३७९) स्पृशोऽनुदके क्विन् । ३ । २ । ५८ ॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् ।

स्पृस् शब्दसे उदक रहित सुबन्त उपपद आवे तो उससे परे क्विन् प्रत्यय हो । क्विन् प्रत्ययका सर्वापहारी लोप होकर (३३१) से कवर्ग और (१९९) से सुका लोप हुआ ।

प्र० घृतस्पृक्-ग् घृतस्पृशौ घृतस्पृशः । **तृ०च०पं०**घृतस्पृग्भ्याम् **स०** व० घृतस्पृक्षु । शेष रूप नश्की समान जानो । **दधृष्** (धारण करनेवाला) **प्र०** ए० दधृक् (१९९, ३२८, ३३१,) दधृग् **तृ० च० पं०** दधृग्भ्याम् (८२) **स०** ब० दधृक्षु ।

रत्नमुष् शब्द (रत्न चुरानेवाला.)

प्र० ए० रत्नमुड्-ट् (१९९, ८२, १६९) रत्नमुषौ रत्नमुषः । **तृ० च० पं०** रत्नमुड्भ्याम्. **स०** व० रत्नमुट्सु रत्नमुट्त्सु ।

षष् (छठा.)

(३२४, २०८, ८२, १६९) से **प्र० द्वि०** ब० षट्-ड् । **तृ०** व० षड्भिः।**च०पं०** व० षड्भ्यः । **ष०** व० षण्णाम् (२९१,८२,७८,८४) **स०** ब० षट्सु षट्त्सु (८२,९०)

पिपठिस् शब्द (पढनेकी इच्छा करनेवाला)

रुत्वं प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्वात् ससजुषोरुरिति रुत्वम् । पिपठिस् इसमें (१६९) से सन् प्रत्ययके स्के स्थानमें ष् होताहै परन्तु (१२४) से स्के स्थानमें र् हुआ, कारण कि इस सूत्रसे ष् असिद्ध है तब पिपठिर् हुआ—

(३८०) र्वोरुपधाया दीर्घ इकः । ८ । २ । ७६ ॥

रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते ।

रकार वकार जिसके अन्तमें होय ऐसे धातुके उपधाभूत इक् प्रत्याहारको पदान्तमें दीर्घहो. । टिअन्तर्गत इ दीर्घ हुई तब पिपठीर् रूप हुआ—

प्र०	पिपठीः[१९९ १११]	पिपठिषौ	पिपठिषः	**पं०**	पिपठिषः	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
द्वि०	पिपठिषम्	पिपठिषौ	पिपठिषः	**ष०**	पिपठिषः	पिपठिषोः	पिपठिषाम्
तृ०	पिपठिषा	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भिः	**स०**	पिपठिषि	पिपठिषोः	पिपठीस्सु
च०	पिपठिषे	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः		(३८०, १२४, १११)—		

(३८१) नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ ॥

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः ।

नुम् विसर्ग और शर्प्रत्याहार इनके व्यवधानमें भी इण् अथवा कवर्गसे परे षकार आवे तो उसके स्थानमें षकार हो । पिपठीःषु विसर्ग (१२३) से विकल्प करके हुआ. जब न हुआ तब स् रहा उसके स्थानमें (७८) से ष् हुआ—पीपठीष्षु ।

सं० हे पिपठीः हे पिपठिषौ हे पिपठिषः

चिकीर्ष् (करनेकी इच्छा करनेवाला)

प्र० ए० चिकीर्स्+सु (१६९) से स्के स्थानमें ष् प्राप्त हुआ परन्तु (३९) से असिद्ध हुआ (१९९) से स्का लोप (२६ और २३०) से पहले सकारका लोप

(१११) से र्‌को विसर्ग चिकीः चिकीर्षौ चिकीर्षः । शेषरूप पिपठिस् शब्दके समान जानने परन्तु सप्तमीका बहुवचन सुप् प्रत्यय आवे तो स्‌का लोप (२३०) से हुआ परन्तु रेफको विसर्ग (२९४) से न हुआ इससे चिकीर्षु रूप रहा ।

विद्वस् शब्द (जाननेवाला)

विद् धातुसे शतृ प्रत्यय हो तो शतृके स्थानमें (८८९) से वसु प्रत्यय होकर विद्वस् रूप सिद्ध हुआ फिर (३१६) से नुम्‌का आगम होकर विद्वन्स् हुआ (३७१) से द्वके अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ (२६) से सकारका लोप हुआ.

प्र० विद्वान् विद्वांसौ विद्वांसः । **द्वि०** विद्वांसम् विद्वांसौ विद्वस्+शस्-

(३८२) वसोः संप्रसारणम् । ६ । ४ । १३१ ॥

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात् ।

वसु प्रत्यय (८८९) जिसके अन्तमें हो ऐसे भसंज्ञक (१८९) अंगको सम्प्रसारण (२८१) हो । विद्वस् शब्दके द्व अन्तर्गत व के स्थानमें उकार हुआ तब विद्+उ+अस् (शस्) हुआ (२८३)से विदुस्+अस् हुआ (१६९)से स्को ष=विदुषस्=विदुषः । (१२४,१११)

तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	**ष०**	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः	**स०**	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
पं०	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः	**सम्बो०**	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

पुंस् शब्द (पुरुष)

पुंस्+सु-

(३८३) पुंसोऽसुङ् । ७ । १ । ८९ ॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् ।

पुंस् शब्दसे परे सर्वनामस्थान (१८३) प्रत्यय होय तो पुंस्‌के स्थानमें असुङ् आदेश हो (९, ३६, ५९) से असुङ्‌मेंसे अस् शेष रहा वह अन्त्य सकारके स्थानमें हो गया अनुस्वार फिर अपने मकारके रूपको प्राप्त हुआ, तब पुम्+अस्+स्=पुमस्+स् रूप हुआ (३१६, ३७१) से पुमान्+स् (१९९) से लोप ।

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	**पं०**	पुंसः	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः	**ष०**	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
तृ०	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः	**स०**	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
च०	पुंसे	पुंभ्याम्	पुंभ्यः	**सं०**	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

उशनस् शब्द (शुक्र)

प्र० ए० उशनस्+स् (२२६) से स्के स्थानमें अनङ् आदेशका अन् भाग शेष रहा तब उशनन् (१९७) में न अन्तर्गत अको दीर्घता प्राप्त हुई, तब उशनान् (२००) और (१९९) से न् और स् का लोप हुआ।

प्र०	उशना	उशनसौ	उशनसः	पं० उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
द्वि०	उशनसम्	उशनसौ	उशनसः	ष० उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्
तृ०	उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः	स० उशनसि	उशनसोः	उशनःसु
च०	उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः	सं० उशनस्+सु–		

(३८४) अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः।

उशनस् शब्दसे परे सम्बोधनका सु प्रत्यय आवे तो अनङ् आदेश और नकारका लोप विकल्प करके हो। अनङ् होकर सु और नका लोप (१९९,) हे उशन, अनङ् होकर लोप नहीं तब हे उशनन्, दोनोंही नहीं तो सकारको विसर्ग हे उशनः हे उशनसौ हे उशनसः।

अनेहस् शब्द (समय)

प्र० ए० अनेहस्+सु प्रत्यय आया (२२६) से अस् और अन्त्यके स्थानमें अनङ्का अन् आदेश हुआ. तब अनेहन् रूप हुआ, (१९७) से नान्तउपधाके ह अन्तर्गत अको दीर्घ और (२००) से नकारका लोप हुआ.

प्र०	अनेहा	अनेहसौ	अनेहसः	पं० अनेहसः	अनेहोभ्याम्	अनेहोभ्यः
द्वि०	अनेहसम्	अनेहसौ	अनेहसः	ष० अनेहसः	अनेहसोः	अनेहसाम्
तृ०	अनेहसा	अनेहोभ्याम्	अनेहोभिः	स० अनेहसि	अनेहसोः	अनेहस्सु
च०	अनेहसे	अनेहोभ्याम्	अनेहोभ्यः	सं० हे अनेहः	हे अनेहसौ	हे अनेहसः

वेधस् शब्द (ब्रह्मा)

प्र० ए० (३७२) से स् की उपधामें ध अन्तर्गत अको दीर्घता प्राप्त हुई (१२४) से सके स्थानमें रु उसमें उकार जाकर रकार रहा फिर (१११) से र्को विसर्ग. यथा–वेधाः वेधसौ। हे वेधः। वेधोभ्याम् इत्यादि। शेष रूप अनेहस् शब्दके समान जानने।

अदस् शब्द (यह) प्र० अदस्+सु–

(३८५) अदस औ सुलोपश्च। ७। २। १०७॥

अदस औत्स्यात्सौ परे सुलोपश्च।

सु परे रहते अदस् शब्दको औकार अन्तादेश हो और सुका लोप हो. अद्+औ (३३८) से द्के स्थानमें स्=असौ। अदस्+औ (२१३) से स्के स्थानमें अ अद अ (३००) से अका पररूप तब अद+औ (४१) वृद्धि हुई अदौ–

१ उशनस्+भ्याम् (१२४) से स्के स्थानमें रु (१२६) से उ (३५) से गुण हुआ।

(३८६) अदसोऽसेर्दादु दो मः । ८ । २ । ८० ॥

अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ दस्य मश्च । आन्तरतम्याद्ध्रस्वस्य उः दीर्घस्य ऊः ।

असान्त (जिसके अन्तमें सकार न हो ऐसे) अदस् शब्द के दकारसे परे ह्रस्व स्वर होय तो उसके स्थानमें ह्रस्व उ हो और दीर्घ स्वर हो तो उसके स्थानमें दीर्घ ऊ हो और दकारके स्थानमें मकार हो । यहां आके स्थानमें औ है तो उसे ऊ हुआ. अद+ऊ और द्के स्थानमें म् हुआ तव अमू हुआ । अदस्+अस् (२१३) से स्के स्थानमें अ (१७१) से जश्के स्थानमें शी पीछे (३९) से गुण हुआ अद+अ+ई (शी)=अदे—

(३८७) एत ईद्बहुवचने । ८ । २ । ८१ ॥

अदसो दात्परस्यैत ईत्स्याद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ ।

पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादुत्वमत्वे ।

अदस् शब्दके बहुवचनमें दकारसे परे एकार आवे तो एकारके स्थानमें इकार हो दकारके स्थानमें मकार हो अमी ।

अदस्+अम् । अके स्थानमें (३८६) से उत्व मत्व प्राप्त है (२१३) से अत्व प्राप्त होता है (३९) से अत्वं लगता है (इस कारण पहले विभक्ति मानके जो अत्व आदि कार्य हैं सो होते हैं पीछे उत्व मत्व होता है) तव अद् रूप हुआ फिर (३८६) से दकारके स्थानमें मकार और अकारके स्थानमें उकार हुआ अमु+अम्= (१९४) से पूर्वरूप—

द्वि० अमुम् अमू अमून् । तृ० अदस्+टा—

(२१३) से सके स्थानमें अ हुआ=अद्+टा (३७६) से अमु (१९०) से घि संज्ञा हुई फिर (१९१) से टाके स्थानमें ना आदेश हुआ. अमु+ना परन्तु (३८६) के मतसे (१९१) सूत्रकी घि संज्ञा असिद्ध है तो ना का बाधक हुआ कारण कि ना आदेश घि संज्ञाको मानकर होता है तव अगला सूत्र लगा—

(३८८) न मु ने । ८ । २ । ३ ॥

नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः ।

नाभाव किया होय या करनेको होय तो (३८६) का मुत्वभाव असिद्ध न होय ।

तृ० अमुना	अमूभ्याम् अमीभिः[३८७]	ष० अमुष्य	अमुयोः अमीषाम्[१७४]
च० अमुष्मै[१७२-१६९]	अमूभ्याम् अमीभ्यः	स० अमुष्मिन्	अमुयोः अमीषु
पं० अमुष्मात्	अमूभ्याम् अमीभ्यः		

इति हलन्तपुँल्लिङ्गाः समाप्ताः ॥

अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

नह् शब्द (बंधन) उपानह् शब्द) जूता)

(३८९) नहो धः । ८ । २ । ३४ ॥

नहो हस्य धः स्यात् झलि पदान्ते च ।

पदान्तमें अथवा झल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते नह् धातुके हकारके स्थानमें ध् हो, नह्=क्विप् प्रत्यय होकर उपपूर्वपद लगा. उप+नह्+क्विप्=उप+नध्+क्विप्--

(३९०) नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु[1] क्वौ । ६ । ३ । ११६ ॥

क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः ।

नहि वृति वृषि व्यधि रुचि सहि तनि इन धातुओंके आगे क्विप् आवे तो पूर्वपदको दीर्घ हो (३३०) से क्विप्का लोप उपके अकारको दीर्घ हुआ । उपा+नध्=उपानध् (८२, १६९) से ध्को त् हुआ ।

प्र०	उपानत्-द्	उपानहौ	उपानहः	पं० उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः	ष० उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः	स० उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः	सं० हे उपानत्-द्	हे उपानहौ	हे उपानहः

उष्णिह् शब्द (वेदका एक छन्द.) क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः ।

(३२८) से क्विन् हुआ, (३३१) से ह्के स्थानमें स्थान प्रयत्न मिलाकर कवर्ग घ् हुआ (१६९) से घ्के स्थानमें क् हुआ ।

प्र०	उष्णिक्-ग्	उष्णिहौ	उष्णिहः	पं० उष्णिहः	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भ्यः
द्वि०	उष्णिहम्	उष्णिहौ	उष्णिहः	ष० उष्णिहः	उष्णिहोः	उष्णिहाम्
तृ०	उष्णिहा	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भिः	स० उष्णिहि	उष्णिहोः	उष्णिक्षु
च०	उष्णिहे	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भ्यः	सं० हे उष्णिक्-ग्	हे उष्णिहौ	हे उष्णिहः

दिव् शब्द (स्वर्ग.)

(२८९) से व्के स्थानमें औ (२१) से यण् होकर विभक्तिके सकारको विसर्ग हुआ. द्यौः रूप हुआ. दिवौ दिवः द्युभ्याम् शेषं पुंवत्.

---

[1] नह् बांधना, वृत् होना, वृष् वरसना, व्यध् ताडन करना, रुच् चमकना, सह् सहना, तन् फैलाना-तानना ।

गिर् शब्द (वाणी.)

प्र०	गीः [१९९ ३८० १११]	गिरौ	गिरः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पं०	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
ष०	गिरः	गिरोः	गिराम्
स०	गिरि	गिरोः	गीर्षु
सं०	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

पुर् शब्द (नगर)

प्र० पूः पुरौ पुरः । शेष ऊपरके शब्दके समान जानो ।

चतुर् शब्द (चार)

(२४८) से स्त्रीलिंग चतुर् शब्दको चतसृ आदेश हुआ (२४९) से परे स्वर आवे तो सृ अन्तर्गत ऋके स्थानमें रेफ होताहै=चतस्रः प्र०बहुवचन । षष्ठीके बहुवचनमें (२९०) से दीर्घ न होकर चतसृणाम् रूप हुआ.

किम् शब्द (क्या)

(२४४) से सर्वा शब्दके समान (२९७) से किम्के स्थानमें क हुआ शेष सब सर्वावत् का के काः इत्यादि । **इदम्** शब्द (यह) । इदम्+सु--

(२९९) यः सौ । ७ । २ । ११० ॥

इदमो दस्य यः स्यात् सौ परे ।

इदम् शब्दसे परे सु प्रत्यय आवे तो द्के स्थानमें य् हो प्र० (२९८) से इयम् । इदम्+औ (२१३) से अ अन्तादेश हुआ, द अन्तर्गत अका (३००) से पररूप हुआ फिर स्त्रीलिंग है इससे (१३४१) से टाप् हुआ फिर (३०१) से इतर विभक्ति परे रहते द्को म हुआ (२४०) से औ प्रत्ययके स्थानमें शीकी ई रहकर गुण हुआ तब-इमे इमाः । द्वि० इमाम् इमे इमाः । तृ० इदम्+आ (.टा)--

(३०२) से इद् भागके स्थानमें अन् आदेश हुआ (२१३)से म्के स्थानमें अ (३००) से पररूप (२४२) से अन् अ+अङ्के अके स्थान्में एकार हुआ तब अने+आ (२९) अनया । इदम्+भ्याम् (२१३, ३००) से इद अ (३०३) से इद् शब्दका लोप हुआ अभ्याम्=आभ्याम् (१६०) आभिः ।

च०	अस्यै (२४४)	आभ्याम्	आभ्यः
पं०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
ष०	अस्याः,	अनयोः २४२, १७४, २२	आसाम्
स०	अस्याम् (२१९, २४४)	अनयोः (३०२, २४२)	आसु

स्रज् शब्द (माला)

प्र० स्रज्+सु (३२८) क्विन् प्रत्यय लगा (३३१) कवर्ग अन्तादेश हुआ (१९९) से स्का लोप हुआ. (अथवा) औरभी विवरणसे (३२८, १९९, ३३४, ८२, ३३१,) स्रक्.

प्र०	स्रक्–ग्	स्रजौ	स्रजः	पं०	स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
द्वि०	स्रजम्	स्रजौ	स्रजः	ष०	स्रजः	स्रजोः	स्रजाम्
तृ०	स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः	स०	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु
च०	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः	संबो०	हे स्रक्–ग्	हे स्रजौ	हे स्रजः

त्यद् शब्द (वह) । त्यदाद्यत्वम् । टाप् ।

(२१३) से अकार अन्तादेश (३००) से पररूप (१३४१) स्त्रीलिंगका प्रत्यय टाप् होकर आ रहा तब त्या (३२८) से त् के स्थानमें स् हुआ यथा–

प्र०	स्या	त्ये	त्याः	पं०	त्यस्याः	त्याभ्याम्	त्याभ्यः
द्वि०	त्याम्	त्ये	त्याः	ष०	त्यस्याः	त्ययोः	त्यासाम्
तृ०	त्यया	त्याभ्याम्	त्याभिः	स०	त्यस्याम्	त्ययोः	त्यासु
च०	त्यस्यै	त्याभ्याम्	त्याभ्यः				

तद् शब्द (वह) त्यद्वत् ।

प्र०	सा	ते	ताः	पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
द्वि०	ताम्	ते	ताः	ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः	स०	तस्याम्	तयोः	तासु
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः				

एतद् शब्द (यह)

(२१३, ३००, १३४१, ३२८, १९९)=एषा ।

प्र०	एषा	एते	एताः	पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
द्वि०	एताम्	एते	एताः	ष०	एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
तृ०	एतया	एताभ्याम्	एताभिः	स०	एतस्याम्	एतयोः	एतासु
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः				

वाच् शब्द (वाणी.)

प्र०	वाक्–ग् [333, 354, 82]	वाचौ	वाचः	पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः	ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम् [82]	वाग्भिः	स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु [333]
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः	सं०	हे वाक्–ग्	हे वाचौ	हे वाचः

अप् शब्द (जल)

अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । अप्शब्द नित्य बहुवचनान्त है (२२७) से प्रथमाके बहुवचनमें अको दीर्घ हुआ-

प्र० ब० आपः । **द्वि०** ब० अपः । **तृ०** ब० अप्+भिः—

(३९२) अपो भि । ७ । ४ । ४८ ॥

अपस्तकारो भादौ प्रत्यये ।

अप् शब्दसे परे भकारादि प्रत्यय आवे तो तकार अन्तादेश हो । (८२) से त्के स्थानमें द् हुआ=अद्भिः । **च० पं०** ब० अद्भ्यः । **ष०** ब० अपाम् । **स०** ब० अप्सु ।

दिश् शब्द (दिशा) (३२८) से क्विन् (१३१) से क् अन्तादेश अथवा (१६९) से ग् हुआ.

प्र०	दिक्-ग्	दिशौ	दिशः	पं०	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
द्वि०	दिशम्	दिशौ	दिशः	ष०	दिशः	दिशोः	दिशाम्
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	स०	दिशि	दिशोः	दिक्षु
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः	सं०	हे दिक्-ग्	हे दिशौ	हे दिशः

दृश् शब्द (दृष्टि)

त्यदादिष्विति दृशेः क्विनो विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृश् धातुसे क्विन् (३७६) से किया है इसकारण अन्यत्र क्विन् न होते भी इसके अन्तको कुत्व होता है, जैसे दृक् वा दृग् दृशौ दृग्भ्याम् दिग्वत् ।

त्विष् शब्द (ज्योति)

(१९९) से सु लोप (८२) से षके स्थानमें ड् हुआ (१६९) से विकल्प करके ड्को ट् हुआ.

प्र०	त्विड्-ट्	त्विषौ	त्विषः	पं०	त्विषः	त्विड्भ्याम्	त्विड्भ्यः
द्वि०	त्विषम्	त्विषौ	त्विषः	ष०	त्विषः	त्विषोः	त्विषाम्
तृ०	त्विषा	त्विड्भ्याम्	त्विड्भिः	स०	त्विषि	त्विषोः	त्विट्सु-त्सु
च०	त्विषे	त्विड्भ्याम्	त्विड्भ्यः	सं०	हे त्विड्-ट्	हे त्विषौ	हे त्विषः

सजुष् शब्द (मित्र)

(१९९) से सुका लोप (१२४) ष्को रेफ (३८०) से जु अन्तर्गत उ उपधाको दीर्घ (१११) रकारको विसर्ग ।

प्र०	सजूः	सजुषौ	सजुषः	पं०	सजुषः	सजूर्भ्याम्	सजूर्भ्यः
द्वि०	सजुषम्	सजुषौ	सजुषः	ष०	सजुषः	सजुषोः	सजुषाम्
तृ०	सजुषा	सजूर्भ्याम्	सजूर्भिः	स०	सजुषि	सजुषोः	सजूष्षु
च०	सजुषे	सजूर्भ्याम्	सजूर्भ्यः	सं०	हे सजूः	हे सजुषौ	हे सजुषः

आशिष् शब्दके सब रूप इसी प्रकार जानो. इसमें मूर्धन्य षकार असिद्ध होकर (१२४) से रु होकर आशीः बनैगा.

अदस् शब्द (यह)

(३८९) से औ अन्तादेश और सुका लोप होकर (३३८) से दके स्थानमें स् हुआ.

प्र०	असौ	अमू[३८६]	अमूः	पं०	अमूष्याः[३४४,३८६,१६९]	अमूभ्याम् अमूभ्यः
द्वि०	अमुम्	अमू	अमूः	ष०	अमुष्याः अमुयोः	अमूषाम्[१०४]
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः	स०	अमुष्याम् अमुयोः	अमूषु (२१९)
च०	अमुष्यै[२४४,३८६,१६९]	अमूभ्याम्	अमूभ्यः			

इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः।

अथ हलन्ता नपुंसकलिंगाः।

सु+अनडुह्=स्वनडुह्+सु–

स्वनडुह् शब्द (सुन्दर बैल जिस स्थानमें वा जिसके पास हो)

(३९३) स्वमोर्लुक्[६९,१] [स्वमोर्नपुंसकात्। ७। १। २३]॥

नपुंसकलिङ्ग शब्दोंसे परे सु और अम् प्रत्यय आवे तो (२७०) से लोप हो,

प्र० स्वनडुद्[२८७]–त् स्वनडुही[२५९] स्वनड्वांहि[२८४,२६४]। द्वि० स्वनडुद्–त् स्वनडुही[२५९] स्वनड्वांहि[२८४,२६४]

शेषरूप पुँल्लिंगवत् जानने (२८४) में।

वार् शब्द (जल)

प्र०	वाः[२७०,१११]	वारी[२५९]	वारि[२६२]	पं०	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
द्वि०	वाः[२७०,१११]	वारी[२५९]	वारि[२६२]	ष०	वारः	वारोः	वाराम्
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः	स०	वारि	वारोः	वार्षु
च०	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः	सं०	हे वाः	हे वारी	हे वारि

चतुर् शब्द (चार)

प्र० तथा द्वि० (२८४) चत्वारि शेष पुंवत्।

किम् शब्द (कौन)

प्र० तथा द्वि० किम् (२७०) के (२९९,२९७) कानि (२६४,१९७) शेष पुंवत्।

इदम् शब्द (यह)

प्र० तथा द्वि० इदम् (२७०,२९८) इमे (२१३, ३००, ३०१, २९९) इमानि शेष पुँल्लिंगवत् जानो।

(३९४) अन्वादेशे नपुंसके एनद् वक्तव्यः ॥

नपुंसकलिंगमें जब अन्वादेश (३०७) अर्थ हो तब इदम् और एतद् शब्दके स्थानमें एनत् आदेश हो.

प्र० एनत् (२७०)	एने (२१३, ३००, २९९, ३९)	एनानि
द्वि० एनत् (२७०)	एने (२१३, ३००, २९९, ३९)	एनानि
तृ० एतेन-एनेन (३०७)	एताभ्याम्	एतैः
च० एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं० एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष० एतस्य	एतयोः एनयोः (३०७)	एतेषाम्
स० एतस्मिन्	एतयोः एनयोः	एतेषु

ब्रह्मन् शब्द (परब्रह्म)

प्र० तथा द्वि० ब्रह्म (२७०, २००) ब्रह्मणी ब्रह्माणि शेषं पुंल्लिंगवत् । **अहन्** शब्द (दिन) **प्र० द्वि०** अहः (२७०, १२९, १११) अहनी, अह्नी (२७४) अहानि (२६२, २६३, १९७, **तृ०** अह्ना (२७३) अहन्+भ्याम्—

(३९५) अहन् । ८ । २ । ६८ ॥

अहन्नित्यस्य रुः स्यात् पदान्ते ॥

पदान्तमें वर्तमान अहन् शब्दके नकारके स्थानमें रु हो । (१२६) से रुके स्थानमें उ हुआ (३९) से उको ओ हुआ—

	अहोभ्याम्	अहोभिः	ष०	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
च० अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः	स०	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहस्सु
पं० अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः	सं०	हे अहः	हे अहनी, हे अह्नी	हे अहानि

दण्डिन् शब्द (दण्ड ग्रहण करनेवाला)

प्र० दंडि २७०, २००	दंडिनी २५९	दंडीनि २६२ १९७	पं०	दंडिनः	दंडिभ्याम्	दंडिभ्यः
द्वि० दंडि २७० २००	दंडिनी २५९	दंडीनि २६२ १९७	ष०	दंडिनः	दंडिनोः	दंडिनाम्
तृ० दंडिना	दंडिभ्याम् २७४ २००	दंडिभिः	स०	दंडिनि	दंडिनोः	दंडिषु
च० दंडिने	दंडिभ्याम्	दंडिभ्यः	सं०	हे दंडि	हे दंडिनी	हे दंडीनि

सुपथिन् शब्द (श्रेष्ठमार्गमें जानेवाला)

प्र० सुपथि (३२३, २००) सुपथी (३२३, २९९) सुपथिन्+जस् (२६२)=शि (२६३) से

सर्वनामस्थानसंज्ञा हुई (३२१) से थि अन्तर्गत इके स्थानमें अ हुआ (१९७) से अकार उपधाको दीर्घ हुआ (३२२) से थ्को न्थ आदेश हुआ.

प्र० व०	सुपन्थानि	द्वि०	सुपथि	सुपथी	सुपन्थानि

शेषं पुंवत् ।

ऊर्ज्–(बलयुक्त.)

प्र०	ऊर्क्[333]-ग्	ऊर्जी	ऊर्न्जि[264 265]	पं०	ऊर्जः	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः
द्वि०	ऊर्क्[333]–ग्	ऊर्जी	ऊर्न्जि[264–265]	ष०	ऊर्जः	ऊर्जोः	ऊर्जाम्
तृ०	ऊर्जा	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भिः	स०	ऊर्जि	ऊर्जोः	ऊर्क्षु
च०	ऊर्जे	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः	सं०	हेऊर्क्-ग्	हे ऊर्जी	हे ऊर्न्जि

नरजानां संयोगः । नूर्ज्का संयोग कहनेका आशय यह कि नकारको रका संयोग है जका नहीं ।

तद् शब्द (वह)

प्र० द्वि० तत् तद् (२७०, १६९, ८२) ते (२१३, २९९) तानि । शेषं पुँल्लिंगवत् । **यद्** (जो) **एतद्** (यह) इनके रूप तद् शब्दके समान जानो. यत् ये यानि । एतत् एते एतानि इत्यादि ।

अञ्चुधातुके गमन और पूजा दो अर्थ हैं प्रथम गमनार्थ प्रयोग लिखते हैं—

गो+अन्चु (गाय+गमन)

प्र० गवाक्–ग् (३६३, ६०, ३३३, १६९, ८२,) (गायको प्राप्त करनेवाला अथवा गायके समान चलनेवाला) गोची (३६३, ३६४, २९९) गवाञ्चि (६०, ३६३, ३६४, ३६९, २६२, २६३, २६४, ७६) ।

द्वि०	गवाक्	गोची	गवाञ्चि	ष०	गोचः	गोचोः	गोचाम्
तृ०	गोचा	गवाग्भ्याम्[333]	गवाग्भिः	स०	गोचि	गोचोः	गोक्षु
च०	गोचे	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्यः	सं०	हे गवाक्–ग्	हे गोची	हे गवाञ्चि
पं०	गोचः	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्यः				

१–गवाक्छब्दस्य रूपाणि क्लीवेर्चागतिभेदतः ॥
असंध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ॥ १ ॥
स्वमुसुप्सु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः ॥
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥ २ ॥

अर्थः–नपुंसकलिंगमें गवाक् शब्दके रूप अर्चा और गतिके भेदसे असंधि अवङ् और पूर्वरूपसे एकसौ नौ होते हैं सो पृष्ठ १२० व १२१ में नीचे समझ लेना ॥ १ ॥ २ ॥

शकृत् (विष्ठा)

प्र०	शकृत्[२७०]	शकृती[२६९]	शकृन्ति[२६४, २६२]
द्वि०	शकृत्	शकृती	शकृन्ति
तृ०	शकृता	शकृद्भ्याम्	शकृद्भिः
च०	शकृते	शकृद्भ्याम्	शकृद्भ्यः
पं०	शकृतः	शकृद्भ्याम्	शकृद्भ्यः
ष०	शकृतः	शकृतोः	शकृताम्
स०	शकृति	शकृतोः	शकृत्सु
सं०	हे शकृत्	हे शकृती	हे शकृन्ति

चान्तः गोअंञ्चुशब्दः ।

गतौ ।

	एकवचन.	द्विवचन.	बहुवचन.
प्र०	गवाक्-ग् गोअक्-ग् (९७) गोऽक्-ग् (९६)	गोची	गवाञ्चि गोअञ्चि (९७) गोऽञ्चि (९६)
द्वि०	गवाक्-ग् गोअक्-ग् (९७) गोऽक्-ग् (९६)	गोची	गवाञ्चि गोअञ्चि (९७) गोञ्चि (९६)
तृ०	गोचा (३६३, ३६४)	गवाग्भ्याम् (६०, ३३३) गोअग्भ्याम् (९७, ३३३) गोग्भ्याम् (९६, ३३३)	गवाग्भिः गोअग्भिः गोग्भिः
च०	गोचे	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोग्भ्याम्	गवाग्भ्यः गोअग्भ्यः गोग्भ्यः
पं०	गोचः	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोग्भ्याम्	गवाग्भ्यः गोअग्भ्यः गोग्भ्यः
ष०	गोचः	गोचोः	गोचाम्
स०	गोचि	गोचोः	गवाक्षु गोअक्षु गोक्षु

पूजा अर्थमें 'नाञ्चेः पूजायाम्' इससे नकारके लोपका निषेध है इससे पूजा अर्थमें (२७०) से सुका लोप होकर (२६) से चकारका लोप और (३३१) का कार्य होकर अवङ् आदि होते हैं.

ददत् शब्द (देनेवाला)

प्र० ददत्-द् ददती ददत्+शि-

(३९६) वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७९ ॥

अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने परे ।
जिसके अन्तमें शतृप्रत्यय होय ऐसे अभ्यस्तसंज्ञक (३७३) से सर्वनामस्थान (२६३) प्रत्यय आवे तो शतृप्रत्ययके पूर्व विकल्प करके नुम्का आगम हो नपुंसकलिंगमें ।

प्र० ब० ददन्ति अथवा ददति । द्वि० ददत् ददती ददंति शेष पुंवत् ।

पूजायाम् ।

	एकवचन.		द्विवचन.		बहुवचन.
प्र०	गवाङ् (३३१, ६०)		गवाञ्ची (६०,९९,७६,२९९)		गवाञ्चि
	गोअङ् (९७)		गोअञ्ची (९७,९९,७६,२९९)		गोअञ्चि
	गोङ् (९६)		गोञ्ची (९६, ९९, ७६, २९९)		गोञ्चि
द्वि०	गवाङ्		गवाञ्ची		गवाञ्चि
	गोअङ्		गोअञ्ची		गोअञ्चि
	गोङ्		गोञ्ची		गोञ्चि
तृ०	गवाञ्चा		गवाङ्भ्याम्		गवाङ्भिः
	गोअञ्चा		गोअङ्भ्याम्		गोअङ्भिः
	गोञ्चा		गोङ्भ्याम्		गोङ्भिः
च०	गवाञ्चे		गवाङ्भ्याम्		गवाङ्भ्यः
	गोअञ्चे		गोअङ्भ्याम्		गोअङ्भ्यः
	गोञ्चे		गोङ्भ्याम्		गोङ्भ्यः
पं०	गवाञ्चः		गवाङ्भ्याम्		गवाङ्भ्यः
	गोअञ्चः		गोअङ्भ्याम्		गोअङ्भ्यः
	गोञ्चः		गोङ्भ्याम्		गोङ्भ्यः
ष०	गवाञ्चः	गवाञ्चोः	गवाञ्चाम्		'चयो द्वितीयाः
	गोअञ्चः	गोअञ्चोः	गोअञ्चाम्		से ख् हुआ–
	गोञ्चः	गोञ्चोः	गोञ्चाम्		
स०	गवाञ्चि	,,	गवाङ्क्षु	गवाङ्ख्षु,	गवाङ्षु
	गोअञ्चि	,,	गोअङ्क्षु	गोअङ्ख्षु,	गोअङ्षु
	गोञ्चि	,,	गोङ्क्षु	गोङ्ख्षु,	गोऽङ्षु

तुदत् शब्द (पीडा करनेवाला)

तुद् से (६९४) शतृ प्रत्यय हुआ=तुद्+अ+अत् और (३००) से अका पररूप हुआ सुका लोप (२७०) से होकर एकवचनमें तुदत् । तुदत्+शी (२९९)

(३९७) आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० ॥

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्योः ।

अवर्णान्त शब्दसे परे शतृप्रत्ययका अवयव तकार जिसके अन्तमें होय तिसको विकल्प करके नुम्का आगम हो शी (२९९) वा नदी (२१९) परे रहते.

प्र० द्वि०—तुदन्ती, तुदती व० तुदन्ति[२६४] । **द्वि०** तुदत्–द् तुदन्ती तुदती, तुदन्ति शेषरूप पुँल्लिंगके समान ददत्वत् जानो.

भात् शब्द (शोभा पाताहुआ.)

भा धातु दीप्ति अर्थमें है उससे शतृ प्रत्यय आया तब—

प्र० भात्–द् भाती भान्ती, भान्ति । **द्वि०** भात् भाती भान्ती, भान्ति शेषरूप पुँल्लिंग तुदत् शब्दके समान ।

पचत् शब्द (रसोई बनाताहुआ)

पच् धातुका अर्थ पचाना वा पकाना है, उससे आगे शप् प्रत्यय (४२०) आकर कृदन्तमें शतृप्रत्यय होकर पचत् शब्द सिद्ध हुआ. पचत्+स्=पचत् (२७०) पचत्+औ=पचत्+शी (२९९)–

(३९८) शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ ॥

शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः ।

शप् (४२०) और श्यन् (६७०) के अकारसे परे जब शतृप्रत्ययका अवयव तकार आवे तो शतृप्रत्ययान्तको नित्य नुम्का आगम हो शी और नदी (२१९) परे रहते । पचन् त्+ई=पचन्ती, पचन्ति ।

दीव्यत् शब्द (क्रीडा करताहुआ)

दिव् (६७०) धातुसे श्यन् प्रत्यय होके श्यन्मेंसे यकार रहा । कृदन्त शतृप्रत्ययका शेष भाग अत् लगा.

प्र० दीव्यत्–द् दीव्यन्ती (३९७) दीव्यन्ति । **द्वि०** दीव्यत्–द् दीव्यन्ती दीव्यन्ति शेषरूप तुदत्वत् ।

धनुष् शब्द (धनु)

(२७०) से सुका लोप (१२४) से षके स्थानमें रेफ होकर (१११) से रेफको विसर्ग हुआ.

प्र० धनुः	धनुषी [२६२ २६४]	धनूंषि [३७१ ३८१]	पं० धनुषः	धनुर्भ्याम् धनुर्भ्यः
द्वि० धनुः	धनुषी	धनूंषि	ष० धनुषः	धनुषोः धनुषाम्
तृ० धनुषा	धनुर्भ्याम् [३२४]	धनुर्भिः	स० धनुषि	धनुषोः धनुःषु, धनुष्षु
च० धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः	सं० हे धनुः	हे धनुषी हे धनूंषि

चक्षुष् (नेत्र) **हविष्** (होमकी सामग्री) इनके रूप धनुषवत् जानो ।

पयस् शब्द (जल)

प्र० तथा द्वि० पयः (२७०, १२४, १११) पयसी पयांसि (३७१)

तृ० पयसा पयोभ्याम् (१२४, १२९, ३९) पयोभिः । शेषरूप अनेहस्[३८४]वत् जानने ।

सुपुंस् शब्द (श्रेष्ठ पुरुष जिसमें हों)

प्र० सुपुम् [२७० ३८]	सुपुंसी [२५९]	सुपुमांसि [३८३ ३१६ ३७१ २८]	पं० सुपुंसः	सुपुंभ्याम्	सुपुंभ्यः
द्वि० सुपुम्	सुपुंसी	सुपुमांसि	ष० सुपुंसः	सुपुंसोः	सुपुंसाम्
तृ० सुपुंसा	सुपुंभ्याम्	सुपुंभिः	स० सुपुंसि	सुपुंसोः	सुपुंसु
च० सुपुंसे	सुपुंभ्याम्	सुपुंभ्यः	सं० हे सुपुम्	हे सुपुंसी	हे सुपुमांसि

अदस् शब्द (यह)

अदः विभक्तिकार्यम् उत्वमत्वे । अदः शब्दको प्रथम विभक्ति कार्य फिर उत्व मत्व होते हैं । प्र० तथा द्वि० अदः (२७०, १२४, १११) अमू (२१२, २९९, ३८६) अदस्+जस् (२१२) से विभक्तिकार्य (२६२) अद+इ (२६४, ३८६, १९७) अमूनि ।

॥ इति हलन्तनपुंसकलिंगाः समाप्ताः ॥

अथाऽव्ययानि ।

(३९९) स्वरादिनिपातमव्ययम् । १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः ।

स्वर् आदि गणमें जिनकी गणना करी है, और जिनकी निपात(६६)से संज्ञा है. उनकी अव्यय संज्ञा है.

१ **स्वर्**	स्वर्ग वा परलोक	६ **उच्चैस्**	ऊंचे
२ **अन्तर्**	मध्य	७ **नीचैस्**	नीचे
३ **प्रातर्**	प्रातःकाल	८ **शनैस्**	धीरे
४ **पुनर्**	फिर वा विशेष	९ **ऋधक्**	यथार्थ वा शुद्ध
५ **सनुतर्**	छिपना	१० **ऋते**	विना

११ युगपत् एककालमें
१२ आरात् दूर वा निकट
१३ पृथक् अलग
१४ ह्यस् बीता हुआ, कल्ह
१५ श्वस् आनेवाला, कलका दिन
१६ दिवा दिनमें
१७ रात्रौ रातमें
१८ सायम् सन्ध्याकालमें
१९ चिरम् बहुत समयतक
२० मनाक् थोडा
२१ ईषत् थोडा
२२ जोषम् चुप मौन वा सुख
२३ तूष्णीम् मौन
२४ बहिस् बाहर
२५ अवस् बाहरकी ओर
२६ समया निकट वा मध्यमें
२७ निकसा निकट
२८ स्वयम् आपही
२९ वृथा निष्फल, निष्प्रयोजन
३० नक्तम् रातमें
३१ नञ् नहीं
३२ हेतौ कारणमें
३२ इद्धा प्रकाशतासे
३४ अद्धा स्पष्टता वा निश्चयसे
३५ सामि आधा वा निंदित
३६ वत् सदृश
३७ ब्राह्मणवत् ब्राह्मणके तुल्य
३८ क्षत्रियवत् क्षत्रियके सदृश
३९ सना सदा, नित्य
४० उपधा विभाग
४१ तिरस् टेढा वा गुप्त होना
४२ सनत्, ४३ सनात् सदा
४४ अन्तरा, ४५ अन्तरेण विना वा मध्य वर्जन
४६ ज्योक् शीघ्रता, संप्रति वा काल-बाहुल्य वा प्रश्न
४७ कम् जल, सुख, निन्दा, मस्तक
४८ शम् सुख
४९ सहसा एकसाथ अकस्मात् वा अविचारसे
५० विना छोडकर
५१ नाना अनेक वा विना
५२ स्वस्ति कल्याण, मंगल
५३ स्वधा पितृसंबन्धी दानविषय
५४ अलम् पूर्ण वा शक्ति, निवारण वा भूषण
५५ वषट्, ५६ श्रौषट्, ५७ वौषट् देवसंबन्धी दानमें यह तीनों शब्द आते हैं
५८ अन्यत् और रीतिसे
५९ अस्ति है
६० उपांशु गुप्तरूपसे उच्चारण वा रहस्य
६१ क्षमा सहन
६२ विहायसा आकाश
६३ दोषा रात्रि
६४ मृषा, ६५ मिथ्या झूठ
६६ मुधा निष्प्रयोजन
६७ पुरा पहलेसे वा निरन्तर, समीप, वा भवि०

६८ मिथो } परस्पर एकान्त
६९ मिथस् }
७० प्रायस् बहुधा
७१ मुहुस् वारंवार
७२ प्रवाहुकम् } उसी समय अथवा ऊपर
७३ प्रवाहिका }
७४ आर्यहलम् क्रूरतासे
७५ अभीक्ष्णम् वारंवार, निरन्तर
७६ साकम् } साथ
७७ सार्द्धम् }
समम्, सह
७८ नमस् नमस्कार
७९ हिरुक् विना
८० धिक् धिक्कार वा धमकाना
८१ अथ अनन्तर वा प्रश्न अधिकार
८२ अम् शीघ्रतासे वा अल्पतासे
८३ आम् अंगीकार करना
८४ प्रताम् थकावट वा ग्लानि
८५ प्रशान् सदृश
८६ प्रतान् विस्तार, बढाव
८७ मा } मत निषेध वा आशंका
८८ माङ् }

आकृतिगणोऽयम् ।

यह स्वरादि आकृतिगण है अर्थात् स्वरूपसे जाने जाते हैं

अब निपातसंज्ञक लिखते हैं—

१ च और, समुच्चयवाचक
२ वा अथवा
३ ह प्रसिद्धिमें
४ अह आदरसे बोलनेके सम्बोधनमें
५ एव निश्चयार्थक; वा केवल
६ एवम् ऐसा
७ नूनम् निश्चय करके वा संभावना
८ शश्वत् निरन्तर, सर्वदा वा साथ
९ युगपत् एककालमें
१० भूयस् बहुधा वा अधिकता
११ कूपत् प्रश्न वा प्रशंसा (कुपत्)
१२ सूपत् अच्छा
१३ कुवित् बाहुल्य वा प्रशंसा
१४ नेत् शंका, निषेध, विचार,
१५ चेत् यदि जो
१६ चण् जो
१७ यत्र निन्दा, अक्षमा, आश्चर्य, अनिश्चय
१८ तत्र तहां
१९ कच्चित् क्या प्रश्न
२० नह नहीं
२१ हन्त खेद वा हर्ष, अनुकम्पा व वाक्यारम्भ
२२ माकि } नहीं छोडकर
२३ माकिम् }
२४ नकिः }
२५ नकिम् ठीक ठीक
२६ माङ् नहीं
२७ नञ् नहीं
२८ यावत् जितना वा जबतक
२९ तावत् तितना वा तबतक
३० त्वै कदाचित्, विशेष, वितर्क
३१ न्वै } वितर्क, कदाचित्
३२ द्वै }
३३ रै अपमान, दान

३४ श्रौषट्
३५ वौषट् } देवतार्पण
३६ स्वाहा
३७ स्वधा पितृ अर्पणमें
३८ वषट् देवार्पणमें, ईश्वरार्पण यज्ञविषे
३९ ओम् ब्रह्मा, विष्णु महेश सूचक वा स्वीकार
४० तुम् तुकारकर
४१ तथाहि इस प्रकारसे, इस प्रमाणसे
४२ खलु निश्चय, अवश्य, निषेध वाक्यालंकार
४३ किल निश्चयार्थक, वार्तावाचक
४४ अथ (अथो) मंगलवाचक
४५ सुष्ठु उत्तम, श्रेष्ठ
४६ स्म भूतकालसूचक, पादपूरण
४७ आदह धिक्कार, हिंसा. आरंभ.

उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च ।

जो उपसर्ग विसर्ग और स्वरके तुल्य हों परन्तु उपसर्ग, विभक्ति और स्वर न हों किन्तु उनकेसा उनका रूप हो तो वेभी अव्यय हों । यथा **अवदत्तम्** (दिया हुआ) इस प्रयोगमें अव उपसर्ग (४७) नहीं है किन्तु उसकेसा स्वरूप है. जो उपसर्ग होता तो अवत्तम् रूप होता, इसीसे अव्यय है । **अहंयुः, अस्तिक्षीरा** विभक्तिप्रत्ययरूप अव्यय हैं, क्योंकि **अहं** प्रथमा विभक्तिका रूप होता है सो नहीं है किन्तु अव्यय है, कारण कि समासमें क्रियापद प्रथम नहीं रहता ।

अ सम्बोधन, अधिक्षेप, निषेधवाचक
आ वाक्य और स्मरणार्थक
इ सम्बोधन, निन्दा और विस्मयवाचक
ई उ ऊ ए ऐ ओ औ—संबोधनवाचक
पशु सरस (अच्छा)
शुकम् शीघ्रता
यथाकथाच किसी प्रकारसे
पाट्
प्याट् } यह संबोधन
अंग
हे
है
भोः } संबोधनार्थक
अये
द्य संबोधन, हिंसा, पादपूरण, प्रतिकूल
विषु नानार्थक, सर्वत्र, जहां तहां
एकपदे अकस्मात् एकसमयमें
युत् दोष, निन्दा
अतः इससे

चादिरप्याकृतिगणः ।

च आदिभी आकृतिगण है (६६)

तसिलादयः प्राक् पाशपः शस्प्रभृतयः प्राक् स[illegible]न्तेभ्यः । तद्धित-प्रत्ययान्त (१०६८) अर्थात् तसिल्(१२८७) से आरंभकर पाशप्प्रत्यय[illegible]क सब अव्ययसंज्ञक हों शस् (१३३१) से आरंभकर समासान्तके पूर्व जितने हैं सब अव्ययसंज्ञक हों । **अम् आम् कृत्वोर्थाः तसिवती । नानाञौ ।** एतदन्तमप्यव्ययम्।अतः।अम् आम्(१३१०) कृत्वोर्थ अर्थात् कृत्वसुच् प्रत्यय धा तसि वत ना नाञ् यह प्रत्यय जिसके अन्तमें हों सो अव्यय हों ।

(४००) कृन्मेजन्तः । १ । १ । ३९ ॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययम् ।

जिस कृत्के अन्तमें म् अथवा एच् (ए ओ ऐ औ) प्रत्याहार हो तदन्त कृदन्तकी अव्यय संज्ञा हो । यथा स्मारंस्मारम् (वारम्वार स्मरण करके) जीवसे (जीना) पिबध्यै (पीना) स्मारम्में मकार. जीवसे, पिबध्यैमें एच् प्रत्याहार होनेसे अव्यय संज्ञा हुई ।

(४०१) क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ४० ॥

एतदन्तमव्ययं स्यात् ।

क्त्वा (९३६) तोसुन्, कसुन्, यह प्रत्यय जिसके अन्तमें हों उनकीभी अव्यय संज्ञा हो । यथा—कृत्वा, उदेतोः (उदय होकर) विसृपः (जाकर) यहां क्त्वासे कृत्वा । तोसुन्—उदेतोः और कसुन् करके विसृपः बना है ।

(४०२) अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ ॥

अव्ययीभाव समासभी अव्ययसंज्ञक हो. यथा—अधिहरि (हरिमें)

(४०३) अव्ययादाप्सुपः । २ । ४ । ८२ ॥

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात् ।

अव्ययसंज्ञकसे परे जो आप् अथवा सुप् प्रत्यय आवै तो प्रत्ययका लोप (२१०) से हो । यथा—तत्र शालायाम् (उस शालामें) इन उदाहरणोंमें स्त्रीलिङ्गवाचक आप्का और विभक्तिका क्रमसे लोप हुआ है.

अव्ययका लक्षण ।

(४०४) अथर्ववेदश्रुतिः ॥

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥
वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥ २ ॥

जो तीनों लिंग, सब विभक्ति और सब वचनोंमें समान रहै विकारको प्राप्त न हो उसे अव्यय कहते हैं ॥ १ ॥ व्याकरणकर्ता एक भागुरि आचार्यका मत है कि, अव और अपि उपसर्गों (४७) के अकारका लोप और हलन्तशब्दोंसे स्त्रीलिंग प्रत्यय करना होय तो हलन्तोंसे आप् प्रत्यय होवे ॥ २ ॥ यथा (अवगाहः) का रूप 'वगाहः' (स्नान) (अपिधानम्) का 'पिधानम्' (आच्छादन) । वाक्शब्दका वाचा, निश्का निशा दिश्का दिशा, रूप हुआ । हलन्तोंसे आप् प्रत्यय हुआ ॥

॥ इत्यव्ययप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ भ्वादयः ।

(४०५) लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् ।

एषु पंचमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

यह दशों लकार धातुओंसे परे लगते हैं, इन लकारोंसे काल जाना जाता है और यह लकार इत्संज्ञक वर्णसे निश्चित है, प्रथम वह काल दो प्रकारसे विभक्त है, एक अद्यतन और एक अनद्यतन, आधीरातसे लेकर दूसरी आधीराततक वीचका काल अद्यतन है, इससे बाहरका समय अनद्यतन कहलाता है । भूत वर्तमान और भविष्यकालकी संज्ञाका नाम अद्यतन है, और भूत और भविष्यमात्रमें अनद्यतन काल लिया जाता है,

१ लट्—वर्तमान अर्थमें आता है, देखो सू० (४०७)
२ लिट्—परोक्षअनद्यतनभूत अर्थात् बिनदेखे अनद्यतन भूत अर्थमें (४२४)
३ लुट्—अनद्यतनभविष्य होनेवाले अर्थमें (४३९)
४ लृट् अनद्यतन तथा सामान्यभविष्य अर्थमें (४४१)
५ लेट्—वेदविषयप्रेरणा अर्थमें.
६ लोट्—सामान्यप्रेरणा अर्थमें (४४२)
७ लङ्—अनद्यतनभूत अर्थमें (४५७)
८ लिङ्—विधि तथा निमन्त्रण अर्थमें (४६०)
९ लुङ्—भूत अर्थमें (४६९)
१० लृङ्—कार्यकारणभाव तथा क्रियाकी असिद्धिसूचक भूत तथा भविष्य अर्थमें (४७७)

(४०६) लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः । ३ । ४ । ६९ ॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ॥

(४०५) में वर्णन किये लकारोंको कर्ता वा कर्म अर्थके जनानेके लिये सकर्मक धातुसे परे स्थापन करो । और कर्ता वा भाव अर्थके लिये अकर्मक धातुसे परे स्थापन करो *

---

* यथा 'यज्ञदत्त चावल पकाता है' यहां यज्ञदत्त कर्त्ता है, कारण कि, पकाना क्रिया यज्ञदत्तके अधीन है, जो यज्ञदत्त न हो तो उस क्रियाकी सिद्धि न होसके चावल कर्म है क्यों कि, उसपर क्रियाके फलका आश्रय है । और यदि इस वाक्यको यों लिखैं कि चावल यज्ञदत्तसे पकाये जाते हैं तो भी चावल कर्महो रहेगा. हां. इन दोनों वाक्योंको यदि संस्कृतमें लिखैं तो क्रियाके रूपमें अन्तर होगा. एक उनमें ऐसा होगा जिससे केवल कर्त्ताहीका अर्थ विदित हो. यथा—पचति, पकाता है ।

क्रियाका व्यापार जिसके अधीन रहताहै उसको कर्ता कहते हैं; और क्रियाफलका जो आश्रय है उसको कर्म कहते हैं.

(४०७) वर्तमाने लट्। ३। २। १२३॥

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्॥

वर्तमानकार्यके प्रकाश करनेमें जब धातुका व्यवहार करना हो तब उससे परे लट् लकार (४०९) हो. लट्में अ और ट् इत्संज्ञक हैं (१९९) से लट्के लकारकीभी इत्संज्ञा प्राप्त हुई परन्तु व्याकरणशास्त्रमें कोई वर्ण निष्प्रयोजन नहीं लिखा जाता. ल्की इत्संज्ञा करनेसे सम्पूर्ण लट् नष्ट होगा तो उसके उच्चारण करनेका फल निरर्थक होगा इसकारण उच्चारण सामर्थ्यसे ल् की इत्संज्ञा न हुई. भू धातु (होना अर्थ) जब उससे कर्तृ वाचक प्रयोग बनानेकी इच्छा हुई तब भू+लट् इसप्रकारका रूप हुआ—

(४०८) तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्। ३। ४। ७८॥

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः॥

नीचे लिखे अठारह आदेश लकारोंके स्थानमें हों।

	परस्मैपद।			आत्मनेपद।	
एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम—तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
मध्यम—सिप्	थस्	थ	थास	आथाम्	ध्वम्
उत्तम—मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्

(४०९) लः परस्मैपदम्। १। ४। ९९॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः।

ल्के स्थानमें जो आदेश (४०८,८८१,८८२,८८४, और ८८८) होते हैं वे परस्मैपद संज्ञावाले हों।

(४१०) तङानावात्मनेपदम्। १। ४। १००॥

तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः।

तसे प्रारम्भकर महिङ्तक जो प्रत्ययसमूह तङ्प्रत्याहारसे ज्ञात होता है तथा शानच् (८८४) और कानच् (८८१) प्रत्यय जिनमेंसे आन मात्र बाकी रहताहै उनकी आत्मनेपदसंज्ञा

—और दूसरे रूपसे कर्मका अर्थ प्रकाश होगा; यथा, पच्यते—पकाया जाता है,जो अकर्मक धातु है उनमें कर्म नहीं होता; इसकारण लकार एक अवस्थामें केवल उसकी क्रिया (भाव) कोही दिखाताहै यथा, भूयते—होना। और दूसरी दशामें अकर्मक क्रियाभी सकर्मक पच् धातुके समान कर्ताके अर्थको प्रकाश करती है; यथा भवति—होताहै।

हो । (४०९) से तङ्प्रत्याहारकी परस्मैपदसंज्ञा हुईथी सो इस सूत्रसे जाती रही और तिप्से आरंभकर मस्तक नौ प्रत्यय समूह तथा क्वसु और शतृ (८८४) प्रत्यय परस्मैपदसंज्ञावाले हों, अर्थात् नौ प्रत्यय पहले परस्मैपद और तसे महिङ्तक आत्मनेपद कहलातेहैं ।

(४११) अनुदात्तङित आत्मनेपदम् । १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ॥

जो धातु अनुदात्तेत् हो (११) अथवा जिसका ङ् इत् हो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय तङ् तथा शानच् कानच् (४१०) हों ।

किस धातुमें क्या इत् होताहै इसका ज्ञान धातुपाठसे होगा ।

(४१२) स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । १ । ३ । ७२ ॥

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

जिस धातुमें स्वरित (१२) अथवा ञ् इत् हों और जब व्यापारका फल कर्तामें पहुंचताहो तब उससे परे आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों ।

(४१३) शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् । १ । ३ । ७८ ॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ॥

जो धातु आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययके स्थापन करनेके निमित्तों (४११, ४१२) से हीन हो उसके आगे परस्मैपद प्रत्यय कर्ता अर्थमें हो, परस्मैपद कर्ममें कभी नहीं दिखाता ।

(४१४) तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः । १ । ४ । १०१ ॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ॥

परस्मैपद तथा आत्मनेपदके तिङ् प्रत्याहारमें जो प्रत्यय (४०८) के अन्तर्गत हैं उनके परस्मैपद और आत्मनेपद जो दोनों समूहके तीन २ त्रिक हैं सो क्रमसे प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष कहे जायँ ।

(४१५) तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः । १ । ४ । १०२ ॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणित्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः ।

ऊपरके प्रमाणसे प्रथमादिसंज्ञाको प्राप्त वे तिङ् प्रत्याहारके तीन २ त्रिक प्रत्येक तिप् तस् झि इत्यादि क्रमसे एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञावाले हों ।

(४१६) युष्मँद्युपपँदे समानाधिकँरणे स्थानिन्यँपि मध्यँमः । १ । ४ । १०५ ॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ॥

जो लकार अर्थात् तिङ् (४०८) कारक (कर्ता तथा कर्म) बताता हो और उसी कारकको युष्मद् शब्द दिखाता हो और युष्मद् शब्द उच्चारण किया हो वा न किया हो तो लकारके स्थानमें मध्यम पुरुष (४१४) हो।

(४१७) अस्मँद्युत्तमँः । १ । ४ । १०७ ॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः ॥

जब अस्मद् (४१७) की अवस्था युष्मद् (४१६) कीसी हो तब लकारके स्थानमें उत्तमपुरुष (४१४) हो।

(४१८) शेषेँ प्रथमँः । १ । ४ । १०८ ॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् ॥

युष्मद् (४१६) तथा अस्मद् (४१७) की अवस्थाके सिवाय शेष अवस्थामें लकार (४०७) के स्थानमें प्रथमपुरुष (४१४) हो। भू+ल् (४०७, ४०८) से लकार के स्थानमें प्रथमपुरुषके एकवचनमें तिप् प्रत्यय हुआ इसमें प्की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ तब भू+ति रहा—

(४१९) तिङ्शित्सार्वधातुकँम् । ३ । ४ । ११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ॥

(८१७) में 'धातोः' यह सूत्र है, इसके अधिकारमें जो तिङ् प्रत्यय (४१४) और जिसका शकार इत् है उसका नाम सार्वधातुक हो।

(४२०) कर्तरिँ शप् । ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् ॥

कर्ता अर्थ वाचक सार्वधातुक (४१९) परे हुए सन्ते धातुसे परे शप् प्रत्यय हो।(१६९) से शप्का श् तथा (५) से प्की इत्संज्ञा (७) से लोप होकर अ शेष रहा तब भू+अ+ति रूप रहा।

(४२१) सार्वधातुकार्धधातुकयोः । ७ । ३ । ८४ ॥

अनयोः परयोरिगन्तांगस्य गुणः ॥

सार्वधातुक (४१९) तथा आर्धधातुक (४३७) परे रहते जिस (१९२) अंगके अन्तमें इक् हो उसे गुँण हो। भू अन्तर्गत ऊ इक है उसके स्थानमें ओ गुण आदेश होकर

भो रूप हुआ (२९) से ओके स्थानमें अव् होकर भव्+अ+ति=भवति रूप सिद्ध हुआ। अर्थ (वह होता है) द्वि० भू+अ+तः (तस्) (४२१) से भवतः बना (वे दोनों होते हैं) बहुवचन भू+अ+झि—

(४२२) झोऽन्तः । ७ । १ । ३ ॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः ॥

प्रत्ययके अवयव झके स्थानमें अन्त् आदेश हो. भू+अ+अन्त्+इ झिमेंकी इ शेष रहीं (४२१) से भूको भव् हुआ और शप् प्रत्यय (४२०) से हुआ तब भव हुआ. अंतिके अ अवयवको और भवके अकारको मिलाकर (३००) एक अ हुआ तब मिलकर 'भवंति' रूप हुआ (वे होते हैं)

म० ए० भू+अ+सि (सिप्)=भव्+अ+सि=भवसि (तू होता है)
म० द्वि० भू+अ+थः =भव्+अ+थः=भवथः (तुम दोनों होते हो)
म० ब० भू+अ+थ =भव्+अ+थ=भवथ (तुम सब होते हो)
उ० ए० भू+अ+मि (मिप्)=भव्+अ+मि=भव+मि—

(४२३) अतो दीर्घो यञि । ७ । ३ । १०१ ॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके ॥

यञ् आदिवाला सार्वधातुक (४१९) प्रत्यय परे होय तो अकारान्त अंगको दीर्घ आदेश हो। भव अंगसे आगे मि यञ्आदि है तो उसके व अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ तब 'भवामि' रूप सिद्ध हुआ (मैं होताहूँ)

उ० द्वि० भू+अ+वः (वस्)=भव् आ+वः=भवावः (हम दोनों होते हैं)
उ० ब० भू+अ+मः (मस्)=भव् आ+मः=भवामः (हम सब होते हैं)

भू धातुमें सर्वनाम लगानेसे वर्तमानकालमें जो रूप होते हैं सो नीचे लिखे हैं बिना सर्वनामके पहले लिख दिये हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सः भवति (वह होता है)	तौ भवतः (वे दोनों होते हैं)	ते भवन्ति (वे सब होतेहैं)
म०	त्वं भवसि (तू होता है)	युवां भवथः (तुम दोनों होते हो)	यूयं भवथ (तुम सब होतेहो)
उ०	अहं भवामि (मैं होताहूँ)	आवाम् भवावः (हम दोनों होते हैं)	वयं भवामः (हम सब होतेहैं)

(४२४) परोक्षे लिट् । ३ । २ । ११५ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः ॥

जो बात देखी हुई न हो उसके प्रकाश करनेके निमित्त जिस धातुका व्यवहार किया जाय उससे परे अनद्यतन भूतमें लिट् हो. लिट्में इ और ट् इत्संज्ञक हैं उनका लोप होकर ल् रहा लकारको तिप् आदि आदेश हुए।

(४२५) परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः । ३।४।८२ ॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः ॥

लिट्के परस्मैपदसंज्ञक तिप् (४०८) आदि नौ प्रत्ययोंके स्थानमें नीचे लिखे णल् आदि आदेश हों—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	णल्	अतुस्	उस्
म०	थल्	अथुस्	अ
उ०	णल्	व	म

णल्में ल् तथा ण्का लोप (१४८, ९) से हुआ अ शेष रहा तब भू+अ (प्रथमपुरुषका एकवचन हुआ)—

(४२६) भुवो वुग्लुङ्लिटोः । ६ । ४ । ८८ ॥

भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि ॥

भू धातुसे परे लुङ् अथवा लिट् सम्बन्धी अच् आवे तो भू धातुको वुक्का आगम हो । वुक्में उक्की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ (४२९) से भूसे आगे णल् आदेशका शेष भाग अ हैं वह अच् है भूको वुक्मेंसे शेष रहे व्का आगम हुआ भूव्+अ—

(४२७) लिटि धातोरनभ्यासस्य । ६ । १ । ८ ॥

लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य ॥

जिस धातुको द्वित्व न हुआ हो और उससे परे लिट् लकार हो उस धातुके एकाच् प्रथम भागको द्वित्व हो. भूव् भूव्+अ यह स्थिति हुई—

(४२८) पूर्वोऽभ्यासः । ६ । १ । ४ ॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ॥

(४२७) में जो दो रूप हुए हैं उन रूपोंमें पहलेकी अभ्यास संज्ञा हो ।

(४२९) हलादिः शेषः । ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते ॥

अभ्यासके आदिका हल् शेष रहे औरोंका लोप हो. भू भूव्+अ—

(४३०) ह्रस्वः । ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ॥

अभ्यासके अच्के स्थानमें ह्रस्व आदेश हो । भूके ऊके स्थानमें ह्रस्व उ हुआ तब भु भूव्+अ हुआ—

(४३१) भवतेरः । ७ । ४ । ७३ ॥

भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

भू धातुके अभ्यास उके स्थानमें अकार हो यदि उससे परे लिट् हो तो । भ भूव्+अ—

(४३२) अभ्यासे चर्च । ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च । झशां जशः खरां चर इति विवेकः ॥

अभ्यास (४२८) के झल्के स्थानमें जश् और चर् हों । झश्के स्थानमें जश् और खर्के स्थानमें चर् हों । भके स्थानमें ब हुआ तब बभूव्+अ=बभूव रूप सिद्ध हुआ (वह हुआ)

प्र० द्वि० बभूव्+अतुः (अतुस्)=बभूवतुः (वे दोनों हुए.)

प्र० ब० बभूव्+उः (उस्)=बभूवुः (वे सब हुए.)

म० ए० बभूव्+थ (थल्)

(४३३) लिट् च । ३ । ४ । ११५ ॥

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः ॥

लिट्के स्थानमें जो तिङ् (४०८) आदेश (४२९) हो उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो बभूव्+थ इसमें थकी आर्धधातुक संज्ञा हुई ।

(४३४) आर्धधातुकस्येड्वलादेः । ७ । २ । ३५ ॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात् ।

जो आर्धधातुक (४३३) के आदिमें वल् प्रत्याहार आवे तो उसे इट्का आगम हो, इट्मेंसे इ शेष रही, (१०३) से वह थ आर्धधातुक प्रत्ययके आदिमें स्थित हुई बभूव इ थ=बभूविथ (तू हुआ)

म०	द्वि०	बभूव्+अथुः (अथुस्)	=बभूवथुः (तुम दोनों हुए)
म०	ब०	बभूव्+अ	=बभूव (तुम सब हुए)
उ०	ए०	बभूव्+अ (णल्)	=बभूव (मैं हुआ)
उ०	द्वि०	बभूव्+व	=बभूव्+इ+व=बभूविव (हम दोनों हुए)
उ०	ब०	बभूव्+म	=बभूव्+इ+म=बभूविम (हम सब हुए)

(४३५) अनद्यतने लुट् । ३ । ३ । १५ ॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् ॥

अनद्यतन भविष्य अर्थ प्रकाश करना होय तो धातुसे परे लुट् हो । प्र० पु० ए० भू+लुट्—

(४३६) स्यतासी लृलुटोः। ३। १। ३३॥

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः॥

धातुसे परे लृ (लृट् तथा लृङ्) और लुट् होय तो स्य और तासि क्रमसे हों अर्थात् लृट् हो तो स्य और लुट् होय तो धातुसे तासि प्रत्यय हो. (शबाद्यपवादः) यह सूत्र (४२०) से शप् तथा श्यन् (६७०) का अपवाद है। लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम्॥ लृसे लृङ् और लृट्का ग्रहण करना।

(४३७) आर्धधातुकं शेषः। ३। ४। ११४॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्। इट्॥

तिङ् तथा शित् प्रत्यय (४१९) छोडकर शेष प्रत्यय जो 'धातोः' इस सूत्रसे किसी धातुसे विधान किये जायँ उन प्रत्ययोंकी आर्धधातुक संज्ञा हो भू+तासि (४३४) से इका आगम (४२१) से भव (४३६) से तासि प्रत्ययके सिके इकारकी इत्संज्ञा होकर तास् रहा तो—भव्+इ+तास् रूप हुआ—

(४३८) लुटः प्रथमस्य डारौरसः। २। ४। ८५॥

डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः॥

लुट्के प्रथमपुरुषसंज्ञक प्रत्ययोंके स्थानमें क्रमसे डा रौ रस् प्रत्यय हों। जब डित् प्रत्यय परे हो तो पूर्वकी भसंज्ञक टि (१८९) का लोप (२६७) से होता है यहां (४३७) से भवितास् रूप हुआ है इस कारण (१८९) से भसंज्ञा नहीं हो सकती तब उसकी टि आस्काभी लोप न हो परन्तु निरर्थक कोई वर्ण इत् नहीं हो सकता, यहांभी डकारकी इत्संज्ञा की है शेष 'आ' रहा है, यदि इत्संज्ञासे कोई प्रयोजन सिद्ध न होता तो इतना व्यर्थ क्यों लिखते इसी इत्संज्ञाके होनेसे भवितास् जिसकी भसंज्ञा नहीं है उसकेभी टिका लोप हुआ तब भवितास्का भवित् हुआ और डाके आमें मिलानेसे—

प्र० ए० भवित्+आ (डा)=भविता सिद्ध हुआ (वह होगा)

प्र० द्वि० भवितास्+रौ—

(४३९) तासस्त्योर्लोपः। ७। ४। ५०॥

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे॥

तास् (४३६) तथा अस् धातुसे परे सकारादि प्रत्यय आवे तो तास् और अस्का लोप हो।

(४४०) रि च । ७ । ४ । ५१ ॥

रादौ प्रत्यये तथा ॥

तास् प्रत्यय और अस् धातुसे परे जब ऐसा प्रत्यय आवै कि जिसके आदिमें रेफ हो तब तास् प्रत्यय और अस् धातुका लोप हो. भवितास्+रौ इसमेंसे तास्का लोप कहा सो (२७) से अन्त्य स्का हुआ.

भविता+रौ रूप हुआ तब=भवितारौ (वे दोनों होंगे)

प्र० ब० भवितास्+रस्	=भविता+रः=भवितारः ।	(वे सब होंगे)
म० ए० भवितास्+सि (सिप्)	=भविता+सि=भवितासि ।	(तू होगा)
म० द्वि० भवितास्+थः	=भवितास्थः ।	(तुम दोनों होंगे)
म० ब० भवितास्+थ	=भवितास्थ ।	(तुम सब होंगे)
उ० ए० भवितास्+मि	=भवितास्मि ।	(मैं हूंगा)
उ० द्वि० भवितास्+वः	=भवितास्वः ।	(हम दोनों होंगे)
उ० ब० भवितास्+मः	=भवितास्मः ।	(हम सब होंगे)

(४४१) लृट् शेषे च । ३ । ३ । १३ ॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा ॥

भविष्य अर्थमें धातुका व्यवहार करनेमें आवे तो उससे परे लृट् हो परन्तु दूसरी क्रिया जो भविष्यत् कार्यके फलके लिये एक कार्यको प्रगट करती है वह रहे अथवा न रहे । वह पढने जाता है इस प्रयोगमें पढना जो क्रिया है सो भविष्यत् कालकी है कारण कि, अभीतक पढना हुआ नहीं है परन्तु आगेको होगा और इस कार्यके फलके निमित्त जाना एक दूसरी क्रिया आई है इसही दूसरी क्रियाको क्रियार्थक्रिया कहते हैं (९०४) सूत्रमें ऐसा नियम किया गया है कि, जब ऐसी क्रियाके अर्थकी क्रिया रहै तब भविष्य अर्थमें धातुसे परे तुमुन् और ण्वुल् दो प्रत्यय लगाये जायँ परन्तु यहां (४४१) में कहा है कि ऐसी क्रिया रहे वा न रहे भविष्य अर्थमें धातुसे परे लृट् हो जब क्रियार्थ क्रिया रहै तब एक भविष्यत् क्रियाके दो रूप हो सकते हैं, एक लृट् और दूसरा तुमुन् ण्वुल्का परन्तु कर्ता, कर्म और भाव इन तीनों अर्थोंमें लृट् होता है, और तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय 'अव्ययकृतो भावे' तथा 'कर्तरि कृत् (८२०)' इन दोनोंके अनुसार क्रमसे भाव और कर्तामेंही होते हैं । लुट् (४३९) तथा लृट् (४४१) इन दो लकारोंका उपयोग भविष्य अर्थमें होता है भेद इतना है कि अद्यतन भविष्यमें लृट् लकार होता है और अनद्यतन भविष्य (जिसमें कार्यके प्रारम्भकी अवधि रहती है) में लुट् होता है. यथा (श्वः मथुरां प्रयातासि) 'कल तू मथुरा जायगा' यहां कालकी अवधि है इस कारण लुट् हुआ और जहाँ केवल भविष्यका प्रकाश

करना है वहां लट्का प्रयोग होगा यथा 'सूर्यस्तप्स्यति निःशङ्कम्' निःसन्देह सूर्य प्रकाश करेगा। इसमें पहले लुट्के समान कोई कालका नियम नहीं है। इसकारण भविष्यत् कालके बतानेवाले प्रयोगमें लृट् लगा.

प्र० ए० भव्[४२१]+इ[४३४]+(४३६) से (स्य) (१६९) से ष्य+ति=भविष्यति। (वह होगा)

प्र० द्वि० भव्[४२१]+इ[४३४]+(४३६) से (स्य) (१६९) से ष्य+तः=भविष्यतः (वे दोनों होंगे)

प्र० ब० भव्[४२१]+इ[४३४]+(४३६) से (स्य) (१६९) से ष्य+अन्ति=भविष्यन्ति[३] (वे सब होंगे)

म० ए० भव्+इ+स्य+सि=भविष्यसि (तू होगा)

म० द्वि० भव्+इ+स्य+थः=भविष्यथः (तुम दोनों होंगे)

म० ब० भव्+इ+स्य+थ=भविष्यथ (तुम सब होंगे)

उ० ए० भव्+इ+ष्यां[४२३]+मि=भविष्यामि (मैं हूंगा)

उ० द्वि० भव्+इ=ष्यां[४२३]+वः=भविष्यावः (हम दोनों होंगे)

उ० ब० भव्+इ+ष्यां[४२३]+मः=भविष्यामः (हम सब होंगे)

(४४२) लोट् च। ३। ३। १६२॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्॥

विधि आदि (४६०) अर्थमें धातुसे परे लोट् हो।

(४४३) आशिषि लिङ्लोटौ। ३। ३। १७३॥

आशीर्वाद अर्थमें धातुसे परे लिङ् (४६०) तथा लोट् (४४२) हों।

(४४३) एरुः। ३। ४। ८६॥

लोट इकारस्य उः॥

लोट्के स्थानमें जो प्रत्यय आदेश हुआ है उसके इकारके स्थानमें उ हो। प्रथम पुरुषके प्रत्यय तिप् और झि (४०८) के इकारके स्थानमेंही उकार हो और स्थानमें नहीं। प्र० ए० भव (४२०, ४२१)+तु (४४४) भवतु (वह होय.)।

(४४५) तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्। ७। १। ३५॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात्सर्वादेशः॥

आशिष् अर्थमें तु (४४४) और हि (४४८) के स्थानमें विकल्प करके तातङ् आदेश हो. यद्यपि तातङ् आदेश ङित् है (९९) से अन्तके स्थानमें होना चाहिये परन्तु (९८) से सम्पूर्ण प्रत्यय तु और हि के स्थानमें हुआ कारण कि (९८—अनेकाल् १।१।९९) वां है और (९९—ङिच्च १।१। ३५) वां है सो (९८) वां सूत्र अष्टाध्यायीके क्रमसे (९९) से पर है सो (१३२) के अनुसार बलवान् होकर यहां लगता है। तातङ्में अङ इत्संज्ञक है उसका लोप हुआ भव्+अ (४२०)+तात्=भवतात् सिद्ध हुआ। ईश्वर करे

वह होय. प्रश्न—जब (१३२) के अनुसार (९८) वां सूत्र सदा लगसकता है तो (९९) का क्या फल है । उत्तर—जब केवल इसीकार्यके निमित्त ङ् है तब तो (९९) ही लगता है और जब कोई विशेष प्रयोजन रहता है तब (९८) लगता है तातङ्के ङ्से गुण और वृद्धिका निषेध और सम्प्रसारण आदि होते हैं ।

(४४६) लोटो लङ्वत् । ३ । ४ । ८५ ॥

लोटस्तामादयः सलोपश्च ॥

लोट्को भी लङ् (४९७) के समान ताम् आदि आदेश होते हैं और सका लोप (४९६) से हो ।

(४४७) तस्थस्थमिपां तांतंतामः । ३ । ४ । १०१)

ङितश्चतुर्णा तामादायः क्रमात्स्युः ॥

ङित् लकार (लङ् लिङ् लुङ् और लृङ्) इनको आदेश जो तस् थस् थ और मिप् उनके स्थानमें ताम् तम् त और अम् अनुक्रमसे हों ।

प्र० पु० द्वि० भव+ताम्=भवताम् (वे दोनों हों)

प्र० पु० ब० भव=अन्तुं=भवन्तु (इश्वर करे वे सब हों)

म० पु० ए० भव+सि—

(४४८) सेर्ह्यपिच्च । ३ । ४ । ८७ ॥

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च ॥

लोट्के स्थानमें जो सि (सिप्) उसको हि आदेश हो परन्तु पित् न हो अर्थात् पित् मानकर जो कार्य होते हैं सो इसको न होय भव+हि—

(४४९) अतो हेः । ६ । ४ । १०५ ॥

अतः परस्य हेर्लुक् ॥

ह्रस्व अकारसे परे जो हि (४४८) उसका लुक् होय भव=हि इसमें हिका लोप हुआ, तब भव रूप हुआ ।

म० पु० ए० भव अथवा भवतात् (४४९) (तू हो)

म० पु० द्वि० भव+तम् (४४७) भवतम् (तुम दोनों हो)

म० पु० ब० भव+त (४४७) भवत (तुम सब हो)

उ० पु० ए० भव+मि—

(४५०) मेर्निः । ३ । ४ । ८९ ॥

लोटो मेर्निः स्यात् ॥

लोट्के स्थानमें जो मि (मिप्) आदेश है उसके स्थानमें नि हो ।

(४९१) आडुत्तमस्य पिच्च । ३ । ४ । ९२ ॥

लोडुत्तमस्याट् पिच्च । हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात् ॥

लोट्के स्थानमें उत्तमपुरुषसंज्ञक प्रत्यय आदेश किये जाते हैं उनको आट्का आगम हो और वह पित् मानाजाय हि (४४८) तथा नि के इकारके स्थानमें उ (४४४) नहीं होता यदि उ होता तो इके उच्चारण करनेका प्रयोजन नहीं रहता, आट्में ट् इत्संज्ञक है उसका लोप हुआ भव्+आ (१०३)+नि=भवानि । (मैं होऊं) ।

(४९२) ते प्राग्धातोः । १ । ४ । ८० ॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः ॥

वे गति (२२२) तथा उपसर्ग (४७) संज्ञावाले धातुसे प्रथम लगाये जायँ ।

(४९३) आनि लोट् । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात् ॥

उपसर्गमें रहनेवाले र् तथा ष् (१९७) तिससे परे लोट्के स्थानमें जो आनि आदेश (४९१, ४९०) तिसके नकारके स्थानमें णकार हो यथा=प्रभवाणि (मैं समर्थ होऊं) ।

(४९४) दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः ।

स् को ष् और न् को ण् करने हों तो दुर् शब्दकी उपसर्गसंज्ञा (४७) न हो इसी रीतिसे दुःस्थितिः । दुरवस्था । दुर्भवानि (मैं दुःखी होऊं)

(४९५) अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् ॥

अङ् प्रत्यय तथा (९१८) कि प्रत्ययके विधान करनेको नकारके स्थानमें णकार करनेको अन्तर् शब्दकी उपसर्गसंज्ञा (४९३) हो ऐसा कहना चाहिये, यथा अन्तर्भवाणि (मैं भीतर होऊं)

(४९६) नित्यं ङितः । ३ । ४ । ९९ ॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः । अलोन्त्यस्येति सलोपः ॥

ङित् सकारके स्थानमें सकारान्त उत्तमपुरुषका जो आदेश हुआ है उसका नित्यही लोप हो । (२७) से अन्त्य अक्षर सकारका लोप हुआ (४४६) यह सूत्र लोट्में लगता है, इससे वस् मस् के सकारका लोप हुआ ।

उ० पु० द्वि० भवा (४२१, ४२३)+व (४९६)=भवाव (हम दोनों हों)

उ० पु० ब० भवा (४२१, ४२३)+म (४९६)=भवाम (हम सब हों)

(४४७) अनद्यतने लङ् । ३ । २ । १११ ॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् ॥

अनद्यतन भूत अर्थका व्यवहार करना होय तो धातुसे परे लङ् हो ।

प्र० ए० भव+ल् (लङ्) ।

(४५८) लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः । ६ । ४ । ७१ ॥

एष्वङ्गस्याट् ॥

अंग (१९२) से परे लुङ् (४६९) लङ् (४९७) और लृङ् (४७७) लकार आवे तो अङ्गको उदात्त अट्का आगम हो.

अ (१०३)+भव+ल्-

(४५९) इतश्च । ३ । ४ । १०० ॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तस्य लोपः ॥

ङित् लकारके स्थानमें जो इकारान्त परस्मैपद (४०९) आदेश—ति अन्ति सि और मि इनका लोप हो इस कारण इनमें सबके इकारका लोप हुआ ।

प्र० पु० ए०	अ + भव + त् (४५९)	=अभवत्	(वह हुआ.)
प्र० पु० द्वि०	अ + भव + ताम् (४४७)	=अभवताम्	(वे दोनों हुए.)
प्र० पु० ब०	अ + भव +अन्(४२२,४५९,२६)=अभवन्		(वे दोनों हुए.)
म० पु० ए०	अ + भव + स् (१२४, १११)	=अभवः	(तू हुआ.)
म० पु० द्वि०	अ + भव + तम् (४४७)	=अभवतम्	(तुम सब हुए.)
म० पु० ब०	अ + भव + त (४४७)	=अभवत	(तुम सब हुए.)
उ० पु० ए०	अ + भव + अम् (४४७)	=अभवम्	(मैं हुआ.)
उ० पु० द्वि०	अभवा + व (४५६)	=अभवाव	(हम दोनों हुए.)
उ० पु० ब०	अभवा + म (४५६)	=अभवाम	(हम सब हुए.)

(४६०)विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।३।३।१६१

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात् ॥

विधि, निमंत्रण, आमंत्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थना इतने अर्थोंमें धातुसे परे लिङ् हो (८१६) में इन अर्थोंका विस्तार करेंगे ।

(४६१) यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च । ३ । ४ । १०३ ॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च ॥

लिङ्के स्थानमें जो परस्मैपद आदेश तिनको यासुट् (१०३) का आगम होय सो ङित् तथा उदात्त हो ।

(४६२) लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । ७ । २ । ७९ ॥

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः ॥

लिङ्के स्थानमें जो सार्वधातुक आदेश (४१९) तिसके अवयव सकारका लोप हो परन्तु वह सकार अन्तमें न हो. तो यासुट्मेंसे उट् इत्संज्ञकका लोप होकर यास् रहा, उसके स्का लोप हुआ पर—

(४६३) अतो येयः । ७ । २ । ८० ॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् ॥

ह्रस्व अवर्णसे परे सार्वधातुकके अवयव यास् (४६१) के स्थानमें इय् आदेश हो ।

(४६४) लोपो व्योर्वलि । ६ । १ । ६६ ॥

वल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते व् तथा य्का लोप हो ।

प्र०	पु०	ए०	भवे+त्=भवेत्	(वह होवे)
प्र०	पु०	द्वि०	भवे+ताम् (४४७)=भवेताम्	(वे दोनों होवें)
प्र०	पु०	ब०	भवेय्+झि—	

(४६५) झेर्जुस् । ३ । ४ । १०८ ॥

लिङो झेर्जुस् स्यात् ॥

लिङ्के स्थानमें झिको जुस् हो (१४८) से ज्का लोप होकर उस् शेष रहा ।

प्र०	पु०	ब०	भवेय्+उः	=भवेयुः	(वे सब होवें)
म०	पु०	ए०	भवे(४६४)+सि[४५९]	=भवेः[१२४ १११]	(तू हो)
म०	पु०	द्वि०	भवे[४६४] +थम्[४४७]	=भवेतम्	(तुम दोनों हों)
म०	पु०	ब०	भवे[४६४] +त[४४७]	=भवेत	(तुम सब हों)
उ०	पु०	ए०	भवेय+अम्[४४७]	=भवेयम्	(मैं होऊँ)
उ०	पु०	द्वि०	भवे[४६४] +व	=भवेव	(हम दोनों हों)
उ०	पु०	ब०	भवे[४६४] +म	=भवेम[४५६]	(हम सब हों)

(४६६) लिङाशिषि । ३ । ४ । ११६ ॥

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ॥

आशिष् अर्थवाची लिङ्के स्थानमें जो तिङ् आदेश (४०८) उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो ।

(४६७) किदाशिषि । ३ । ४ । १०४ ॥

आशिषि लिङो यासुट् कित् ॥

आशीर्वादअर्थमें जो लिङ् उसके स्थानमें जो यासुट् (४६१) सो कित् हो । भू+यास्+त् (४५९) ऐसी स्थिति है इसमें (३३७) से नकारकी संयोगसंज्ञा होकर उसके आदिभूत सकारका लोप हुआ तब 'भूयात्' रूप हुआ.

(४६८) क्ङिति च । १ । १ । ५ ॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः ॥

(४२१) से सार्वधातुक आर्धधातुक परे हुए सन्ते इगन्त अंगको गुण हो परन्तु जो प्रत्यय गित् कित् अथवा ङित् हो तो उसे गुण और वृद्धि न हो । इस सूत्रमें इग्लक्षणका आशय यह है कि जिस सूत्रसे गुण या वृद्धि होती हो उसमें इक् पदकी प्राप्ति होती हो. जैसे इक् प्रत्याहारमें भूका ऊ है उसके स्थानमें गुणकी प्राप्ति है कारण कि उससे सार्वधातुक यासुट् प्रत्यय परे है परन्तु यहां यासुट् प्रत्यय कित् है इससे भू अन्तर्गत ऊकारके स्थानमें गुण न हुआ.

प्र० पु० ए०	भूया+त्	=भूयात्	(वह होवे)
प्र० पु० द्वि०	भूयास्[४४७]*ताम्	=भूयास्ताम्	(वे दोनों होवें)
प्र० पु० ब०	भूयास्+उः[४३]	=भूयासुः	(वे सब होवें)
म० पु० ए०	भूयास्+स्[४६५]	=भूयाः[१२४][१११]	(तू हो)
म० पु० द्वि०	भूयास्+तम्[४४७]	=भूयास्तम्	(तुम दोनों हों)
म० पु० ब०	भूयास्+त[४४७]	=भूयास्त	(तुम सब हों)
उ० पु० ए०	भूयास्+अम्[४४७]	=भूयासम्	(मैं होऊं)
उ० पु० द्वि०	भूयास्+व[४]	=भूयास्व	(हम दोनों होवें)
उ० पु० ब०	भूयास्+म[४५६]	=भूयास्म	(हम सब होवें)

(४६९) लुङ्[१] । ३ । २ । ११० ॥

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ॥

भूत अर्थमें लुङ् हो अनद्यतनभूत अर्थमें लुङ्ही होता है, जब परोक्ष अपरोक्ष अद्यतन अनद्यतनका कुछ विचार नहीं रहै और केवल भूतकालका प्रकट करना हो तो लुङ् लकार हो; अन्यथा परोक्ष अनद्यतनमें लिट् और अपरोक्ष अनद्यतनमें लङ् दोनों क्रमसे बाधकर होते हैं.

(४७०) माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ ॥

सर्वलकारापवादः ।

धातुसे पहले माङ् उपपद होय तो सब लकारोंका अपवाद लुङ् हो ऐसी अवस्थामें वर्तमान आदिकालका निश्चय प्रसंगसे होता है ।

---

* (३२७) से ता अन्तर्गत आ अच्का व्यवधान है, इससे आमें संयोगसंज्ञा न होकर सकारका लोप न हुआ.

(४७१) स्मोत्तरे लङ् च । ३ । ३ । १७६ ॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् ॥

स्म है उत्तरभागमें जिसके ऐसी माङ् परे हुए सन्ते धातुसे लङ् तथा लुङ् हो। लङ् लुङ्की प्राप्तिमें जो अपनेको इष्ट होय सोई प्रयोग करना (४७६) सूत्रमें उदाहरण देखो।

(४७२) च्लि लुङि । ३ । १ । ४३ ॥

शबाद्यपवादः ।

लुङ् परे हुए संते धातुसे च्लि प्रत्यय हो, यह शप् आदि (४२०) का अपवाद है।

(४७३) च्लेः सिच् । ३ । १ । ४४ ॥

इचावितौ ॥

च्लि (४७२) के स्थानमें सिच् हो, सिच्में इ और च् इत् हैं।

(४७४) गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु । २ । ४ । ७७ ॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते ॥

जब गा स्था और छओं घुसंज्ञक (६६२) तथा पा और भू इन धातुओंसे परे परस्मैपद प्रत्यय आवे तो सिच् (४७३) का लोप हो. यह 'गा' यहां गमन अर्थमें इण् धातुको आदेश हुआ है, जो पा धातु पान अर्थमें है जिसे पिब आदेश होता है इन दोनोंका यहां ग्रहण है.

(४७५) भूसुवोस्तिङि । ७ । ३ । ८८ ॥

भू तथा सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न ।

भू तथा सू धातुसे परे सार्वधातुक तिङ् प्रत्यय आवे तो गुण (४२१) न हो।

प्र०	पु०	ए०	अ[४५८]+भू=त्[४५९]=अभूत्	(वह हुआ.)
प्र०	पु०	द्वि०	अ[४५८]+भू+ताम्[४४०]=अभूताम्	(वे दोनों हुए.)
प्र०	पु०	ब०	अ[४५८]+भू+व्[४२६]+अन्=अभूवन्	(वे सब हुए.)
म०	पु०	ए०	अ+भू+स्[४५९]=अभूः	(तू हुआ.)
म०	पु०	द्वि०	अ+भू+तम्[४४०]=अभूतम्	(तुम दोनों हुए.)
म०	पु०	ब०	अ+भू+त[४४७]=अभूत	(तुम सब हुए.)
उ०	पु०	ए०	अ+भू+वम्[४४०]=अभूवम्	(मैं हुआ.)
उ०	पु०	द्वि०	अ+भू+व[१५६]=अभूव	(हम दोनों हुए.)
उ०	पु०	ब०	अ+भू+म[४५६]=अभूम	(हम सब हुए.)

(४७६) न माङ्योगे[७] । ६ । ४ । ७४ ॥

अडाटौ न स्तः ॥

जब धातुमें माङ्का योग हो तब अट् (४५८) तथा आट् (४७९) न हों लुङ्=मा भवान् भूत् । (आप न होवें) लङ्=मा स्म भवत् (वह न हो) (४७१) मा स्म भूत् (वह न हो)

(४७७) लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३ । ३ । १३९ ॥

हेतुहेतुमद्भावादिलिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् । क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् ॥

लिङ् लकार की प्राप्तिमें कार्यकारण भाव विधि निमन्त्रण आदि (४६०) निमित्तमें कोई हो और क्रियाकी असिद्धि समझमें आती हो तो भविष्य अर्थमें लृङ् हो ।

अ[४५८]+भव्[४२१]+इ[४३४]+स्य[४३६] (ष्य[१६९]) =अभविष्य—

प्र०	ए०	अभविष्य+त्[४५८]=अभविष्यत्	(जो वह हो.)
प्र०	द्वि०	अभविष्य+ताम्=अभविष्यताम्	(जो वे दोनों हों.)
प्र०	ब	अभविष्य+अन्[४५९]=अभविष्यन्[३००]	(जो वे सब हों)
म०	ए०	अभविष्य+स्[४५९]=अभविष्यः[३२४ १११]	(जो तू हो.)
म०	द्वि०	अभविष्य+तम्[४४७]=अभविष्यतम्	(जो तुम दोनों हों,)
म०	ब०	अभविष्य+त[४४७]=अभविष्यत	(जो तुम सब हों)
उ०	ए०	अभविष्य+अम्[४४७]=अभविष्यम्[३००]	(जो मैं हूँ)
उ०	द्वि०	अभविष्या[४२३]+व[४५६]=अभविष्याव	(जो हम दोनों हों)
उ०	ब०	अभविष्या[४२३]+म[४५६]=अभविष्याम	(जो हम सब हों)

जो कि इस सूत्रकी वृत्तिमें लिखा है कि भविष्य अर्थमें लृङ् हो परन्तु लृङ् भूत अर्थमें भी होता है । यथा जो बहुत वर्षा हो तो बहुत धान भी हो अथवा जो वह आता तो मैं आता । इनमें पहले वाक्यका यह प्रयोजन है कि वर्षा होनेका लक्षण नहीं दीखता इससे धान अधिक होना भी असंभव है दूसरेका आशय यह है कि वह नहीं आया इससे मैंभी नहीं आया (यही हेतुहेतुमद्भाव है)

अत् धातु (सातत्यगमने) निरन्तर गमन अर्थमें है उसको साधकर लिखते हैं ।

लट्

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष—अतति वह निरन्तर जाता है,	अततः वे दोनों जाते हैं,	अतन्ति वे सब जाते हैं,

मध्यमपुरुष–अतसि तू जाताहै, अतथः तुम दोनों जाते हो, अतथ तुम सब जाते हो.

उत्तमपुरुष–अतामि[४२३] मैं जाताहूं, अतावः हम दोनों जाते हैं, अतामः हम सब जाते हैं.

लिट् ।

अत् अत्=अअत्–

(४७८) अत आदेः । ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् ॥

अभ्यास (४२८) के आदिके ह्रस्व अकारको दीर्घ हो । आ अत्–

प्र० पु०	आत वह गया,	आततुः वे दो गये,	आतुः वे सब गये.
म० पु०	आतिथ[४३४] तू गया,	आतथुः तुम दो गये,	आत तुम सब गये.
उ० पु०	आत मैं गया,	आतिव हम दो गये,	आतिम हम सब गये.

लुट् ।

प्र० पु०	अतिता[४३४] वह जायगा	अतितारौ वे दो जांयगे	अतितारः वे सब जाँयगे
म० पु०	अतितासि[४३९] तू जायगा	अतितास्थः तुम दो जाओगे	अतितास्थ तुम सब जाओगे
उ० पु०	अतितास्मि मैं जाऊंगा	अतितास्वः हम दो जायंगे.	अतितास्मः हम सब जांयगे

लृट् ।

प्र०	अतिष्यति वह जायगा	अतिष्यतः वे दो जांयगे	अतिष्यन्ति वे सब जांयगे
म०	अतिष्यसि तूं जायगा	अतिष्यथः तुम दो जाओगे	अतिष्यथ तुम सब जाओगे
उ०	अतिष्यामि मैं जाऊंगा	अतिष्यावः हम दो जांयगे	अतिष्यामः हम सब जांयगे

लोट् ।

प्र०	अततु[४४४], अततात्[४४८] वह जाय	अतताम्[४४६] वे दो जाँय	अतन्तु वे सब जांय

म०	अँत, अँततात्	अततम्	अतत
	तू जा	तुम दो जाओ	तुम सब जाओ
उ०	अँतानि	अताव	अताम
	मैं जाऊं	हम दो जांय	हम सब जांय

(४७९) आडजादीनाम् । ६ । ४ । ७२ ॥

अजादेरङ्गस्याट् लुङ्लङ्लृङ्क्षु ॥

अजादि अंगसे परे लुङ् लङ् लृङ लकार आवे तो अंगको आट्का आगम हो ।

प्र० पु०	**आँतत्** वह गया,	**आतताम्** वे दो गये,	**आँतन्** वे सब गये.
म० पु०	**आतः** तू गया,	**आततम्** तुम दोनों गये;	**आतत** तुम सब गये.
उ० पु०	**आतम्** मैं गया,	**आताव** हम दोनों गये,	**आताम** हम सब गये

१ लिङ् (विधि)

प्र० पु०	**अतेत्** वह जावै,	**अतेताम्** वे दोनों जावें,	**अतेयुः** वह सब जांय.
म० पु०	**अतेः** तू जावै,	**अतेतम्** तुम दोनों जावो,	**अतेत** तुम सब जाओ.
उ० पु०	**अतेयम्** मैं जाऊं,	**अतेव** हम दोनों जांय,	**अतेम** हम सब जांय.

२ लिङ् (आशिष्)

प्र० **अत्यात्** भगवान् करें वह जाय, **अत्यास्ताम्** वे दोनों जांय.

अत्यासुः वे सब जांय.

म० **अत्याः** तू जाय, **अत्यास्तम्** तुम दो जाओ, **अत्यास्त** तुम सब जाओ.

उ० **अत्यासम्** मैं जाऊं, **अत्यास्व** हम दो जांय **अत्यास्म** हम सब जांय.

लुङ् ।

अत्+ल (४७९) से आत्+ (४७२=च्लि ४७३ से इसके स्थानमें) सिच् हुआ (इसमें इच् इत्संज्ञक है) आतस् (४३४) से इट्का आगम=आत्+इस्=आतिस् प्र० पु० ए० आतिस्+त्—

(४८०) अस्तिसिचोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९६ ॥

विद्यमानात्सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः ।

विद्यमान (जिसका लोप न हुआ हो) सिच् अथवा अस् (धातु) से परे जो अपृक्त (१९८) हल् उसको ईट्का आगम हो ।

(४८१) इट ईटि । ८ । २ । २८ ॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे ॥

जिससे परे ईट् (४८०) हो ऐसा इट् (४३४) से परे जो स् तिसका लोप हो । सिच्के सकारका लोप (४८१) से किया इस कारण सवासात अध्यायका (९९) वां सूत्र लोपकी असिद्धि प्रगट करता है तो यहां संधि न हो इसकारण यह करना योग्य है कि जहां एकसे अधिक स्वरके स्थानमें एकही अच् आदेश हो यथा इ+ईके स्थानमें केवल ई (९९) आदेश हुआ यहां सिच्का लोप सिद्ध मानो । आत्+ईत्=**आतीत्** सिद्ध हुआ. वह गया.

प्र० द्वि० आतिस्+ताम्=आतिष्+ताम्=**आतिष्टाम्** वे दोनों गये.

(४८२) सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च । ३ । ४ । १०९ ॥

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्संबन्धिनो झेर्जुस् ॥

सिच् अथवा अभ्यस्तसंज्ञकधातु (३७९) अथवा विद्धातुसे परे ङित् लकारके स्थानमें जो झि प्रत्यय उसको जुस् हो.

प्र० ब० आतिस्+उः (जुस्) **आतिषुः** (११९) वे सब गये.
म० ए० आतिस्+स्=आतिस् (४८१) ई+स्=**आतीः** (९९) तू गया.
म० द्वि० आतिस्+तम्=**आतिष्टम्** (११९, ७८) तुम दो गये.
म० ब० आतिस्+त=**आतिष्ट** (११९, ७८) तुम सब गये.
उ० ए० आतिस्+अम्=**आतिषम्** मैं गया.
उ० द्वि० आतिस्+व=**आतिष्व** हम दो गये.
उ० ब० आतिस्+म=**आतिष्म** हम सब गये.

लृङ्

प्र० ए० अत्+त् आ+इ+स्य+त-

प्र० पु०	**आतिष्यत्** जो वह जाय.	**आतिष्यताम्** जो वह दो जायँ.	**आतिष्यन्** जो वह सब जायँ.
म० पु०	**आतिष्यः** जो तू जाय.	**आतिष्यतम्** जो तुम दो जाओ.	**आतिष्यत** जो तुम सब जाओ.
उ० पु०	**आतिष्यम्** जो मैं जाऊं.	**आतिष्याव** जो हम दो जायँ.	**आतिष्याम** जो हम सब जायँ.

षिधु (गत्याम्) जाना ।

(४८३) ह्रस्वं लघु । १ । ४ । १० ॥

ह्रस्व अच्की लघुसंज्ञा हो ।

(४८४) संयोगे गुरु । १ । ४ । ११ ॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात ॥

संयोग परे रहते ह्रस्व अच्की गुरुसंज्ञा हो ।

(४८५) दीर्घं च । १ । ४ । १२ ॥

गुरु स्यात् ॥

दीर्घ अच्कीभी गुरु संज्ञा हो ।

(४८६) पुगन्तलघूपधस्य च । ७ । ३ । ८६ ॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ॥

जो अंग पुगन्त (७९०) वा लघूपध होय अर्थात् जिसके अन्तमें पुक् आगम हुआ होय अथवा जिस अंगकी उपधा (१९६) लघु (४८३) होय तो सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते उसके इक्को गुण होय । (२८०) से धातुके प्रथमाक्षर ष्के स्थानमें स् आदेश हो—सिध्=सेध—

लट्

प्र० पु० सेधति वह जाता है, **सेधतः** वे दो जाते हैं, **सेधन्ति** वे सब जाते हैं.
म० पु० सेधसि तू जाता है, **सेधथः** तुम दो जाते हो, **सेधथ** तुम सब जाते हो.
उ० पु० सेधामि मैं जाता हूँ, **सेधावः** हम दो जाते हैं, **सेधामः** हम सब जाते हैं.

लिट् ।

सिध्+अ[४३५]=सिध्[४२७] सिध्+अ=सिसिध्[४३९]=सिषेध्[१६९]+अ[४८६]=**सिषेध** वह गया.
सिषिध्[१६९]+अतुः (४८६) से षिअन्तर्गत (इक्) को गुण प्राप्त हुआ. परन्तु—

(४८७) असंयोगाल्लिट् कित् । १ । २ । ५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् ॥

लिट् (४२४) के स्थानमें जो आदेश हुआ है वह संयोगसे परे न होय तथा पित् न होय तो उसकी गणना कित्में हो (४६८) से अतुः कित् है उसको गुण न हो ।

सिषिधतुः वे दो गये, **सिषिधुः** वे सब गये.
म० पु० सिषेधिथ तू गया, **सिषिधथुः** तुम दो गये, **सिषिध** तुम सब गये.
उ० पु० सिषेध मैं गया, **सिषिधिव** हम दो गये, **सिषिधिम** हम सब गये.

लुट्-सेधिता	वह जायगा.	**लिङ्-(विधि०) सेधेत्**	वह जावे.
लृट्-सेधिष्यति	वह जायगा.	**लिङ्-(आशि०) सिध्यात्** भगवान् करे वह जाय.	
लोट्-सेधतु	वह जाय.	**लुङ्-असेधीत्**	वह गया.
लङ्-असेधत्	वह गया.	**लृङ्-असेधिष्यत्**	जो वह जाय.

चित् (चिती) चेतकरना । **शुच्** । खेदकरना इन धातुओंके रूप इसीप्रकार जानने.

गद् स्पष्ट बोलना ।

लट् ।

लट्-प्र० पु० ए० गदति रूप होता है शेषरूप भूधातुके समान जानने परन्तु यदि उसमें उपसर्ग लगे तो नीचे लिखा सूत्र लगता है । **गदति**-वह बोलता है ।

(४८८) नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च । ७ । ४ । १७ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्णो गदादिषु परेषु ॥

उपसर्गविषे स्थित र् और ष् जिसके निमित्त हैं अर्थात् णकार होनेके निमित्त हैं (२९२) उससे परे नि उपसर्गके नकारके स्थानमें ण् हो जो गदआदि नीचे लिखे धातु उससे परे होंय तो.

गद् स्पष्ट बोलना.	**षो** नाश होना.	**वप्** बोना.
नद् नाद करना.	**हन्** मारना.	**वह्** ले जाना.
पत् गिरना.	**या** जाना.	**शम्** शान्त होना.
पद् चलना.	**वा** वहना (पवनादि)	**चि** इकठ्ठा करना.
घु संज्ञक धातु.	**द्रा** दौडना.	**दिह्** लीपना वा पोतना.
मा मापना.	**प्सा** खाना.	

गद् धातुसे पूर्व प्र तथा नि उपसर्ग आये तो प्रनिगद् ऐसी स्थिति हुई तब (४८८) प्रणिगद् रूप बना **प्र० ए० प्रणिगदति**-वह स्पष्ट बोलता है.

लिट् ।

प्र० ए० गद्+अ (४२६)=गद् (४२७)+गद्+अ=गगद् (४२९)+अ-

(४८९) कुहोश्चुः । ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः ॥

अभ्यास (४२८) के कवर्ग अथवा हकारको चवर्ग आदेश हो जगद्+अ (णल्)

(४९०) अत उपधायाः । ७ । २ । ११६ ॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे ॥

ञित् अथवा णित् प्रत्यय परे हुए सन्ते अकार उपधाको वृद्धि हो तब ग अन्तर्गत अ उपधाको आ हुआ जगाद्+अ-

प्र० पु० जगाद वह बोला, **जगदतुः** वे दो बोले, **जगदुः** वे सब बोले
म० पु० जगदिथ तू बोला, **जगदथुः** तुम दो बोले, **जगद** तुम सब बोले

(४९१) णलुत्तमो वा । ७ । १ । ९१ ॥

उत्तमो णल् वा णित्स्यात् ॥

उत्तम पुरुष (४१७) का णल् (४२९) विकल्प करके णित् होय । **उ० पु० जगाद, जगद** मैं बोला, **जगदिव** (४३४) हम दो बोले, **जगदिम** हम सब बोले

लुट्-गदिता वह स्पष्ट बोलेगा.	**लङ्-अगदत्** वह स्पष्ट बोला.
लृट्-गदिष्यति वह स्पष्ट बोलेगा.	**लिङ्-(विधि०) गदेत्** वह स्पष्ट बोले.
लोट्-गदतु वह स्पष्ट बोले.	**लिङ्-(आशी०) गद्यात्** ईश्वर करे वह बोले.

(४९२) अतो हलादेर्लघोः । ७ । २ । ७ ॥

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि ॥

जिस धातुके आदिमें हल् हो और उससे परे इट्का आगम तथा परस्मैपद प्रत्यय सहित सिच् परे हो तो उसके लघु (४८३) संज्ञक अकारकी विकल्प करके वृद्धि हो । **लुङ्-अगदीत्** (४९२) **अगादीत्** वह स्पष्ट बोला **लृङ्-अगदिष्यत्** (४७७) जो वह स्पष्ट बोले.

(४९३) णो नः । ६ । १ । ६५ ॥

धात्वादेर्णस्य नः ॥

धातुके आदिमें ण् होय तो उसको नकार हो । **णोपदेशास्त्वनर्द्नाटिनाथ्नाध्नन्द्नक्कनॄनृतः ।** इन नीचेवाले धातुओंको छोडकर जितने धातु हैं उनके आदिमें नकार हो तो उपदेशमें णकारयुक्त जानो,

नर्द शब्द करना.	**नाधृ** मांगना.	**नॄ** लेजाना.
नाटि (नट्) नाचना.	**नन्द** (टुनदि) समृद्ध होना	**नृत्** नाचना.
नाथ मांगना.	**नक्क** (नाश करना.	

(४९४) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य । ८ । ४ । १४ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः ॥

समास (९६२) न होय तोभी उपसर्गमें स्थित निमित्त र् ष् इनसे परे ण् उपदेशविष-

यक (४९३) धातुके न् को ण् हो । **प्रणदति** । वह बहुत अच्छे प्रकार शब्द करता है लट् **प्रथम पु० ए० व०** के रूपमें णद्के स्थानमें नद् (४९३) हुआ फिर (४९४)से **न्के** स्थानमें ण् हुआ ॥ **लट्–प्रणिनदति** (४८८) वह बहुत अच्छी भांतिके शब्द करता है । उपसर्गरहित केवल धातुके रूप नीचे लिखे अनुसार जानो । **लट् प्र० पु० ए० नदति** । वह शब्द करता है । **लिट् प्र० ए० व० ननाद** (४९० उसने शब्द किया । **लिट्–प्र० पु० द्वि०** नद्+अतुस्=नद् (४२७)+नद्+अतुः—

(४९५) अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि । ६ । ४ । १२० ॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि ॥

कित् (४८७) संज्ञक लिट् परे रहते लिट् निमित्त मानकर जिस अंगके अभ्यासके आदि अक्षरको आदेश न हुआ होय उस अंगके असंयुक्त हलोंके मध्यमें रहनेवाले अकारके स्थानमें एकार हो और अभ्यासका लोप हो । नद्+नद्+अतुः=नद्+न् अद्+अतुः । न् तथा द्के बीचमें न अन्तर्गत अ जो पृथक् है उसके स्थानमें ए हुआ । नद् अभ्यासका (४२८)लोप हुआ तब नेद्+अतुः=**नेदतुः** उन दोने शब्द किया । **नेदुः** उन सबने शब्द किया.

(४९६) थलि च सेटि । ६ । ४ । १२१ ॥

प्रागुक्तं स्यात् ॥

जब इट् (४३४) सहित थल् प्रत्यय (४२५) हो तो पूर्वोक्त (४९५) कार्य हो । **म० पु० नेदिथ** तूने शब्द किया, **नेदथुः** तुम दोनोंने शब्द किया, **नेदुः** तुम सबने शब्द किया ।

उ० पु० ननाद-ननद मैने शब्द किया, **नेदिव** हम दोनोंने शब्द किया, **नेदिम** हम सबने शब्द किया,

लुट्–प्र०ए० नदिता-वह शब्द करैगा.
लृट्–प्र० ए०नदिष्यति-वह शब्द करैगा.
लोट्–प्र०ए० नदतु वह शब्द करै,
लङ्–प्र० ए० अनदत् उसने शब्द किया.
लिङ्–प्र० ए० नदेत्-वह शब्द करै.

लिङ्–प्र० ए० नद्यात् भगवान करे वह शब्द करै.
लुङ्–प्र० ए०अनादीत् अनदीत् उसने शब्द किया.
लृङ्–प्र० ए०अनदिष्यत्-जो वह शब्द करै

नद् (टुनदि समृद्धौ) समृद्धि । आदि उच्चारणमें इसका रूप टुनदि है.

(४९७) आदिर्ञिटुडवः । १ । ३ । ५ ॥

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ॥

उपदेशमें धातु उच्चारण करते समय आदिमें जो ञि टु और डु होय तो उनकी इत्संज्ञा हो.

(४९८) इदितो नुम् धातोः । ७ । १ । ५८ ॥

इदित् धातु जिसका इकार इत्संज्ञक हो उस धातुको नुम्का आगम हो । टुनदिमेंसे टुका लोप (४९७) से हुआ दि अन्तर्गत इ अनुबंधसे लुप्त हुई तब नद् शेष रहा इसको नुम् हुआ तब नन्द रूप हुआ.

लट्–प्र० ए० **नन्दति**-वह समृद्ध होता है.	**लिङ्**० प्र० ए० **नन्देत्**–वह समृद्ध होवे.
लिट्–प्र० ए० **ननन्द**-वह समृद्ध हुआ.	**लिङ्**–प्र० ए० **नन्द्यात्**-भगवान् करे वह समृद्ध हो.
लुट्–प्र० ए० **नन्दिता**-वह समृद्ध होगा.	**लुङ्**–प्र० ए० **अनन्दीत्**-वह समृद्ध हुआ.
लृट्–प्र०ए० **नन्दिष्यति**-वह समृद्ध होगा.	**लृङ्**–प्र० ए० **अनंदिष्यत्**-जो वह समृद्ध हो.
लोट्–प्र० ए० **नन्दतु**-वह समृद्ध हो.	
लङ्–प्र० ए० **अनन्दत्**-वह समृद्ध हुआ.	

अर्च् (अर्च पूजायाम्) पूजा करना । **लट्**–प्र०पु०ए०व० **अर्चति**-वह पूजा करताहै

(४९९) तस्मान्नुड् द्विहलः । ७ । ४ । ७१ ॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात्परस्य नुट् स्यात् ॥

दो हल् जिसमें हो ऐसे धातुके अभ्यासको दीर्घता (४७८) पाये हुए स्वरसे परे जो वर्ण तिसको नुट्का आगम हो (१०३) आ+अर्च्+अ—

लिट्–प्र० ए० **आनर्च**-उसने पूजा की.	**लिङ्**–प्र०ए० **अर्चेत्**-वह पूजा करे.
लुट्–प्र०ए० **अर्चिता**-वह पूजा करैगा.	२ **लिङ्**–प्र० ए० **अर्च्यात्**-भगवान् करे वह पूजा करे.
लृट्–प्र०ए०**अर्चिष्यति**-वह पूजा करैगा.	**लुङ्**–प्र० ए० **आर्चीत्**-उसने पूजा की.
लोट्–प्र०ए० **अर्चतु**-वह पूजा करे.	**लृङ्**-प्र०ए०**आर्चिष्यत्**-जो वह पूजा करे.
लङ्–प्र०ए०**आर्चत्**-(४७२)उसने पूजाकी	

व्रज् १० (व्रज गतौ) गमन करना । **व्रजति** वह जाता है, इस धातुके रूपमें लुङ् लकारमात्रमें भेद होता है सो नीचे लिखते हैं, अ+व्रज्+इ+स्+ई+त्—

(५००) वदव्रजहलन्तस्याचः । ७ । २ । ३ ॥

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु ॥

वद (स्पष्ट बोलना,) व्रज (जाना) और हलन्त धातु इनके अच्को नित्य वृद्धि हो.

परस्मैपद प्रत्ययवाला सिच् प्रत्यय परे होय तो । **लुङ् प्र० ए० अव्राजीत्**—वह गया ।

कट् (कटे वर्षावरणयोः) वरसना और घेरना ।

लट्—प्र० ए० **कटति**—वह वरसता है.
लिट्—प्र० ए० **चकाट**—वह वरसा.
लुट्—प्र० ए० **कटिता**—वह वरसैगा.
लृट्—प्र० ए० **कटिष्यति**—वह वरसैगा.
लोट्—प्र० ए० **कटतु**—वह वरसै.
लङ् प्र० ए० **अकटत्**—वह वरसा.
लिङ्—प्र० ए० **कटेत्**—वह वरसै.
२ **लिङ्**—प्र० ए० **कट्यात्**—भगवान् करैं वह वरसै । अकट्+इ+स्+ई+त्—

(९०१) ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् । ७ । २ । ५ ॥

ह्मयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि ॥

जिस धातुके अन्तमें ह् म् अथवा य् होय उसे और क्षण् (मारना), श्वस् (श्वास लेना), जागृ (जागना) तथा जिन धातुओंके अन्तमें णि प्रत्यय (७४८, ७४२) होय और श्वि (वृद्धिको प्राप्त होना वा जाना) और एदित् धातु इन सबको वृद्धि एकादेश न हो; जो इट्आदि सिच् प्रत्यय परे हो तो । (९००) सूत्रके कट्के क अन्तर्गत अकारको वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु इस धातुका रूप अनुवन्धयुक्त (कटे) ऐसा है तो (९०१) से यह एदित् (एकी इत्संज्ञावाला) हुआ इससे इसे वृद्धि न हुई । **लुङ्**—प्र० ए० **अकटीत** (मेघ वरसा) । **लृङ्** प्र० ए० **अकटिष्यत्** जो मेघ वरसै ।

गुपू (गुपू रक्षणे) रक्षा करना ।

(९०२) गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः । ३ । १ । २८ ॥

एभ्य आयः प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे ॥

गुपू (रक्षा करना), धूप् (तप्त करना), विच्छ् (समीप आना), पण् (स्तुति करना) इन धातुओंसे परे स्वार्थमें आय प्रत्यय हो । वहुतसे प्रत्यय ऐसेभी हैं, जब वे धातुओंसे परे आते हैं, तब उनका अर्थ वढजाता है परन्तु आय प्रत्ययमें ज्योंका त्यों रहता है वह जिस धातुसे आवे उसका वही अर्थ रहता है ।

(९०३) सनाद्यन्ता धातवः । ३ । १ । ३२ ॥

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञाः स्युः ॥

सन्से आरम्भकर 'कमेर्णिङ्' सूत्र (९६१) के णिङ् पयन्त जो बारह प्रत्यय हैं उनमेंसे कोईभी धातुसे परे आवे तो वह धातु प्रत्ययविशिष्ट कहा जाय । गुप्+आय (९०२)=गोपाय (४८९) यह धातु प्रत्यययुक्त हुआ । **लट् प्र० ए० व० गोपायति** वह रक्षा करता है ।

(५०४) आयादय आर्धधातुके वा । ३ । १ । ३१ ॥

आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः ॥

जब आर्धधातुक प्रत्यय धातुसे करनेकी इच्छा होय तब आय आदि (आय ईयङ् और णिङ्) (५११) विकल्प करके हों ।

(५०५) कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः ॥

लिटि । आस्कासोराम्विधानान्मस्य नेत्त्वम् ॥

कास् (चमकना) तथा जिसमें वहुत अच् हों ऐसे धातुसे आम् प्रत्यय हो, जो लिट् परे होय तो । आस् (वैठना) कास् (चमकना) इनसे परे आम् विधान करनेसे यह निश्चय होता है कि आम्के मकारकी इत्संज्ञा नहीं होती कारण कि जो इत् हो तो मित् मानकर अच्के अन्तमें (२६५) से आम् होगा फिर दीर्घ (५५) होनेसे आस् और कास् धातुका जिस प्रकार जैसा स्वरूप है वैसाही रहैगा और आम् विधान करनाही निरर्थक हो जायगा । गोपाय+आम्—

(५०६) अतो लोपः । ६ । ४ । ४८ ॥

आर्धधातुकोपदेशे यदन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके ॥

जब धातुसे आर्धधातुक करनेकी इच्छा हो और अदन्त धातु हो तब ऐसा जिस धातुके अन्तमें अकार हो तो अकारका लोप हो आर्धधातुक प्रत्यय परे होय तो । गोपाय यह प्रत्ययविशिष्ट अकारान्त है उसको लिट् आर्धधातुक प्रत्यय परे होनेसे य अन्तर्गत अकारका लोप (५०६) हुआ तब गोपाय् ऐसा रूप हुआ फिर उससे परे (५०५) से आम् लगा तब गोपायाम् (गोपाय्+आम्) स्थिति हुई—

(५०७) आमः । २ । ४ । ८१ ॥

आमः परस्य लुक् ॥

आम् (५०५) से परे प्रत्ययका लुक् हो (४२५) से प्राप्त हुए लिट् प्रत्ययका लोप होकर 'गोपायाम्' यह रूप रहा—

(५०८) कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि । ३ । १ । ४० ॥

(क्रि०)

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यंते ॥

कृञ् प्रत्याहारके अन्तर्गत कृ (करना), भू (होना), अस् (होना) यह आमन्त (जिसके अन्तमें आम् है) धातुके आगे स्थापन किये जायँ, और उनसे परे लिट् लकार हो । **तेषां द्वित्वादि ।** इनको द्वित्व और लिट्के सब कार्य होते हैं । (५०७) से लिट्का लोप होकर कृकी

प्राप्ति हुई गोपायाम्+कृ+अ (णल्) गोपायाम् रूपमें लिट् लकार नहीं है और लिट्की कोई भी क्रिया उसको नहीं होकर कृधातुको होती है। इस कृको द्वित्वादि लिट्के सब कार्य होंगे। गोपायाम्+कृ+कृ (४२७)+अ—

(६०९) उरत्। ७। ४। ६६ ॥

अभ्यासऋवर्णस्यात् स्यात्।

अभ्यासके ऋवर्णके स्थानमें अत् (अ) हो। गोपायाम्+कृ (६०९)+कृ+अ (२०२) से कृ अन्तर्गत ऋ अच्से परे अ णित् प्रत्यय है, उसे आर् वृद्धि हुई, और पहले कके स्थानमें (४८९) से च् हुआ, तब गोपायाम्चकार रूप हुआ और म् के स्थानमें (९४) से अनुस्वार हुआ, अथवा (९७) से ञ् हुआ तब **गोपायांचकार गोपायाञ्चकार** उसने रक्षा की। **द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते। प्र० पु० द्वि०** गोपायाम्+कृ+अतुस्(४२७) से कृधातुको द्वित्व प्राप्त हुआ, परन्तु कृसे परे अतुस् है तो (२१) से यण् (१३२ से ४२७) को बाधकर हुआ, कारण कि (२१) वां उससे परे है ऐसा होनेपर—

(६१०) द्विर्वचनेऽचि। १। १। ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये ॥

द्वित्वके निमित्त (४२७) अजादि प्रत्यय परे रहते, जबतक द्वित्व न हुआ हो और उसके होनेकी अपेक्षा रहे, तब उसको कोई आदेश न हो अर्थात् द्वित्व होजानेके पीछे आदेश होता है (४२७, ६०९, ४८९, २१)। **गोपायाञ्चक्रतुः** (४८७, ४६८) उन दोनोंने रक्षा की। **गोपायाञ्चक्रुः**—उन सबने रक्षा की। **लिट्—म० पु० ए० व०** गोपायाम्+कृ+थ= गोपायाम्चकृ+थ—

(६११) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्। ७। २। १० ॥

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्य वलादेरार्धधातुकस्येण्नस्यात्।

उपदेशमें (९) जो उच्चारण किया हुआ धातु एकाच् और अनुदात्त हो उससे परे वल आदि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो इट् (४३४) का आगम न हो। एकाच् अजन्त धातु सबही अनुदात्त हैं, केवल नीचे लिखे श्लोकोंके धातु उदात्त हैं; इनको इट्का आगम होता है।

ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीस्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥

जिनके अन्तमें ऊ अथवा ॠ हों उन्हें छोडकर और नीचे लिखे धातुओंको छोडकर एकाच् अजन्त धातु सब अनुदात्त हैं.

यु मिलाना, अलग करना.	**स्नु** चूना वा चुआना.	**डीङ्** उडना
रु शब्द करना.	**नु** प्रशंसा करना.	**श्रि** सेवा करना.
क्ष्णु तीक्ष्ण करना.	**क्षु** छींकना.	**वृ** (वृङ्) सेवा करना.
शी सोना.	**श्वि** बढना, गमन करना.	**वृ** (वृञ्) स्वीकार करना.

कान्तेषु, शक्लृकः । चान्तेषु, पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट् । छांतेषु प्रच्छेकः। जान्तेषु,त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज्-सृजः पंचदश । दान्तेषु, अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्-विद्य-विनद्-विन्द्-शद् सदो-स्विद्य-स्कन्द-हदः षोडश । धान्तेषु, क्रुध्-क्षुध्-बुध्य-बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुध्-साध्-सिध्य एकादश। नान्तेषु, मन्यहनौ द्वौ । पान्तेषु, आप्-क्षिप्-छुप्-तप्-तिप्-तृप्-दृप्य-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदश। भान्तेषु, यभ्-रभ्-लभस्त्रयः । मान्तेषु, गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः । शान्तेषु, क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश । षान्तेषु, कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-शुष्-श्लिष्य-एकादश । सान्तेषु, घस्-वसती द्वौ । हान्तेषु, दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह्-वहोऽष्टौ । अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् ।

कृ धातु अनुदात्त और एकाच् है इसकारण इसको इट्का आगम नहीं हुआ । **म० पु० ए० व० गोपायाञ्चकर्थ** (४२१) तैने रक्षा की । थल् जो सिप्के स्थानमें आदेश है सो पित् है इसकारण (४६८) से गुणका निषेध न हुआ । **म० द्वि० गोपायाञ्चक्रथुः** तुम दोनोंने रक्षा की । **म० ब० गोपायाञ्चक्र**—तुम सबने रक्षा की । **उ० पु० गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकर** मैंने रक्षा की । **गोपायाञ्चकृव**—हम दोनोंने रक्षा की । **गोपायाञ्चकृम** हम सबने रक्षा की । गुप्धातुके रूप गोपायाम्के आगे (९०८) से भूधातु आवे तो प्रथमपुरुषके एकवचनमें **गोपायांबभूव** इत्यादि और गोपायाम्से अस्धातु आवे तो **गोपायामास** (उसने रक्षा की) अब उन धातुओंका विवरण अर्थसहित लिखते हैं जिनको इट् नहीं होता क्योंकि वे एकाच् हलन्त अनुदात्त हैं—

ककारान्त १	**विच्** अलग करना.	**भज्** सेवा करना.
शक् (शक्लृ) समर्थ होना	**सिच्** छिडकना वा सींचना.	**भञ्ज्** तोडना.
चकारान्त (६)	**छकारान्त (१)**	**भुज्** भोग करना.
पच् रांधना.	**प्रच्छ्** पूछना.	**भ्रस्ज्** भूनना.
मुच् छोडना.	**जकारान्त (१५)**	**मस्ज्** डूबना.
रिच् (**रेच्**) दस्त कराना.	**त्यज्** त्यागना.	**यज्** यज्ञ करना.
वच् बोलना.	**निज्** शुद्धकरना.	**युज्** जोडना.

रुज् रोगी होना.
रञ्ज् रंगना.
विजिर् अलग करना.
स्वञ्ज् गले लगाना.
सञ्ज् मिलना.
सृज् त्याग करना.

दकारान्त (१६)

अद् खाना.
क्षुद् कूटना.
खिद् दुःखी होना.
छिद् काटना.
तुद् दुःख देना.
नुद् प्रेरण करना.
पद्य (दिवादिगणका) पद, जाना.
भिद् तोडना.
विद्य (दिवादि) विद, होना
विनद् (रुधादिगण) विद, विचारना.
विन्द्-विद् (तुदादिगणका) उपार्जन करना.
शद् मुरझाना वा नष्ट होना
सद् जाना.
स्विद्य (दिवादिगणका) स्विद्, पसीजना.
स्पन्द जाना सूखना सुखाना.
हद् मल त्यागना.

धकारान्त (११)

क्रुध् क्रोध करना.
क्षुध् भुखाना.
बुध्य-बुध् (दिवादिगणका) बुध, जानना.
बन्ध् बांधना.
युध् लडना.
रुध् रूंधना, घेरना.
राध् सिद्ध करना.
व्यध् ताडन करना वा वेधना.
शुध् स्वच्छ होना.
साध् सिद्ध करना.
सिध्य-सिध् (दिवादिगण-का) पूरा होना.

नकारान्त (२)

मन्य (दिवादिका) मन, मानना.
हन् मारना.

पकारान्त (१३)

आप् प्राप्त करना वा व्याप्त होना.
तृप्य (दिवादि) पृ, परितुष्ट होना वा तुष्ट करना.
दृप्य (दिवादि) दृप्, अभिमानी होना.
लिप् लीपना.
लुप् काटना.
वप् बोना.
शप् शाप देना, शपथ करना
स्वप् सोना.
सृप् रंगना.
क्षिप् फेंकना.
छुप् छूना.
तप् तपना.
तिप् चूना.

भकारान्त (३)

यभ् मैथुन करना.
रभ् शीघ्रता करना.
लभ् प्राप्त करना.

मकारान्त (४)

गम् जाना.
नम् नमस्कार करना.
यम् निवृत्त होना.
रम् क्रीडा करना.

शकारान्त (१०)

क्रुश् ऊंचेस्वरसे रोना.
दंश डसना वा काटना.
दिश् दान करना, दिखाना.
दृश् देखना.
मृश् स्पर्श करना वा बोध करना.
स्पृश् छूना.
रिश् हिंसा करना.
रुश् हिंसा करना.
लिश् घटना.
विश् प्रवेश करना.

षकारान्त (११)

कृष् आकर्षण करना.
त्विष् चमकना.
तृष् तृप्त होना.
द्विष् द्वेष करना.
दुष् बिगडना.
पुष्य् (दिवादि) पुष् पुष्ट करना.
पिष् पीसना.
विष् व्याप्त होना.

शिष् विशिष्ट करना.
शुष् सुखाना.
श्लिष् आलिंगन करना.

सकारान्त (२)

घस् खाना.
वस् वास करना.

हकारान्त (८)

दह् जलाना.
दिह् लीपना.
दुह् दुहना.
नह् बांधना.
मिह् सींचना.
रुह् जमना.
लिह् चाटना.
वह् ले जाना.

इसप्रकार हलन्त धातुमेंसे अनुदात्तधातु एकसो तीन हैं ।

(९१२) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा । ७ । २ । ४४ ॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् ॥

स्वृ (शब्दकरना) तथा षू (उत्पन्न करना) सूति (अदादि गणका धातु क्योंकि उसमें ऐसा रूप बनताहै) सूयति दिवादिगणका धातु (उसगणका ऐसा रूप है) और धूञ् (कांपना) इनसे तथा उदित् धातुओंसे परे वल् आदि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो विकल्प करके इट्का आगम हो । (९०४) से जब आय प्रत्यय नहीं किया तब नीचे लिखे अनु-सार रूप हुए.

प्र० पु० जुगोप* उसने रक्षा की, जुगुपतुः उन दोने रक्षा की, जुगुपुः उन सबने रक्षा की,

म० पु० जुगोपिथ / जुगोप्थ } तैने रक्षा करी, जुगुपतुः तुम दोनोंने रक्षा की, जुगुप तुम सबने रक्षा की,

उ० पु० जुगोप मैंने रक्षा की, जुगुपिव / जुगुप्व } हम दोनोंने रक्षाकी, जुगुपिम / जुगुप्म } हम सबने रक्षा की.

लुट् ।

प्र० पु० गोपायिता } आय प्रत्यय होकर (९०४) / गोपिता } आय न करके इट् किया / गोप्ता } आय और इट् दोनों न किये } वह रक्षा करेगा.

लृट् ।

प्र० पु० ए० व० गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति वह रक्षा करेगा.

लोट्

प्र० पु० ए० व० गोपायतु (यहां विकल्प सूत्र नहीं लगता) वह रक्षा करै.

लङ् ।

प्र० पु० ए० व० अगोपायत् उसने रक्षा की.

---

* पित् लिट् कित् नहीं है इससे गुणका निषेध न हुवा.

विधिलिङ्।

प्र० पु० ए० व० गोपायेत् वह रक्षा करे.

आशीर्लिङ्

प्र० पु० ए० व० गोपाय्यात्[५०२], गुप्यात्[५०४] ईश्वर करै वह रक्षा करै.

लुङ्।

(६१३) नेटि । ७ । २ । ४ ॥

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न ॥

हलन्त धातुसे परे इट् आदि सिच् आवे तो धातुको वृद्धि (६००) से न हो।

प्र० पु० ए० व० अ (४५८) गो (४८६) पाय (६०२) ई,त्, **अगोपायीत्** "(४७२, ४७३) से सिच् हुवा (४३४) इका आगम पीछे (४८०) से ई फिर (४८१) से सकारका लोप हुआ"।

अथवा **अगोपीत्** (आय न किया) यहां (६००) से गो अन्तर्गत ओको वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु (६१३) से निषेध हुआ. अथवा **अगौप्सीत्**[१] (उसने रक्षा की)। जब इट् न किया तब (६००) लगा। लुङ्–प्र० पु० द्वि० व० अगुप्+स्+ताम्—

(६१४) झलो झलि । ८ । २ । २६ ॥

झलः परस्य सस्य लोपो झलि ॥

झल्से परे स् होय और उससे परे झल् आवे तो सकारका लोप हो। तब सकारका लोप होकर (६००) से गु अन्तर्गत उको वृद्धि हुई.

अगौप्ताम् उन दोने रक्षा की, **अगौप्सुः** उन सबने रक्षा की.

म०पु० **अगौप्सीः** तैने रक्षा की, **अगौप्तम्** तुम दोनोंने रक्षा की, **अगौप्त** तुम सबने रक्षा की.

उ०पु० **अगौप्सम्** मैंने रक्षा की, **अगौप्स्व** हम दोने रक्षा की, **अगौप्स्म** हम सबने रक्षा की.

लृङ्।

प्र०पु० **अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्[५०४], अगोप्स्यत्[५१२]** जो वह रक्षा करै.

क्षि (क्षये) (घटना) १३।

लट्–प्र० पु० ए० व० **क्षयति**[२०।४२९] [२९] वह घटता है। **लिट्**–क्षि+अ (४२९।४८९)

लिट्–प्र० पु० ए० व० **चिक्षाय** वह घटा, (२०२) से इके स्थानमें ए (२९) से आय

लिट्–प्र० पु० द्वि० व० **चिक्षियतुः** वे दोनों घटे, (२२०) इयङ्को इय् आदेश–

---

१ (४७२–४७३) के अनुसार स् (सिच्) होनेके पीछे (४३४) इ आगम हुआ फिर पीछे वह (४८०) के अनुसार ईका आगम हुआ फिर (४८१) के अनुसार सका लोप हुआ.

लिट्०प्र० पु० ब०व० चिक्षियुः वे सब घटे (२२०)

लिट्– म० पु० ए० व० चिक्षि+थ् (थल्)

(४३४) से इट्का आगम प्राप्त हुआ परन्तु (५११) से निषेध हुआ तथापि—

(५१५) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिँटि । ७ । २ । १३ ॥

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ॥

कृ (बनाना), सृ (जाना), भृ (पालन करना), वृ (अंगीकार करना), स्तु (ष्टु) (बडाई करना), द्रु (दौडना), स्रु (चूना), श्रु (श्रवण करना) इन धातुओंसे परे लिट् आवे तो इट् (४३४) का आगम न हो परन्तु (५११) से कोई धातु यदि अनिट्भी हो उससे परे वल् प्रत्याहारका कोई अक्षर जिसके आदिमें हो ऐसे सार्वधातुक लिट्को इट्का आगम हो परन्तु—

(५१६) अचँस्तास्वत्थँल्यनिँटो नित्यम् । ७ । २ । ६१ ॥

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण्न स्यात् ॥

जो धातु उपदेश (९) (उच्चारणकरने) में अजन्त हो और तास् (तासि) (४३६) प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् हो उससे परे थल् (४२९) आवे तो उसको इट्का आगम न हो.

(५१७) उपदेशेऽत्वतः । ७ । २ । ६२ ॥

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिट् परस्य थल इण्न स्यात् ।

जो हलन्तधातु उपदेशमें अकारवान् होय और तासि प्रत्ययके परे होनेपर नित्य अनिट् हो उससे परे थल् आवे तो उसे इट्का आगम न हो,

(५१८) ऋतो भारद्वाँजस्य । ७ । २ । ६३ ॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो न इट् भारद्वाजस्य मते ॥

भारद्वाजके मतमें तासि प्रत्यय परे हुए सन्ते नित्य अनिट् ऋदन्त धातुसे परे ही थल्को इट्का आगम न हो । **तेन अन्यस्य स्यादेव ।** भारद्वाजके मतसे ऋदन्त ही धातुको इका निषेध है इस कारण जो धातु ऋदन्त नहीं है तिससे परे थल्को इट्का आगम होना चाहिये इसी कारण (५१५, ५१६) से विकल्प कर इट् होता है.

"अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥"

अजन्त धातु अथवा ऐसा हलन्त धातु जिसके उपदेशमें अकार हो यदि वह तासि प्रत्यय परे हुए सन्ते अनिट् हो तो उससे आगे थल्को विकल्प कर इट्का आगम हो, परन्तु ऐसी अवस्थामें ऋदन्त धातु नित्य अनिट् होता है; और कृ आदि (५१५) धातु-

ओंके विना अन्य धातुओंसे परे लिट् हो तो इट् होसकता है। इन विकल्प सूत्रोंपर विशेष ध्यान रखना उचित है. थल् परे होनेपर इट्का आगम हुआ तो–

चिक्षयिथ, चिक्षेथ तू घटा, **चिक्षियथुः** तुम दोनों घटे, **चिक्षिय** तुम सब घटे. उ०पु० **चिक्षाय, चिक्षय** मैं घटा, **चिक्षियिव** हम दोनों घटे, **चिक्षियिम** हम सब घटे.

लुट्–प्र० ए० क्षेता वह घटैगा.
लृट्–प्र० ए० क्षेष्यति वह घटैगा.
लोट्–प्र० ए० क्षयतु वह घटै.
लङ्–प्र० ए० अक्षयत् वह घटा.

लिङ् प्र० ए० क्षयेत् वह घटै.
२ लिङ् प्र० ए० क्षि+यास्+त् (३३७) से स्का लोप हुआ–

(५१९) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । ७ । ४ । २५ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः ॥

अजन्त अङ्गसे परे (३२९) कृत्संज्ञक प्रत्यय तथा सार्वधातुक प्रत्यय छोडकर यकारादि प्रत्यय आवे तो अजन्त अंगको दीर्घ हो.

प्र० पु० ए० व० क्षीयात् ईश्वर करे वह घटै.

लुङ्–प्र० पु० ए० व० क्षि+स् (सिच्)+त्–

(५२०) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु । ७ । २ । १ ॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि ॥

इक् जिसके अन्तमें हो ऐसे अंगसे परे परस्मैपदवाला सिच् प्रत्यय आवे तो अंगको वृद्धि हो।

अ[४५८] क्षै[५२०] षी[१६९ ४८०] **त्=अक्षैषीत्**–वह घटा,

लृङ्–प्र० पु० ए० व० अक्षेष्यत्–जो वह घटै.

तप् (संतापे १४) जलना।

लट्–प्र० ए० तपति वह दुःखी होता है, तपता है वा जलता है.

लिट्–प्र० पु० ततापं वह जला, **तेपतुः** वे दोनों जले, **तेपुः** वे सब जले.

लिट्–म० पु० तेपिथ[४९६], **ततप्थ**[५१७ ५१८] तू जला.

लुट्–तप्ता वह जलैगा.
लृट्–तप्स्यति वह तपैगा.
लोट्–तपतु वह तपै.
लङ्–अतपत् वह जला.

लिङ्–तपेत् वह तपे.
२ लिङ्–तप्यात् भगवान् करे वह तपै.
लुङ्–अताप्सीत् वह जला, **अताप्ताम्**
लृङ्–अतप्स्यत् जो वह जलै.

क्रमु (पादविक्षेपे) चलना, टहलना.

(५२१) वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः । ३ । १ । ७० ॥

एभ्यः श्यन्वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे ॥

पक्षे शप् ।

भ्राश (चमकना), भ्लाश (चमकना), भ्रमु (घूमना), क्रमु (चलना), क्लमु (खेदित होना), त्रस् (डरना, व्याकुल होना), त्रुट् (टूटना), लष् (अभिलाष वा इच्छा करना), इन धातुओंसे परे कर्ता अर्थमें श्यन् (१७०) विकल्प करके हो । श्यन्में य शेष रहता है पक्षमें शप् हो ।

(५२२) क्रमः परस्मैपदेषु । ७ । ३ । ७६ ॥

क्रमो दीर्घः स्यात् परस्मैपदे शिति ॥

परस्मैपद जिससे परे हो ऐसे शित् प्रत्ययके परे होनेमें क्रम् धातुके अच्को दीर्घ हो ।

लट्-क्राम्यति[५२२, ५२१], क्रामति[४२०]	वह चलता है.	**लङ्-अक्राम्यत्, अक्रामत्**	वह चला.
लिट्-चक्राम	वह चला.	**लिङ्-क्राम्येत्, क्रामेत्**	वह चले
लुट्-क्रमिता	वह चलैगा.	**२ लिङ्-क्रम्यात्**	भगवान् करै वह चले.
लृट्-क्रमिष्याति	वह चलैगा.	**लुङ् अक्रमीत्**	वह चला.
लोट्-क्राम्यतु, क्रामतु[४२०]	वह चलै.	**लृङ्-अक्रमिष्यत्**	जो वह चलै.

पा (पाने) पीना. ।

(५२३) पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः । ७ । ३ । ७८ ॥

पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकादौ प्रत्यये परे पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः ॥

अधो लिखित पा आदि धातुओंको इत्संज्ञक शकरादि प्रत्यय (४२०) परे सन्ते पिब आदि नीचे लिखे आदेश हों ।

पा	**पिब**	पीना.	**म्ना**	**मन**	अभ्यास करना.	**सृ**	**धौ**	दौडना.
घ्रा	**जिघ्र**	सूंघना.	**दाण्**	**यच्छ**	देना.	**शद्**	**शीय**	मुरझाना.
ध्मा	**धम**	फूंकना.	**दृश्**	**पश्य**	देखना.	**षद्**	**सीद्**	क्षय होना.
स्था	**तिष्ठ**	स्थित होना.	**ऋ**	**ऋच्छ**	जाना.			

पाको पिब, घ्राको जिघ्र, ध्माको धम, स्थाको तिष्ठ, म्नाको मन, दाण्को यच्छ, दृश्को पश्य, ऋको ऋच्छ, सृको धौ, शद्को शीय, षद्को सीद आदेश हों । **लट्-पिबति,** पिबमें ब अन्तर्गत अका व्यवधान है (४८६) से गुण न हुआ.

(५२४) आत औ णलः । ७ । १ । ३४ ॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात ॥

आकारान्त धातुसे परे णल् (४२९) आवे तो उसके स्थानमें औ हो । **लिट् प्र० पु० ए० पपौ** (४३०) से प ह्रस्व हुआ । उसने पिया.

(५२५) आतो लोप इटि च । ६ । ४ । ६४ ॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः ॥

जो आर्धधातुकप्रत्ययकी आदिमें कित् अथवा ङित् अच् होय अथवा इट् आगम परे होय तो आकारका लोप हो ।

लिट् प्र० द्वि० पपतुः उन दोनोंने पिया, **पपुः** उन सबोंने पिया.
म० पु० पपिथ, पपाथ तूने पिया, **पपथुः** तुम दोनोंने पिया, **पप** तुम सबने पिया.
उ० पु० पपौ मैंने पिया, **पपिव** हम दोनोंने पिया, **पपिम** हम सबोंने पिया.

लुट्–पाता वह पियेगा	**लोट्–पिबतु** वह पिये	**लिङ्–पिबेत्** वह पिये.
लृट्–पास्यति वह पियेगा	**लङ्–अपिबत्** उसने पिया	२ **आ० लिङ्**–पा-या-त्-

(५२६) एर्लिङि । ६ । ४ । ६७ ॥

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि ॥

घुसंज्ञक धातु (६६२) तथा मा, स्था (६२६) इत्यादि धातुओंके अच्को ए हो जो लिङ् (४६६) के स्थानमें कित् (४६७) आर्धधातुक परे होय तो । **आशीर्लिङ् पेयात्** ईश्वर करै वह पिये । **लुङ् अपात्** (४७४) उसने पिया । **अपाताम्** उन दोनोंने पिया । अपा+झि–

(५२७) आतः । ३ । ४ । ११० ॥

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् ॥

जहाँ सिच्का लोप (४७४) से हो उस आकारान्तधातुसे परे झि (४८२) के स्थानमें जुस् हो । अपा+उस्—

(५२८) उस्यपदान्तात् । ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः स्यात् ।

अपदान्त अवर्णसे परे उस् आवे तो पूर्वपरके स्थानमें पररूप एकादेश हो ।

अपामें पा अन्तर्गत आ अपदान्त है और यह अकारान्तभी है आगे उस्का उकार पर होनेसे पररूप उकारही हुआ ।

अपुः उन सबने पिया । **लृङ्-अपास्यत्** जो वह पिये ।

ग्लै (हर्षक्षये) ग्लानि करना ।

लट्-प्र० ए० ग्लायति–वह ग्लानि करता है ।

(६२९) आदेच उपदेशेऽशिति । ६ । १ । ४५ ॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्वं न तु शिति ॥

उपदेशकालमें जो एजन्त धातु उसको आकार अन्तादेश हो परन्तु शित् प्रत्ययके परे हुए सन्ते न हो ।

लिट् प्र० ए० ग्लै+णल्=ग्ला+णल्=ग्ला+ग्ला+णल्—

लिट्में ग्लै अन्तर्गत ऐके स्थानमें आ हुआ (९२४) से णल्के स्थानमें औ हुआ तब **जग्लौ**—उसने ग्लानि की । **लुट्-ग्लाता** वह ग्लानि करेगा । **लृट्-ग्लास्यति** वह ग्लानि करेगा । **लोट्-ग्लायतु** वह ग्लानि करे । **लङ्-अग्लायत्** उसने ग्लानिकी । **विधिलिङ्-ग्लायेत्** । वह ग्लानि करे । **आशीर्लिङ्**—ग्लै+यास्+त्—

(६३०) वाऽन्यस्य संयोगादेः । ६ । ४ । ६८ ॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धधातुके किति लिङि ॥

घु (६६३) संज्ञक तथा मा, स्था आदि (६२६) धातुओंको छोडकर शेष संयोगादि धातुओंके आकारके स्थानमें विकल्प करके एकार हो, जो लिङ्के स्थानमें कित् (४६७) आर्धधातुक परे होय तो । ग्लैके स्थानमें (९२९) से ग्ला हुआ, उससे परे यासुट् कित् आया तो (९३०) से ग्ले हुआ तब **ग्लेयात्** और एकार न किया तब **ग्लायात्**—ईश्वर करै वह ग्लानि करै । **लुङ्**—अ+ग्लै+त् (४९८)+ग्ला (९२९)+स्+त्—

(६३१) यमरमनमातां सक् च । ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु ॥

यम् (निवृत्त होना), रम् (रमना), नम् (नवना), इनको तथा आकारान्त धातुओंको सक्का आगम हो । और इनके सिच्को इट्का आगम हो जो परस्मैपद प्रत्यय परे हो तो । अ+ग्लास् (९३१)+इ (९३१)+स+ई (४८०)+त्=**अग्लासीत** (४८१) उसने ग्लानि की । **लृङ्—अग्लास्यत्** वह ग्लानि करै ।

ह्वृ (कौटिल्ये) । **लट्—ह्वरति** वह कुटिलता करता है.

(६३२) ऋतश्च संयोगादेर्गुणः । ७ । ४ । १० ॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरंगस्य गुणो लिटि ॥

जिसके आदिमें संयोग होय ऐसे ऋदन्त अंगसे परे लिट् आवे तो गुण हो । **लिट्-ह्वृ-ह्वृ-**द्वित्व हुआ=जह्वृ (४८९)+अ (णल्) (४८७) से अकारको कित्त्व न रहा इससे (४२१) गुण हुआ जह्वर्+अ (४९०) से उपधाकी वृद्धि कर **जह्वार** उसने कुटिलपना किया । **जह्वरतुः** (९३२) उन दोनोंने कुटिलपन किया । **जह्वरुः** उन सबने कुटिलपन किया ।

जह्वर्थ तैंने कुटिलता की । **जह्वरथुः** तुम दोनोंने कुटिलता की । **जह्वर** तुम सबने कुटिलता की । **जह्वार,जह्वर** (४९१) मैंने कुटिलता की । **जह्वरिव** हम दोनोंने कुटिलता की । **जह्वरिम** हम सबने कुटिलता की ।

लुट्-प्र० ए० ह्वर्ता वह कुटिलता करैगा । **लृट् प्र० ए०** ह्वृ+स्य+ति- -

(५३३) ऋद्धनोः स्ये । ७ । २ । ७० ।

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् ॥

ऋदन्त धातु तथा हन् धातुसे परे स्य(४३६) आवे तो उसे इट्का आगम हो । **ह्वरिष्यति** वह कुटिलता करैगा । **लोट्-ह्वरतु** वह कुटिलता करै । **लङ्-अह्वरत्** उसने कुटिलता की । **विधि लिङ्-ह्वरेत्** वह कुटिलता करै । **आशीर्लिङ्**-ह्वृ+या+त=(४२१) गुण प्राप्त हुआ फिर (४६८) से निषेध हुआ परन्तु—

(५३४) गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः । ७ । ४ । २९ ॥

अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादावार्धधातुके लिङि च ॥

गमनार्थ ऋ धातु तथा जिसके आदिमें संयोग होय ऐसे ऋदन्तधातुको गुण होय जो यक्(८०२) परे होय अथवा लिङ्के स्थानमें होनेवाला यकारादि आर्धधातुक परे होय तो । **ह्वर्यात्** ईश्वर करै वह कुटिलता करै । **लुङ्-अह्वार्षीत्** (९२०) उसने कुटिलता की । **लृङ्-अह्वरिष्यत्** जो वह कुटिलता करै । श्रु (श्रवणे १९:) सुनना ।

(५३५) श्रुवः शृ च । ३ । १ । ७४ ॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च ॥

श्रु धातुको शृ आदेश हो जब उससे आगे श्नु प्रत्यय (१८८) हो । इसमें शप्का बाध है । **लट्**-शृ+श्नु+ति (१९९) से शृका लोप (२३९) से नुको णु फिर गुण होकर णो हुआ । **शृणोति** वह सुनता है । **लट्-प्र० द्वि०**शृणु+तः (४२१) से गुण प्राप्त हुआ—

(५३६) सार्वधातुकमपित् । १ । २ । ४ ॥

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् ॥

अपित् सार्वधातुक जो प्रत्यय सो ङित् (६२९) के समान हो (४६८) से गुण न हुआ तब **शृणुतः** वह दो सुनते हैं । **लट्-प्र० ब०** शृणु+अन्ति (२२०) से उवङ् प्राप्त हुआ परन्तु—

(५३७) हुश्नुवोः सार्वधातुके । ६ । ४ । ८७ ॥

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके ॥

अनेक अच् जिसमें होंय ऐसे धातुसे परे श्नु प्रत्यय होय श्नुके पूर्व संयोग न हो तो

श्नु अन्तर्गत उ तथा हु धातुके उसे परे अच् आदि सार्वधातुक प्रत्यय आवै तो उकारके स्थानमें यण् हो. शृणु+अन्ति इस स्थितिमें णु अन्तर्गत उके स्थानमें यण् व् हुआ तब **शृण्वन्ति** वे सब सुनते हैं।

म० पु० शृणोषि तू सुनताहै, **शृणुथः** तुम दोनों सुनते हो, **शृणुथ** तुम सब सुनते हो.
उ० पु० शृणोमि मैं सुनताहूं, शृणु+वः=**शृणुवः** हम दो सुनते हैं। अथवा-

(५३८) लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः । ६ । ४ । १०७ ॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः ॥

जो उकारान्त प्रत्ययके पूर्वसंयोग न हो उससे परे म् अथवा व् आवे तो उकारका विकल्प करके लोप हो। उकारका लोप किया तब **शृण्वः। शृणुमः** अथवा **शृण्मः** हम सब सुनतेहैं.

लिट्-प्र० शुश्राव उसने सुना, **शुश्रुवतुः** उन दोनोंने सुना, **शुश्रुवुः** उन्होंने सुना
" **म० शुश्रोथ**, तूने सुना, **शुश्रुवथुः** तुम दोनोंने सुना, **शुश्रुव** तुम सबने सुना.
"**शुश्राव, शुश्रव** मैंने सुना, **शुश्रुव** हम दोनोंने सुना, **शुश्रुम** हम सबने सुना.
लुट्-प्र० श्रोता वह सुनेगा, **लट्-श्रोष्यति** वह सुनेगा.
लोट्-प्र०पु०शृणोतु, शृणुतात् वह सुने, **शृणुताम्** वे दोनों सुनो **शृण्वन्तु** वे सब सुनें.
" **म० पु०** शृणु हि-

(५३९) उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् । ६ । ४ । १०६ ॥

असंयोगपूर्वात्प्रत्ययोतो हेर्लुक् ॥

उकारान्त असंयोगपूर्व जो अंग उससे परे हि (४४९) का लोप हो। हिका लोप हुआ तो-**शृणु, शृणुतात्** तू सुन, **शृणुतम्** तुम दोनों सुनो, **शृणुत** तुम सब सुनो.
लोट्-उ० पु० शृणवानि मैं सुनूं, **शृणवाव** हम दोनों सुनैं, **शृणवाम** हम सब सुनैं.
लङ्-प्र०पु०अशृणोत् उसने सुना, **अशृणुताम्** उन दोनोंने सुना, **अशृण्वन्** उन्होंनेसुना.
" **म० पु० अशृणोः** तैंने सुना, **अशृणुतम्**, तुम दोने सुना, **अशृणुत** तुम सबने सुना.
" **उ० पु० अशृण्वम्** मैंने सुना, **अशृण्व, अशृणुव** हम दोनोंने सुना, **अशृण्म, अशृणुम** हम सबने सुना, । **लिङ्-प्र० पु० शृणुयात्** वह सुनै, **शृणुयाताम्** वे दो सुनै **शृणुयुः** वे सुनै.
" **म० पु० शृणुयाः** तू सुनै, **शृणुयातम्** तुम दोनों सुनो, **शृणुयात** तुम सब सुनो.
" **उ० पु० शृणुयाम्** मैं सुनूं, **शृणुयाव** हम दो सुनैं, **शृणुयाम** हम सब सुनैं.
आशीः लिङ्-प्र०पु० श्रूयात् (५१९, ४६८, ४६७) ईश्वर करै वह सुनै इत्यादि
लुङ्-प्र० ए० अश्रौषीत् (४८०, ५२०) उसने सुना.
लङ्-प्र० ए० अश्रोष्यत्-जो यह सुनै.

गम् (गम्लृ गतौ) जाना.

(५४०) इषुगमियमां छः । ७ । ३ । ७७)

एषां छः स्यात् शिति ॥

इष् (इच्छा करना) गम् (जाना), यम् (निवृत्त होना), इन धातुओंके अन्त्य अक्षरको छ आदेश हो शित् प्रत्यय परे होय तो । (४२०) से शप्के अकार होनेसे गछ् अति रूप हुआ (१२०) से त् (तुक्) का आगम हुआ (७६) से त्को च् हुआ तब **लट्–प्र० पु० ए० व० गच्छति** वह जाता है । **लिट्–प्र० पु० ए० जगाम** (४८९, ४९०) वह गया । **द्विव०** जगम+अतुः–

(५४१) गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ।६।४।९८॥

एषामुपधाया लोपोऽजादौ किति न त्वङि ॥

गम् (जाना) हन् (मारना), जन् (उत्पन्न होना), खन् (खोदना), घस् (खाना) इन धातुओंकी उपधाका लोप हो जो अङ् (५४३) विना अच् आदि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे आवे तो ।

जग्मतुः[४९०, ५४१] वे दो गये, **जग्मुः** वे सब गये.

लिट्–म० पु० जगमिथ, जगन्थ[५१८, ९४, ९५] तू गया, **जग्मथुः** तुम दोनो गये. **जग्म** तुम सब गये

लिट्–उ० पु० जगाम, जगम, मैं गया, **जग्मिव**[४३४] हम दोनो गये, **जग्मिम** हम सब गये

लुट्–प्र० ए० गन्ता–वह जायगा.

लृट्–प्र० ० गम्+स्य+ति (५११) से इट्के आगमका निषेध हुआ परन्तु–

(५४२) गमेरिट् परस्मैपदेषु । ७ । २ । ५८ ॥

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु ॥

परस्मैपदमें गम् धातुसे परे जो सकार आदि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसे इट्का आगम होय ।

गमिष्यति वह जायगा. **लोट् प्र० पु० ए० व० गच्छतु**[५४०] वह जाय.

लङ्–प्र० ए० व० अगच्छत् वह गया. **विधिलिङ्–प्र०पु०ए०व० गच्छेत** वह जाय

आशीर्लिङ्–प्र० पु० ए० व० गम्यात् भगवान् करे वह जाय.

लुङ्–अगम+त्=अगम+च्लि+त्–

(५४३) पुषादिद्युताद्युदितः परस्मैपदेषु । ३ । १ । ५५ ॥

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैदेषु ।

परस्मैपदविषयक श्न् (६७०) विकरणके योग्य अर्थात् दिवादि गणके पुष् आदि

धातुओंसे परे तथा द्युत् आदि गणसे परे तथा जिनका ऌ इत्संज्ञक है ऐसे धातुओंसे परे जो च्लि (४७२) स्थानमें सिच् का अपवाद अङ् आदेश हो। अङ्में से अ मात्र शेष रहा-

लुङ्-प्र०पु०ए०व०अगमत् वह गया। लृङ्-प्र०पु०ए०व०अगमिष्यत्[५४२] जो वह जाय
म० पु० ए० व० अगमः-तू गया। म० पु० ए० व० अगमिष्यः जो तू जाय.
उ० पु० ए० व० अगमम्- मैं गया। उ० पु० ए० व० अगमिष्यम्-जो मै जाऊं

॥ इति भ्वादिपरस्मैपदी धातु समाप्त ॥

अथ

आत्मनेपदी धातु।

एध् (वृद्धौ) वृद्धि होना.

(५४४) टित आत्मनेपदानां टेरे । ३ । ४ । ७९ ॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्।

टित् लकार (४०९) के स्थानमें जो आत्मनेपदसंज्ञक आदेश (४१०) की टि (९२) इसको ए आदेश हो। लट्-प्र० पु० ए० एध्+अ (४२०)+त (४०८) आत्मनेपदसंज्ञक आदेश त (त् अ) हैं इसमें अ टि है उसके स्थानमें ए आदेश हुआ। तब एधते वह बढता है। द्वि० व० एध्+अ (४२०) +आताम्-

(५४५) आतो ङितः । ७ । २ । ८१ ॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्।

अकारसे परे जो ङित् प्रत्यय (५३६) उसके आकारके स्थानमें इय् आदेश हो, एध्+अ+इय्[५४५]+ताम् (त् आम्)

ताम्में आम् टि संज्ञक है, उसके स्थानमें (५४४) से एकार हुआ, तब एधे (३९-:ए, ४१४) से यका लोप +ते एधेते वे दो बढते हैं.

लट्-प्र० ब० एध्+अ+अन्ते[४२२]=एधन्ते (३००, ५४४) वे बढते हैं,

लट्-म० पु० एध्+अ+थास्--

(५४६) थासः से । ३ । ४ । ८० ॥

टितो लस्य थासः से स्यात्॥

टित् लकारके स्थानमें जो थास् उसको से आदेश हो एध+से=एधसे तू बढाता है
लट्-म० पु० द्वि० व० एध्+अ+आथाम् (४०८, ५४५) से आके स्थानमें

इय् आदेश हुआ तब गुण होकर **एधेय** रूप हुआ । थाम् अन्तगत आकारके स्थानमें एकार हुआ (४६४) से यकारका लोप **एधेथे** तुम दो बढ़ते हो । **लट्–म० पु० ब० व०** एध्+अ+ध्वम् ध्वम्में अम टिसंज्ञक है उसके स्थानमें (५४४) से एकार हुआ तब **एधध्वे** तुम बढ़ते हो । **लट्–उ० पु० ए० व०** एध्+अ+इट् (४०८, ५४४) से इट्के स्थानमें ए हुआ **एधे** (३००) मैं बढता हूं । **लट्–उ० पु० द्वि० व०** एध्+अ+वहि इसमें हि अन्तर्गत इ टि है उसके स्थानमें ए हुआ (४२३) से अको दीर्घ होकर । **एधावहे** हम दो बढ़ते हैं । **लट्–उ० पु० ब० व० एधामहे** हम सब बढ़ते हैं, द्विवचनवत् जानना ।

(५४७) इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः । ३ । १ । ३६ ॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि ॥

ऋच्छ धातुको छोडकर इच् आदि तथा गुरुसंज्ञक (४८४, ४८९) अच् सहित जो धातु उससे परे लिट् लकार आवे तो उस धातुसे आम् प्रत्यय हो ।

(५४८) आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ ॥

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदम् ॥

जिस धातुसे आम् प्रत्यय (५४७, ९०९) आवे उसे यहां आम्प्रत्यय कहा है यह अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास है (१०३९) आम् जिससे किया जाय उसके तुल्य कृञ्से भी आत्मनेपदहो । एध् धातु आत्मनेपदी है (४११) उससे आगे आम् प्रत्यय होकर एधाम् पद

---

१ यहां यह विचारना उचित है कि बहुव्रीहि समास दो प्रकारका होता है–**तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान** जिस लक्षणसे किसी पदार्थका ज्ञान हो वह उस पदार्थमें दीख पडे और उस लक्षणके संग उस पदार्थका विशिष्ट बोध होना भी अभिमत है वह तद्गुणसंविज्ञान है, यथा–'लम्बकर्ण मानय' लम्बे कानवालेको लाओ इस प्रयोगमें लम्बे कानवाले व्यक्तिको मांगा है सो लम्बा कान उस लक्षणका परिचय करानेवाला है और वह लम्बाकान उसी वस्तुमें स्थित है और उसीके संग उस लक्षणका विशिष्टज्ञान होना भी अभिलषित है ।

अतद्गुणसंविज्ञानमें यह रीति नहीं है यथा–'दृष्टमथुरमानय' जिसने मथुरा देखी है उसे लाओ यहां यह विचार कर्तव्य हैं कि जिसने मथुरा देखी है उसका लक्षण मथुरा तो होसकता है परन्तु मथुराकी स्थिति उसमें नहीं और मथुराविशिष्ट पुरुषका लानाभी अभिमत नहीं है । इसी प्रकार सूत्रमें स्थित जो आम् प्रत्यय है उसमें भी अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है कारण कि जिस धातुके आगे आम् होता हैं केवल उसी धातुका आम्प्रत्यय शब्दसे यहां ग्रहण है आम् प्रत्यय युक्त धातुका नहीं आशय यह है कि जिस धातुसे आम् प्रत्यय विहित होता है इसी धातुके समान कृञ् धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । जिस धातुसे आम् प्रत्यय होता है यदि वह आत्मनेपदी हो तो कृञ् धातुसे भी आत्मनेपद हो अन्यथा नहीं हों आम्के आनेमें आगे से प्रत्ययका लुक् होता है ।

हुआ (९०७) से एधाम्से परे लिट् लकारप्रत्ययका लोप हुआ (९०८) से कृञ् प्रत्याहार अन्तर्गत कृ धातुका अनुप्रयोग हुआ (९४८) से कृ धातुकी आत्मनेपदसंज्ञा हुई उससे परे लिट् लकारका प्रत्यय होकर एधाम्+कृ+त–स्थिति हुई एधाम्+चकृ+त–

(५४९) लिटस्तझयोरेशिरेच् । ३ । ४ । ८१ ॥

लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेचौ स्तः ॥

लिट्को जो त और झ आदेश हुए हैं तिन्हें अनुक्रमसे एश् और इरेच् आदेश हों. हल् (श, च्) का लोप होकर ए, इरे शेष रहे.

प्र० पु० एधाञ्चक्रे वह बढ़ा, **एधाञ्चक्राते** वे दो बढ़े, **एधाञ्चक्रिरे** वे बढे.
म० पु० एधाञ्चकृषे तू बढ़ा, **एधाञ्चक्राथे** तुम दो बढ़े, एधाञ्चकृ+ध्वे–

(५५०) इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् । ८ । ३ । ७८ ॥

इण्णन्तादंगात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात् ॥

जो अंगके अन्तमें इण् प्रत्याहारका कोई वर्ण होय, उससे आगे षीध्वं तथा लुङ् लिट्के आदेश का जो धकार उसके स्थानमें ढकार हो । एधाञ्चकृमें ऋ इण् है उससे परे ध्वके ध्के स्थानमें ढ् होकर **एधाञ्चकृढ्वे** तुम बढ़े.

उ० पु० एधाञ्चक्रे मैं बढा. **एधाञ्चकृवहे** हम दोनों बढ़े, **एधाञ्चकृमहे** हम बढ़े. कृञ् प्रत्याहारसे भू तथा अस्का सम्बन्ध करनेसे नीचे लिखे रूप हुए.
प्र० पु० एधाम्बभूव, एधामास इत्यादि ।

लुट् ।

प्र० पु० ए० एध्+इ (४३४)+तास् (४३६)+आ (४३८) तास् में आस् इत्संज्ञक है उसका लोप हुआ (२६७) तब—

एधिता वह बढैगा, **एधितारौ** वे दोनो बढैंगे, **एधितारः** वे बढेंगे.
म० पु० एधितासे[५४६] तू बढैगा, **एधितासाथे** तुम दोनो बढोगे, एधितास्+ध्वे–

(५५१) धि च । ८ । २ । २५ ॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः ॥

ध् आदि प्रत्यय परे हुए सन्ते सकारका लोप हो । **एधिताध्वे** तुम बढोगे । **उ० पु० ए० व०** एधितास्+ए+(इट)–

(५५२) ह एति । ७ । ४ । ५२ ॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे ॥

अस् तथा तास् प्रत्ययके सकारसे आगे एकार आवै तो सकारके स्थानमें हकार हो ।

एधिताहे मैं बढूंगा, **एधितास्वहे** हम दो बढैंगे, **एधितास्महे** हम बढैंगे.

लट्–प्र० पु० एधिष्यते वह बढ़ैगा, **एधिष्येते**[५४५] दोनों बढ़ैंगे, **एधिष्यन्ते** वे बढ़ैंगे.

लट्–म० पु० एधिष्यसे तू बढ़ैगा, **एधिष्येथे** तुम दोनों बढ़ोगे, **एधिष्यध्वे** तुम बढ़ोगे

लट्–उ०पु० एधिष्ये मैं बढूंगा, **एधिष्यावहे** हम दोनों बढ़ैंगे, **एधिष्यामहे** हम ब ैंगे.

लोट्–प्र० पु० ए० व० एध्+अ+त+एँ[५४४]—

(५५३) आमेतः । ३ । ४ । ९० ॥

लोट एकारस्याम् स्यात् ॥

लोट्के एकारके स्थानमें आम् हो ।

एधताम् वह बढ़ै, **एधेताम्** वे दो बढ़ैं, **एधन्ताम्** वे बढ़ैं.

लोट्–म० पु० ए० व० एध्+अ+से[५४६]–

(५५४) सवाभ्यां वामौ । ३ । ४ । ९१ ॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः ॥

स् तथा व्से परे लोट्के एकार स्थानमें क्रमसे व तथा अम् आदेश हों । **एधस्व** तू बढ । **एधेथाम्** (५४९, ४६४. ५४४, ५५३) तुम दोनों बढ़ो । **एधध्वम्** (५४४, ५५४) तुम बढो । **लोट् उ० पु०** एध्+ए (५४४)–

(५५५) एत ऐ । ३ । ४ । ९३ ।

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् ॥

लोट्के उत्तम पुरुषके एकारके स्थानमें ऐ हो ।

एधै मैं बढ़ूं, **एधावहै** हम दो बढ़ैं, **एधामहै** हम सब बढ़ैं.

लङ् ।

प्र० पु० ऐधत[४७८, २१८] वह बढ़ा, **ऐधेताम्**[५५५] वे दोनों बढ़े, **ऐधन्त**[४२२] वे बढ़े.

म० पु० ऐधथाः तू बढ़ा, **ऐधेथाम्** तुम दोनों बढ़े, **ऐधध्वम्** तुम सब बढ़े.

उ० पु० ऐधे मैं बढ़ा, **ऐधावहि** हम दोनों बढ़े, **ऐधामहि** हम सब बढ़े.

विधिलिङ् ।

(५५६) लिङः सीयुट् । ३ । ४ । १०२ ॥

सलोपः ॥

लिङ् लकारको सीयुट्का आगम हो (इसमें उट् इत् है) एध्+अ+सीय्+त (४६२) से सीयुट्के सकार और (४६४) से यूका लोप हुआ तब–

प्र० पु० एधेत वह बढ़े, **एधेयाताम्** वे दोनों बढ़ें, एध+सीय्+झ-

(५५७) झस्यँ रन्ँ । ३ । ४ । १०५ ॥

लिङो झस्य रन् स्यात् ॥

लिङ्के झ प्रत्ययके स्थानमें रन् आदेश हो (४६२) से सका लोप और (४६४) से य्का लोप हो । **एधेरन्** वे बढ़ें.

म० पु० एधेथाः तू बढ, **एधेयाथाम्** तुम दोनों बढ़ो, **एधध्वम्** तुम बढ़ो.

उ० पु० एध्+अ+ईय् (सीय्)+इट्-

५५८) इँटोऽत् । ३ । ४ । १०६ ॥

लिङादेशस्य इटोऽत्स्यात् ॥

लिङ्के इट् आदेशके स्थानमें अत् हो (इसमें त् इत् है)

एधेय मैं बढ़ूं, **एधेवहि** हम दो बढ़ें, **एधेमहि** हम सब बढ़ें.

आशीर्लिङ् ॥

प्र० पु० ए० व० एध्+सीय्+त--

(५५९) सुट्ँ तिथोः । ३ । ४ । १०७ ॥

लिङस्तथोः सुट् । यलोपः ॥

आर्धधातुकत्वात्सलोपो न ।

लिङ्के तकार थकारको सुट्का आगम हो. (सुट्में उट् इत् है)

एध् सीय् स् [५५९] +त-

सीय्की आर्धधातुकसंज्ञा (४६६) से है तो इसे (४३४) से इट्का आगम हुअ सीके स्थानमें ष (१६९) हुआ (४६४) से यकारका लोप होकर सको ष और त्-को ट् (७८)

प्र० पु० एधिषीष्ट भगवान् करै वह बढ़ै,	**एधिषीयास्ताम्** भ० वे दोनों बढ़ें,	**एधिषीरन्** भगवान् करे वे बढ़ें.
म० पु० एधिषीष्ठाः [५५९।७८] भ० तुम बढ़ो,	**एधिषीयास्थाम्** भगवान् करै तुम दोनों बढ़ो,	**एधिषीध्वम्** भगवान् करै तुम सब बढो.
उ० पु० एधिषीय [५५८] भग० मैं बढ़ूं,	**एधिषीवहि** भ० हम दोनों बढ़ें,	**एधिषीमहि** भ० हम सब बढ़ें.

१ आर्धधातुक प्रत्यय है इस कारण (४६२) से सका लोप न हुआ.

लुङ् ।

प्र० पु० ए० व० ऐधिष्ट (४७९,४७२,४७३,४३४,१६९, ७८) वह बढ़ा.
प्र० पु० द्वि० व० ऐधिषाताम् वे दोनों बढ़ें.
प्र० पु० ब० व० ऐधिस्+झ–

(५६०) आत्मनेपदेष्वनतः । ७ । १ । ५ ॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात् ॥

आत्मनेपद झ प्रत्यय अकारसे परे न होय तो उसके स्थानमें अत् हो, **ऐधिषत** वे बढ़े थे ।
म० पु० **ऐधिष्ठाः** तू बढ़ा, **ऐधिषाथाम्** तुम दोनों बढ़े, **ऐधिढ्वम्** [५५०,५५१] तुम बढ़े.
उ० पु० **ऐधिषि** मैं बढ़ा, **ऐधिष्वहि** हम दोनों बढे, **ऐधिष्महि** हम बढ़े
लङ्०प्र०पु० **ऐधिष्यत** जो वह बढ़े, **ऐधिष्येताम्** जो वे दोनों बढ़ें, **ऐधिष्यन्त** जो वे बढ़ैं.
म० **ऐधिष्यथाः** जो तू बढ़े, **ऐधिष्येथाम्** जो तुम दोनों बढ़ो, **ऐधिष्यध्वम्** जो तुम बढ़ो
उ० **ऐधिष्ये** जो मैं बढूं, **ऐधिष्यावहि** [४२३] जो हम दोनों बढैं, **ऐधिष्यामहि** जो हम बढैं.

कमु (कमु कान्तौ) इच्छा करना.

(५६१) कमेर्णिङ् । ३ । १ । ३० ॥

स्वार्थे । ङित्वात्तङ् ॥

कम् धातुसे परे णिङ (५०३)प्रत्यय होय परन्तु धातुके अर्थमें । णिङ् प्रत्ययान्तकी धातुसंज्ञा होती है (४१०) आत्मनेपदसंज्ञावाले प्रत्यय रक्खे जाते हैं कारण कि (४११) से णिङ् ङित् है णिङ् में ण्ङ्की इत्संज्ञा होकर इ शेष रही.

लट्–प्र० पु० ए० व० कम्+इ [५६१] +अ [४३०] +ते (५४४) कौं +मय्+अ+ते= **कामयते** वह इच्छा करता है,

लिट्–प्र० ए० का+म्+इ (णि)+त–

(५६२) अयामन्तात्वाय्येत्न्विष्णुषु । ६ । ४ । ५५ ॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् ॥

जब आम् अन्त (५०४) आलु, आय्य, इत्नु तथा इष्णु इनमेंसे कोई प्रत्यय धातुसे परे होय तो णिङ्को अय् आदेश हो । (५६१) से णिङ् प्रत्यय (५०४) विकल्प करके हुआ–

प्र० पु० काम्+अय् [५६२]+आम् [५०५]+कामयाम्+कृ [५०८] +ते [५४९] –

कामयाञ्चक्रे	**कामयाञ्चक्राते**	**कामयाञ्चक्रिरे**
उसने इच्छा की,	उन दोनोंने इच्छा की,	उन्होंने इच्छा की,

आम् न किया तो अय् न होकर वृद्धि (४९०) न हुई–

प्र० पु० चकमे	चकमाते	चकमिरे
उसने इच्छा की,	उन दोनोंने इच्छा की,	उन्होंने इच्छा की.
म० पु० चकमिषे	चकमाथे	चकमिढ्वे
तूने इच्छा की,	तुम दोनोंने इच्छा की,	तुमने इच्छा की.
उ० पु० चकमे	चकमिवहे	चकमिमहे
मैंने इच्छा की,	हम दोनोंने इच्छा की,	हमने इच्छा की.
लुट्-प्र० पु० ए० व०	कामयिता, कमिता	वह इच्छा करेगा.
लुट्-म० पु० ए० व०	कामयितासे, कमितासे	तू इच्छा करेगा.
लृट्-प्र० पु० ए० व०	कामयिष्यते, कमिष्यते,	वह इच्छा करेगा.
लोट्-प्र० पु० ए० व०	कामयताम्	वह इच्छा करै.
लङ्-प्र० पु० ए० व०	अकामयत	उसने इच्छा की.
लिङ्-प्र० पु० ए० व०	कामयेत	वह इच्छा करै.

लिङ्-प्र०पु०ए०व०कामयिषीष्ट,कमिषीष्ट (५५९) भगवान् करे वह इच्छा करै. कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम् (५७३) । कामि+च्लि+त-

लुङ् ।

(५६३) णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् । ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्ताच्छ्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे ॥

श्रि (सेवा करनी), द्रु (दौडना), स्रु (चूना), इन धातुओंसे परे और जिसके अन्तमें णिङ् (५६१) णिच् (७४२, ७४८) हो उससे परे कर्ता अर्थमें लुङ् आवे तो च्लि (४७२) के स्थानमें चङ् हो । चङ्में च् ङ् इत् होकर अ रहा-

काम्+(५६१) अ (५६३)+त-

(५६४) णेरनिटि । ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् ॥

जिस आर्धधातुके पहले इट् न हो सो जब परे रहै तब णि (५६१, ७४२, ७४८) का लोप हो । काम्+अत—

(५६५) णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । ७ । ४ । १ ॥

चङि परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् ॥

जिस अंगसे परे णि (५६१, ७४२, ७४८) हो उससे परे चङ् (५६३) होय तो उस अंगकी उपधाको ह्रस्व हो । कम्+अत-

(५६६) चङि । ६ । १ । ११ ॥

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ॥

जिससे चङ् परे होय वह अनभ्यास धातुका अवयव जो एकाच् प्रथम भाग तिसको द्वित्व हो और जो अजादि हो तो दूसरे एकाच् भागको द्वित्व हो । क + कम् = चकम् (४८९)+अत—

(५६७) सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे । ७ । ४ । ९३ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति ॥

जिससे परे चङ् हो ऐसी णि जिस अंगसे परे होय और णि निमित्त मानकर अक् प्रत्याहार सम्बन्धी किसी वर्णका लोप न हुआ होय तो उस लघुपरके अभ्यासको कार्य जैसा सन् (७९३) परे रहते होता है वैसा हो ।

(५६८) सन्यतः । ७ । ४ । ७९ ॥

अभ्यासस्यात इत्स्यात्सनि ॥

अभ्याससे परे सन् आवे तो अभ्यासके अकारके स्थानमें इकार हो सन् (५६७) भाव होकर च अभ्यास अन्तर्गत अकारके स्थानमें इकार हुआ । चिकम्+अत—

(५६९) दीर्घो लघोः । ७ । ४ । ९४ ॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात्सन्वद्भावविषये ॥

सन्वद्भावविषय होय तो अभ्यासके लघुको दीर्घ हो । (४९८) अचीकम्+अत=अचीकमत प्र० ए० व० **अचीकमत** उसने इच्छा की । (९०४)से णिङ् विकल्प करके होता है जब न हुआ तब अ चकम्+च्लि+त—

(५७०) कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः ॥

कम् धातुसे परे च्लिके स्थानमें चङ् आदेश हो ऐसा कहना चाहिये ।

अचकम्+अ+त=**अचकमत** उसने इच्छा की.

लृङ्—प्र० पु० ए० व० अकामयिष्यत, अकमिष्यत जो वह इच्छा करे.

अय् (अय गतौ) जाना ।

लट्—प्र० पु० ए० व० अयते वह जाता है इत्यादि ।

(५७१) उपसर्गस्यायतौ । ८ । २ । १९ ॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् ॥

अय् धातु परे होय तो उपसर्ग (४७) के रकारके स्थानमें लकार हो ।

प्र+अयते (९७१, ९९) **प्लायते** वह भागताहै.

परा+अयते (९७१, ९९) **पलायते** वह भागता है.

लिट् ।

(९७२) दयायासश्च । ३ । १ । ३७ ॥

दय् अय आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि ।

दय (देना), अय् (जाना), आस् (बैठना) इन धातुओंसे लिट् परे रहते आम् हो । प्र० ए० अय्+आम्=अयाम् (९०३) धातुसंज्ञा हुई (९०७) लिट् लकारका लोप होनेके पीछे (९०८) से कृ धातु आई तो अयाम्+कृ हुआ—

अयाञ्चक्रे वह गया.

लुट्-प्र० ए० अयिता वह जायगा	**लिङ्-प्र० ए० अयेत** वह जाय
लृट्-प्र० ए० अयिष्यते वह जायगा	**लिङ** २ (आशीः) **प्र० ए० अयिषीष्ट** भगवान् करै वह जाय
लोट्-प्र० ए० अयतां वह जाय	**म० ए० अयिषीष्ठाः** भगवान् करै तू जाय
लङ्-प्र० ए० आयत वह गया	**म० ब०** अय्+सी+इ+ध्वम्=**अयिषीध्वम्**

(९७३) विभाषेटः । ८ । ३ । ७९ ॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः ॥

इण् प्रत्याहारान्त अंगसे परे इट् उसके आगे षीध्वं तिसके और लुङ् तथा लिट्के स्थानमें जो आदेश उसके धकारको विकल्प करके ढकार (९९०) हो । **अयिषीढ्वम्** ईश्वर करे तुम जाओ.

लुङ्-प्र० पु० ए० व० आयिष्ट वह गया.

लुङ्-म० पु० ब० व० आयिध्वम्, आयिढ्वम् तुम गये.

लृङ-प्र० पु० ए० व० आयिष्यत जो वह जाय.

द्युत (द्युत दीप्तौ) चमकना.

लट्-प्र० पु० ए० व० द्योतते (४२०, ४८६) वह चमकता है.

लिट्-प्र० पु० ए० व० द्युत+ते—

(९७४) द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् । ७ । ४ । ६७ ॥

अनयोरभ्यासस्य संप्रसारणं स्यात् ॥

द्युत् (चमकना), तथा स्वापि (सोना) इन धातुओंके अभ्यासको सम्प्रसारण (२८१)

हो । द्युद्युत रूपमें द्यु अभ्यास है उसके अन्तर्गत यकार यण् है तिसके स्थानमें इक्की इ हुई **दिद्युते** वह प्रकाशित हुआ । **द्योतिता । द्योतिष्यते । द्योतताम् । अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट ।** अद्युत्+लुङ्—

(५७५) द्युद्भ्यो लुङि । १ । ३ । ९१ ॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् ॥

द्युत् इत्यादि धातुओंसे परे लुङ्को परस्मैपद प्रत्यय विकल्प करके हो (९४३) से च्लि (४७२) के स्थानमें अङ् आदेश हुआ । **अद्युतत** (४९८) तिप् परस्मैपद प्रत्यय (वा)

(४९८) अद्युत्+इ+स्[४७३]+त्=**अद्योतिष्ट** (११९, ७८) वह प्रकाशित हुआ. **लङ् प्र० पु० ए० व० अद्योतिष्यत** जो वह प्रकाशित हो ।

इसी प्रकार नीचे लिखे धातुओंके रूप जानो **श्वित्** (श्विता) श्वेत होना, **मिद्** (ञिमिदा) चिकना होना, **ष्विद्** (ञिष्विदा) चिकना होना, वा त्यागना **'मोहनयोरित्येके'** कोई आचार्य कहते हैं कि इस धातुका चिकना होना और मोहित होना अर्थ है । **'ञिक्ष्विदा चेत्येके'** क्ष्विद्–धातुभी चिकना होना और मोहित होना इस अर्थमें है, ऐसा कोई कहते हैं ।

रुच् (रुच)	(दीप्तौ अभिप्रीतौ च)		दीप्ति वा प्रीति करना.
घुट् (घुट)	(परिवर्तने)		घोटना लौटना.
शुभ् (शुभ)	(दीप्तौ)		शोभित होना.
क्षुभ् (क्षुभ)	(संचलने)		चलना (व्याकुल होकर कांपना)
णभ् (णभ)	(हिंसायाम्)		हिंसा करना.
तुभ् (तुभ)	(हिंसायाम्)		हिंसा करना.
स्रंस् (स्रंसु)	(अवस्रंसने)		गिरना.
भ्रंस् (भ्रंसु)	(अवस्रंसने)		गिरना.
ध्वंस् (ध्वंसु)	(गतौ)		गिरना और जाना.
स्रंभ् (स्रंभु)	(विश्वासे)		विश्वास करना.

वृत (**वृतु**) (वर्तने) वर्तना, होना.

लट्–प्र०	ए०	**वर्तते**	वह है	लुट्–प्र०	ए०	**वर्तिता**
लिट्–प्र०	ए०	**ववृते**	वह था			

(५७६) वृद्भ्यः स्यसनोः । १ । ३ । ९२ ॥

वृतादिभ्यः पंचभ्यो वा परस्मैपदं स्यात्स्ये सनि च ॥

वृत् इत्यादि जो पांच धातु हैं इनमें जब स्य (४३६) अथवा सन् (७५२), प्रत्यय स्थापनका विचार हो तब इनसे परे विकल्प करके परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हों ।

(५७७) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । ७ । २ । ५९ ॥

वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण्न स्यात्तङानयोरभावे

वृत्	(वर्तने)	होना	शृधु	(कुत्सितशब्दे)	कुत्सित शब्द करना
वृधू	(वृद्धौ)	बढना	स्यन्दू	(प्रस्रवणे)	बहणा.

इन चार धातुओंसे परे तङ् आत्मनेपदं प्रत्यय तथा शानच् कानच् प्रत्ययका अभाव होय तो सकारादि आर्धधातुक प्रत्ययको इट्‌की आगम न हो ।

लट्-परस्मैपद	प्र०	ए०	वर्त्स्यति	(जब इट् न हुआ) वह होगा.
लट्-आत्मनेपद	प्र०	ए०	वर्तिष्यते	(यहां इट् हुआ) वह होगा.
लोट्-	प्र०	ए०	वर्तताम्	वह होय.
लङ्-	प्र०	ए०	अवर्तत	वह था.
लिङ्-विधि	प्र०	ए०	वर्तेत	वह होय.
लिङ्-आशीः	प्र०	ए०	वर्तिषीष्ट	ईश्वर करै वह होय.
लुङ्-	प्र०	ए०	अवर्तिष्ट	वह था.
लृङ्-	प्र०	ए०	अवर्त्स्यत्[५७६]	जो वह होय.
लृङ्-आत्मनेपद	प्र०	ए०	अवर्तिष्यत[५७७]	जो वह होय.

दद् (दाने २०) दान देना.

लट्-प्र० पु० ए० व० ददते वह देता है.

लिट्०प्र० पु० ए० व० दद्+त-

(५७८) न शसददवादिगुणानाम् । ६ । ४ । १२६ ॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न ॥

शस् (शसु हिंसायाम्) हिंसा करनी, दद् (दाने) दान देना, वकारादि धातु तथा गुणशब्दसे विहित जो अकार (१९४) इन सबको एकार (४९९, ४९६) न हो और अभ्यासका लोपभी न हो ।

लिट्-प्र० ए० ददृदे उसने दिया, ददृदाते उन दोनोंने दिया, ददृदिरे उन्होंने दिया, लुट्-प्र० ए० ददिता वह देगा | लट्-प्र० ए० ददिष्यते वह देगा ।

लोट्–प्र० ए० ददताम्	वह देवै.	
लङ्–प्र० ए० अददत	उसने दिया.	
लिङ्–प्र० ए० ददेत	वह दे.	
२ लिङ्–प्र० ए० ददिषीष्ट[५५२]	ईश्वर करै वह दे.	
लुङ्–प्र० ए० अददिष्ट	उसने दिया.	
लृङ्–प्र० ए० अददिष्यत	जो वह दे.	

त्रप् (त्रपूष् लज्जायाम् २१) लजाना.

ट्   –प्र० ए० त्रपते वह लज्जित होता है ।

(५७९) तॄफलभजत्रपश्च[६] । ६ । ४ । १२२ ॥

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात किति लिटि सेटि थलि च ॥

तॄ (तरना), फल् (फलना), भज् (सेवा करना) और त्रप् (त्रपूष्) लज्जा करना इन धातुओंसे परे कित् (४८७) लिट् तथा इट् युक्त थल् आवे तो इन धातुओंके अकारको एकार हो और अभ्यासका लोप भी हो ।

लिट्–प्र०	ए०	त्रेपे	वह लज्जित हुआ.
लुट्–प्र०	ए०	त्रपिता, त्रप्ता[५१२]	वह लज्जित होगा.
लृट्–प्र०	ए०	त्रपिष्यते, त्रप्स्यते	वह लज्जित होगा.
लोट्–प्र०	ए०	त्रपताम्	वह लज्जित हो.
लङ्–प्र०	ए०	अत्रपत	वह लज्जित हुआ.
लिङ्–प्र०	ए०	त्रपेत	वह लज्जित हो.
२ लिङ्–प्र०	ए०	त्रपिषीष्ट[५५२], त्रप्सीष्ट[५१२]	भगवान् करै वह लज्जित हो.
लुङ्–प्र०	ए०	अत्रपिष्ट, अत्रप्त[५१४।५१२]	वह लज्जित हुआ.
लृङ्–प्र०	ए०	अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत[५१२]	जो वह लज्जित होय.

॥ इति भ्वाद्यात्मनेपदी धातु समाप्त ॥

(५८०) * अथ उभयपदी धातु ।

अब जिन धातुओंसे आत्मनेपद और परस्मैपद होते हैं वह लिखते हैं।

१ श्रिञ् (सेवायाम्) सेवा करना ।

		परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लट्–प्र०	ए०	श्रयति	श्रयते	वह सेवा करता है.
लिट्–प्र०	ए०	शिश्राय	शिश्रिये	उसने सेवा की.
लुट्–प्र०	ए०	श्रयिता	श्रयिता	वह सेवा करेगा.
लृट्–प्र०	ए०	श्रयिष्यति	श्रयिष्यते	वह सेवा करेगा.
लोट्–प्र०	ए०	श्रयतु	श्रयताम्	वह सेवा करै.
लङ्–प्र०	ए०	अश्रयत्	अश्रयत	उसने सेवा की.

* यहां भेद दिखाने मात्रको ५८० अंक लगाया गया है सूत्रादि नहीं है ।

लिङ्-प्र०	ए०	श्रयेत्	श्रयेत	वह सेवा करै.
२ लिङ्-प्र०	ए०	श्रीयीत्[५११]	श्रयिषीष्ट[५५९]	भगवान् करै वह सेवा करै.
लुङ्-प्र०	ए०	अशिश्रियत्[५६३]	अशिश्रियत	उसने सेवा की.
लृङ्-प्र०	ए०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यत	जो वह सेवा करै.

२ भृ (भृञ् भरणे) पालना ।

लट्-प्र०	ए०	भरति	भरते	वह पालता है.
लिट्-प्र०	ए०	बभार	बभ्रे[५४९]	उसने पाला.
लिट्-प्र०	द्वि०	बभ्रतुः[४२४]	बभ्राते	उन दोनोंने पाला.
लिट्-प्र०	ब०	बभ्रुः	बभ्रिरे	उन्होंने पाला,
लिट्-म०	ए०	बभर्थ	बभृषे	तैंने पाला.
लिट्-म०	द्वि०	बभ्रथुः	बभ्राथे	तुम दोनोंने पाला.
लिट्-म०	ब०	बभ्र	बभृढ्वे	तुमने पाला.
लिट्-उ०	ए०	बभार बभर,	बभ्रे	मैंने पाला.
लिट्-उ०	द्वि०	बभृव	बभृवहे	हम दोनोंने पाला.
लिट्-उ०	ब०	बभृम	बभृमहे	हमने पाला.
लुट्-प्र०	ए०	भर्ता	भर्ता	वह पालैगा,
लृट्-प्र०	ए०	भरिष्यति	भरिष्यते	वह पालैगा.
लोट्-प्र०	ए०	भरतु	भरताम्	वह पालै.
लङ्-प्र०	ए०	अभरत्	अभरत	उसने पाला.
लिङ्-प्र०	ए०	भरेत्	भरेत	वह पालै.

(५८१) रिङ् शयग्लिङ्क्षु । ७ । ४ । २८ ॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात् ।

ऋकारसे परे श (६९४) अथवा यक् (८०२) अथवा लिङ् स्थानमें आदेश यकारादि आर्धधातुक प्रत्यय परे होय तो ऋकारके स्थानमें रिङ् आदेश हो । **रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न ।** (५१९) से रिको दीर्घता प्राप्त हुई थी सो नहीं होती कारण कि (११२९) वां सूत्र इस (५८१) वें सूत्रके पूर्व है जिसमें रीङ् विधान किया है उसीकी अनुवृत्ति यहां आजाती परन्तु ऐसा न करके फिरभी रिङ्का विधान किया है इससे स्पष्टही है कि (५१९) से जो दीर्घ पाया था सो नहीं होता, दीर्घ इष्टमैं तो रीङ्की अनुवृत्तिही आजाती फिर रिङ् विधानका आशयही क्या था किन्तु दीर्घविधायक सूत्रके स्मरणकामी प्रयोजन न होता । **२ लिङ् प्र० पु० ए० व० भ्रियात्** ईश्वर करै वह पालै (परस्मैपद) ।

(५८२) उश्च। १। २। १२॥

ऋवर्णान्तात् परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि॥

ऋवर्णसे परे झलादि लिङ और सिच् सो कित् हो जब तङ् प्रत्याहार आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय परे हो, जब (४६८) से गुण न किया तब (५५९) **प्र० पु० ए० भृषीष्ट**—ईश्वर करे वह पाले।

लिङ्—प्र० द्विव० भृषीयास्ताम् ईश्वर करे वे दोनो पालें.

लुङ्—परस्मैपद—अभार्षीत् (४५८, ४७२, ४७३) उसने पाला.

लुङ्—आत्म० अभृ+स्+त—

(५८३) ह्रस्वादङ्गात्। ८। २। २७॥

सिचो लोपो झलि॥

ह्रस्वान्त अङ्गसे परे सिच्का लोप हो झल् प्रत्याहार परे होय तो। **अभृत** । उसने पाला, **लृङ्—परस्मै० अभरिष्यत्। आत्म० अभरिष्यत** जो वह पाले.

३ हृ (हृञ् हरणे) हरना।

		परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लट्—प्र०	ए०	हरति	हरते	वह हरताहै.
लिट्—प्र०	ए०	जहार [४८९ २०२]	जह्रे	उसने हरलिया.
लिट्—म०	ए०	जहर्थ	जह्रिषे	तूने हरलिया.
लिट्—उ०	द्वि०	जह्रिव	जह्रिवहे	हम दोनोंने हरलिया.
लिट्—उ०	ब०	जह्रिम	जह्रिमहे	हमने हरलिया.
लुट्—प्र०	ए०	हर्ता	हर्ता	वह हरलेगा,
लृट्—प्र०	ए०	हरिष्यति	हरिष्यते	वह हर लेगा.
लोट्—प्र०	ए०	हरतु	हरताम्	वह हरले.
लङ्—प्र०	ए०	अहरत्	अहरत	उसने हरलिया.
लिङ्—प्र०	ए०	हरेत्	हरेत	वह हरले

२ लिङ्०प्र० ए० ह्रियात् हृषीष्ट [५५६—५५९—५८२] भगवान् करे वह हरले। **हृषीयास्ताम्**—भगवान् करे वह दोनों हरलें.

लुङ्—प्र०	ए०	अहार्षीत् [५२०]	अहृत [५८३]	उसने हरलिया.
लृङ्—प्र०	ए०	अहरिष्यत्	अहरिष्यत	जो वह हरले.

४ धृ (धृञ् धारणे) धारण करना।

लट्—प्र०	ए०	धरति	धरते	वह धारण करताहै.

५ णी (णीञ् प्रापणे) ले जाना ।

लट्-प्र०	ए०	नयति	नयते	वह लेजाता है.

६ पच् (डुपचष् पाके) पाक करना ।

लट्-प्र०	ए०	पचति	पचते	वह पाक करता है.
लिट्-प्र०	ए०	पपाच	पेचे[४२५]	उसने पाक किया.
लिट्-म०	ए०	पेचिथ[५१८-४९६] / पपक्थ[५१७]	पेचिषे	तैंने पाक किया.
लुट्-प्र०	ए०	पक्ता	पक्ता	वह पकावेगा.
लृट्-प्र०	ए०	पक्ष्यति	पक्ष्यते	वह पकावेगा.

७ भज् (भज सेवायाम्) सेवाकरना ।

		परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लट्-प्र०	ए०	भजति	भजते	वह सेवा करता है.
लिट्-प्र०	ए०	बभाज	भेजे[५७२]	उसने सेवा की.
लुट्-प्र०	ए०	भक्ता	भक्ता	वह सेवा करेगा.
लृट्-प्र०	ए०	भक्ष्यति	भक्ष्यते	वह सेवा करैगा.
लोट्-प्र०	ए०	भजतु	भजताम्	वह सेवा करै.
लङ्-प्र०	ए०	अभजत्	अभजत	उसने सेवा की.
लिङ्-प्र०	ए०	भज्यात्	भक्षीष्ट	वह सेवा करै.
लुङ्-प्र०	ए०	अभाक्षीत्[५००]	अभक्त[५१४]	उसने सेवा की.
लुङ्-प्र०	द्वि०	अभाक्ताम्	अभक्षाताम्	उन दोनोंने सेवा की.

८ यज् (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) पूजा करना, संगत करना, दान करना,

लट्-प्र०	ए०	यजति	यजते	वह पूजा करताहै.
लिट्-प्र०	ए०	यज्+अ	(णल्)	ययज्+अ—

(५८४) लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । ६ । १ । १७ ॥

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य संप्रसारणं स्याल्लिटि ॥

वच् आदि (५८५) तथा ग्रह आदि (६७६) धातुओंके अभ्यास (४२८) को संप्रसारण (२८१) हो लिट् परे हुए सन्ते ।

लिट्-प्र०	ए०	इयाज	ईजे	उसने पूजा की
लिट्-प्र०	द्वि०	यज्+अतुस्=य् अज्+अतुः—		

(९८५) वचिस्वपियजादीनां किति । ६ । १ । १५ ॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च संप्रसारणं स्यात् किति ॥

वच् (बोलना), स्वप् (सोना) और यज् आदि धातुओंको संप्रसारण हो (२८१) जो कित्संज्ञक (४८७, ९८९) प्रत्यय परे होय तो ।

इ+अज्+अतुस्=(२८३) इज्+अतुः—

इज्+इज्+अतुः=ईजतुः (४२९, ५५) उन दोनोने पूजा की.

प्र० पु० ब० व०ईजिरे उन्होंने पूजा की.

परस्मैपद. आत्मनेपद.

लिट्–प्र० पु० ए० इयजिथ[५१८], इयष्ठ[५१७।३३।४।७८] ईजिषे तैंने पूजाकी.

लुट्–प्र० पु० ए० यष्टा[३३४।५८] वह पूजा करैगा.

लृट्–प्र० पु० ए० यज्+स्य+ति—

(९८६) षढोः कः सि । ८ । २ । ४१ ॥

षस्य ढस्य च कः स्यात् सकारे परे ।

ष् तथा ढ्से परे सकार आवे तो उन दोनोंके स्थानमें क् हो । (३३४) से ज्के स्थानमें ष् हुआ फिर इस (९८६) से षूके स्थानमें क् हुआ. (१६९) से स्यके स्थानमें ष्य हुआ.

यक्ष्यति यक्ष्यते वह पूजा करेगा.

२लिङ्–प्र० ए० इज्यात्[५८५।४६७।४५९।३३७] यक्षीष्ट[५५६।५५९] ईश्वर करै वह पूजा करै.

लुङ्–प्र० ए० अयाक्षीत्[५००] अयष्ट[३३४।५१४] उसने पूजा की.

९ वह (वह प्रापणे) ले जाना ।

लट्–प्र० ए० परस्मै० वहति आत्म० वहते वह ले जाता है.

लिट्–प्र० ए० परस्मै० उवाह[५८४] वह ले गया. ऊहतुः वे दो ले गये, ऊहुः वे ले गये.

लिट्–प्र० ए० आत्मने० ऊहे वह ले गया, ऊहाते वे दो ले गये, ऊहिरे वे लेगये.

लिट्–प्र० ए० उवहिथ[५१८] तू ले गया (वां) वह+वह+थ—

(९८७) झषस्तथोर्धोऽधः । ८ । २ । ४० ॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः ॥

धा धातु धारण करनेके अर्थमें है, इसके अवयवको छोडकर जो झष् उससे परे प्रत्ययका अवयव त्, थ्, होय तो त्, थ्, के स्थानमें ध् हो । वह्+थ इसमें (२७६) से ह्के स्थानमें ढ् हुआ=वढ्+थ=(९८७) से ढ झष् है उससे परे थ् है उसके स्थानमें ध् हुआ=वढ् ध् (७८) से धूके स्थानमें ढ् हुआ तब=वढ्+ढ—

(५८८) ढो ढे लोपः । ८ । ३ । १३ ॥

ढस्य लोपः स्यात् ढे परे ।

ढ्से परे ढ् आवे तो उसका लोप हो ।=वढ्—

(५८९) सहिवहोरोदवर्णस्य । ६ । ३ । ११२ ॥

अनयोरवर्णस्य ओत्स्याद् ढ्लोपे परे ॥

सह (सहना), वह (ले जाना) इन धातुओंके अवर्णके स्थानमें ओकार हो । व् ओढ्=वोढ् वहके अभ्यासको सम्प्रसारण (५८४) हुआ तो वके स्थानमें उ हुआ हकारका लोप (४२९) हुआ शेष अका पूर्वरूप (३८३) हुआ तब **उवोढ** वह ले गया, **ऊहतुः ऊहुः । ऊवाह-उवह । ऊहिव । ऊहिम ।**

	परस्मैपद.	आत्मनेपद ।	
लुट्—प्र० ए०	वोढा	वोढा	वह ले जायगा.
लृट्—प्र० ए०	वक्ष्यति	वक्ष्यते	वह ले जायगा.
लोट्—प्र० ए०	वहतु	वहताम्	
लङ्—प्र० ए०	अवहत्	अवहत	
लिङ्—प्र० ए०	वहेत्	वहेत	
२लिङ्—प्र० ए०	उह्यात्	वक्षीष्ट	
लुङ्—प्र० ए०	अवाक्षीत्	अवोढ	वह ले गया.
लुङ्—द्वि० व०	अवोढाम्	अवक्षाताम्	वे दोनों ले गये.
लुङ्—ब० व०	अवाक्षुः	अवक्षत	वे ले गये.
लुङ्—म० ए०	अवाक्षीः	अवोढाः	तू ले गया.
लुङ्—म० द्वि०	अवोढम्	अवक्षाताम्	तुम दोनों ले गये.
लुङ्—म० ब०	अवोढ	अवोढ्वम्	तुम ले गये.
लुङ्—उ० ए०	अवाक्षम्	अवक्षि	मैं ले गया,
लुङ्—उ० द्वि०	अवाक्ष्व	अवक्ष्वहि	हम दोनों ले गये.
लुङ्—उ० ब०	अवाक्ष्म	अवाक्ष्महि	हम सब ले गये.
लृङ्—प्र० ए०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यत	जो वह ले जाय

॥ इति भ्वादयः समाप्ताः ॥ १ ॥

अथाऽदादयः ।

अद् (भक्षणे) खाना ।

(५९०) अदिप्रभृतिभ्यः शपः । २ । ४ । ७२ ॥

लुक् स्यात् ॥

अद् आदि धातुओंसे परे शप्का (४२०) लोप हो ।

लट्–प्र० ए० अद्+ति=अत् (९९०)+ति= **अत्ति** वह खाता है.
लट्–प्र० द्वि०अद्+त=अत् + तः= **अत्तः** वे दो खाते हैं.
लट्–प्र० ब० अद्+अन्ति=**अदन्ति** वे खाते हैं.
लट्–म० ए० अत्सि तू खाता है, **अत्थः**--तुम दोनों खाते हो, **अत्थ** तुम खाते हो.
लट्–उ० ए० अद्मि मैं खाता हूँ, **अद्वः** हम दोनों खाते हैं, **अद्मः** हम खातेहैं.

लिट् ।

(५९१) लिट्यन्यतरस्याम् । २ । ४ । ४० ॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि ॥

जब लिट् परे होय तब अद् धातुको विकल्प करके (घस्लृ) आदेश हो । घस्लृमेंसे लृ की इत्संज्ञा होकर घस् रहा, तब घ घस्+अ=जघस्+अ=प्र० ए० **जघास** उसने खाया । द्वि० ब० जघस्+अतुः (५४१) से घके अन्तर्गत अ उपधाका लोप हुआ (९०) से घके स्थानमें क् हुआ--

(५९२) शासिवसिघसीनां च । ८ । ३ । ६० ॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् ॥

शास् (शिक्षा करनी), वस् (निवास करना), घस् (खाना) इन धातुओंके स् को ष् होय जब वे इण् प्रत्याहारमें प्राप्त हुए अक्षरोंसे वा कवर्गसे परे हों ।

जक्ष्+अतुः=**जक्षतुः** उन दोनोंने खाया, **जक्षुः** उन्होंने खाया.
म० पु० जघसिथ तूने खाया, **जक्षथुः** तुम दोनोंने खाया, **जक्ष** तुमने खाया,
उ० पु० जघास मैंने खाया, **जक्षिव** हम दोनोंने खाया, **जक्षिम** हमने खाया

घस्लृ आदेश (५९१) न किया तो

प्र० पु० आद (४७८) उसने खाया, **आदतुः** उन दोनोंने खाया, **आदुः** उन्होंने खाया ।

(५९३) इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् । ७ । २ । ६६ ॥

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् ॥

अद् (खाना), ऋ (जाना) और व्येञ् (आच्छादन करना) इन धातुओंसे पर थल्को नित्य इट् हो ।

म० पु० आदिथ तूने खाया, **आदथुः** तुम दोनोंने खाया, **आद** तुमने खाया.
उ० पु० आद मैंने खाया, **आद्व** हम दोनोंने खाया, **आद्म** हमने खाया.
लुट्--प्र० पु० अत्ता वह खायगा, **अत्तारौ** वे दोनों खांयगे, **अत्तारः** वे खांयगे.
लट् प्र० पु० अत्स्यति वह खायगा, **अत्स्यतः** वे दोनों खांयगे, **अत्स्यन्ति** वे खांयगे
लोट्--प्र० पु० अत्तु अत्तात्[४५५] वह खाय, **अत्ताम्** वे दोनों खांय, **अदन्तु** वे खांय.
लोट्--म० पु० अद्+हि[४४८]

(५९४) हुझल्भ्यो हेर्धिः । ६ । ४ । १०१ ॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् ॥

हु (हवन करना अथवा खाना) तथा झलन्त धातुओंसे परे हिके स्थानमें धि हो ।

म० पु० अद्धि, अत्तात् तू खा, **अत्तम्** तुम दोनों खाओ, **अत्त** तुम सब खाओ.
उ० पु० अदानि (४५०, ४९१) मैं खाऊँ । **अदाव** (४४६.४९६) हम दोनों खावें । **अदाम** हम सब खावें
लङ्-अद+त् (४९९, ४७९) आद्+त्—

(५९५ अदः सर्वेषाम् । ७ । ३ । १०० ॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्याट् स्यात्सर्वमतेन ॥

सब व्याकरणाचार्योंके मतसे अद् धातुसे परे अपृक्त सार्वधातुक प्रत्ययको अट्का आगम हो। (टकारका लोप होकर अ शेष रहा)

प्र० पु० आदत् उसने खाया, **आत्ताम्** उन दोनोंने खाया, **आदन्** उन्होंने खाया.
म० पु० आदः तूने खाया, **आत्तम्** तुम दोनोंने खाया, **आत्त** तुम सबोंने खाया.
उ० पु० आदम् मैंने खाया, **आद्व**[४५६] हम दोनोंने खाया, **आद्म** हम सबोंने खाया.
लिङ्--प्र० पु० अद्यात्[४५९, ४६२] वह खाय, **अद्याताम्** वे दोनों खायँ, **अद्युः** वे खांय,
२ लिङ्--प्र० पु० अद्यात्[३७] **अद्यास्ताम्** **अद्यासुः**
ईश्वर करै वह खाय, ईश्वर करै वे दोनों खांय, ईश्वर करै वे खांय.

लुङ्--प्र० ए० अद्+त--

(६९६) लुङ्सनोर्घस्लृ । २ । ४ । ३७ ॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च ।

लुङ् अथवा सँन् परे रहते अद् धातुके स्थानमें घस्लृ आदेश हो । लृकी इत्संज्ञा, लोप । अ (४९८)+घस् (९९१)+च्लि (४७२) के स्थानमें (९४३) से अ+त्=

अघसत् उसने खाया, **अघसताम्** उन दोनोंने खाया, **अघसन्** उन्होंने खाया.

लृङ्-आत्स्यत् जो वह खाता, **आत्स्यताम्** जो वे दोनों खाते, **आत्स्यन्** जो वे खाते.

हन् (हिंसागत्योः) हिंसा और गति ।

लट् प्र० ए० हन्ति वह मारता है । **द्वि०** हन्+तः—

(६९७) अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति । ६ । ४ । ३७ ॥

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे । यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनु-क्षणु-क्षिणु-ऋणु-तृणु-घृणु-वनु-मनु-तनोत्यादयः ।

यम् (निवृत्ति) तन् (फैलाना) इत्यादि, उपदेश विषे अनुदात्त धातु जो अनुनासिकान्त होवें उनसे परे झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो अनुनासिकका लोप हो)

अनुनासिकान्त धातु जो उपदेशमें अनुदात्त (९११) हैं सो नीचे लिखे हैं.

यम्	(उपरमे)	निवृत्त होना	**गम्**	(गतौ)	जाना.
रम्	(क्रीडायाम्)	क्रीडा करना	**हन्**	(हिंसायाम्)	हिंसा करना.
नम्	(प्रह्वत्वे)	नमस्कार करना	**मन्**	(मन्य) (ज्ञाने)	मानना (दिवादि)

तन् आदि अनुनासिकान्त धातु नीचे लिखे हैं.

तन्	(**तनु**)	(विस्तारे)	विस्तार करना	**तृण्**	(**तृणु**)	(अदने)	खाना.
क्षण्	(**क्षणु**)	(हिंसायाम्)	हिंसा करना	**घृण्**	(**घृणु**)	(दीप्तौ)	चमकना.
क्षिण्	(**क्षिणु**)	(हिंसायाम्)	मारना	**वन्**	(**वनु**)	(याचने)	मांगना.
ऋण्	(**ऋणु**)	(गतौ)	जाना	**मन्**	(**मनु**)	(अवबोधने)	जानना.

इस सूत्रके अनुसार नकारका लोप होनेसे **हतः** वे दोनों मारते हैं । **घ्नन्ति** (९४१ ३१४, ९९, ९६) वे मारते हैं.

लट्-म० पु० हंसि	**हथः**	**हथ**
(९९) तू मारता है	तुम दोनों मारते हो	तुम मारते हो.

लट्-उ० पु० हन्मि मैं मारता हूँ, **हन्वः** हम दोनों मारते हैं, **हन्मः** हम मारते हैं.

लिट्-प्र० पु० जघान उसने मारा, **जघ्नतुः** उन दोनोंने मारा, **जघ्नुः** उन्होंने मारा.

(५९८) अभ्यासाच्च । ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् ।

अभ्याससे परे हन् धातुके हकारके स्थानमें कवर्ग हो ।

लिट्-म० पु०	**जघनिथ, जघन्थ,**	**जघ्नथुः**	**जघ्न**
	तूने मारा	तुम दोनोंने मारा	तुमने मारा.
लिट्-उ० पु०	**जघान, जघन,**	**जघ्निव (५१५)**	**जघ्निम**
	मैंने मारा	हम दोनोंने मारा	हमने मारा.
लुट्-प्र० पु०	**हन्ता**	**हन्तारौ**	**हन्तारः**
	वह मारेगा	वे दोनो मारेंगे	वे मारेंगे
लृट्-प्र० पु०	**हनिष्यति**	**हनिष्यतः**	**हनिष्यन्ति**
	वह मारेगा	वे दोनों मारेंगे	वे मारेंगें
लोट्-प्र० पु०	**हन्तु, हतात्**	**हताम्**	**घ्नन्तु**
	वह मारै	वे दोनो मारैं	वे मारैं

लोट्-म० ए० हन्+हि[४४८]

(५९९) हन्तेर्जः । ६ । ४ । ३६ ॥

हौ परे ॥

हन् धातुसे परे हि आवे तो इनके स्थानमें ज आदेश हो । ज+हि स्थितिमें (४४९) से हिका लुक् प्राप्त हुआ-

(६००) असिद्धवदत्राभात् । ६ । ४ । २२ ॥

इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयं समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धम् ।

इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्.

इस सूत्रके आरंभसे छठे अध्यायकी समाप्तिपर्यन्त जितने सूत्र हैं वे सब आभीय कहे जाते हैं। जिस समय एक आभीयका कार्य किसी निमित्तको मानकर प्रयोगमें हो चुका हो और उसी निमित्तको मानकर उसी प्रयोगमें दूसरे आभीयका कार्य होने लगे तो पहले आभीयका कार्य जो होचुका है सो असिद्ध माना जाय (५९९) प्रकृति और हि मानकर ज आदेश हुआ (४४९) से हन्को स्थानिवद्भाव प्राप्त है, ज यह हन्का ही रूप है, तो ज प्रकृति और हि प्रत्यय मानकर हिका लोप प्राप्त हुआ है; परन्तु (४९९, और ४४९) यह दोनों आभीय हैं और प्रकृति प्रत्यय दोनोंका आश्रय करते हैं तो समानाश्रय हुये सो ज आदेश जो पहले होचुकाहै सो असिद्ध माना गया (४४९) से हिके लुक् होनेका अदन्त रूप निमित्त नहीं है तो हिका लोपभी नहीं होता !

लोट्–म० पु० जहि तू मार, **हतम्** तुम दोनों मारो, **हत** तुम मारो.

हतात् ईश्वर करे कि तू मार.

लोट्–उ० पु० हनानि मै मारूं, **हनाव** हम दोनों मारें, **हनाम** हम मारें.

लङ्–प्र० पु० अहन् उसने मारा, **अहताम्** उन दोनोंने मारा, **अघ्नन्** उन्होंने मारा.

लङ्–म० पु० अहन् तूने मारा, **अहतम्** तुम दोनोंने मारा, **अहत** तुम सबोंने मारा.

लङ्–उ० पु० अहनम् मैंने मारा, **अहन्व** हम दोनोंने मारा, **अहन्म** हमने मारा.

लिङ्–प्र० पु० हन्यात् वह मारै, **हन्याताम्** वे दो मारैं, **हन्युः** वे मारैं.

२ लिङ्–प्र० ए० हन्+या+त्—

(६०१) आर्धधातुके । २ । ४ । ३५ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

जिस सूत्रका आर्धधातुक (४३७) प्रत्यय निमित्त हो उसमें प्रसंगसे इस सूत्रका अधिकार जाता है; जैसे कि नीचे लिखे (६०२) में—

(६०२) हनो वध लिङि । २ । ४ । ४२ ॥

जब आर्धधातुक संज्ञक लिङ् लाना होय तब हन् धातुके स्थानमें वध आदेश हो (६०१) वध+या+त् **वध्यात्** (३३७) ईश्वर करै वह मारै, **वध्यास्ताम्** ईश्वर करै वे दोनों मारैं, **वध्यासुः** ईश्वर करैं वे मारैं।

(६०३) लुङि च । २ । ४ । ४३ ॥

वधादेशोऽदन्तः।

जब लुङ् प्रत्यय करना हो तो हन् धातुके स्थानमें वध आदेश हो । वध आदेश अदन्त है ।

लुङ्–प्र० पु०	**अवधीत्**	**अवधिष्टाम्**	**अवधिषुः**
	उसने मारा	उन दोनोंने मारा	उन्होंने मारा.
लङ्–प्र० पु०	**अहनिष्यत्**	**अहनिष्यताम्**	**अहनिष्यन्**
	जो वह मारेगा	जो वे दोनों मारेंगे	जो वे मारेंगे.

यु (मिश्रणामिश्रणयोः) मिलाना और अलग करना ।

लट्०प्र० पु० ए० व० यु+अँ+ति=यु+ति—

(६०४) उतो वृद्धिर्लुकि हलि । ७ । ३ । ८९ ॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य ॥

जिसमें लुक्का विषय होय ऐसे धातुके उकारको वृद्धि हो जो हलादिपित् सार्वधातुक प्रत्यय

परे होय परन्तु अभ्यस्तसंज्ञक (जिसमें द्वित्व होता है) को न हो। **युयात् 'इह वृद्धिर्न भाष्ये पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्नेति व्याख्यानात्'।**

लट्-प्र० पु० यौति वह मिलाता है, **युतः** वे दोनों मिलाते हैं, **युवन्ति**[३२०] वे सब मिलाते हैं. **लट्-म० पु० यौषि**[१६९] तू मिलाता है, **युथः** तुम दोनों मिलाते हो, **युथ** तुम सब मिलाते हो

लट्-उ० पु०	**यौमि** मैं मिलाता हूँ	**युवः** हम दोनों मिलाते हैं	**युमः** हम मिलाते हैं
लिट्-प्र० पु०	**युयाव**[२०२।२९] उसने मिलाया	**युयुवतुः** उन दोनोंने मिलाया	**युयुवुः** उन्होंने मिलाया
लुट्-प्र० पु०	**यविता**[४३४।४२१] वह मिलावैगा	**यवितारौ** वे दोनों मिलावेंगे	**यवितारः** वे मिलावेंगे
लृट्-प्र० पु०	**यविष्यति** वह मिलावेगा	**यविष्यतः** वे दोनों मिलावेंगे	**यविष्यन्ति** वे मिलावेंगे.
लोट्-प्र० पु०	**यौतु युतात्** वह मिलावेगा	**युताम्** वे दोनों मिलावेंगे	**युवन्तु** वे मिलावेंगे.
लङ्-प्र० पु०	**अयौत्** उसने मिलाया	**अयुताम्** उन दोनोंने मिलाया	**अयुवन्**[४५१] उन्होंने मिलाया.

१ **लिङ्-प्र० पु० युयात्**[४५२] यहां (६०४) से वृद्धि नहीं हुई इसका कारण यह कि भाष्यमें लेख है कि जो पित् होता है सो ङित् नहीं होता जो ङित् होता है सो पित् नहीं होता, (४६१) से यासुट् ङित् है तो उसको पित् मान वृद्धिकार्य न हुआ, **युयाताम्** वे दोनों मिलावें। **युयुः** (९२८) वे मिलावें।

२ लिङ्-प्र० पु०	**यूयात्**[५११।३३७] ईश्वर करे वह मिलावे	**यूयास्ताम्** ईश्वर करे वे दोनों मिलावें	**यूयासुः** ईश्वर करे वे मिलावें
लुङ्-प्र० पु०	**अयावीत्**[५१०] उसने मिलाया	**अयाविष्टाम्** उन दोनोंने मिलाया	**अयाविषुः** उन्होंने मिलाया.
लृङ्-प्र० पु०	**अयविष्यत्**[४३४।४२१] जो वह मिलावेगा	**अयविष्यताम्** जो वे दोनों मिलावेंगे	**अयविष्यन्** जो वे मिलावेंगे

या (प्रापणे) पहुंचना, जाना।

लट्-प्र० पु०	**याति** वह जाता है	**यातः** वे दोनों जाते हैं	**यान्ति** वे जाते हैं.
लिट्-प्र० पु०	**ययौ**[४३०-५२४] वह गया	**ययतुः** वे दोनों गये	**ययुः**[५३५] वे गये.

लुट्--प्र०पु० याता वह जायगा यातारौ वे दोनों जांयगे यातारः वे जांयगे.
लृट्--प्र०पु०यास्यति वह जायगा यास्यतः वे दोनों जांयगे यास्यन्ति वे जांयगे
लोट्--प्र०पु० यातु वह जाय याताम् वे दोनों जांय यान्तु वे जांय
लङ्--प्र० पु० अयात् वह गया अयाताम् वे दोनों गये अया+झि ।

(६०९) लङः शाकटायनस्यैव । ३ । ४ । १११ ॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् ।

शाकटायनऋषिके मतमें आकारसे परे लङ्के स्थानमें जो झि तिसको विकल्प करके जुस् हो।

[५२८]अयुः (अथवा जुस् न किया तो) [४२२।२६]अयान् वे गये.

लिङ्--प्र० पु०	[४६२]यायात्	यायाताम्	[५२८]यायुः
	वह जाय	वे दोनों जायँ.	वे जांय.
२ लिङ्--प्र० पु०	[३३७]यायात्	यायास्ताम्	यायासुः
	ईश्वर करे वह जाय	ईश्वर करे वे दोनो जांय	ईश्वर करे वे जांय.
लुङ्--प्र० पु०	[५३१]अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः
	वह गया	वे दोनों गये	वे गये.
लृङ्--प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
	जो वह जायगा	जो वे दोनों जांयगे	जो वे जांयगे.

इसी प्रकार नीचे लिखे धातुओंके रूप जानने ।

वा (गतिगंधनयोः) जाना ।

भा (दीप्तौ) चमकना
ष्णा (शौचे) नहाना (स्नानकरना)
श्रा (पाके) रांधना (पकाना)
द्रा (कुत्सायां गतौ) कुराह जाना
प्सा (भक्षणे) खाना
रा (दाने) देना.
ला (आदाने) लेना.
दा (दाप् लवने) काटना.
ख्या (प्रकथने) कहना.

ख्या धातुका प्रयोग केवल सार्वधातुक प्रत्ययमेंही जानना अर्थात् इससे इतने (लट्लोट् लङ और विधिलिङ्) ही होते हैं.

विद् (ज्ञाने) जानना ।

लट्--प्र० पु० वेत्ति वह जानता है, वित्तः[५३६] वे दोनों जानते हैं, विदन्ति वे सब जानते हैं.

(६०६) विदो लटो वा । ३ । ४ । ८३ ॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः ॥

विद् धातुसे आगे लट्के परस्मैपदके स्थानमें णल् आदि प्रत्यय विकल्प करके हों ।

लट्-प्र० पु० वेद वह जानता है, **विदतुः** वे दोनों जानते हैं, **विदुः** वे जानते हैं
लट्-म० पु० वेत्थ तू जानता है, **विदथुः** तुम दोनों जानतेहो, **विद** तुम जानते हो,
लट्-उ० पु० वेद मैं जानताहूं, **विद्व** हम दोनों जानते हैं, **विद्म** हम जानते हैं.

लिट् ।

(६०७) उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ३८ ॥

एभ्यो लिटि आम्वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः ।

उष् दाहे (जलाना), विद् ज्ञाने (जानना) और जागृ निद्राक्षये (जागना) इन धातुओंसे परे लिट् आवे तो आम् प्रत्यय विकल्प करके हो । सूत्रमें विद् धातुको अकारान्त उच्चारण कियाहै इसकारण जो (४८६) सूत्रसे गुण पायाहै सो नहीं होता ।

लिट्--प्र० ए० विदाञ्चकार, विवेद इसने जाना.
लुट्--प्र० ए० वेदिता वह जानेगा । **लृट्--प्र० ए० वेदिष्यति** वह जानेगा.

लोट् ।

(६०८) विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् । ३ । १ । ४१ ॥

वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते ।

'विदाङ्कुर्वन्तु' यह प्रयोग किसी सूत्रसे सिद्ध नहीं होसक्ता, तोभी शास्त्रोंमें यह प्रयोग देखा जाता है, इस कारण सूत्रकारने यह सिद्धप्रयोग सूत्रमें धर दिया है, और यह आशय प्रकट किया है कि एक पक्षमें ऐसे रूप हों—आशय यह कि विद् धातुसे परे लोट् आवे तो विकल्प करके आम् प्रत्यय हो तथा लघूपध गुण न हो और लोट्का लुक् हो तथा उसके पीछे आम्से कृ धातुका प्रयोग हो और उससे परे लोट् आवे । सूत्रमें 'विदाङ्कुर्वन्तु' यह प्र० पु० बहुवचनका रूप लिखा है इससे यह न समझना कि प्रथमपुरुष और बहुवचनमेंही आम् प्रत्यय होता हैं, दूसरेमें नहीं होता, तात्पर्य यह कि दूसरेमेंभी होता है ।

(६०९) तनादिकृञ्भ्य उः । ३ । १ । ७९ ॥

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात् । शपोपवादः ।

तन् (७२०) आदि धातु तथा कृ धातुसे परे उ प्रत्यय हो । शप् (४२०) का अपवाद है ।

(६१०) अत उत्सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० ॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति ॥

यदि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो उ (६०९) प्रत्ययान्त कृ धातुके अकारको उ हो ।

लोट्-प्र०पु. विदाङ्करोतु, विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु
वह जाने ईश्वर करे वह जाने वे दोनों जानैं वे जानैं.

लोट्-म०पु० विदाङ्कुरु, विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत
तू जाने " तुम दोनों जानों तुम जानो.

लोट्-उ०पु० विदाङ्करवाणि विदाङ्करवाव विदाङ्करवाम
मैं जानूं हम दोनों जानें हम जानें.

जब निपात नहीं किया तो नीचे लिखेके अनुसार रूप हुए.

लोट्-प्र० पु० वेत्तु वित्तात् वह जाने. **वित्ताम्** वे दोनों जानैं. **विदन्तु** वे जानैं.
लोट्-म० पु० विद्धि, वित्तात् तू जान. **वित्तम्** तुम दोनों जानों, **वित्त** तुम जानों.
लोट्-उ० पु० वेदानि मैं जानूं. **वेदाव** हम दोनों जानें, **वेदाम** हम जानें.
लङ्-प्र० पु० अवेत् उसनेजाना. **अवित्ताम्** उन दोनोंने जाना, **अविदुः** उन्होंने जाना.
लङ्-म० पु० अवेद्+स्–

(६११) दश्च । ८ । २ । ७५ ॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा ।

जब कि सिप् परे हो तो धातुके पदान्त दकारके स्थानमें विकल्पकरके रु हो । रुमें उ-की इत्संज्ञा होकर र् शेष रहा (१११) र्को विसर्ग हुआ–

अवेः, अवेत्, अवेद तूने जाना, **अवित्ताम्** तुम दोनोंने जाना, **अवित्त** तुमने जाना.
लङ्-उ० पु० अवेदम् मैंने जाना, **अविद्व** हम दोनोंने जाना, **अविद्म** हमने जाना.
लिङ्-प्र०पु० विद्यात् वह जाने, **विद्याताम्** वे दोनों जानैं, **विद्युः** वे सब जानें.
२लिङ्-प्र० पु० विद्यात् विद्यास्ताम् विद्यासुः
ईश्वर करे वह जाने, ईश्वर करै वे दोनों जानें, वे सब जानें.
लुङ्-प्र० पु० अवेदीत् अवेदिष्टाम् अवेदिषुः
उसने जाना उन दोनोंने जाना उन्होंने जाना.
लृङ्-प्र० पु० अवेदिष्यत् अवेदिष्यताम् अवेदिष्यन्
जो वह जानै जो वे दोनों जानैं जो वे जानें.

अस् (भुवि) होना ।

लट्-प्र० पु० ए० अस्ति वह है, **प्र० द्वि०** अस्+तः–

(६१२) श्नसोरल्लोपः । ६ । ४ । १११ ॥

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति ॥

जो सार्वधातुक कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हो तो (श्नम्) प्रत्ययके तथा अस् धातुके अकारका लोप हो ।

स्तः वे दोनों हैं **सन्ति** वे हैं.

लट्-म० पु० असि तू है, **स्थः** तुम दोनों हो **स्थ** तुम हो.

लट्-उ० पु० अस्मि मैं हूँ, **स्वः** हम दोनों हैं **स्मः** हम हैं.

लिङ् (विधि) अस्+या+त् (६१२) से अका लोप और नि उपसर्ग लगाया तो—निस्यात्—

(६१३) उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः । ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गेणः प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि परे ॥

उपसर्गमें रहनेवाले इण् प्रत्याहारके वर्ण तथा प्रादुस् अव्ययके आगे जो अस् धातु उसके सकारको षकार हो जब उससे परे यकार वा अच् हो ।

प्र० ए० निष्यात् वह बाहर जाय.

लट्-प्र० ब० प्रतिषन्ति वे बाहर जाते हैं (प्र तथा नि उपसर्ग लगा)

लट्-प्र० ब० प्रादुस्+सन्ति=**प्रादुःषन्ति** वे प्रकट होते हैं।

यच्परः किम् ? य् और अच् परे क्यों कहा; यदि ऐसा न कहते तो **अभिस्तः** (वे दोनों सब प्रकारसे हैं) वहांभी सकारको षकार हो जाता.

(६१४) अस्तेर्भूः । २ । ४ । ५२ ॥

आर्धधातुके परे अस्तेर्भूः ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुये सन्ते अस् धातुको भू आदेश हो ।

लिट्-प्र० ए० बभूव वह हुआ, **लुट् प्र० ए० भविता** वह होगा.

लृट्-प्र० ए० भविष्यति वह होगा.

लोट्-प्र० पु० अस्तु, स्तात् वह होय, **स्ताम्** वे दोनों हों, **सन्तु** वे हों.

लोट्-म० पु० अस्+हि (४४८)

(६१५) घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च । ६ । ४ । ११९ ॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्यात् हौ परे अभ्यासलोपश्च । आभीयत्वेन एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । तातङ्पक्षे एत्वं न परेण तातङा बाधात् ॥

हि परे हुए सन्ते घुसंज्ञक धातु (६६३) तथा अस् धातुको एकार हो और अभ्यास

का लोपभी हो। आमीयत्त्वसे एत्वके असिद्ध होनेके कारण हिको धि (५९४) होता है और तातङ् पक्षमें एत्त्व नहीं होता क्योंकि पर होनेके कारण तातङ् (६१९) से बाध है।

एधि[५९४] } तू हो　　**स्तम्** तुम दोनों हो　　**स्त** तुम हो.
स्तात् } ईश्वर करे तू हो

लोट्-उ० पु० असानि मैं हूँ, **असाव** हम दोनों हों, **असाम** हम हों.
लङ्-प्र० पु० आसीत्[४८०] वह था, **आस्ताम्** वे दोनों थे, **आसन्** वे थे.
लिङ्-प्र०पु० स्यात्[४६१।४६२] वह हो, **स्याताम्** वे दोनों हों, **स्युः** वे हों.
२लिङ्-प्र०पु०भूयात् ईश्वर करे वह हो, **भूयास्ताम्** ईश्वर करे वे दोनों हों.

भूयासुः ईश्वर करे वे होंय.

लुङ्-प्र० पु० अभूत् वह था　**अभूताम्** वे दोनों थे　**अभूवन्** वे थे.
लृङ्-प्र० पु० अभविष्यत्　**अभविष्यताम्**　**अभविष्यन्**
जो वह होगा　जो वे दोनों होंगे　जो वे होंगे।

इण् (गतौ) जाना.

लट्-प्र० पु० एति[४२१] वह जाता है, **इतः**[४३।४६] वे दोनों जाते हैं, इ+अन्ति-

(६१६) इणो यण्। ६। ४। ८१॥

अजादौ प्रत्यये परे॥

अच् आदिवाले प्रत्यय परे हुए सन्ते इण् धातुको यण् हो। **यन्ति** वे जाते हैं.
लिट्-प्र० ए० इ+इ+अ-

(६१७) अभ्यासस्यासवर्णे। ६। ४। ७८॥

इउवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण तथा उवर्णके स्थानमें इयङ् तथा उवङ् आदेश क्रमसे हों। इ+ए (२०२)+अ—
इयाय[४२०।२०२।२९] वह गया, **लिट्-प्र० द्वि०** इ+इय्+अतुः—

(६१८) दीर्घ इणः किति। ७। ४। ६९॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि॥

जब लिट्के स्थानमें हुए कित् संज्ञक प्रत्यय परे रहे तो इण् धातुके अभ्यासको दीर्घ हो। **ईयतुः** वे दोनों गये थे, **ईयुः** वे गये थे.

म० पु०	ईययिथ, इयेथ[५१६।४२९।५११] तू गया	ईयथुः तुम दोनों गये	ईय तुम गये.
लुट्-प्र० पु०	एता वह जायगा	एतारौ वे दोनों जांयगे	एतारः वे जांयगे.
लृट्-प्र० पु०	एष्यति वह जायगा	एष्यतः वे दोनों जांयगे	एष्यन्ति वे जांयगे.
लोट्-प्र० पु०	एतु, इतात् वह जाय	इताम् वे दो जांय	यन्तु वे जांय.
लङ्-प्र० पु०	ऐत्[४७९।२१८] वह गया	ऐताम् वे दोनों गये	आयन् वे गये.
लिङ्-प्र० पु०	इयात् वह जाय	इयाताम् वे दोनों जांय	इयुः वे जांय.
२लिङ्-प्र० पु०	ईयात् ईश्वर करै वह जाय.	ईयास्ताम् ईश्वर करै वे दोनों जांय;	ईयासुः ईश्वर करै वे जांय.

(६१९) एतेर्लिङि । ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि परे ॥

लिङ्के स्थानमें कित् (४६६, ४६७) आर्धधातुक प्रत्यय परे होय तो उपसर्गसे परे इण् धातुके अण् प्रत्याहारको ह्रस्व हो । निर्+ईयात्=निरीयात्=**निरियात्** ईश्वर करै वह निकले। **उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्** । अभि+ईयात्=**अभीयात्** ईश्वर करै वह जाय ।

इस प्रयोगमें भी (९१) से दीर्घ हुआ है (६१९) से ह्रस्व नहीं हो सकता कारण कि किसी कार्यके निमित्त किसी प्रयोगमें पहले और आगेके दोनों भागका आश्रय एकही कालमें करना पडे तब वह सूत्र नहीं लगता कि एकादेश पूर्वशब्दका अन्त्य और परशब्दका आदि माना जाय इसकारणसे अभीयात्के ईकारको उपसर्ग और धातुका अवयव एकही समय नहीं मान सकते, इसकारण पूर्वपरके स्थानमें जहां एक आदेश हो वहां यह (६१९) विधि नहीं लगता. **अणः किम् ?** अण् प्रत्याहारको ह्रस्व क्यों कहा ? सम्+एयात् **समेयात्**= सम+आ+ईयात् (९१९) इसमें एकार रूप धातु अण् नहीं है इससे ह्रस्व न हुआ.

(६२०) इणो गा लुङि । २ । ४ । ४५ ॥

इणो गा स्यात् लुङि ॥

लुङ् परे होय तो इण् धातुके स्थानमें गा आदेश हो (४७४) के अनुसार सिच्(४७३) का लुक् हुआ.

प्र० पु० अगात् वह गया. अगाताम् वे दोनों गये, अगुः वे गये.

लृङ्-प्र० ए० ऐष्यत्[४७३,२१८] जो वह जायगा.

आत्मनेपद ।

शीङ् (सोना)

लट् प्र० ए० शी+त (४११) से ङित् है इस कारण आत्मनेपद प्रत्यय लगा.

(६२१) शीङः सार्वधातुके गुणः । ७ । ४ । २१ ॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः ॥

जब सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो शीङ्को गुण हो । यह सूत्र (४६) का अपवाद है.

प्र० पु० शेते[५४४] वह सोता है, शयाते[६२१,२९,५४४] वे दोनों सोते हैं, शी+झ—

(६२२) शीङो रुट् । ७ । १ । ६ ॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् ॥

शीङ् धातुके आगे झ्के स्थानमें अत् (९६०) को रुट्का आगम हो । शे+र्+अत् (९६०)+शेरत्+ए=शेरते वे सोते हैं.

लट् म० पु० शेषे तू सोता है, शयाथे तुम दोनों सोते हो, शेध्वे तुम सोते हो.

लट्-उ० पु० शये मै सोताहूं, शेवहे हम दोनों सोते हैं, शेमहे हम सोते हैं.

लिट्-प्र० पु० शिश्ये[४३०,५४९] वह सोया शिश्याते वे दोनों सोये, शिश्यिरे[४५२] वे सोये.

लुट्-प्र० पु० शयिता[४३४] वह सोवेगा, शयितारौ वे दोनों सोवैंगे, शयितारः वे सोवेंगे

लृट्-प्र० पु० शयिष्यते वह सोवेगा, शयिष्येते वे दोनो सोवैंगे, शयिष्यन्ते वे सोवेंगे

लोट्-प्र० पु० शेताम्[५५३] वह सोवे, शयाताम् वे दोनों सोवें, शेरताम्[६२२] वे सोवें.

लङ्-प्र० पु० अशेत वह सोया, अशयाताम् वे दोनों सोये, अशेरत[५६०,६२२] वे सोये.

लिङ्-प्र० पु० शयीत[५५६,४६४] वह सोवे, शयीयाताम् वे दोनों सोवें, शयीरन्[५५७] वे सोवें.

२ लिङ्-प्र० पु० शयिषीष्ट[५६९] ईश्वर करे वह सोवे,	शयिषीयास्ताम् ईश्वर करे वे दोनों सोवें,	शयिषीरन् ईश्वरकरे वे सोवें.
लुङ्-प्र० पु० अशयिष्ट[४२१,४७३,४३४] वह सोया	अशयिषाताम् वे दोनों सोये	अशयिषत वे सोये,
लृङ्-प्र० पु० अशयिष्यत[३३६] जो वह सोवेगा	अशयिष्येताम् जो वे दोनों सोवेंगे	अशयिष्यन्त जो वे सोवेंगे.

इ (इङ् अध्ययने) पढना । **इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः ।**

इङ् तथा स्मरणार्थवाचक इक् धातुके प्रयोगमें सदा अधि उपसर्ग पहल रहता है.

लट्-प्र० **अधीते** वह पढता है, **अधीयाते** वे दोनों पढते हैं, **अधीयते** वे पढते हैं.
लट्-म० **अधीषे** तू पढता है, **अधीयाथे** तुम दोनों पढतेहो, **अधीध्वे** तुम पढतेहो..
लट्-उ० **अधीये** मै पढता हूं, **अधीवहे** हम दोनों पढते हैं, **अधीमहे** हम पढते हैं.

लिट् ।

(६२३) गाङ् लिटि । २ । ४ । ४९ ॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि ॥

लिट् परे हुए सन्ते इङ् धातुको गाङ् आदेश हो. गाङ्में गा शेष रहा । अधिगा+ए (४२७)—

प्र० पु०	**अधिजगे** उसने पढा	**अधिजगाते** उन दोनोंने पढा	**अधिजगिरे** उन्होंने पढा.
म० पु०	**अधिजगिषे** तूने पढा	**अधिजगाथे** तुम दोनोंने पढा	**अधिजगिध्वे** तुमने पढा.
उ० पु०	**अधिजगे** मैंने पढा	**अधिजगिवहे** हम दोनोंने पढा	**अधिजगिमहे** हमने पढा.

लुट् ।

प्र० पु० **अध्येता** वह पढेगा, **अध्येतारौ** वे दोनों पढेंगे, **अध्येतारः** वे पढेंगे.
म० पु० **अध्येतासे** तू पढेगा, **अध्येतासाथे** तुम दोनों पढोगे, **अध्येताध्वे** तुम पढोगे.
उ० पु० **अध्येताहे** मैं पढूंगा, **अध्येतास्वहे** हम दोनों पढेंगे, **अध्येतास्महे** हम पढेंगे

लृट् ।

प्र० पु० **अध्येष्यते** वह पढेगा, **अध्येष्येते** वे दोनों पढेंगे, **अध्येष्यन्ते** वे पढेंगे.
म० पु० **अध्येष्यसे** तू पढेगा, **अध्येष्येथे** तुम दोनों पढोगे, **अध्येष्यध्वे** तुम पढोगे.
उ० पु० **अध्येष्ये** मैं पढूंगा, **अध्येष्यावहे** हम दोनों पढेंगे, **अध्येष्यामहे** हम पढेंगे.

लोट् ।

प्र० पु० **अधीताम्** वह पढे, **अधीयाताम्** वे दोनों पढें, **अधीयताम्** वे पढें.
म० पु० **अधीष्व** तू पढ, **अधीयाथाम्** तुम दोनों पढो, **अधीध्वम्** तुम पढो.
५४४।५५५।५५१।२।१८।४२१।२९।२१
उ० पु० **अध्ययै** मैं पढूं, **अध्ययावहै** हम दोनो पढें, **अध्ययामहै** हम पढें.

लङ् ।

प्र०पु०**अध्यैत** उसने पढा, **अध्यैयाताम्** उन दोनोंनें पढा, **अध्यैयत** उन्होंने पढा

म० पु० अध्यैथाः तूने पढा, अध्यैयाथाम् तुम दोनोंने पढा, अध्यैध्वम् तुमने पढा.
उ० पु० अध्यैयि मैंने पढा, अध्यैवहि हम दोनोंने पढा, अध्यैमहि हमने पढा.

लिङ् ।

प्र० पु०	अधीयीत[५५६।४६२।४६४।२२०।५५] वह पढे	अधीयीयाताम् वे दोनों पढैं	अधीयीरन्[५५७] वे पढैं.
म० पु०	अधीयीथाः तू पढ	अधीयीयाथाम् तुम दोनों पढो	अधीयीध्वम् तुम पढो.

उ० पु० अधीयीय मैं पढूं, अधीयीवहि हम दोनों पढैं, अधीयीमहि हम पढैं

३ लिङ् ।

प्र०	अध्येषीष्ट ईश्वर करे वह पढे	अध्येषीयास्ताम् ई० वह दोनों पढैं	अध्येषीरन् ई० वे पढैं.
म०	अध्येषीष्ठाः ईश्वर करे तू पढै	अध्येषीयास्थाम् ई० तुम दोनों पढो	अध्येषीढ्वम् ई० तुम पढो.
उ०	अध्येषीय ईश्वर करे मैं पढूं	अध्येषीवहि ई० हम दोनों पढैं	अध्येषीमहि ई० हम पढैं.

लुङ् ।

(६२४) विभाषा लुङ्लृङोः । २ । ४ । ५० ॥

इङो गाङ् वा स्यात् ॥

लुङ् अथवा लृङ् परे हुए सन्ते इङ् धातुको गाङ् आदेश विकल्प करके हो (६२३) ।

(६२५) गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् । १ । २ । १ ॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः ।

गा (६२३) तथा कुट् आदि धातुओंसे परे ञित् णित् भिन्न प्रत्यय आवे तो वह प्रत्यय ङित्संज्ञक (४६८) हो ।

(६२६) घुमास्थागापाजहातिसां हलि । ६ । ४ । ६६ ॥

एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके ।

घुसंज्ञक (६६३), मा (नापना), ष्ठा (गति बन्द करना), गा (गाना), पा (पीना), हा (ओहाक्) (त्यागना), षो (नाश करना) इन धातुओंसे परे हलादि कित् तथा ङित् आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो । प्र० पु०= अधि+[६२४]गा+स्+त=[६२६]अध्यगीष्ट अथवा गाङ् आदेश न किया—

अध्यैष्ट, अध्यगासाताम्, अध्यैषाताम्, अध्यगासत, अध्यैषत,
उसने पढा , उन दोनोंने पढा उन्होंने पढा.

म० पु० अध्यगीष्ठाः, अध्यैष्ठाः तूने पढा.
अध्यगासाथाम्, अध्यैषाथाम् तुम दोनोंने पढा.
अध्यगीढ्वम् अध्यैढ्वम् तुमने पढा,

उ० पु० अध्यगीषि, अध्यैषि मैंने पढा, अध्यगीष्वहि,
अध्यैष्वहि हम दोनोंने पढा अध्यगीष्महि, अध्यैष्महि हमने पढा,

लृङ् ।

प्र० पु०	अध्यगीष्यत[६२४] अध्यैष्यत	जो वह पढेगा
	अध्यगीष्येताम् अध्यैष्येताम्	जो वे दोनों पढेंगे
	अध्यगीष्यन्त अध्यैष्यन्त	जो वे पढेंगे
म० पु०	अध्यगीष्यथाः अध्यैष्यथाः	जो तू पढेगा
	अध्यगीष्येथाम् अध्यैष्येथाम्	जो तुम दोनों पढोगे.
	अध्यगीष्यध्वम् अध्यैष्यध्वम्	जो तुम पढोगे
उ० पु०	अध्यगीष्ये अध्यैष्ये	जो मैं पढूंगा.
	अध्यगीष्यावहि अध्यैष्यावहि	जो हम दोनों पढेंगे
	अध्यगीष्यामहि अध्यैष्यामहि	जो हम पढेंगे

दुह् (दुहना)

लट् परस्मैपद ।

प्र० पु० दोग्धि[२७७, ५८७, २५, ४२२] वह दुहता है, दुग्धः[४५] वह दोनो दुहते हैं, दुहन्ति वे दुहते हैं।

म० पु० धोक्षि[४८६।२७७।२७८।२५।९०।१६९] तू दुहता है, दुग्धः तुम दोनों दुहते हो, दुग्ध तुम दुहते हो.
उ० पु० दोह्मि मैं दुहताहूं, दुह्वः हम दोनों दुहते हैं, दुह्मः हम दुहते हैं.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुग्धे[२७७।९०।५८७।५४४।५३६] वह दुहता है, दुहाते वे दोनों दुहते हैं, दुहते[५६०] वे दुहते हैं.
म० पु० धुक्षे[२७७।२७८।२५।९०।१६९।५३६।४६८] तू दुहता है, दुहाथे तुम दोनों दुहते हो, धुग्ध्वे[२७७।२७८।२५] तुम दुहते हो.
उ० पु० दुहे मैं दुहता हूँ, दुह्वहे हम दोनों दुहते हैं, दुह्महे हम दुहते हैं.

लिट् परस्मैपद ।

प्र० पु० दुदोह[४८६] उसने दुहा, दुदुहतुः उन दोनोंने दुहा, दुदुहुः उन्होंने दुहा.
म० पु० दुदोहिथ तूने दुहा, दुदुहथुः तुम दोनोंने दुहा, दुदुह तुमने दुहा.
उ० पु० दुदोह मैंने दुहा, दुदुहिव हम दोनोंने दुहा, दुदुहिम हमने दुहा.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुदुहे उसने दुहा, दुदुहाते उन दोनोंने दुहा, दुदुहिरे उन्होंने दुहा.
म० पु० दुदुहिषे तूने दुहा, दुदुहाथे तुम दोनोंने दुहा. दुदुहिढ्वे दुदुहिध्वे तुमने दुहा.
उ० पु० दुदुहे मैंने दुहा दुदुहिवहे हम दोनोंने दुहा, दुदुहिमहे हमने दुहा.

लुट् परस्मैपद ।

प्र० पु० दोग्धा वह दुहेगा, दोग्धारौ वे दोनों दुहेंगे, दोग्धारः वे दुहेंगे.
म० पु० दोग्धासि तू दुहेगा, दोग्धास्थः तुम दोनों दुहोगे, दोग्धास्थ तुम दुहोगे.
उ० पु० दोग्धास्मि मैं दुहूंगा, दोग्धास्वः हम दोनों दुहेंगे, दोग्धास्मः हम दुहेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दोग्धा[५८७] वह दुहेगा, दोग्धारौ वे दोनों दुहेंगे, दोग्धारः वे दुहेंगे.
म० पु० दोग्धासे तू दुहेगा, दोग्धासाथे तुम दोनों दुहोगे, दोग्धाध्वे तुम दुहोगे.
उ० पु० दोग्धाहे मैं दुहूंगा, दोग्धास्वहे हम दोनों दुहेंगे, दोग्धास्महे हम दुहेंगे.

लृट् परस्मैपद ।

प्र० पु० धोक्ष्यति[७।२७८।२५।९०] वह दुहेगा, धोक्ष्यतः वे दोनों दुहेंगे, धोक्ष्यन्ति वे दुहेंगे.
म० पु० धोक्ष्यसि तू दुहेगा, धोक्ष्यथः तुम दोनों दुहोगे, धोक्ष्यथ तुम दुहोगे.
उ० पु० धोक्ष्यामि मैं दुहूंगा, धोक्ष्यावः हम दोनों दुहेंगे, धोक्ष्यामः हम दुहेंगे

आत्मनेपद ।

प्र० पु० धोक्ष्यते वह दुहेगा, धोक्ष्येते वे दोनों दुहेंगे, धोक्ष्यन्ते वे दुहेंगे.
म० पु० धोक्ष्यसे तू दुहेगा, धोक्ष्येथे तुम दोनों दुहोगे, धोक्ष्यध्वे तुम दुहोगे.
उ० पु० धोक्ष्ये मैं दुहूँगा, धोक्ष्यावहे हम दोनों दुहेंगे, धोक्ष्यामहे हम दुहेंगे.

लोट् ।

प्र० पु० दोग्धु, दुग्धात्[४४५।४८६] वह दुहे, दुग्धाम् वे दोनों दुहें, दुहन्तु वे दुहें.
म० पु० दुग्धि, दुग्धात्[५०४।४४५] तू दुह, दुग्धम् तुम दोनों दुहो, दुग्ध तुम दुहो.
उ० पु० दोहानि मैं दुहूँ, दोहाव हम दोनों दुहें, दोहाम हम दुहें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुग्धाम् वह दुहे, दुहाताम् वे दोनों दुहें, दुहताम्[५६०] वे दुहें.
म० पु० धुक्ष्व तू दुह, दुहाथाम् तुम दोनों दुहो, धुग्ध्वम्[२९०।२७८।२५] तुम दुहो.
उ० पु० दोहै मैं दहूँ, दोहावहै हम दोनों दुहैं, दोहामहै हम दुहैं.

लङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० अधोक्[४८६।२७७।२७८] उसने दुहा, अदुग्धाम्[५८०] उन दोनोंने दुहा, अदुहन् उन्होंने दुहा.
म० पु० अधोक् तूने दुहा, अदुग्धम् तुम दोनोंने दुहा, अदुग्ध तुमने दुहा.
उ० पु० अदोहम् मैंने दुहा, अदुह्व हम दोनोंने दुहा, अदुह्म हमने दुहा.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० अदुग्ध उसने दुहा, अदुहाताम् उन दोनोंने दुहा, अदुहत उन्होंने दुहा
म० पु० अदुग्धाः तूने दुहा, अदुहाथाम् तुम दोनोंने दुहा, अधुग्ध्वम्[२७७।२७८।२५] तुमने दुहा.
उ० पु० अदुहि मैंने दुहा, अदुह्वहि हम दोनोंने दुहा, अदुह्महि हमने दुहा.

लिङ् ।

प्र० पु० दुह्यात् वह दुहे, दुह्याताम् वे दोनों दुहें, दुह्युः वे दुहें.
म० पु० दुह्याः तू दुह, दुह्यातम् तुम दोनों दुहो, दुह्यात तुम दुहो.
उ० पु० दुह्याम् मैं दुहूँ, दुह्याव हम दोनों दुहें, दुह्याम हम दुहें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुहीत[५५८] वह दुहे, दुहीयाताम्[५५८।४६२] वे दोनों दुहें. दुहीरन्[५५७] वे दुहें.
म० पु० दुहीथाः तू दुह, दुहीयाथाम् तुम दोनों दुहो, दुहीध्वम् तुम दुहो.
उ० पु० दुहीय[५५८] मैं दुहूँ, दुहीवहि हम दोनौं दहैं, दुहीमहि हम दुहें.

२ लिङ् ।

प्र० पु० दुह्यात् दुह्यास्ताम् दुह्यासुः[४६५]
ईश्वर करे वह दुहे, ईश्वर करे वे दोनों दुहें; ईश्वर करे वे दुहें.

म० पु० दुह्याः दुह्यास्तम् दुह्यास्त
ईश्वर करे तू दुहे, ई० तुम दोनों दुहो, ई० तुम दुहो.

उ० पु०	दुह्यासम्	दुह्यास्व	दुह्यास्म
	ई० मैं दुहूँ,	ई० हम दोनों दुहें,	ई० हम दुहें

आत्मनेपद।

प्र० पु० दुह्+सी+स् ५५६।४६४।५५९ +त—

(६२७) लिङ्सिचावात्मनेपदेषु। १। २। ११॥

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ् आत्मनेपदपरः सिच्चैत्येतौ कितौ स्तः॥

इक्के निकट जो हल् उससे परे झलादि लिङ् और आत्मनेपद परक झलादि सिच् (४७३) ये दोनों कित् होवैं। इसमें दुह् अन्तर्गत उके निकट ह् हल् है उससे परे सीयुट् है सो लिङ्का प्रत्यय है तो सीयुट् कित् हुआ (४६८) से दु अन्तर्गत उको लघूपध (४८६) गुण न हुआ——

२७७।२७८।२८।२७।१६२।७८

प्र० पु०	धुक्षीष्ट	धुक्षीयास्ताम्	धुक्षीरन्
	ईश्वर करे वह दुहै.	ई० वे दोनों दुहैं	ई० वे दुहैं.
म० पु०	धुक्षीष्ठाः	धुक्षीयास्थाम्	धुक्षीध्वम्
	ईश्वर करे तू दुहै	ई० तुम दोनों दुहो	ई० तुम दुहो.
उ० पु०	धुक्षीय ५७८	धुक्षीवहि	धुक्षीमहि
	ईश्वर करे मैं दुहूं	ई० हम दोनों दुहें	ई० हम दुहें.

लुङ् परस्मैपद।

प्र० ए० दुह्+च्लि (४७२)+त्—

(६२८) शल इगुपधादनिटः क्सः। ३। १। ४५॥

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात्॥

जिस धातुकी उपधामें इक् होय उसके अन्तमें शल् होय और उससे परे अनिट् (९११) च्लि आवे तो च्लिके स्थानमें क्स आदेश। अदुह् क्स+त—

४६८।२७८।२७८।२४।२०।१५५।१७

प्र० पु०	अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्
	उसने दुहा	उन दोनोंने दुहा	उन्होंने दुहा.
म० पु०	अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत
	तूने दुहा	तुम दोनोंने दुहा	तुमने दुहा.
उ० पु०	अधुक्षम्	अधुक्षाव ४७३	अधुक्षाम
	मैंने दुहा	हम दोने दुहा	हमने दुहा.

आत्मनेपद ।

प्र० ए० दुह्+[६२८]क्स+त-

(६२९) लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये । ७ । ३ । ७३ ॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि ॥

दुह् (दुहना), दिह् (बढना), लिह् (चाटना) और गुह् (ढकना) इन धातुओंके आगे क्सका विकल्प करके लोप हो जो अन्तमें दन्तस्थानीय आदि अक्षरवाला आत्मनेपद प्रत्यय परे हो । अर्थात् क्सके अन्तका अक्षर दन्तस्थानीय हो ।

[२७७।२५।५८७] [६२८] [२७७-२७८। २५। ९०]
प्र० पु० **अदुग्ध** उसने दुहा वा, **अधुक्षत** उसने दुहा, **अधुक्+क्स+आताम्-**

(६३०) क्सस्याचि । ७ । ३ । ७२ ॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः ॥

अजादि आत्मनेपद प्रत्यय परे होय तो क्सका लोप हो (२७) से क्सके अन्त्य अकारका लोप हुआ (६३०, १९९) से क्का लोप स् शेष रहा उसको (१६९) से ष् हुआ-

अधुक्षाताम् उन दोनें दुहा, [४२२] **अधुक्षन्त** उन्होंने दुहा.

म०	[२२९।७८ २५।५८७] **अदुग्धाः** / **अधुक्षथाः**	तूने दुहा	**अधुक्षाथाम्**	तुम दोनोंने दुहा	[५२९] **अधुग्ध्वम्** / **अधुक्षध्वम्** — तुमने दुहा.

उ० **अधुक्षि** मैंने दुहा, **अदुह्वहि** [४२३] **अधुक्षावहि** हम दोनों दुहा, **अधुक्षामहि** हमने दुहा.

लृङ् परस्मैपद ।

[४३६।४८६।२७७।२७८।२५।९०]

प्र० पु	**अधोक्ष्यत** जो वह दुहै	**अधोक्ष्यताम्** जो वे दोनों दुहैं	**अधोक्ष्यन्** जो वे दुहैं.
म० पु०	**अधोक्ष्यः** जो तू दुहै	**अधोक्ष्यतम्** जो तुम दोंनो दुहो	**अधोक्ष्यत** जो तुम दुहो.
उ० पु०	**अधोक्ष्यम्** जो मैं दुहूं	**अधोक्ष्याव** जो हम दोनों दुहैं	**अधोक्ष्याम** जो हम दुहैं.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	**अधोक्ष्यत** जो वह दुहै	**अधोक्ष्येताम्** जो वे दोनों दुहैं	**अधोक्ष्यन्त** जो वे दुहैं.
म० पु०	**अधोक्ष्यथाः** जो तू दुहै	**अधोक्ष्येथाम्** जो तुम दोनों दुहो	**अधोक्ष्यध्वम्** जो तुम दुहो.

उ० पु० अधोक्ष्ये जो मैं दुहूँ अधोक्ष्यावहि जो हम दोनों दुहें अधोक्ष्यामहि जो हम दुहैं.

दिह् धातुके रूप दुहके समान जानने ।

लिह् (आस्वादने) चाटना ।

लट् परस्मैपद ।

प्र० पु० लेढि[४८६।२७६।९८७।७८।५८८] वह चाटता है, लीढः[१३१] वे दोनों चाटते हैं, लिहन्ति चाटते हैं.
म० पु० लेक्षि[२७३।५८६।१६९] तू चाटता है, लीढः तुम दोनों चाटते हो, लीढ तुम चाटते हो.
उ० पु० लेह्मि मैं चाटता हूँ, लिह्वः हम दोनों चाटते हैं, लिह्मः हम चाटते हैं.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० लीढे[५४४] वह चाटता है, लिहाते वे दो चाटते हैं, लिहते[५६० ४४] वे चाटते हैं.
म० पु० लिक्षे तू चाटता है, लिहाथे तुम दोनों चाटते हो, लीढ्वे तुम चाटते हो.
उ० पु० लिहे मैं चाटता हूँ, लिह्वहे हम दोनों चाटते हैं, लिह्महे हम चाटते हैं.

लिट् परस्मैपद ।

प्र० पु० लिलेह उसने चाटा, लिलिहतुः उन दोने चाटा, लिलिहुः उन्होंने चाटा.
म० पु० लिलेहिथ तूने चाटा, लिलिहथुः तुम दोने चाटा, लिलिह तुमने चाटा.
उ० पु० लिलेह मैंने चाटा, लिलिहिव हम दोने चाटा, लिलिहिम हमने चाटा.

आत्मनेपद ।

उ० पु० लिलिहे उसने चाटा, लिलिहाते उन दोने चाटा, लिलिहिरे उन्होंने चाटा.
म० पु० लिलिहिषे[५६] तूने चाटा, लिलिहाथे तुम दोने चाटा, लिलिहिढ्वे-ध्वे तुमने चाटा
उ० पु० लिलिहे मैंने चाटा, लिलिहिवहे हम दोने चाटा, लिलिहिमहे हमने चाटा.

लुट् परस्मैपद ।

प्र० पु० लेढा वह चाटेगा, लेढारौ वे दोनों चाटेंगे, लेढारः वे चाटेंगे.
म० पु० लेढासि तू चाटेगा, लेढास्थः तुम दोनों चाटोगे, लेढास्थ तुम चाटोगे.
उ० पु० लेढास्मि मैं चाटूंगा, लेढास्वः हय दोनों चाटेंगे, लेढास्मः हम चाटेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० लेढा वह चाटेगा, लेढारौ वे दोनों चाटेंगे, लेढारः वे चाटेंगे.
म० पु० लेढासे तू चाटेगा, लेढासाथे तुम दोनों चाटोगे, लेढाध्वे तुम चाटोगे.
उ० पु० लेढाहे मैं चाटूंगा, लेढास्वहे हम दोनों चाटेंगे, लेढास्महे हम चाटेंगे.

लृट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लेक्ष्यति** वह चाटैगा, **लेक्ष्यतः** वे दोनों चाटैंगे, **लेक्ष्यन्ति** वे चाटैंगे.
म० पु० **लेक्ष्यसि** तू चाटैगा, **लेक्ष्यथः** तुम दोनों चाटोगे, **लेक्ष्यथ** तुम चाटोगे.
उ० पु० **लेक्ष्यामि** मैं चाटूंगा, **लेक्ष्यावः** हम दो चाटैंगे, **लेक्ष्यामः** हम चाटैंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **लेक्ष्यते** वह चाटैगा, **लेक्ष्येते** वे दोनों चाटैंगे, **लेक्ष्यन्ते** वे चाटैंगे.
म० पु० **लेक्ष्यसे** तू चाटैगा, **लेक्ष्येथे** तुम दोनों चाटोगे, **लेक्ष्यध्वे** तुम चाटोगे.
उ० पु० **लेक्ष्ये** मैं चाटूंगा, **लेक्ष्यावहे** तुम दोनों चाटोगे, **लेक्ष्यामहे** हम चाटैंगे.

लोट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लेढु**[४४४], **लीढात्**[४४५।१४६] वह चाटै, **लीढाम्** वे दोनों चाटैं, **लिहन्तु** वे चाटैं.
म० पु० **लीढि**[४४८।२७६।७८।५९८], **लीढात्**[४४५।१३२] तू चाट, **लीढम्** तुम दोनों चाटो, **लीढ** तुम चाटो.
उ० पु० **लेहानि** मैं चाटूं, **लेहाव** हम दोनों चाटैं, **लेहाम** हम चाटैं.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **लीढाम्**[५५३] वह चाटै **लिहाताम्** वे दोनों चाटैं **लिहताम्** वे चाटैं.
म० पु० **लिक्ष्व** तू चाट, **लिहाथाम्** तुम दोनों चाटो **लीढ्वम्** तुम चाटो.
उ० पु० **लेहै** मैं चाटूं, **लेहावहै** हम दोनों चाटैं **लेहामहै** हम चाटैं

लङ् परस्मैपद ।

प्र०पु०**अलेट्-अलेड्**[२७६।११५।१६५] उसने चाटा, **अलीढाम्** उन दोनोंने चाटा, **अलिहन्** उन्होंनेचाटा
म० पु० **अलेट्-ड्** तूने चाटा, **अलीढम्** तुम दोनोंने चाटा, **अलीढ** तुमने चाटा.
उ० पु० **अलेहम्** मैंने चाटा, **अलिह्व** हम दोनोंने चाटा, **अलिह्म** हमनें चाटा.

आत्मनेपद ।

प्र० **अलीढ** उसने चाटा, **अलिहाताम्** उन दोनोंने चाटा, **अलिहत** उन्होंने चाटा.
म० **अलीढाः** तूने चाटा, **अलिहाथाम्** तुम दोनोंने चाठा, **अलीढ्वम्** तुमने चाटा.
उ० **अलिहि** मैंने चाटा, **अलिह्वहि** हम दोनोने चाटा, **अलिह्महि** हमने चाटा.

लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लिह्यात्** वह चाटै, **लिह्याताम्** वे दोनों चाटैं, **लिह्युः** वे चाटैं.
म० पु० **लिह्याः** तू चाटै, **लिह्यातम्** तुम दोनो, चाटो **लिह्यात** तुम चाटो.
उ० पु० **लिह्याम** मैं चाटूं, **लिह्याव** हम दोनों चाटैं, **लिह्याम** हम चाट.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० लिहीत वह चाटै, लिहीयाताम् वे दोनों चाटैं, लिहीरन् वे चाटैं.
म० पु० लिहीथाः तू चाटै, लिहीयाथाम् तुम दो चाटो, लिहीध्वम् तुम चाटो.
उ० पु० लिहीय मैं चाटूं, लिहीवहि हम दोनों चाटैं, लिहीमहि हम चाटैं.

२ लिङ् ।

प्र० पु०	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्यासुः
	ईश्वर करे वह चाटै	ई० वे दोनों चाटैं	ई० वै चाटैं.
म० पु०	लिह्याः	लिह्यास्तम्	लिह्यास्त
	ईश्वर करे तू चाटै	ई० तुम दोनों चाटो	ई० तुम चाटो.
उ० पु०	लिह्यासम्	लिह्यास्व	लिह्यास्म
	ईश्वर करे मैं चाटूं	ई० हम दोनों चाटैं	ई० हम चाटैं.

आत्मने पद ।

प्र० पु०	लिक्षीष्ट	लिक्षीयास्ताम्	लिक्षीरन्
	ई० वह चाटै	ई० वे दोनों चाठैं	ई० वे चाटैं.
म० पु०	लिक्षीष्ठाः	लिक्षीयास्थाम्	लिक्षीध्वम्
	ई० तू चाटे	ई० तुम दोनों चाटो	ई० तुम चाटो.
उ० पु०	लिक्षीय	लिक्षीवहि	लिक्षीमहि
	ई० मैं चाटूं	ई० हम दोनों चाटैं	ई० हम चाटैं

लुङ् परस्मैपद ।

प्र०पु०अलिक्षत्[५२८।२७६।३८६] उसनेचाटा, अलिक्षताम् उन दोनोंने चाटा, अलिक्षन् उन्होंने चाटा
म० पु० अलिक्षः तूने चाटा, अलिक्षतम् तुम दोनोंने चाटा, अलिक्षत तुमने चाटा.
उ० पु० अलिक्षम् मैंने चाटा, अलिक्षाव हम दोने चाटा, अलिक्षाम हमने चाटा.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	अलिक्षत[६३०], अलीढ	अलिक्षाताम्	अलिक्षत
	उसने चाटा	उन दोनोंने चाटा	उन्होंने चाटा.
म० पु०	अलिक्षथाः, अलीढाः ।	अलिक्षाथाम् ।	अलीढ्वम्, अलिक्षध्वम्
	तूने चाटा	तुम दोनोंने चाटा	तुमने चाटा.
उ० पु०	अलिक्षि ।	अलिह्वहि, अलिक्षावहि ।	अलिक्षामहि
	मैंने चाटा	हम दोनों चाटा	हमने चाटा.

लङ् परस्मैपद ।

प्र० पु०	अलेक्ष्यत् जो वह चाटै	अलेक्ष्यताम् जो वे दोनों चाटैं	अलेक्ष्यन् जो वे चाटैं.
म० पु०	अलेक्षः जो तू चाटै	अलेक्ष्यतम् जो तुम दोनों चाटो	अलेक्ष्यत जो तुम चाटो.
उ० पु०	अलेक्ष्यम् जो मैं चाटूं	अलेक्ष्याव जो हम दोनों चाटैं	अलेक्ष्याम जो हम चाटैं

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	अलेक्ष्यत जो वह चाटै	अलेक्ष्यताम् जो वे दो चाटैं	अलेक्ष्यन्त जो वे चाटैं.
म० पु०	अलेक्ष्यथाः जो तू चाटै	अलेक्ष्यथाम् जो तुम दोनों चाटो	अलेक्ष्यध्वम् जो तुम चाटो.
उ० पु०	अलेक्ष्ये जो मैं चाटूं	अलेक्ष्यावहि जो हम दोनों चाटैं	अलेक्ष्यामहि जो हम चाटैं.

ब्रू (ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि) बोलना ।

(६३१) ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । ३ । ४ । ८४ ॥

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः ॥

ब्रूसे परे जो लट्के स्थानमें पाँच तिप् आदि प्रत्यय हैं उनके स्थानमें विकल्प करके णल् आदि (४२९) आदेश हों और ब्रूको आह् आदेश हो ।

लट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **आह** वह बोलता है, **आहतुः** वे दोनों बोलते हैं, **आहुः** वे बोलते हैं.

म० पु० आह्+थ-

(६३२) आहस्थः । ८ । २ । ३५ ॥

झलि परे ॥

झल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते आह् (६३१) के स्थानमें थकार हो (२७) से आह्के हकारके स्थानमें थकार हुआ=आथ्+थ (९०) से थ्को तकार हुआ **आत्थ** तू बोलता है, **आहथुः** तुम दोनों बोलते हो. (६३१) विधि नहीं की तो प्र० ए० ब्रू+ति-

(६३३) ब्रुव ईट् । ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात् ॥

ब्रूधातुसे परे हलादि पित्संज्ञक प्रत्यय आवे तो पित्को ईट्का आगम हो । ब्रू+ई+ति—

प्र० पु०	**ब्रवीति**[४२१।२९।६३३] वह बोलता है,	**ब्रूतः** वे दोनों बोलते हैं,	**ब्रुवन्ति**[२२०] वे बोलते हैं.
म० पु०	**ब्रवीषि** तू बोलता है,	**ब्रूथः** तुम दोनों बोलतेहो,	**ब्रूथ** तुम बोलतेहो.
उ० पु०	**ब्रवीमि** मैं बोलता हूँ,	**ब्रूवः** हम दोनों बोलते हैं,	**ब्रूमः** हम सब बोलतेहैं.

आत्मनेपद ।

प्र०	**ब्रूते**[५४४] वह बोलता है,	**ब्रुवाते**[२२०] वे दोनों बोलते हैं,	**ब्रुवते**[५६०।२२०] वे बोलते हैं.
म०	**ब्रूषे** तू बोलता है,	**ब्रुवाथे** तुम दोनों बोलते हो,	**ब्रूध्वे** तुम बोलते हो
उ०	**ब्रुवे**[४२०] मैं बोलता हूँ,	**ब्रूवहे** हम दोनों बोलते हैं,	**ब्रूमहे** हम बोलते हैं.

लिट् परस्मैपद ।

(६३४) ब्रुवो वचिः । २ । ४ । ५३ ॥

आर्धधातुके परे ब्रुवो वच् आदेशः स्यात् ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो ब्रू धातुके स्थानमें वच् आदेश हो । वच्+अ—

प्र० पु०	**उवाच**[४३३।४२०।४२९।५८४।२८३।४९०] वह बोला,	**ऊचतुः** वे दोनों बोले,	**ऊचुः** वे बोले.
म० पु०	**उवचिथ**[५१८], **उवक्थ**[३३३।४०७] तू बोला,	**ऊचथुः** तुम दोनों बोले,	**ऊच** तुम बोले,
उ० पु०	**उवाच**, **उवच** मैं बोला,	**ऊचिव** हम दोनों बोले,	**ऊचिम** हम बोले.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	**ऊचे**[५८५।५४९] वह बोला,	**ऊचाते** वे दोनों बोले,	**ऊचिरे** वे बोले.
म० पु०	**ऊचिषे** तू बोला,	**ऊचाथे** तुम दोनों बोले,	**ऊचिध्वे** तुम बोले.
उ० पु०	**ऊचे** मैं बोला,	**ऊचिवहे** हम दोनों बोले,	**ऊचिमहे** हम बोले.

लुट् परस्मैपद ।

प्र० पु०	**वक्ता**[३३३] वह बोलेगा,	**वक्तारौ** वे दोनों बोलेंगे,	**वक्तारः** वे बोलेंगे.
म० पु०	**वक्तासि** तू बोलेगा,	**वक्तास्थः** तुम दोनों बोलोगे,	**वक्तास्थ** तुम बोलोगे.
उ० पु०	**वक्तास्मि** मैं बोलूंगा,	**वक्तास्वः** हम दोनों बोलैंगे,	**वक्तास्मः** हम बोलैंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	**वक्ता** वह बोलेगा	**वक्तारौ** वे दोनों बोलेंगे,	**वक्तारः** वे बोलेंगे.
म० पु०	**वक्तासे** तू बोलेगा,	**वक्तासाथे** तुम दोनों बोलोगे,	**वक्ताध्वे** तुम बोलोगे.
उ० पु०	**वक्ताहे** मैं बोलूंगा,	**वक्तास्वहे** हम दोनों बोलेंगे	**वक्तास्महे** हम बोलेंगे.

लृट् परस्मैपद ।

प्र० पु०	**वक्ष्यति**	वह बोलेगा,	**वक्ष्यतः**	वे दोनों बोलेंगे,	**वक्ष्यन्ति**	वे बोलेंगे.
म० पु०	**वक्ष्यसि**	तू बोलेगा,	**वक्ष्यथः**	तुम दोनों बोलोगे,	**वक्ष्यथ**	तुम बोलोगे.
उ० पु०	**वक्ष्यामि**	मैं बोलूंगा,	**वक्ष्यावः**	हम दोनों बोलेंगे,	**वक्ष्यामः**	हम बोलेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	**वक्ष्यते**	वह बोलेगा,	**वक्ष्येते**	वे दोनों बोलेंगे,	**वक्ष्यन्ते**	वे बोलेंगे.
म० पु०	**वक्ष्यसे**	तू बोलेगा,	**वक्ष्येथे**	तुम दोनो बोलोगे,	**वक्ष्यध्वे**	तुम बोलोगे.
उ० पु०	**वक्ष्ये**	मैं बोलूंगा,	**वक्ष्यावहे**	हम दोनों बोलेंगे,	**वक्ष्यामहे**	हम बोलेंगे.

लोट् परस्मैपद ।

प्र० पु०	**ब्रवीतु**[६३३], **ब्रूतात्**[४४५]	वह बोले,	**ब्रूताम्**	वे दोनों बोलें,	**ब्रुवन्तु**[२२०]	वे बोलें.
म० पु०	**ब्रूहि, ब्रूतात्**	त बोले,	**ब्रूतम्**	तुम दोनों बोलो,	**ब्रूत**	तुम बोलो.
उ० पु०	**ब्रवाणि**	मैं बोलूं,	**ब्रवाव**	हम दोनों बोलें,	**ब्रवाम**	हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	**ब्रूताम्**	वह बोले,	**ब्रुवाताम्**	वे दोनों बोलें,	**ब्रुवताम्**	वे बोलें.
म० पु०	**ब्रूष्व**	तू बोल,	**ब्रुवाथाम्**	तुम दोनों बोलो,	**ब्रूध्वम्**	तुम बोलो.
उ० पु०	**ब्रवै**[५५५]	मैं बोलूं,	**ब्रवावहै**	हम दोनों बोलें,	**ब्रवामहै**	हम बोलें.

लङ् परस्मैपद ।

प्र० पु०	**अब्रवीत्**[६३३]	वह बोला,	**अब्रूताम्**	वे दोनों बोले,	**अब्रुवन्**	वे बोले.
म० पु०	**अब्रवीः**	तू बोला,	**अब्रूतम्**	तुम दोनों बोले,	**अब्रूत**	तुम बोले.
उ० पु०	**अब्रवम्**	मैं बोला.	**अब्रूव**	हम दोनों बोले,	**अब्रूम**	हम बोले.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	**अब्रूत**	वह बोला,	**अब्रुवाताम्**	वे दोनों बोले,	**अब्रुवत**	तुम बोले.
म० पु०	**अब्रूथाः**	तू बोला,	**अब्रुवाथाम्**	तुम दोनों बोले,	**अब्रूध्वम्**	वे बोले.
उ० पु०	**अब्रुवि**	मैं बोला,	**अब्रुवहि**	हम दोनों बोले,	**अब्रुमहि**	हम बोले.

(विधि) लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु०	**ब्रूयात्**	वह बोले,	**ब्रूयाताम्**	वे दोनों बोलें,	**ब्रूयुः**	वे सब बोलें.
म० पु०	**ब्रूयाः**	तू बोले,	**ब्रूयातम्**	तुम दोनों बोलो.	**ब्रूयात**	तुम बोलो.
उ० पु०	**ब्रूयाम्**	मैं बोलूं,	**ब्रूयाव**	हम दोनों बोलें,	**ब्रूयाम**	हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० ब्रुवीत[५५६।४६४।२२०] वह बोले, ब्रुवीयाताम् वे दोनों बोलें, ब्रुवीरन् वे बोलें.
म० पु० ब्रुवीथाः तू बोले, ब्रुवीयाथाम् तुम दोनों बोलो, ब्रुवीध्वम् तुम बोलो.
उ० पु० ब्रुवीय मैं बोलूं, ब्रुवीवहि हम दो बोलें, ब्रुवीमहि हम बोलें.

आशीर्लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० उच्यात्[६३४।५५५] ईश्वर करै वह बोले, उच्यास्ताम् ई० वे दो बोलें, उच्यासुः ई० वे बोलें.
म० पु० उच्याः ई० तू बोले, उच्यास्तम् ई० तुम दोनों बोलो, उच्यास्त ई० तुम बोलो.
उ० पु० उच्यासम् ई० मैं बोलूं, उच्यास्व ई० हम दोनों बोलें, उच्यास्म ई० हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० वक्षीष्ट[५५६।५५९] ई० वह बोले, वक्षीयास्ताम् ई० वे दो बोलें, वक्षीरन् ई० वे बोलें.
म० पु० वक्षीष्ठाः ई० तू बोले, वक्षीयास्थाम् ई० तुम दो बोलो, वक्षीध्वम् ई० तुम बोलो.
उ० पु० वक्षीय ई० मैं बोलूं, वक्षीवहि ई० हम दो बोलें, वक्षीमहि ई० हम बोलें.

लुङ् परस्मैपद ।

प्र० ए० अवच्+च्लि+त्—

(६३५) अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । ३ । १ । ५२ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् ॥

अस् (उ) (फेंकना, वच् (बोलना), ख्या (कहना) इन धातुओंसे परे च्लि (४७२) को अङ् आदेश हो ।

अ+वच्+अ (अङ्)+त्—

(६३६) वच उम् । ७ । ४ । २० ॥

अङि परे ।

अङ् (६३५) परे हुए सन्ते वच् धातुको उम्का आगम हो (२६९) से उम् मित् है सो वच्के व अन्तर्गत अकारके आगे हुआ, अ+व+उच्+अ+त्–गुण—

प्र० पु० अवोचत् वह बोला, अवोचताम् वे दोनों बोले, अवोचन् वे बोले.
म० पु० अवोचः तू बोला, अवोचतम् तुम दोनों बोले, अवोचत तुम बोले.
उ० पु० अवोचम् मैं बोला, अवोचाव हम दोनों बोले, अवोचाम हम बोले.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० अवोचत वह बोला, अवोचेताम् वे दोनों बोले, अवोचन्त वे बोले.
म० पु० अवोचथाः तू बोला, अवोचेथाम् तुम दोनों बोले, अवोचध्वम् तुम बोले.
उ० पु० अवोचे मैं बोला, अवोचावहि हम दोनों बोले, अवोचामहि हम बोले.

लृङ् परस्मैपद ।

प्र० पु०	अवक्ष्यत् जो वह बोले,	अवक्ष्यताम् जो वे दोनों बोलैं,	अवक्ष्यन् जो वे बोलें.
म० पु०	अवक्ष्यः जो तू बोले,	अवक्ष्यतम् जो तुम दोनों बोलो,	अवक्ष्यत जो तुम बोलो:
उ० पु०	अवक्ष्यम् जो मैं बोलूं,	अवक्ष्याव जो हम दोनों बोलैं,	अवक्ष्याम जो हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	अवक्ष्यत जो वह बोले,	अवक्ष्येताम् जो वे दोनों बोलैं,	अवक्ष्यन्त जो वे बोलें.
म० पु०	अवक्ष्यथाः जो तू बोले,	अवक्ष्येथाम् जो तुम दोनों बोलो,	अवक्ष्यध्वम् जो तुम दोनों बोलो.
उ० पु०	अवक्ष्ये जो मै बोलूं,	अवक्ष्यावहि जो हम दोनों बोलैं,	अवक्ष्यामहि जो हम बोलें.

ऊर्णुञ् (आच्छादने) ढकना ।

(६३७) चर्करीतं च ॥

चर्करीतमिति यङ्लुगन्तं तददादौ बोध्यम् ।

'चर्करीतम्' यह रूप यङ्लुगन्त कृ धातुका है, इसकी गणना अदादिगणमें है । धातुमात्रका उपलक्षण है जिस किसी धातुसे परे यङ् (७९९. ७११) प्रत्यय होकर उसका लोप किया गया हो तथा आदिवर्णको द्वित्व आदि हुए हों, उसकीभी गणना अदादिगणमें करनी ।

(६३८) ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । ३ । ९० ॥

वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे होय तो ऊर्णु धातुको विकल्प करके वृद्धि हो ।

प्र० पु०	ऊर्णौति,[६३८ २७] वह ढकता है,	ऊर्णोति[४०६]	ऊर्णुतः वे दो ढकते हैं,	ऊर्णुवन्ति[२२०] वे ढकते हैं.
म० पु०	ऊर्णौषि तू ढकता है,	ऊर्णोषि	ऊर्णुथः तुम दोनों ढकते हो,	ऊर्णुथ तुम ढकते हो,

उ० पु० ऊर्णौमि, ऊर्णोमि ऊर्णुवः ऊर्णुमः
मैं ढकताहूं, हम दोनों ढकते हैं, हम ढकते हैं।

आत्मनेपद।

प्र० पु० ऊर्णुते वह ढकता है, ऊर्णुवाते[220] वे दोनों ढकते हैं, ऊर्णुवते[560] वे ढकते हैं.
म० पु० ऊर्णुषे तू ढकता है, ऊर्णुवाथे तुम दोनों ढकतेहो, ऊर्णुध्वे तुम ढकते हो.
उ० पु० ऊर्णुवे मैं ढकता हूं, ऊर्णुवहे हम दो ढकते हैं, ऊर्णुमहे हम ढकते हैं.

लिट्।

प्र० पु० ए० ऊर्णु+अ—

(६३९) ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्॥

ऊर्णु धातुको (५४७) से जो आम् प्राप्त होता है सो न हो। (४२७) ऊर्णुके रेफको द्वित्व प्राप्त हुआ परन्तु—

(६४०) न न्द्राः संयोगादयः। ६। १। ३॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति॥

अच्से परे संयोगके आदिमें न् द् अथवा र् आवें तो उन्हें द्वित्व न हो। इस कारण णुकोही द्वित्व हुआ (४९३) से णुनु हुआ—

प्र० पु० ऊर्णुनाव[202] उसने ढका, ऊर्णुनुवतुः[230] उन दोनोंने ढका, ऊर्णुनुवुः उन्होंने ढका

(६४१) विभाषोर्णोः। १। २। ३॥

इडादिप्रत्ययो वा ङित्स्यात्॥

जिस प्रत्ययके पहले इट् होय वह प्रत्यय जब ऊर्णु धातुसे परे आवै तब उसे ङित्त्व (५१८) विकल्प करके हो।

म० पु० ऊर्णुनुविथ,[223] ऊर्णुनविथ[425] तूने ढका, ऊर्णुनुवथुः तुम दो० ऊर्णुनुव तुमने०
उ० पु० ऊर्णुनाव, ऊर्णुनव ऊर्णुनुविव ऊर्णुनुविम
मैंने ढका, हम दोनोंने ढका, हमने ढका.

आत्मनेपद।

प्र०पु० ऊर्णुनुवे[220] ऊर्णुनुवाते ऊर्णुनुविरे
उसनें ढका, उन दोनोंने ढका, उन्होंने ढका.
म० पु० ऊर्णुनुविषे ऊर्णुनुवाथे ऊर्णुनुविढ्वे ऊर्णुनुविध्वे
तूने ढका, तुम दोनोंने ढका, तुमने ढका,
उ० पु० ऊर्णुनुवे मैंने ढका, ऊर्णुनुविवहे हम दोनोंने ढका, ऊर्णुनुविमहे, हमने ढका

लुट् परस्मैपद ।

(वह ढकेगा इत्यादि *)

प्र० पु०	ऊर्णुविता,	ऊर्णविता ।
	ऊर्णुवितारौ,	ऊर्णवितारौ ।
	ऊर्णुवितारः,	ऊर्णवितारः ।
म० पु०	ऊर्णुवितासि,	ऊर्णवितासि ।
	ऊर्णुवितास्थः,	ऊर्णवितास्थः ।
	ऊर्णुवितास्थ	ऊर्णवितास्थ ।
उ० पु०	ऊर्णुवितास्मि,	ऊर्णवितास्मि ।
	ऊर्णुवितास्वः	ऊर्णवितास्वः ।
	ऊर्णुवितास्मः	ऊर्णवितास्मः ।

आत्मनेपद ।

(वह ढकेगा इत्यादि)

प्र० पु०	ऊर्णुविता,	ऊर्णविता ।
	ऊर्णुवितारौ,	ऊर्णवितारौ ।
	ऊर्णुवितारः,	ऊर्णवितारः ।
म० पु०	ऊर्णुवितासे,	ऊर्णवितासे ।
	ऊर्णुवितासाथे,	ऊर्णवितासाथे ।
	ऊर्णुविताध्वे,	ऊर्णविताध्वे ।
उ० पु०	ऊर्णुविताहे,	ऊर्णविताहे
	ऊर्णुवितास्वहे,	ऊर्णवितास्वहे ।
	ऊर्णुवितास्महे,	ऊर्णवितास्महे ।

लृट् परस्मैपद ।

(वह ढकैगा इत्यादि)

प्र० पु०	ऊर्णुविष्यति,	ऊर्णविष्यति ।
	ऊर्णुविष्यतः,	ऊर्णविष्यतः ।
	ऊर्णुविष्यन्ति,	ऊर्णविष्यन्ति ।
म० पु०	ऊर्णुविष्यसि,	ऊर्णविष्यसि ।
	ऊर्णुविष्यथः,	ऊर्णविष्यथः ।

* प्रथमपुरुषके १ वचनका अर्थ लिखदिया शेष इसी प्रकार जानना.

	ऊर्णुविष्यथ	ऊर्णविष्यथ ।
उ० पु०	ऊर्णुविष्यामि	ऊर्णविष्यामि ।
	ऊर्णुविष्यावः	ऊर्णविष्यावः ।
	ऊर्णुविष्यामः	ऊर्णविष्यामः ।

आत्मनेपद ।

(वह ढकैगा इत्यादि)

प्र० पु०	ऊर्णुविष्यते	ऊर्णविष्यते ।
	ऊर्णुविष्येते	ऊर्णविष्येते ।
	ऊर्णुविष्यन्ते	ऊर्णविष्यन्ते
म० पु०	ऊर्णुविष्यसे	ऊर्णविष्यसे ।
	ऊर्णुविष्येथे	ऊर्णविष्येथे ।
	ऊर्णुविष्यध्वे	ऊर्णविष्यध्वे ।
उ० पु०	ऊर्णुविष्ये	ऊर्णविष्ये ।
	ऊर्णुविष्यावहे	ऊर्णविष्यावहे ।
	ऊर्णुविष्यामहे ।	ऊर्णविष्यामहे ।

लोट् ।

प्र० पु० ऊर्णौतु ऊर्णोतु ऊर्णुतात् । ऊर्णुताम् ऊर्णुवन्तु
वह ढकै, वे दोनों ढकैं, वे ढकैं.

म० पु० ऊर्णुहि, ऊर्णुतात् तू ढक, ऊर्णुताम् तुम दोनों ढको. ऊर्णुत तुम ढको.

उ० पु० ऊर्णवानि मैं ढकूं, ऊर्णवाव हम दोनों ढकैं, ऊर्णवाम हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० ऊर्णुताम् वह ढकै, ऊर्णुवाताम् वे दोनों ढकैं, ऊर्णुवताम् वे ढकें.

म० पु० ऊर्णुष्व तू ढकै, ऊर्णुवाथाम् तुम दोनों ढको, ऊर्णुध्वम् तुम ढको,

उ० पु० ऊर्णवै(५९)मैं ढकूं, ऊर्णवावहै हम दोनों ढकैं, ऊर्णवामहै हम ढकें,

लङ् ।

प्र० ए० आ+ऊर्णु+त—

(६४२) गुणोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्ध्यपवादः ॥

हलादि अपृक्त पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते ऊर्णुधातुको गुण हो । यह सूत्र(६३८) का अपवाद है ।

प्र० पु० और्णोत्[५६९,४४८] उसने ढका, और्णुताम् उन दोनोंने ढका, और्णुवन्[२२०] उन्होंने ढका.
म० पु० और्णोः तूने ढका. और्णुतम् तुम दोनोंने ढका, और्णुत तुमने ढका.
उ० पु० और्णुवम् मैंने ढका, और्णुव हम दोनोंने ढका, और्णुम हमने ढका,

आत्मनेपद ।

प्र० पु० और्णुत उसने ढका, और्णुवाताम् उन दोनोंने ढका, और्णुवत उन्होंने ढका.
म० पु० और्णुथाः तूने ढका, और्णुवाथाम् तुम दोनोंने ढका, और्णुध्वम् तुमने ढका,
उ० पु० और्णुवि मैंने ढका, और्णुवहि हम दोनोंने ढका, और्णुमहि हमने ढका.

लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० ऊर्णुयात् वह ढके, ऊर्णुयाताम् वे दोनों ढकैं, ऊर्णुयुः वे ढकैं.
म० पु० ऊर्णुयाः तू ढके, ऊर्णुयातम् तुम दोनों ढको, ऊर्णुयात तुम ढको.
उ० पु० ऊर्णुयाम् मैं ढकूं, ऊर्णुयाव हम दोनों ढकैं, ऊर्णुयाम हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० ऊर्णुवीत[५६९,२२०] वह ढकै, ऊर्णुवीयाताम् वे दोनों ढकैं, ऊर्णुवीरन् वे ढकैं.
म० पुं० ऊर्णुवीथाः तू ढकै, ऊर्णुवीयाथाम् तुम दोनों ढको, ऊर्णुवीध्वम् तुम ढको.
उ० पु० ऊर्णुवीय मैं ढकूं, ऊर्णुवीवहि हम दोनों ढकैं, ऊर्णुवीमहि हम ढकें.

आशीर्लिङ्-परस्मैपद ।

प्र० पु०	ऊर्णूयात्	ऊर्णूयास्ताम्	ऊर्णूयासुः
	ईश्वर करै वह ढकै,	ई० वे दोनों ढकैं,	ई० वे ढकें.

म० पु० ऊर्णूयाः ई० तू ढकै, ऊर्णूयास्तम् ई० तुम दोनों ढको, ऊर्णूयास्त ई० तुम ढको
उ० पु० ऊर्णूयासम् ई० मैं ढकूं, ऊर्णूयास्व ई० हम दोनों ढकैं, ऊर्णूयास्म ई० हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	ऊर्णुविषीष्ट	ऊर्णुविषीयास्ताम्	ऊर्णुविषीरन्
	ऊर्णविषीष्ट	ऊर्णविषीयास्ताम्	ऊर्णविषीरन्
	ई० वह ढकै.	ईश्वर करै वह दोनों ढकैं,	ई० वे ढकें.
म० पु०	ऊर्णुविषीष्ठाः	ऊर्णुविषीयास्थाम्	ऊर्णुविषीध्वम्
	ऊर्णविषीष्ठाः	ऊर्णविषीयास्थाम्	ऊर्णविषीध्वम्
	ई० तू ढके,	ई० तुम दोनों ढको,	ई० तुम ढको.
उ० पु०	ऊर्णुविषीय	ऊर्णुविषीवहि	ऊर्णुविषीमहि
	ऊर्णविषीय	ऊर्णविषीवहि	ऊर्णविषीमहि
	ई० मैं ढकूं,	ई० हम दोनों ढकैं,	ई० हम ढकें.

लुङ् ।

प्र० ए० आ+ऊर्णु+सिच्+त्—

(६४३) ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । २ । ९० ॥

इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वृद्धिः । पक्षे गुणः ॥

इट् जिसकी आदिमें हो ऐसे सिच् प्रत्यय परे हुए सन्ते परस्मैपदमें ऊर्णुधातुको विकल्प करके वृद्धि हो । पक्षमें गुण हो (६४१)

प्र० पु०	और्णावीत्[६४३] / और्णवीत्[६४१] / और्णुवीत्[२२०]	उसने ढका,	और्णाविष्टाम् / और्णविष्टाम् / और्णुविष्टाम्	उन दोने ढका,	और्णाविषुः / और्णविषुः / और्णुविषुः	उन्होंने ढका
म० पु०	और्णावीः / और्णवीः / और्णुवीः	तूने ढका,	और्णाविष्टम् / और्णविष्टम् / और्णुविष्टम्	तुम दोने ढका,	और्णाविष्ट / और्णविष्ट / और्णुविष्ट	तुमने ढका
उ० पु०	और्णाविषम् / और्णविषम् / और्णुविषम्	मैंने ढका,	और्णाविष्व / और्णविष्व / और्णुविष्व	हम दोने ढका,	और्णाविष्म / और्णविष्म / और्णुविष्म	हमने ढका

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	और्णुविष्ट[६४१।२२०] / और्णविष्ट[६४१]	उसने ढका
	और्णुविषाताम् / और्णविषाताम्	उन दोने ढका
	और्णुविषत / और्णविषत	उन्होंने ढका
म० पु०	और्णुविष्ठाः / और्णविष्ठाः	तूने ढका
	और्णुविषाथाम् / और्णविषाथाम्	तुम दोने ढका
	और्णुविढ्वम्-ध्वम् / और्णविढ्वम्-ध्वम्	तुमने ढका

उ० पु०	और्णुविषि	मैंने ढका
	और्णविषि	
	और्णुविष्वहि	हम दोने ढका
	और्णविष्वहि	
	और्णुविष्महि	हमने ढका
	और्णविष्महि	

लङ् परस्मैपद

प्र० पु०	और्णुविष्यत्	जो वह ढके
	और्णविष्यत्	
	और्णुविष्यताम्	जो वे दो ढकें
	और्णविष्यताम्	
	और्णुविष्यन्	जो वे ढकें
	और्णविष्यन्	
म० पु०	और्णुविष्यः	जो तू ढके
	और्णविष्यः	
	और्णुविष्यतम्	जो तुम दो ढको
	और्णविष्यतम्	
	और्णविष्यत	जो तुम ढको
	और्णविष्यत	
उ० पु०	और्णुविष्यम्	जो मैं ढकूं
	और्णविष्यम्	जो हम दो ढकें
	और्णुविष्याव	
	और्णविष्याव	
	और्णुविष्याम	जो हम ढकें
	और्णविष्याम	

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	और्णुविष्यत	जो वह ढकै.
	और्णविष्यत	
	और्णुविष्येताम्	जो वे दो ढकैं.
	और्णविष्येताम्	
	और्णुविष्यन्त	जो वे ढकें.
	और्णविष्यन्त	
म० पु०	और्णुविष्यथाः	जो तू ढकै.
	और्णविष्यथाः	
	और्णुविष्येथाम्	जो तुम दो ढको.
	और्णविष्येथाम्	
	और्णुविष्यध्वम्	जो तुम ढको.
	और्णविष्यध्वम्	
उ० पु०	और्णुविष्ये	जो मैं ढकूं.
	और्णविष्ये	
	और्णुविष्यावहि	जो हम दो ढकै.
	और्णविष्यावहि	
	और्णुविष्यामहि	जो हम ढकें.
	और्णविष्यामहि	

॥ इत्यदादयः समाप्ताः ॥

अथ जुहोत्यादयः ।

हु (दानादनयोः) होम करना वा खाना । लट्--प्र० ए० हु+अ+ (४२०) तिप्–

(६४४) जुहोत्यादिभ्यः श्लुः । २ । ४ । ७६ ॥

शपः श्लुः स्यात् ॥

जुहोत्यादि अर्थात् जिसके आदिमें हु है उस गणमें धातुसे परे शप्को श्लु (प्रत्ययका लोप) हो । हु+ति—

(६४५) श्लौ । ६ । १ । १० ॥

धातोर्द्वे स्तः ॥

श्लुविषयक धातुको द्वित्व हो ।

हु+हु=जुँ+हु+ति=जु+हो+ति-

प्र० पु० **जुहोति** वह हवन करता है. **जुहुतः** वे दो हवन करते हैं । जुहु+झि-

(६४६) अदभ्यस्तात् । ७ । १ । ४ ॥

झस्य अत् स्यात । अन्तापवादः ॥

अभ्यस्तसंज्ञक धातुसे परे झि वा झके अवयव झके स्थानमें अत् हो; (४२२) से जो अन्त आदेश होता है उसका अपवाद अभ्यस्तसंज्ञक धातुसे परे झ्को अत् हो । जुहु+अति-(२२०) उवङ् आदेश प्राप्त हुआ, परन्तु (५३७) से बाधकर हुके अन्तर्गत उके स्थानमें यण् आदेश व् हुआ **जुह्वति** वे हवन करते हैं ।

म० पु० **जुहोषि** तू हवन करता है,	**जुहुथः** तुम दो हवन करते हो,	**जुहुथ** तुम हवन करते हो.
उ० पु० **जुहोमि** मैं हवन करताहूँ,	**जुहुवः** हम दो हवन करते हैं,	**जुहुमः** हम हवन करते हैं.

लिट् ।

(६४७) भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च । ३ । १ । ३९ ॥

एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च ।

भी (डरना), ह्री (लज्जित होना), भृ (पालना) और हु (हवन करना) इन धातुओंसे परे लिट् आवै तो विकल्प करके आम् हो और श्लु (६४५) के होनेसे जैसे कार्य होते हैं वे द्वित्वआदि आम् परे हुएभी हों ।

प्र० पु० **जुहवाञ्चकार, जुहवाम्बभूव, जुहवामास, जुहाव** उसने यज्ञ किया,
जुहवाञ्चक्रतुः जुहुवतुः, उन दोनोंने हवन किया, **जुहवाञ्चक्रुः, जुहुवुः** उन्होंने हवन किया.

लुट् ।

प्र० पु० **होता** वह हवन करेगा, **होतारौ** वे दो हवन करैंगे, **होतारः** वे हवन करैंगे.

लृट् ।

प्र० पु० **होष्यति** वह हवन करैगा, **होष्यतः** वे दो हवन करैंगे, **होष्यन्ति** वे हवन करैंगे.

लोट्।

प्र०	पु०	जुहोतु, जुहुतात्[४५५]	जुहुताम्	जुह्वतु[५३७]
		वह हवन करै,	वे दो हवन करैं,	वे हवन करें.
म०	पु०	जुहुधि[५५४], जुहुतात्	जुहुतम्	जुहुत
		तू हवन कर,	तुम दोनों हवन करो.	तुम हवन करो.
उ०	पु०	जुहवानि[४५१।४५०]	जुहवाव	जुहवाम
		मैं हवन करूं,	हम दो हवन करैं.	हम हवन करैं.

लङ्।

प्र०	पु०	अजुहोत्[४५५]:	अजुहुताम्	अजुहु+जुस्–
		उसने हवन किया,	उन दोने हवन किया.	

(६४८) जुसि च। ७। ३। ८३॥

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि॥

अजादि जुस् परे आवे तो इगन्त अङ्गको गुण हो। **अजुहवुः** उन्होंने हवन किया.

विधिलिङ्।

प्र०	पु०	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
		वह हवन करै,	वे दो हवन करैं,	वे हवन करें.

आशीर्लिङ्।

प्र०	पु०	हूयात्[४७४।४५७।५१२]	हूयास्ताम्	हूयासुः
		भगवान् करै वह हवन करै,	ई० वे दो हवन करैं,	ई० वे हवन करें.

लुङ्।

प्र०	पु०	अहौषीत्[४७३।४८०।५२०।१६९]	अहौष्टाम्	अहौषुः
		उसने हवन किया,	उन दोनोंने हवन किया,	उन्होंने हवन किया.

लृङ्।

प्र०	पु०	अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्
		जो वह हवन करै,	जो वे दो हवन करैं,	जो वे हवन करें.

भी (ञिभी भये) डरना।

लट्।

प्र० पु० **बिभेति**[४३०] वह डरता[४३१।६४५] है, बिभी+तः–

(६४९) भियोऽन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ११५ ॥

इकारो वा स्याद्धलादौ किति ङिति च सार्वधातुके ॥

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते भी धातुको विकल्प करके इकार हो । (९३६) से तस् सार्वधातुक प्रत्यय अपित् होनेसे ङित् है इस कारण भी अन्तर्गत ईके स्थानमें इ आदेश हुआ—

बिभितः, बिभीतः वे दो डरते हैं. **बिभ्यति**[६४६।२१] वे डरते हैं।

लिट्-प्र० ए० **बिभयाञ्चकार**[६४७], **बिभाय**[२०३।२६] वह डरा.

लुट्-प्र० ए० **भेता** वह डरेगा.

लृट्-प्र० ए० **भेष्यति** वह डरैगा.

लोट्-प्र० ए० **बिभेतु** वह डरे, **बिभितात्**[४४५।६४९] **बिभीतात्** ईश्वर करे वह डरे. **बिभिहि, बिभीहि । बिभयानि ।**

लङ्-प्र० ए० **अबिभेत्** वह डरा, **अबिभेः** तू डरा; **अबिभयम्** मैं डरा.

१ लिङ्-प्र०ए०**बिभियात्**[६४९], **बिभीयात्**, वह डरे, **बिभियाः, बिभीयाः** तू डरे, **बिभियाम्, बिभीयाम्** मैं डरूं.

२ लिङ्-प्र०ए०**भीयात्**[४६६।४६७] ईश्वर करै वह डरै.

लुङ्-प्र० पु० **अभैषीत्**[४७३।४८०।२२०] वह डरा, **अभैष्टाम्** वे दो डरे, **अभैषीः** तू डरा, **अभैषम्** मैं डरा.

लृङ्-प्र० ए० **अभेष्यत्** जो वह डरै.

ह्री (लज्जायाम्) लजाना.

लट्-प्र० पु० **जिह्रेति**[६४५।४२२।४८१।४२१] वह लजाता है, **जिह्रीतः** वे दो लजाते हैं, **जिह्रियति**[४४६।२२०] वे लजाते हैं.

लिट्-प्र० ए० **जिह्रयाञ्चकार**[६४७], **जिह्रयाम्बभूव, जिह्रयामास जिह्राय** वह लजाया.

लुट्-प्र० ए० **ह्रेता** वह लजायगा.

लृट्-प्र० ए० **ह्रेष्यति** वह लजायगा.

लोट्-प्र ०ए० **जिह्रेतु, जिह्रीतात्** वह लजावै.

लङ्-प्र० ए० **अजिह्रेत्** वह लजाया.

लिङ्-प्र० ए० **जिह्रीयात्** वह लजावै.

२लिङ्-प्र०ए०**ह्रीयात्**[४६६।४६७] ईश्वर करै वह लजावै.

लुङ्-प्र० ए० **अह्रैषीत्**[४७३।४८०।२२०] वह लजाया.

लृङ्-प्र० ए० **अह्रेष्यत** जो वह लजावै.

पॄ (पालनपूरणयोः) पालना, पूरा करना । पॄ+पॄ (६४९)+ति–

(६९०) अर्तिपिपर्त्योश्च । ७ । ४ । ७७ ॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ ॥

श्लु (६४४) विषयक ऋ तथा पॄ धातुके अभ्यासके अच्के स्थानमें इ हो । अभ्यास (४२८) की पॄ अन्तर्गत ऋके स्थानमें इ हुई । पिपॄ=पिपर् (४२१)+ति= **पिपर्ति** वह पूरा करता हैं । पिपॄ+तः (द्विवचन)--

(६९१) उदोष्ठ्यपूर्वस्य । ७ । १ । १०२ ॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्यांगस्य उः स्यात् ॥

जिस अंगके अन्तमें ॠ होय उस ॠके पूर्व अंगका अवयव ओष्ठस्थानीय वर्ण होय तो उस अंगको उ हो । पिपुँर्+तः--

(६९२) हलि च । ८ । २ । ७७ ॥

रफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि ॥

हल्परे हुए सन्ते रेफान्त अथवा वकारान्त धातुकी उपधाके इक्को दीर्घ हो ।

पिपूर्तः (६६२) वे दो पूरा करते हैं, **पिपुरति** [६४६] व पूरा करते हैं.

लिट्--प्र० ए० पपार [४२७।५०२।२०२।३७] उसने पूरा किया.

लिट्--प्र० द्वि० पपॄ+अतुः--

(६९३) शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा । ७ । ४ । १२ ॥

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात् ॥

शॄ (हिंसा करना), दॄ (फाडना), पॄ (पूर्ण करना), इन धातुओंसे परे कित् लिट् प्रत्यय आवे तो इनको ह्रस्व हो । पपृ+अतुः=(२१) से ऋके स्थानमें र् हुआ=पप्र्+अतुः=**पप्रतुः** उन दोनोंने पूरा किया ।

(६९४) ऋच्छत्यॄताम् । ७ । ४ । ११ ॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ॠदन्तानां च गुणो लिटि ॥

लिट् परे हुए सन्ते तुदादिगणी (१९४) ऋच्छ धातु तथा ऋ धातु और ॠदन्तधातुको गुण हो । पॄ ॠदन्त धातु है उससे परे लिट्को अतुः प्रत्यय होकर ॠको अर् गुण हुआ. पप्+अर्+अतुः=**पपरतुः** उन दोंने पूरा किया । पपॄ+उः+पप्+अर्+उः=**पपरुः** अथवा **पप्रुः** (६९३) उन्होंने पूराकिया ।

(६९५) । वॄतो वा । ७ । २ । ३८ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि ॥

वृङ् (रचना करनी), वृञ् (स्वीकार करना), तथा ॠदन्तधातुओंसे परे इट् आवै तो

इट्को विकल्प करके दीर्घ हो परन्तु लिट्में न हो। **लुट्--पॄ+इ (४३४)+त्+आ (डा)= परिता** अथवा--**परीता** वह पूरा करैगा.

लृट्--प्र० ए० परिष्यति, परीष्यति वह पूरा करैगा.

लोट्--पिपर्तु (६९०) **पिपूर्तात्**[६५०।४४४] वह पूरा करै, **पिपूर्हि । पिपराणि.**

लङ्--प्र० ए० अपिपः[४९।४२९।१९९।१११] उसने पूरा किया.

लङ्--प्र० द्वि० अपिपूर्त्ताम्[६५१।६५२] उन दोने पूरा किया.

लङ्--प्र० ब० अपिपरुः[४८२][६४८] उन्होंने पूरा किया.

लिङ्--प्र० ए० पिपूर्यात्[४६६] वह पूरा करै.

२ लिङ्--प्र० ए० पूर्यात्[४८६] ईश्वर करै वह पूरा करै.

[४३४।४८०।४८१।२२०]

लुङ्--प्र० ए० अपारीत् उसने पूरा किया. **लुङ्--प्र० द्वि०** अपार्+इ+स्+ताम्-- **अपारिष्टाम्** उन दोंने पूरा किया.

(६९९) से रिको विकल्प करके दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु--

(६९६) सिचि च परस्मैपदेषु । ७ । २ । ४० ॥

अत्र वॄत इटो न दीर्घः ॥

वृङ् वृञ् और ऋकारान्त धातुसे परे परस्मैपद सिच् (४७२) आवे तो इट्को दीर्घ न हो। तब दीर्घ न होकर " अपारिष्टाम् " रूप हुआ।

लृङ्--प्र० ए० अपरिष्यत, अपरीष्यत्[६६५] जो वह पूरा करे.

हा (ओहाक् त्यागे) छोडना।

लट्--प्र० ए० जहाति[६४५] वह छोडता है. **प्र० द्वि०** जहा+तः--

(६९७) जहातेश्च । ६ । ४ । ११६ ॥

इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके ॥

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होय तो हा धातुको इ हो । **जहितः** (९३६) वे दो त्याग करते हैं। अथवा--

(६९८) ई हल्यघोः । ६ । ४ । ११३ ॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति हलि न तु घोः ॥

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते अभ्यस्तसंज्ञक घु (६६२) से भिन्न धातुके आकारको तथा श्ना प्रत्ययके आकारके स्थानमें ईत् आदेश हो। **जहीतः** वे दो त्याग करते हैं.

लट्-प्र० ब० जहा+अति[६४६]—

(६५९) श्नाभ्यस्तयोरातः । ६ । ४ । ११२ ॥

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके ॥

कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हो तो श्ना प्रत्यय (७३१) के तथा अभ्यस्तसंज्ञक धातुके आकारका लोप हो ।

जह्+अति=जहति वे त्याग करते हैं.

लिट्-प्र० ए० जहौ[५२४] उसने त्याग किया.
लुट्-प्र० ए० हाता वह त्याग करैगा.
लृट्-प्र० ए० हास्यति वह त्याग करैगा.
लोट्-प्र० ए० जहातु[४४४] वह त्याग करै.
" प्र० ए० जहितात्[४५०।६५७], जहीतात् ईश्वर करै वह त्याग करै.
" म० ए० जहा+हि[४४८]—

(६६०) आ च हौ । ६ । ४ । ११७ ॥

जहातेहौं परे आ स्याच्चादिदीतौ ॥

हि परे हुए सन्ते हा धातुके आकारको आकार अथवा इकार (६९७) वा ईकार (६९८ हो । जहाहि, जहिहि, जहीहि तू त्याग कर.
लङ्-प्र० ए० अजहात् उसने त्याग किया.
लङ्-प्र० ब० अजहुः[४८२।६५९] उन्होंने त्याग किया.
१ लिङ्-प्र०ए० जहा+या+त्—

(६६१) लोपो यि । ६ । ४ । ११८ ॥

जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके ॥

यकारादि सार्वधातुक प्रत्यय परे होय तो हा धातुके आकारका लोप हो ।

ज+ह्+या+त्=जह्यात् वह त्याग करै.
२ लिङ्-प्र० ए० हेयात्[४६१।५३६] ईश्वर करै वह त्याग करै.
लुङ्-प्र० ए० अहासीत् (५३१ । ४८० । ४८१) उसने त्याग किया.
लृङ्-प्र० ए० अहास्यत् जो वह त्याग करै.

आत्मनेपद ।

माङ् (माने शब्दे च) नापना वा शब्द करना ।

लट्-प्र० ए० मा+मा+ते—

(६६२) भृञामित् । ७ । ४ । ७६ ॥

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ ।

भृ (पालना), मा (नापना), हा (ओहाङ्–जाना) इन तीन धातुओंके श्लु (६४४) विषय होनेसे अभ्यासके अच्के स्थानमें इकार हो ।

मि+मी+ते=**मिमीते**[६५८] वह नापता है, **मिमाते**[६५९] वे दो नापते हैं.
मिमते[६४३।६६९] वे नापतेहैं (मिमीषे । मिमे)

लिट्–प्र०	ए०	ममे[५४९।४२३।४३०।५२]	उसने नापा.
लुट्–प्र०	ए०	माता	वह नापैगा.
लृट्–प्र०	ए०	मास्यते	वह नापैगा.
लोट्–प्र०	ए०	मिमीताम्[५५३।६६८]	वह नापै.
लङ्–प्र०	ए०	अमिमीत	उसने नापा.
लिङ्–प्र०	ए०	मिमीत[५५६।६५९]	वह नापै.
लिङ्–प्र०	ए०	मासीष्ट[५५९]	ईश्वर करै वह नापै.
लुङ्–प्र०	ए०	अमास्त[४०३]	उसने नापा.
लृङ्–प्र०	ए०	अमास्यत	जो वह नापै.

हा (ओहाङ् गतौ) जाना ।

लट्–प्र०	ए०	जिहीते[६५८] वह जाताहै	जिहाते[६५९] वे दो जातेहैं	जिहते[६४५।६५२] वे जातेहैं.

लिट्–प्र०	ए०	जहे (५४९।४२७।५२५)	वह गया.
लुट्–प्र०	ए०	हाता	वह जायगा.
लृट्–प्र०	ए०	हास्यते	वह जायगा.
लोट्–प्र०	ए०	जिहीताम्	वह जाय.
लङ्–प्र०	ए०	अजिहीत	वह गया.
लिङ्–प्र०	ए०	जिहीत[५५६।६५९]	वह जाय.
लिङ्–प्र०	ए०	हासीष्ट[५५]	ईश्वर करै वह जाय.
लुङ्–प्र०	ए०	अहास्त[४०३]	वह गया.
लृङ्–प्र०	ए०	अहास्यत	जो वह जाय.

उभयपदी ।

भृ (डुभृञ् धारणपोषणयोः धारण करना वा पोसना.

		परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लट्–प्र०	ए०	बिभर्ति	बिभृते	वह पोसता है.
लट्–प्र०	द्वि०	बिभृतः	बिभ्राते	वे दो पोसते हैं.
लट्–प्र०	ब०	बिभ्रति[६४६-२१]	बिभ्रते	वे पोसते हैं.

पर० आ०

लिट् { प्र० ए० बिभराञ्चकार[६४७] बभार[५०५।२०२] बिभराञ्चक्रे बभ्रे[५४९] उसने पोसा.
म० ए० बभर्थ (क्रादिमें पाठसे इट् न हुआ) तूने पोसा.
उ० द्वि० बभृव[५५५] हम दोने पोसा.

		परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लुट्–प्र०	ए०	भर्ता[५११]	भर्ता	वह पोसैगा.
लृट्–प्र०	ए०	भरिष्यति[५३३]	भरिष्यते	वह पोसैगा.
लोट्–प्र०	ए०	बिभर्तु	बिभृताम्	वह पोसै.
लोट्–उ०	ए०	बिभराणि	बिभरै	मैं पोसूँ.
लङ्–प्र०	ए०	अबिभः[४२१।३९९।१११]	अबिभृत	उसने पोसा.
लङ्–प्र०	द्वि०	अबिभृताम्	अबिभ्राताम्	उन दोने पोसा.
लङ्–प्र०	ब०	अबिभरुः[४८२।६४८]	अबिभ्रत	उन्होंने पोसा.
लिङ्–प्र०	ए०	बिभृयात्	बिभ्रीत[५५६]	वह पोसै.
२ लिङ्–प्र०	ए०	भ्रियात्[४८६।५८१]	भृषीष्ट[५५९।५८२।४५८]	ईश्वर करै वह पोसै.
लुङ्–प्र०	ए०	अभार्षीत्[५२०]	अभृत[५८२।४६८।५८३]	उसने पोसा.
लृङ्–प्र०	ए०	अभरिष्यत्	अभरिष्यत	जो वह पोसै.

दा (डुदाञ् दाने) देना, दान करना।

लट्–प०प्र०पु०ददाति } वह देताहै, दत्तः[६५२।९०] ददाते } वे दो देतेहैं, ददति(६४६।६९९ ददत (६४६) } वे देतेहैं.
लट्–आत्मने०दत्ते }

		परस्मैपद।	आत्मनेपद।	
लिट्–प्र०	ए०	ददौ[५२४]	ददे[५४९।५२५]	उसने दिया.
लुट्–प्र०	ए०	दाता	दाता	वह देगा.
लृट्–प्र०	ए०	दास्यति	दास्यते	वह देगा.
लोट्–प्र०	ए०	ददातु, दत्तात्–द्	दत्ताम्[५५३।६५९]	वह दे.
,, म०	ए०	ददा+हि–		

(६६३) दाधा घ्वदाप् । १ । १ । २० ॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाब्दैपौ विना ॥

दा (दाप्) (काटना), दै (दैप्) (निर्मल करना) इन दो धातुओंको छोडकर शेष दारूप । दा (देना) दो (खण्डन करना), दे प्रत्यर्पण करना, रक्षा करना) तथा धारूप धा (धारण करना, रक्षा करना) तथा धा (धारण करना), धे (पीना) ये धातु घुसंज्ञक हों । घुसंज्ञक धातुओंसे परे जब हि हो तो अभ्यासका लोप और (६१९) से एकार आदेश होता है तब अभ्यासका लोप होकर दा अन्तर्गत आके स्थानमें ए हुआ.

		परस्मैपद ।	आत्मनेपद ।	
लोट्-म०	ए०	देहि	दत्स्व	तू दे.
,, म०	द्वि०	दत्तम्	ददाथाम्	तुम दोनों दो.
लङ्-प्र०	ए०	अददात्	अदत्त	उसने दिया.
१ लिङ्-प्र०	ए०	दद्यात्	ददीत	वह दे.
२ लिङ्-प्र०	ए०	देयात्	दासीष्ट	ईश्वर करे वह दे.

लुङ्-प्र० ए० **अदात्** उसने दिया. **आत्मनेपद**-अदा+सु+त-

(६६४) स्थाघ्वोरिच्च । १ । २ । १७ ॥

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे ॥

आत्मनेपदमें स्था धातु तथा घुसंज्ञक धातुओंके अन्त्यवर्णके स्थानमें इकार हो और सिच्की कित् संज्ञा हो । अदा=अदि (९८३) से स्का लोप हुआ, **अदित** उसने दिया.

लुङ्-प्र०	द्वि०	अदाताम्	अदिषाताम्	उन दोने दिया.
लुङ्-प्र०	ब०	अदुः	अदिषत	उन्होंने दिया.
लृङ्-प्र०	ए०	अदास्यत्	अदास्यत	जो वह दे.

धा (डुदाञ् धारणपोषणयोः) धारण करना वा पोषण करना.

लट्-प्र० पु० **दधाति** वह धारण करता है । दधा+तस्-(६९९) से आका लोप हुआ । दध्+तस्-

(६६५) दधस्तथोश्च । ८ । २ । ३८ ॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथोः परयोः स्ध्वोश्च परतः॥

जिसे द्वित्व किया गया हो ऐसे झषन्त धातुके बश् प्रत्याहारको भष् हो जो त्, थ्, स् अथवा ध्व परे होय तो । दधमें द् बश् है उसके स्थानमें भष्का ध् हुआ=धध्+तः

---

१ 'पूर्वत्रासिद्धीये न स्थानिवत्' इस वचनसे (६५९) से हुए आकारके लोपको स्थानिवद्भाव न हुआ तो झषन्त मानके भष् हुआ ।

(९०) से धके स्थानमें त् हुआ, **धत्तः** वे दो धारण करते हैं । **दधति** (६४६) वे धारण करते हैं ।

म० पु० दधासि	**धत्थः**[६६५]	**धत्थ**
तू धारण करता है,	तुम दो धारण करते हो,	तुम धारण करते हो.

आत्मनेपद ।

” **प्र० पु० धत्ते**[५४४।६६५]	**दधाते**	**दधते**[६०६]
वह धारण करता है,	वे दो धारण करते हैं,	वे धारण करते हैं.
” **म० पु० धत्से**	**दधाथे**	**धद्ध्वे**
तू धारण करता है,	तुम दो धारण करते हो,	तुम धारण करते हो.

लोट्-प्र० पु० ए० दधा+हि रूप है इसमें (६६३) से धा धातु घुसंज्ञक है. उसमें धा अन्तर्गत आ अच्के स्थानमें[६६५] एकार हुआ और अभ्यासका लोप होकर **धेहि** (तू धारण कर) रूप हुआ ।

परस्मैपद ।	आत्मनेपद ।	
लङ्-प्र० ए० अदधात्	**अधत्त**[६५१।६६५]	उसने धारण किया,
१ लिङ्-प्र० ए० दध्यात्[४६१।६५९]	**दधीत**[५५६।६५९]	वह धारण करे,
२ लिङ्-प्र० ए० धेयात्[५२६]	**धासीष्ट**[५५६।६५९]	ईश्वर करे वह धारण करे.
लुङ्-प्र० ए० अधात्[४७४]	**अधित**[६६४।५८३]	उसने धारण किया.
लृङ्-प्र० ए० अधास्यत्	**अधास्यत**	जो वह धारण करे.

निज् (णिजिर् शौचपोषणयोः) शुद्ध करना वा पोषण करना ।

(६६६) इर इत्संज्ञा वाच्या ॥

इर्की इत् (९) संज्ञा हो । णिजिर्में इर्की इत् संज्ञा होकर उसका लोप हुआ णिज् शेष रहा (४९३) से णिके स्थानमें नि होकर निज् हुआ—

लट्-प्र० ए० निनिज्+ति—

(६६७) निजां त्रयाणां गुणः श्लौ । ७ । ४ । ७५ ॥

निज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ ॥

णिज् (शुद्ध करना) विज् (अलग करना), विष् (व्याप्त होना) इन तीनों धातुओंके श्लुविषयमें अभ्यासको गुण हो ।

प्र० नेनेक्ति	**नेनिक्तः**[५३६।४६८]	**नेनिजति ।**	**नेनेक्षि ।**	**नेनेज्मि ।**
वह शुद्ध करता है,	वे दो शु०	वे शुद्ध करते हैं,	तू० शु०	मैं शु०

" आत्म० नेनिक्ते[५३६।४९८] वह शुद्ध करता है. नेनिजाते । नेनिक्षे ।

लिट्-प्र० ए० निनेज[४२७।४८६] } उसने शुद्ध किया.

लिट्-आत्म० निनिजे[५४२।]

लुट्-प्र० ए० नेक्ता वह शुद्ध करैगा.

लृट्-प्र० ए० नेक्ष्यति[१९९-३३३] } वह शुद्ध करेगा.

लृट्-आत्म० नेक्ष्यते

लोट्-प्र० ए० नेनेक्तु, नेनिक्तात् । वह शुद्ध करै । नेनिक्ताम् ।

लोट्-म० ए० नेनिग्धि[५५८।३३३] नेनिक्ष्व । तू शुद्ध कर ।

लोट्-उ० ए० नेनिज्+आनि-

(६६८) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके । ७ । ३ । ८७ ॥

लघूपधगुणो न स्यात् ॥

अजादि पित् सार्वधातुक परे हुए सन्ते अभ्यस्तसंज्ञक धातुकी जो लघु उपधा (१९९) तिसको गुण न हो । यह सूत्र (४८१) का बाधक है इस कारण नेनिजानि मैं शुद्ध करूं ।

लोट्-आत्मनेपद : प्र० ए०	नेनिक्ताम्[५५३]	वह शुद्ध करै.
लङ्-प्र० ए०: अनेनेक्[१९९।३३३।१६५]-ग् आ०	अनेनिक्त	उसने शुद्ध किया.
लङ्-प्र० द्वि० अनेनिक्ताम्	अनेनिजाताम्	उन दोने शुद्ध किया.
लङ्-प्र० ब० अनेनिजुः[४६३]	अनेनिजत	उन्होंने शुद्ध किया.
लङ्-उ० ए० अनेनिजम्	अनेनिजि	मैंने शुद्ध किया.
१ लिङ्-प्र० ए० नेनिज्यात्	नेनिजीत[५५६]	वह शुद्ध करे.
२ लिङ्-प्र० ए० निज्यात[४६६]	निक्षीष्ट[५५७।६२७।४६८]	ईश्वर करै वह शुद्ध करै.

लुङ्- प्र० अनिज्+च्लि[४७२]+त्-

(६६९) इरितो वा । ३ । १ । ५७ ॥

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु ।

जिस धातुका इर् (६६६) इत्संज्ञक होय तो परस्मैपदके विषे च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् हो । अङ्में ङ् इत्संज्ञक हैं उसका लोप होकर अ शेष रहा ।

" प्र० ए० अनिजत, अनैक्षीत[४७३।५००।५३३] आ० अनिक्त[५३४] उसने शुद्ध किया.

लङ्-प्र० ए० अनेक्ष्यत् आ० अनेक्ष्यत जो वह शुद्ध करै.

॥ इति जुहोत्यादयः समाप्ताः ॥ ३ ॥

अथ दिवादयः ।

दिवु, क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

दिव् (दिवु) क्रीडाकरना, जीतनेकी इच्छा करना, व्यवहार करना, चमकना, स्तुति करना आनन्द करना, उन्मत्त होना, सोना, इच्छा करना और जाना इन अर्थोंमें है । पर० स० सेट् अकर्मक भी है ।

(६७०) दिवादिभ्यः श्यन् । ३ । १ । ६९ ॥

शपोऽपवादः ॥

दिवादि धातुओंसे परे श्यन् हो । यह सूत्र शप् (४२०) का अपवाद है । (१९९) से श्यन्के शकारका लोप (९,७) से न्का लोप होकर यह शेष रहा—

लट्—प्र० ए० दिव्+य+ति (६९२) के अनुसार उपधाको दीर्घ होकर—

दीव्यति[६५२] वह क्रीडा करता है	लङ्—प्र०ए० **अदीव्यत्** उसने क्रीडा की.
लिट्—प्र०ए० **दिदेव**[४८६] उसने क्रीडा की	१ लिङ्—प्र०ए० [४६६]**दीव्येत्**[४६४] वह क्रीडा करै
लुट्—प्र०ए० **देविता** वह क्रीडा करैगा	२ लिङ्—प्र०ए० **दीव्यात्**[४३४] ई० वह क्रीडा करै
लृट्—प्र०ए० **देविष्यति** वह क्रीडा करैगा	लुङ्—प्र०ए० **अदेवीत्**[४८१] उसने क्रीडा की
लोट्—प्र०ए० [४४४]**दीव्यतु**[६५२] वह क्रीडा करै	लृङ्—प्र०ए० **अदेविष्यत्** जो वह क्रीडा करै

इसी प्रकार **सिव** (षिवु तन्तुसन्ताने) (बुनना) इस धातुके रूप जानो ।

नृत् (नृती गात्रविक्षेपे) नाचना । परस्मैपदी । अकर्मक । सेट्.

लट्—प्र० ए० **नृत्यति** वह नाचता है	लुट्—प्र० ए० **नर्तिता** वह नाचैगा.
लिट्—प्र०ए० [५०९]**ननर्त**[४८] वह नाचा	लृट्—प्र० ए० नृत्+स्य+ति--

(६७१) सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः । ७ । २ । ५७ ॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा ॥

कृत् (काटना), चृत् (मारना, गठियाना), छृद् (उच्छृदिर्), (चमकना.क्रीडा करना) तृद् (उतृदिर्) (मारना वा अनादर करना), नृत् (नाचना) इन धातुओंसे परे सिच्भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो विकल्प करके इट्का आगम (४३४) हो ।

प्र०ए० **नर्तिष्यति नर्त्स्यति** वह नाचेगा	२ लिङ्—प्र०ए० **नृत्यात्** ईश्वरकरै वह नाचै
लोट्—प्र० ए० **नृत्यतु** वह नाचै	लुङ्—प्र०ए० [४८०]**अनर्तीत्**[४८१] वह नाचा.
लङ्—प्र० ए० **अनृत्यत्** वह नाचा	लृङ्—प्र०ए० **अनर्तिष्यत्**[६७१], **अनर्त्स्यत** जो वह नाचै.
१ लिङ्—प्र० ए० **नृत्येत्** वह नाचै	

त्रस् (त्रसी उद्वेगे) घबराना । पर० अक० सेट्.

(९२१) से श्यन् (६७०) प्रत्यय विकल्प करके हो । इससे—

लट्-प्र० ए० त्रस्यति[५२२] (पक्षे) त्रसति[४२०] वह घबराता है.

लिट्-प्र० ए० तत्रास (४२९,४९०) वह घबराया.

लिट्-प्र० द्वि० तत्रस्+अतुस्=तत्रसतुः वे दो घबराये.

अथवा—

(६७२) वा जॄभ्रमुत्रसाम्[६] । ६ । ४ । १२४ ॥

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्त्वाभ्यासलोपौ वा ॥

जॄ (जीर्ण, पुराना होना), भ्रम् (घूमना), त्रस् (उद्वेग पाना) इन धातुओंसे परे कित् (४८७) लिट् अथवा इट् (४३४) युक्त थल् आवै तो धातुके अकारके स्थानमें विकल्प करके एकार हो और अभ्यासका लोप हो । **त्रेसतुः** वे दो घबराये । **लिट्-म० ए० त्रेसिथ, तत्रसिथ** तू घबराया । **लुट्-प्र० ए० त्रसिता** वह घबरावैगा । **लृट्--त्रसिष्यति । लोट्-त्रस्यतु, त्रसतु । लङ्- अत्रस्यत्, अत्रसत् । वि० लि०त्रस्येत्,त्रसेत । आ० लि० त्रस्यात् ।**

लुङ्-आत्रासीत्, अत्रसीत् । लृङ्-अत्रसिष्यत् ।

शो (तनू करणे) पतला करना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० शो+यति—

(६७३) ओतः श्यनि । ७ । ३ । ७१ ॥

लोपः स्यात् श्यनि ॥

श्यन् (६७०) परे होय तो ओकारका लोप हो ।

श्यति वह पतला करता है । **श्यतः** वे दो पतला करते हैं । **श्यन्ति** वे पतला करते हैं.

लिट्-प्र० शशौ[५२५।४२७।४३०।५२४।४१] **शशतुः**[५२९।५२५] **शशुः**[५२९।५२५].

उसने पतला किया, उन दोनोंने पतला किया, उन्होनें पतला किया.

लुट्-प्र० ए० शाता[५२९] वह पतला करेगा | **लुङ् प्र० ए० अ+शा**[५२९]**+स्**[४७३]**+त्--**

लृट्-प्र० ए० शास्यति वह पतला करेगा

(६७४) विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः । २ । ४ । ७८ ॥

एभ्यस्सिचो लुग्वा स्यात् परस्मैपदेषु ॥

घ्रा (सूंघना), धेट् (पीना), शो (पतला करना), छो (काटना) और षो (नाश-करना) इन परस्मैपदी धातुओंसे परे सिच्का विकल्प करके लोप हो । अर्थात् जब परस्मैपद परे हो तो ।

प्र० पु० अशात् उसने पतला किया । **अशाताम्** उन दोनोंने पतला किया ।

अशुः[५२९।५२७।५२८] उन्होंने पतला किया. जब सिच्का लोप न किया तब—

(६७५) यमरमनमातां सक् च । ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् एभ्यः सिच इट् परस्मैपदेषु ॥

यम् (निवृत्त होना) रम् (क्रीडाकरना), नम् (नमस्कार करना), इन धातुओंको तथा आकारान्त धातुओंको सक्का आगम हो और उनसे परे सिच्को इट्का आगम हो परस्मैपद परे रहते । यह सूत्र (९३१) अंकमें आचुकाथा कार्यवश लिखा है.

अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः
उसने पतला किया,	उन दोने पतला किया,	उन्होंने पतला किया.

लङ्–प्र० ए० अशास्यत् जो वह पतला करै ।

छो (छेदने) काटना, छेदना । पर० स० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० छ्यति(६७३)वह छेदन करताहै।**लुङ्प्र०ए०अच्छात,अच्छासीत्।**

षो (अन्तकर्मणि) नाश करना । पर० अक० अनिट् ।

२८० ५२९६४२७६४३ ५२४६४१

लट्–प्र० ए० स्यति।लिट्–प्र०ए०ससौ । लङ्प्र० ए० असात्, असासीत्.

वह नाश करता है उसने नाश किया.

दो (अवखण्डनें) काटना । पर० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० द्यति वह काटता है.
लिट्–प्र० ए० ददौ उसने काटा.
[५२६]**२लिङ्–प्र०ए०देयात्**ईश्वर करै वह काटे.
[४७४]**लुङ्–प्र० ए० अदात्** उसने काटा.

व्यध् (ताडने) मारना । पर० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० व्यध्+य+ति–

(६७६) ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छति-भृज्जतीनां ङ्किति च । ६ । १ । १६ ॥

एषां संप्रसारणं स्यात्किति ङिति च॥

ग्रह् (लेना), ज्या (वृद्ध होना), वय् (बुनना), व्यध् (ताडन करना), वश् (इच्छा-करना), व्यच् (ठगना), व्रश्च् (काटना), प्रच्छ (पूछना) और भ्रस्ज् (भूनना), इन धातुओंसे परे कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो धातुओंको संप्रसारण (२८१) हो । (९३६) से श्यन् ङित् है और व्यध्में यकार यण् है उसके स्थानमें इक्की इ हुई व्+इ अध्+य+ति='सम्प्रसारणाच्' से पूर्वरूप हुवा **विध्यति** वह मारता है,

लिट्-प्र० पु० विव्याध[५८५।३८३।४०३] उसने मारा
विविधतुः उन दोने मारा, विविधुः उन्होंने मारा
लिट्-म० ए० विव्यधिथ[५१७।५८७], विव्यद्ध तैंने मारा.
लुट्-प्र० ए० व्यद्धा[५८७] वह मारेगा

लृट्-प्र० ए० व्यत्स्यति वह मारेगा.
१ लिङ्-प्र० ए० विध्येत्[४६१।४६३।३५।४६४] वह मारे
२ लिङ्-प्र० ए० विध्यात्[४६६] ईश्वर करे वह मारे.
लुङ्-प्र० ए० अव्यात्सीत्[४८५।५००] उसने मारा

पुष् (पुष्टौ) पोसना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० पुष्यति वह पोसता है
लिट्-प्र० ए० पुपोष उसने पोसा
लिट्-म०ए०पुपोषिथ(५१५)तूने पोसा
लुट्-प्र० ए० पोष्टा वह पोसेगा

लृट्-प्र० ए० पोक्ष्यति[५८६।३३९] वह पोसेगा.
लुङ्-प्र० ए० अपुषत्[५४३।४६९] उसने पोसा.
लृङ्-प्र० ए० अपोक्ष्यत् जो वह पोसै.

शुष् (शोषणे) सूखना । पर० अक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० शुष्यति वह सूखता है
लिट्-प्र० ए० शुशोष वह सूख गया

लुङ्-प्र० ए० अशुषत्[५०३] वह सूख गया.

णश् (अदर्शने) नष्ट होना । पर० अक० वेट् ।

लट्-प्र० ए० नश्यति वह नष्ट होता है--
लिट्-प्र० ए० ननाश वह नष्ट हुआ । द्विव० नेशतुः[५५] वे दो नष्ट हुये,
लिट्-म० ए० ननश्+थ--

(६७७) रधादिभ्यश्च । ७ । २ । ४५ ॥

रध्-नश्-तृप्-दृप्-द्रुह्-मुह्-ष्णुह्-ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात् ॥

रधादि धातु (रध् नश् तृप् दृप् द्रुह् मुह् ष्णुह् ष्णिह्) ओंसे परे वलादि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसे इट्का आगम (४३४) विकल्प करके हो । नश धातु रधादिमें है इस कारण इससे परको इट्का आगम हुआ और 'थलि च सेटि' से एत्त्वाभ्यासलोप हुआ तब **नेशिथ** तू नष्ट हुआ; और जब इट् न हुवा तब=ननश+थ--

(६७८) मस्जिनशोर्झलि । ७ । १ । ६० ॥

नुम् स्यात् झलादौ ॥

झल् आदि प्रत्यय परे रहते मस्ज् (डूबना) । नश् (नष्ट होना) इन धातुओंको नुम्का आगम हो । **ननंष्ठ** (३३४,७८) । तू नष्ट हुआ.

उ० द्वि० नेशिव[५९५], नेश्व[६७७] हम दो नष्ट हुए.
लुट्-प्र०ए०नशिता नंष्टा[५८] वह नष्ट होगा.
लृट्-प्र०ए०नशिष्यति नंक्ष्यति[३३४] [५८६।६०] वह नष्ट०
लोट्-प्र० ए० नश्यतु वह नष्ट हो.
लङ्-प्र० ए० अनश्यत् वह नष्ट हुआ.

उ० ब० नेशिम, नेश्म हम नष्ट हुए.
लिङ्-प्र० ए० नश्येत् वह नष्ट हो.
२ लिङ्-० ए० नश्यात्[४] ईश्वर करै वह नष्ट हो.
लुङ्-प्र० ए० अनेशत्[५४] वह नष्ट हुआ.

आत्मनेपद ।

षू (षूङ् प्राणिप्रसवे) उत्पन्न करना । आत्म० सक० सेट् ।

लट्-प्र०ए० सूयते[५४५] वह उत्पन्न करता है.
लिट्-प्र०ए० सुषुवे[५४९, २२०] उसने उत्पन्न किया.
लिट्-म० ए० सुषुविषे तूने उत्पन्न किया.
लिट्-उ० द्वि० सुषुविवहे हम दोनोंने उत्पन्न किया.

लिट्-उ० ब० सुषुविमहे हमने उत्पन्न किया.
लुट्-प्र०ए० सोता सविता वह उत्पन्न करैगा.

लृट्-प्र० ए० सविष्यते सोष्यते वह उत्पन्न करैगा.
लोट्-प्र० ए० सूयताम् वह उत्पन्न करै.
लङ्-प्र० ए० असूयत वह उत्पन्न हुआ । वि० लि० प्र० ए० सूयेत वह उत्पन्न करै । आ० लि० प्र० ए० सविषीष्ट[१] सोषीष्ट ईश्वर करै वह उत्पन्न करै.

लुङ्-प्र० ए० असविष्ट, असोष्ट उसने उत्पन्न किया ।
लृङ्-प्र० ए० असविष्यत, असोष्यत जो वह उत्पन्न करै ।

दू (दूङ् परितापे) दुःखी होना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० दूयते वह दुःखी होता है । लुङ्-प्र० ए० अदविष्ट ।

दी (दीङ् क्षये) क्षय होना । आत्म० अक० अनिट् ।

लट्-प्र०ए०दीयते—वह क्षीण होता है । लिट्-प्र०ए०दिदी+ए-(४३०,९४९, ४८७)

(६७९) दीङो युडचि क्ङिति । ६ । ४ । ६३ ॥

दीङः परस्याजादेः क्ङितः आर्धधातुकस्य युट् ॥

दीङ् धातुसे परे अजादि कित् अथवा ङित् आर्धधातुक प्रत्यय आवै तो उसको युट्का आगम हो ।

युट्में उट् इत्संज्ञक है उसका लोप होगया । दिदीय्+ए-

१ क्रादिनियमान्नित्यमिट् ।

(६८०) वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ ॥

जब उवङ् (२२०) अथवा यण् (२२१) करना होय तो (६००) से वुक् तथा (४२१) युट् (६७९) असिद्ध न हों सिद्धही रहैं । (६००) से युट् असिद्ध माना तो (२२१) से दिदी अंगको यण् आदेश प्राप्त होता है क्योंकि यह सूत्र (६ । ४ । ८२) वां है (६८०) वां वार्तिक इसका अपवाद करता है । **दिदीये** वह क्षीण हुआ.

लुट्-प्र० ए० दी ता (४२१) से गुण और ऐकार वृद्धि होनेका कारण हो तो-

(६८१) मीनातिमिनोतिदीङां ल्यँपि च । ६ । १ । ५० ॥

एषामात्त्वं स्यात ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते ।

मी (मीञ् मारना), मि (डुमिञ्-फेंकना) और दीङ् (क्षय होना) इन धातुओंसे परे ल्यप् प्रत्यय (९४२) तथा अशित एकार गुण और वृद्धि करनेका निमित्त परे होय तो इन धातुओंको आकार हो । **दाता** वह क्षीण होगा.

लृट्-प्र० ए० दास्यते वह क्षीण होगा । **लोट् प्र० ए० दीयताम्** । **लङ् प्र० ए० अदीयत** । **लिङ् प्र० ए० दीयेत** । **२ लिङ् प्र० ए० दासीष्ट** । **लुङ्**-अदा+स्+त (४७२) यहां (६६४) से 'इ' की प्राप्ति होनेपर **'स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः'** "स्थाघ्वोरिच्च १ । २ । १७" इससे स्था और घुसंज्ञक धातुओंके इत्त्वविधान करनेमें दीङ् धातुका प्रतिषेध है अर्थात् दीङ् धातुको इत्त्व न हो । **लुङ् प्र० ए० अदास्त** वह क्षीण हुआ.

डीङ् (विहायसा गतौ) उडना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्-प्र०ए०डीयते वह उडता है । **लिट् प्र० ए० डिड्ये** (४३०।२२९) वह उडा । **लुट् प्र०ए० डयिता** वह उडेगा । **लृट्-डयिष्यते** । **लोट्-डीयताम्** । **लङ्-अडीयत** । **लिङ्-डयीत** । **आ० डयिषीष्ट** । **लुङ्-अडयिष्ट** । **लृङ्-अडयिष्यत** ।

पी (पीङ् पाने) पीना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० पीयते ।	**लुट्-प्र० ए० पेता** ।	**लुङ्-प्र० ए० अपेष्ट**
वह पीता है,	वह पियेगा,	उसने पिया.

मा (माङ् माने) मापना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० प्र० मायते वह मापता है । **लिट् प्र० प्र० ममे** उसने मापा.

जन् (जनी प्रादुर्भावे) प्रकट होना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्-प्र० प्र० जन्+य+ते-

(६८२) ज्ञाजनोर्जा । ७ । ३ । ७९ ॥

अनयोर्जादेशः स्यात् शिति ॥

ज्ञा (जानना), जन् (प्रकट होना) इन धातुओंसे परे शित् आवे तो इन धातुओंको 'जा' आदेश हो । श्यन् श इत्संज्ञक प्रत्यय परे है तो जन्के स्थानमें जा आदेश हुआ—

जायते वह प्रकट होताहै.

लिट्–प्र० ए० जज्ञे[४२८।५४१।७६।४५९] वह प्रकट हुआ

लुट्–प्र० ए० जनिता वह प्रकट होगा.

लृट्--प्र० ए० जनिष्यते वह प्रकट होगा.

लुङ्--प्र० ए० अजन्+च्लि+त—

(६८३) दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ।३।१।६१॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने तशब्दे परे ॥

दीप् (चमकना) जन् (प्रकट होना), बुध् (बोध करना) पूर् (भरना,) ताय् (फैलाना वा पालना), और प्याय् (फूलना) इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें विकल्प करके चिण् हो जो एक वचनका त प्रत्यय परे होय तो । चिण्में इ शेष रही और सबका लोप हुआ । अजन्+इ+त–

(६८४) चिणो लुक् । ६ । ४ । १०४ ॥

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् ॥

चिण्से परे (६८३) त प्रत्ययका लुक् हो अजन्+इ (४९०) से अजन्में ज अन्तर्गत अकारको वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु—

(६८५) जनिवध्योश्च । ७ । ३ । ३५ ॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च ।

जन् (प्रगट होना), वध् (मारना) इन धातुओंसे परे चिण् अथवा ञित् णित् कृत् (३२९) प्रत्यय आवें तो उनको वृद्धि न हो । **अजनि** (६८३) से चिण् न हुवा तव **अजनिष्ट** वह प्रकट हुआ.

दीप् (दीपी दीप्तौ) चमकना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्--प्र० ए० दीप्यते वह चमकता है

लिट्--प्र० ए० दिदीपे । वह चमका

लुङ्--प्र० ए० अदीपि, अदीपिष्ट[६८३] वह चमका.

पद् (पद गतौ) जाना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्--प्र० ए० पद्यते वह जाताहै

लिट्--प्र० ए० पेदे[४५५] वह गया

लुट्--प्र० ए० पत्ता वह जायगा।

२लिङ्–प्र०ए०पत्सीष्ट ईश्वर करै वह जाय

लङ्--प्र० ए० अपद+च्लि+त–

(६८६) चिण् ते पदः । ३ । १ । ६० ॥

पदेश्च्लेः चिण् स्यात्तशब्दे परे ॥

पद् धातुसे परे एकवचनका त प्रत्यय होय तो च्लिको चिण् हो । अपद्+इ+त=**अपादि** (४९०, ६८४) वह गया.

लुङ्-प्र० द्वि० अपत्साताम् वे दो गये । **लुङ्-प्र० ब० अपत्सत** वे गये.

विद् (विद सत्तायाम्) होना ।

लट्-प्र० ए० विद्यते वह है । **लुट्-प्र० ए० वेत्ता** वह होगा । **लुङ्-प्र० ए० अवित्त** (६२७, ४६८, ९१४) वह था ।

बुध् (बुध अवगमने) जानना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० बुध्यते वह जानताहै
लिट्-प्र० ए० बुबुधे उसने जाना
लुट्-प्र० ए० बोद्धा वह जानैगा
लृट्-प्र० ए० भोत्स्यते वह जानैगा
लिङ्-प्र० ए० भुत्सीष्ट ईश्वर करै वह जानै

लङ्-प्र० पु० अबोधि अबुद्ध उसने जाना वा समझा.
लुङ्-प्र० द्वि० अभुत्साताम् उन दोने समझा.

युध् (युध संप्रहारे) लडना । आत्म० अ० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० युध्यते वह लडताहै
लिट्-प्र० ए० युयुधे वह लडा.

लुट्-प्र० ए० योद्धा वह लडैगा.
लुङ्-प्र० ए० अयुद्ध वह लडा.

सृज् (सृज विसर्गे) त्यागना । आत्म० अ० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० सृज्यते वह त्यागता है
लिट्-प्र० ए० ससृजे उसने त्याग किया

लिट्-प्र० ए० ससृजिषे तैंने त्यागकिया.
लुट्-प्र० ए० सृज्+त्+आ--

(६८७) सृजिदृशोर्झल्यमकिति । ६ । १ । ५८ ॥

अनयोः अम् स्यात् झलादावकिति ।

सृज् (त्यागना), दृश् (देखना) इन धातुओंको अम्का आगम हो परे झलादि अकित् प्रत्यय आवै तो । सृ+अ+ज्+ता=सर्+अज्+ता=**स्रष्टा** (३३४, ७८) वह त्याग करैगा.

लृट्-प्र० ए० स्रक्ष्यते वह त्याग करेगा
२, लिङ्-प्र० ए० सृक्षीष्ट ईश्वर करै वह त्याग करै

लुङ्-प्र० ए० असृष्ट उसने त्याग किया
लुङ्-प्र० द्वि० असृक्षाताम् उन दोने त्याग किया.

मृष् (मृष तितिक्षायाम्) सहना । उभयपदी. सक० सेट् ।

	पर०	आत्म०	
लृट्-प्र० ए०	मृष्यति	मृष्यते	वह सहता है.
लिट्-प्र० ए०	ममर्ष	ममृषे	उसने सहा.
लिट्-म० ए०	ममर्षिथ	ममृषिषे	तूने सहा.
लुट्-म० ए०	मर्षितासि	मर्षितासे	तू सहेगा.
लृट्-प्र० ए०	मर्षिष्यति	मर्षिष्यते	वह सहैगा.

नह् (णह बन्धने) बांधना। उभ० प० स० अनिट्।

		पर०	आ०	
लट्-प्र०	ए०	नह्यति	नह्यते	वह बांधता है.
लिट्-प्र०	ए०	ननाह	नेहे	उसने बांधा.
लिट्-म०	ए०	ननद्ध[५१७।३८९] [५८७।२५] नेहिथ[५१८]	नेहिषे	तूने बांधा.
लुट्-म०	ए०	नद्धासि	नद्धासे	तू बांधेगा.
लृट्-प्र०	ए०	नत्स्यति[५५।२०]	नत्स्यते	वह बांधेगा.
लुङ्-प्र०	ए०	अनात्सीत्[५००]	अनद्ध	उसने बांधा.
लृङ्-प्र०	ए०	अनत्स्यत्	अनत्स्यत	जो वह बांधे.

॥ इति दिवादयः समाप्ताः ॥ ४ ॥

अथ स्वादयः।

१ सु (षुञ् अभिषवे) स्नान करना, सोमवल्ली आदि कूटना, न्हवाना तथा मद्य निर्माण करना। उभयपदी सक० अनिट्। (स्नाने अकर्मकः)।

(६८८) स्वादिभ्यः श्नुः। ३। १। ७३॥

शपोऽपवादः॥

स्वादि गणके धातुओंसे परे श्नु हो। यह सूत्र शप् (४२०) का अपवाद है। श्नुमें शका लोप हुआ (१९९)

लट्-प्र० ए० सु+नु+ति=सुनोति[४२१] — सुनुते[५३६।४६८।५४] वह न्हवाता है.

लट्-प्र० ए० सुनुतः[४१९।५३६।४६८] — सुन्वाते — वे दो न्हवाते हैं.

लट्-प्र० ब० सुन्वति[५३७] (हुश्नुवोरिति यण) सुन्वते वे न्हवाते हैं.

लट्–उ० द्वि० सुन्वः सुनुवः । सुन्वहे, सुनुवहे हम दो न्हवाते हैं.

लिट्–प्र० ए० सुषाव	सुषुवे	उसने न्हवाया.
लुट्–म० ए० सोतासि	सोतासे	तू न्हवावेगा.
लोट्–प्र० ए० सुनोतु	सुनुताम्	वह न्हवावै.
लोट्–म० ए० सुनु	सुनुष्व	तू न्हवा.
लोट्–उ० ए० सुनवानि	सुनवै	मैं न्हवाऊं.
१ लिङ्–प्र०ए० सुनुयात्	सुन्वीत	वह न्हवावै.
२ लिङ्–प्र०ए० सूयात् (५१९)	सोषीष्ट	ईश्वर करे वह न्हवावै

लुङ्–प्र० ए० असु+स्+त्–

(६८९) स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु । १ । २ । ७२ ॥

एभ्यस्सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु ॥

स्तु (स्तुति करना), सु (स्नान कराना, धू (कांपना) इन धातुओंसे परे सिच्को इट्का आगम हो परस्मैपदमें । असौ+इ+स्+त्=असाव+इ+स्+ई+त्–

असावीत् आत्म० असोष्ट उसने न्हवाया.

२ चि (चिञ् चयने) संग्रह करना । उभ०सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० चिनोति । आत्म० चिनुते वह संग्रह करता है.

लिट्–प्र० ए० चि+चि+अ०

(६९०) विभाषा चेः । ७ । ३ । ५८ ॥

अभ्यासात्परस्य चिञः कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च ॥

सन् (७५३) अथवा लिट् परे हुए सन्ते अभ्याससे परे चिञ् धातुके चकारके स्थानमें (८८) बिकल्प करके कवर्ग हो ।

चिकाय चिचाय । आत्म० चिक्ये, चिच्ये उसने संग्रह किया.

लुङ्–प्र० ए० अचैषीत् । आत्म० अचेष्ट उसने संग्रह किया.

३ स्तृ (स्तृञ् आच्छादने) ढाकना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० स्तृणोति (२३६) आत्म०-स्तृणुते वह ढाकता है.

लिट्–प्र० ए० स्तृ+स्तृ+अ= (४२९) अभ्यासके 'तृ' का लोप प्राप्त हुआ--

(६९१) शर्पूर्वाः खयः । ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते अन्ये हलो लुप्यन्ते ॥

अभ्यासके खय्से पूर्व शर् आवै तो खय् शेष रहै शेष हलोंका लोप हो ।

तस्तार । आत्म० तस्तरे उसने ढका

लिट्-प्र० द्वि० तस्तरतुः[५३२] । आत्म० तस्तराते उन दोने ढका.

२ लिङ्-प्र० ए० स्तर्यात्[५३४] । आत्म० स्तृ+सी+स्+त-

(६९२) ऋतश्च संयोगादेः । ७ । २ ४३ ॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि ॥

जिस धातुके अन्तमें ऋकार हो और आदिमें संयोग होय तो उससे परे लिङ् तथा सिच्को विकल्प करके इट्का आगम हो ।

स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट[५८३।४६८] ईश्वर करै वह ढकै.

लुङ्-प्र ए० अस्तारीत् । आत्म० अस्तरिष्ट, अस्तृत[५८३।४६८ ५८३] उसने ढका.

४ धू (धूञ् कम्पने) कँपाना । उभय० सक० वेट् ।

		प०	आ०	
लट्-प्र०	ए०	धूनोति	धूनुते	वह कँपाता है.
लिट्-प्र०	ए०	दुधाव	दुधुवे	उसने कँपाया.
लिट्-म०	ए०	दुधविथ[९१३], दुधोथ,	दुधुविषे	तूने कँपाया.
लिट्-उ०	द्वि०	दुधू+व-		

(६९३) श्र्युकः किति । ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण्न स्यात् । परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् ॥

श्रि धातु अथवा उक् प्रत्याहारान्त एकाच् धातुसे परे गित् अथवा कित् प्रत्यय आवे तो उसे इट्का आगम न हो । तोभी. परभी स्वरत्यादि (९१२) विकल्पको बाधकर अगाडी निषेधकाण्डके आरम्भसामर्थ्यसे इससूत्रसे निषेधकी प्राप्ति हुई पर क्रादिनियमसे नित्यही इट् होता है, अर्थात् इस सूत्रसे इट्के आगमका निषेध हुआ परन्तु ((९१९) से धू धातुको नित्य इट्का आगम होता है ।

दुधुविव[२२०]	दुधुविवहे	हम दोने कँपाया.
लुङ्-प्र ए० अधावीत्[४८९।५२०]	अधविष्ट, अधोष्ट[५१३]	उसने कँपाया.

लृङ्-प्र० ए० अधविष्यत् अधोष्यत्[५१३], अधविषत अधोष्यत[५१३] जो वह कँपावेगा.

लृङ्-प्र० द्वि० अधविष्यताम् अधोष्यताम्, अधविष्येताम् अधोष्येताम् जो वे दो कँपावैंगे

॥ इति स्वादयः समाप्ताः ॥ ९ ॥

अथ तुदादयः ।

१ तुद् (तुद व्यथने) पीडादेना । उभयपदी सक० अनिट् ।

(६९४) तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ ॥

शपोऽपवादः ।

तुद् आदिगणीधातुओंसे परे शप् (४२०) का अपवाद श प्रत्यय हो. तुद् धातुसे श प्रत्यय हुआ शमें अ शेष रहा--

लट्-प्र० ए०	तुद्+अ+ति **तुदति**	आत्म० **तुदते**[४१९।५३६।४६८]	वह पीडा देता है.
लिट्-प्र० ए०	**तुतोद**[४८५]	**तुतुदे**[४८७।४६८।४९]	उसने पीडा दी.
लिट्-म० ए०	**तुतोदिथ**[५११]	**तुतुदिषे**	तूने पीडा दी.
लुट्-म० ए०	**तोत्तासि**	**तोत्तासे**	तू पीडा देगा,
लुङ्-प्र० प्र०	**अतौत्सीत्**[५१०]	**अतुत्त**[५१४।४६८]	उसने पीडा दी.

२ नुद्--(णुद प्रेरणे) प्रेरणा करना । उभय० स० अनिट् ।

लट्-प्र० पु०	**नुदति**	**नुदते**	वह प्रेरणा करता है.
लिट्-प्र० ए०	**नुनोद**	**नुनुदे**	उसने प्रेरणा की.
लुट्-प्र० ए०	**नोत्ता**	**नोत्ता**	वह प्रेरणा करेगा.

३ भ्रस्ज् (भ्रस्ज् पाके) भूनना । उभय०स० अनिट् । **ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः । शस्य जश्त्वेन जः ।**

लट्-प्र० ए० भ्रस्ज्+अति=भ्ऋस्ज्ऋअति--भ्ऋश्ज्+अति=भ्ऋज्ज्+अति--

भृज्जति, भृज्जते वह पकाता है या भूनता है ।

लिट्-म० ए० भ्रस्ज्+व=भ्र्अस्ज्+अ--

(६९५) भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्त्वादन्त्यादचः परः स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः ।

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते भ्रस्ज् धातुके रेफ तथा उपधाके स्थानमें रम्का आगम विकल्प करके हो । रम्मेंसे अम्का लोप होकर र् शेष रहा । वह मित् हैं और अ अच् अन्तमें है, उससे ही परे यह आगम होता है (२६९)--ब भ्+अर् ज्+अ । पाणिनीयसूत्रमें 'रोपधयोः'

इस षष्ठीयुक्त रेफ और उपधाके उच्चारणसे यह स्पष्ट विदित होता है कि, रम् आगमही नहीं किन्तु आदेश भी है । जो आगम मात्र करनेका प्रयोजन होता तो सूत्रमें केवल धातुही लिखा रहता और उस धातुके विशेष वर्ण सूत्रमें उच्चारित न होते, इस कारणसे भ्र अन्तर्गत रेफ तथा उपधाभूत स्का लोप हुआ; क्योंकि स्थानषष्ठीका अर्थ यही है कि किसीको टालकर उसके स्थानमें कोई दूसरा हो ।

बभर्ज बभ्रंज्ज[७६।२५], बभर्जे बभ्रज्जे उसने भूजा.
लिट्–प्र० द्वि० बभर्जतुः बभ्रज्जतुः, बभर्जाते बभ्रज्जाते उन दोने भूजा.
लिट्–म० ए० बभर्जिथ बभर्ष्ठ[३३४।७८९] बभ्रज्जिथ बभ्रष्ठ[१], बभर्जिषे बभ्रज्जिषे तूने भूना.

लुट्–प्र० ए० भर्ष्टा, भ्रष्टा भर्ष्टा, भ्रष्टा वह भूनैगा.
लृट्–प्र० ए० भर्क्ष्यति[५८६], भ्रक्ष्यति[३३३।३३४] भर्क्ष्यते, भ्रक्ष्यते वह भूनैगा.
२ लिङ्–प्र० ए० भ्रस्ज्+यास्+त् । **क्ङिति रमागमं बाधित्वा संप्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन ।** (६९९) से रम्का आगम और (६७६) से सम्प्रसारण ए दोनों यहां प्राप्तहैं (१३२) से रमागमका सूत्र (६ । ४ । ४७) है और (६७६) वां सूत्र (६ । १ । १६) है तो पर (६९९) ही प्राप्त हुआ परन्तु इस वार्तिकसे पूर्वही कार्यका होना उचित है तो पूर्व कार्य जो (६७६) से यण्के स्थानमें इक् सोई होता है अर्थात् कित् वा ङित् प्रत्ययके परे रहते (६७६) से संप्रसारण होताहै और रम् (६९९) आगमका बाध होता है क्योंकि इस वार्तिकसे पूर्वसूत्र बलिष्ठ है. अष्टाध्यायीके क्रमसे (६७६) वां पूर्व है इससे भ्र अन्तर्गत रेफके स्थानमें ऋ हुआ ।

भृज्ज्यात् (७६, २५, ३३७) भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट[३३७।३३४।५८६।१६९] ईश्वर करै वह भूनै.
२ लिङ्–प्र० द्वि० भृज्ज्याताम् { भर्क्षीयास्ताम् / भ्रक्षीयास्ताम् } ईश्वर करै वे दो भूनैं.
२ लिङ्–प्र० ब० भृज्ज्यासुः, भर्क्षीरन् भ्रक्षीरन् ईश्वर करै वे भूनैं.
लुङ्–प्र० ए० अभार्क्षीत् अभ्राक्षीत्, अभर्ष्ट अभ्रष्ट उसने भूना.

४ कृष् (कृष् विलेखने) जोतना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० कृषति कृषते वह जोतता है.
लिट्–प्र० ए० चकर्ष चकृषे उसने जोता.
लुट्–प्र० ए० कृष्+ता–

१ स्कोरिति सलोपः । जब झल् परे रहे तो (३३७) से सकारका लोप (३३४) से अन्त्य अक्षरको ष् होजाता है इससे जब इट् नहीं होता तब बभ्रष्ठ तूने भूना.

(६९६) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । ६ । १ । ५९ ॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा स्याज्झलादावकिति ॥

कित्भिन्न झलादि आर्धधातुक परे होय तो उपदेशकालमें अनुदात्त ऋकारान्त धातुके अम्का आगम विकल्प करके हो ।

क्रष्टा[६९६।५५८] **कर्ष्टा**[४८६।५५८६], **क्रष्टा कर्ष्टा** वह जोतैगा.

२ लिङ्–प्र० ए० कृष्यात । आत्म० कृक्षीष्ट[६२७।४६८।५८६।१६९] ईश्वर करै वह जोतै.

लुङ–प्र० ए० कृष्+च्लि+त्–

(६९७) स्पृशमृषकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः ।

स्पृश् (स्पर्श करना), मृश् (छूना), कृष् (जोतना), तृप् (तृप्त होना), दृप् (अभिमान करना), इन धातुओंसे परे च्लि आवे तो उसके स्थानमें विकल्प करके सिच् हो ऐसा कहना चाहिये ।

अक्राक्षीत्[६०३] **अकार्क्षीत्**[५८८।६२८] **अकृक्षत् । आ० अकृष्ट अकृक्षत** उसने जोता.

लुङ्–प्र० द्वि० अक्राष्टाम् अकार्ष्टाम् अकृक्षताम् { **आ० अकृक्षाताम्** उन दोने जोता.

लुङ्–प्र० ब० (क्से) अकृक्षन् । आ० अकृक्षंत[५६०] उन्होंने जोता.

मिल् (मिल संगमे) मिलना । उभ० सेट् ।

लट्–प्र० ए० मिलति, मिलते वह मिलता है.	**लुट्–प्र० ए० मेलिता, मेलिता** वह मिलेगा.
लिट्–प्र० ए० मिमेल मिमिले वह मिला.	**लुङ्–प्र० ए० अमेलीत्**[४८६], **अमेलिष्ट** वह मिला.

मुच् (मुच्लृ मोक्षणे) छोडना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० मुच्+अ+ति–

(६९८) शे मुचादीनाम् । ७ । १ । ५९ ॥

मुच्लिप्विद्लुप्सिच्कृतखिद्पिशां नुम् स्यात् शे परे ॥

मुच् (छोडना), लिप् (लीपना), विद् (जानना), लुप् (लोप करना, काटना), सिच् (सींचना), कृत् (काटना), खिद् (खेदपाना), पिश् (पीसना), इन धातुओंसे परे श आवे तो नुम्का आगम हो.

	मुन्च्+अ+ति=**मुञ्चति**[३५१।२५]	**मुञ्चते**	वह छोडता है.
लिट्–	**मुमोच**	**मुमुचे**	उसने छोडा—

लुट्–प्र० ए० मोक्ता[३३३] मोक्ता वह छोडेगा.
२ लिङ्–प्र० ए० मुच्यात् मुक्षीष्ट[२७६।४६८] ईश्वर करै वह छोडे.
लुङ्–प्र० प्र० अमुचत्[५४३] अमुक्त उसने छोडा.
लुङ्–प्र० द्वि० अमुचताम् अमुक्षाताम् उन दोने छोडा.

लुप् (लुप्लृ छेदने) काटना वा लोप करना । सकर्मक, अनिट्, मुचादि ।

लट्–प्र० ए० लुम्पति लुम्पते वह काटता है वा लोप करता है.
लिट्–प्र० ए० लुलोप लुलुपे उसने काटा.
लुट्–प्र० ए० लोप्ता लोप्ता वह काटैगा.
लुङ्–प्र० ए० अलुपत्[५४३] [:५१४] उसने काटा.

विद् (विद्लृ लाभे) पाना । सक० उभ० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० विन्दति विन्दते[९५।२६] वह पाता है.
लिट्–प्र० ए० विवेद विविदे उसने पाया.

व्याघ्रभूतिमते सेट् । व्याघ्रभूति आचार्यके मतसे इस धातुको इट्का आगम होता है।
लुट्–प्र० ए० वेदिता, वेत्ता वेदिता, वेत्ता वह पावैगा.

भाष्यमते अनिट् । महाभाष्यके मतसे इट्का आगम नहीं होता । उदाहरण परि-वेत्ता (बडे भाईके विवाह हुए विना जो छोटा भाई विवाह करले वह)।

सिच् (षिच्, क्षरणे) सींचना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० सिञ्चति सिञ्चते वह सींचता है.
लिट्–प्र० ए० सिषेच सिषिचे उसने सींचा.
लुङ्–प्र० ए० असिच्+च्लि+त्

(६९९) लिपिसिचिह्वश्च। ३ । १ । ५३॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्॥

लिप् (लीपना), सिच् (सींचना), ह्वेञ् (बुलाना), इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें अङ् (अ) आदेश हो.

असिचत् उसने सींचा। असिच्+च्लि+त–

(७००) आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् । ३ । १ । ५४ ॥

लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि ।

आत्मनेपदविषे लिप् सिच् और ह्वे इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् (अ) आदेश हो ।

असिचत (वा) असिक्त (१२७, ४६८, ९१४, ३३३) उसने सींचा.

१० **लिप्** (लिप उपदेहे) । **उपदेहो वृद्धिः** । वृद्धिका अर्थ लेपरूपही है । उभ० सक० अनिट् ।

लट्–प्र०ए० लिम्पति — **लिम्पते** वह लीपता है.

लुट्–प्र० ए० लेप्ता — **लेप्ता** वह लीपैगा.

लुङ्–प्र० ए० अलिपत् — **अलिपत, अलिप्त** उसने लीपा.

॥ इति उभयपदी धातु समाप्त ॥

* (७०१) परस्मैपदी धातु ।

११ **कृत्** (कृती छेदने) काटना । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० कृन्तति वह काटता है

लिट्–प्र० ए० चकर्त उसने काटा

लुट्–प्र० प्र० कर्तिता वह काटैगा

लृट्–प्र० ए० कर्तिष्यति कर्त्स्यति, —वह काटैगा.

लुङ्–प्र० ए० अकर्तीत् उसने काटा.

लृङ्–प्र० ए०अकर्तिष्यत,अकर्त्स्यत जो वह काटैगा.

१२ **खिद्** (खिद परिघाते) पीडा देना । पर० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० खिन्दति वह पीडा देता है

लिट्–प्र० ए० चिखेद उसने पीडा दी

लुट्–प्र० ए० खेत्ता वह पीडा देगा.

लुङ्–प्र० ए० अखैत्सीत् उसने पीडा दी.

१३ **पिश्** (पिश अवयवे) पीसना । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० पिंशति वह पीसता है । **लुट् प्र० ए० पेशिता** वह पीसेगा.

१४ **व्रश्च्** (ओव्रश्चू छेदने) काटना । पर० सक० वेट् ।

लट्–प्र० ए० [६७६।२८३] **वृश्चति** वह काटता है

[४२७।५८४।५०९।४२९] **लिट्–प्र० ए० वव्रश्च** उसने काटा

लिट्–म०ए०वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ[५१२] तूने काटा

लुट्–प्र० ए० व्रश्चिता व्रष्टा वह काटैगा

[३३७।३३४।५८६।३६०] **लृट्–प्र० ए० व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति-** वह काटैगा.

२ **लिङ् प्र० ए०** [६७६।२८३] **वृश्च्यात्** ईश्वर करै वह काटै.

लुङ्–प्र० ए० अव्रश्चीत् उसने काटा.

१५ **व्यच्** (व्यच व्याजीकरणे) ठगना. पर० सेट् ।

---

* यह अंक भेद मात्रका है मूलाङ्क नहीं है ।

लट्–प्र० ए० विचति[६७६।२८३] वह ठगता है
लिट्–प्र० ए० विव्याच[५८४।२८३] उसने[४३९] ठगा
लिट्–प्र० द्वि० विविचतुः[६७६] उन दोने ठगा
लुट्–प्र० ए० व्यचिता वह ठगैगा
लृट्–प्र० ए० व्यचिष्यति वह ठगैगा.
२लिङ्–प्र० ए० विच्यात्ईश्वरकरै वह ठगै.
लुङ्–प्र० ए० अव्याचीत्, अव्यचीत्[४५३] उसने ठगा.

१६ उञ्छ् (उछि उञ्छे) बीनना, दाना दाना इकट्ठा करना । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० उञ्छति वह बीनता है । लुङ्–औञ्छीत् उसने बीना ।

१७ ऋच्छ् (ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु) जाना, इन्द्रियोंसे शिथिलहोना, कठिन होना । पर० सेट् ।

लट्–प्र० ए० ऋच्छति वह जाता है
लिट्–प्र० ए० आनर्च्छ[४३५।६५४।४९९] * वह गया
लिट्–प्र० द्वि० आनर्च्छतुः वे दो गये.
लुट्–प्र० ए० ऋच्छिता वह जायगा.

१८ उज्झ् (उज्झ उत्सर्गे) त्यागना । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० उज्झति वह त्याग करता हैं लिट्–उज्झाञ्चकार. उसने त्यागा.

१९ लुभ (लुभ विमोहने) लुभाना । पर० सेट् ।

लट्–प्र० ए० लुभति वह लुभाता हैं । लिट् प्र० ए० लुलोभ वह लुभाया.

लुट् प्र० ए० लुभ्+तास्+आ=लुभ्+ता

---

१ व्यचेः कुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते, अनसीतिपर्युदासेन कृन्मात्रविषत्वात् । यह वार्तिक वृद्धिके निषेधका है कि असूरूप कृत्से भिन्न प्रत्यय परे हुए सन्ते व्यच धातुकी गणना कुटादि गणमें हो (६२५) सो यह नहीं लगता ' क्यों कि असूरूप कृत् प्रत्ययको छोडकर ' यह जो निषेध किया है इसका आशय यही है कि असूरूप कृत् प्रत्ययके समान और जो कृत् प्रत्यय हैं वेही इस वार्तिकमें ग्रहण किये हुए हैं, तिङ् नहीं, कारण कि, अनसू यहां जो नञ् है सो पर्युदासरूप है प्रसज्यरूप नहीं जहां इसप्रकार पर्युदास रूप नञ् होता है वहां निषेध्यमानसे पृथक् उसके समान विवक्षित रहते हैं अव्यच्+स्+त् इस उदाहरणमें तिङ् प्रत्यय परे है इस कारण व्यच् धातु कुटादि नहीं मानागया तो (६२५) के न लगनेसे (४९२) से व्य अन्तर्गत अकारके स्थानमें वृद्धि हुई और जो कृत् प्रत्यय परे हो तो व्यच्को कुटादि मानना पडताहै तो (६७६) यकारके स्थानमें इ प्राप्त हो जाता सो न हुआ ।

२ उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलमिति यादवः । उञ्छशब्दका अर्थ दानादाना बीनना और सिलशब्दका अर्थ नाजकी वालैं बिननेका है यह यादवकोशकारका मत है।

* ऋच्छत्यॄतामिति गुणः द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् । जब लिट् परे रहताहै तो (६५४) से गुण आदेश होता है (४९९) से नु का आगम होता है कारण कि (४९९) सूत्रमें दो हल्से अनेक हल्कामी ग्रहण अभिमत है ।

(७०२) तीषसहलुभरुषरिषः । ७ । २ । ४८ ॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्य इड्वा स्यात् ॥

इष् (इच्छा करना), सह् (सहना), लुभ् (लुभाना), रुष् (मारना), रिष् (मारना इन धातुओंसे परे तकारादि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसको विकल्प करके इटका आगम हो ।

लोभिता लोब्धा वह लुभावेगा.

लट्-प्र० ए० लोभिष्यति वह लुभावेगा.

२० **तृप्** (तृप् तृप्तौ) तृप्त होना । पर० सेट् । मुचादि.

लट्-प्र० ए० तृपति वह तृप्त होता है | **लुट्-प्र० ए० तर्पिता** वह तृप्त होगा.
लिट्-प्र० ए० ततर्प वह तृप्त हुआ | **लुङ्-प्र० ए० अतर्पीत्** वह तृप्त हुआ.

२१ **तृम्फ्** (तृम्फ् तृप्तौ) तृप्त होना ।

लट्-प्र० ए० तृम्फ्+अ (श)+ति (३६३) से न् (म्) उपधाका लोप हुआ तृफ्+अ+ति—

(७०३) शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः ॥

आदिशब्दः प्रकारे, तेन ये अत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः ।

श (६९४) परे हुए सन्ते तृम्फ् तथा उसकी समान नकारउपधावाले जो धातु हैं उनको नुम्का आगम हो । सूत्रमें जो आदिशब्द पढा है उसका अर्थ ' उसीप्रकारका ' है इस कारण यहां तृम्फकी समान वे धातु हैं जिनकी उपधामें नकार रहता है। **तृम्फति** वह तृप्त होता है ।

लिट्-प्र० ए० ततृम्फ वह तृप्त हुआ । २ **लिङ्-प्र० ए०** [३६३] **तृप्यात्** ईश्वर करे वह तृप्त हो.

२२ **मृड्** (मृड सुखने) सुखी करना । पर० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० मृडति वह सुखी करता है.

२३ **पृड्** (पृड् सुखने) सुखी करना.

लट्-प्र०ए० पृडति वह सुखी करता है. । **लुङ्-प्र०ए०अपर्डीत्** उसने सुखी किया.

२४ **शुन्** (शुन गतौ) जाना । पर० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० शुनति वह जाता है । **लुङ्-प्र० ए० अशोनीत्** वह गया था.

२५ **इष्** (इषु इच्छायाम्) इच्छा करनी । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० इच्छति[५४०] वह इच्छा करताहै.

लुट्–प्र० ए० एषिता, एष्टा वह इच्छा करैगा.

लृट्–प्र० ए० एषिष्यति वह इच्छा करैगा.

२लिङ्--प्र० ए० इष्यात् भगवान्करै. वह इच्छा करै.

लुङ्--प्र० ए० ऐषीत्[४७५।४८०।३१८] उसनेइच्छाकी

२६ कुट् (कुट कौटिल्ये) कुटिलता करना। पर० अक० सेट्०। कुटादि।

लट्–प्र० ए० कुटति। लिट्–प्र०पु० ए० चुकोट उसने कुटिलता की.

लिट्–म० ए० चुकुटिथ तूने कुटिलता की. **गाङ्कुटादीति ङित्त्वम्** (६२९) से ङित् हुआ (४६८) गुण न हुआ।

लिट्–उ० ए० चुकोट चुकुट[४९१।६२५।४६८] मैंने कुटिलता की.

लुट्–प्र० ए० कुटिता वह कुटिलता करैगा.

२७ पुट् (पुट संश्लेषणे) गले लगाना। पर० सक० सेट् कुटा०।

लट्–प्र० ए० पुटति वह गले लगाता हैं। **लुट्–प्र० ए० पुटिता**[६२५] वह गले लगावेगा

२८ स्फुट् (स्फुट विकसने) खिलना। पर० अक० सेट्। कुटा०।

लट्--प्र० ए० स्फुटति वह खिलता है। **लुट्--प्र० ए० स्फुटिता**[६२५] वह खिलैगा.

२९ स्फुर् (स्फुर संचलने) फडकना। पर० अक० सेट्। कुटा०।

लट्–प्र० ए० स्फुरति वह फडकता है.

३० स्फुल (स्फुल संचलने) फडकना। पर० अ० सेट्। कुटा०।

लट्–प्र० ए० स्फुलति वह फडकता हैं।

निर् नि अथवा वि उपसर्ग स्फुर् तथा स्फुलसे पहले लगे तो--निर्+स्फुर्+ति —

(७०४) स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः। ८। ३। ७६॥

षत्वं वा स्यात्॥

निर् नि और वि उपसर्ग (४८) से परे स्फुर् तथा स्फुल् धातु आवें तो उनके सकारके स्थानमें षकार विकल्प करके हो। नि+स्फुरति। नि+स्फुलति—

लट्–प्र० ए० निष्फुरति, निष्फुलति वह सदा फडकता है.

३१ नू (णू स्तवने) स्तुति करनी। पर० सक० सेट्। कुटादि०

लट्–प्र० ए० नुवति[२२०] वह स्तुति करता है

लिट्–प्र० ए० नुनाव उसने स्तुति की

लुट्–प्र० ए० नुवति वह स्तुति करैगा.

१ णू इस धातुमें उकार दीर्घ हैं ऐसा प्रयोग मिलनेसे यथा—'परिणूतगुणोदयः' जिसके गुणोंका उदय-प्रशंसा किया गया है यदि णका उकार ह्रस्व होता तो छन्दोभंग होता.

३२ मस्ज् (टुमस्जो[५७] शुद्धौ) शुद्ध करना वा डूबना ।

लट्–प्र० ए० मज्जति वह शुद्ध करता है | लिट्–म० ए० ममस्ज्+थ–

लिट्–प्र० ए० ममज्ज उसने शुद्ध किया

(६७८) से नुम्का आगम हुआ यह मित् है (२६९) से अन्त अच्से पर प्राप्त हुआ पर—

(७०९) मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम् वाच्यः ॥

संयोगादिलोपः ॥

वार्त्तिककार कहते हैं कि मस्ज् धातुके अन्त्य अक्षर से पूर्व नुम् हो । यहां (२६९) वां न लगा ममस् न् ज+थ (३३७) से सका लोप हुआ ममज् न्थ (९६) तब ममङ्क्थ[२५।३३३] अथवा ममज्जिथ (९१८) तूने शुद्ध किया

लुट्–प्र० ए० मङ्क्ता[६७८।७७१।३३७।३३३।९५।९६] वह शुद्ध करेगा. | लुङ्–प्र० द्वि० आमाङ्क्ताम्[५१४] उन दोने शुद्ध किया

लृट्–प्र० ए० मङ्क्ष्यति वह शुद्ध करेगा | लुङ्–प्र०ब०अमाङ्क्षुः उन्होंनेशुद्धकिया.

लुङ्–प्र०ए०अमाङ्क्षीत् उसनेशुद्धकिया | लृङ्–प्र०ए० अमङ्क्ष्यत् जो वहशुद्धकरै.

३३ रुज् (रुजो भंगे) तोडना ।

लट्–प्र० ए० रुजति वह तोडता है | लृट्–प्र० ए० रोक्ष्यति वह तोडेगा

लुट्–प्र० ए० रोक्ता वह तोडेगा | लुङ्–प्र० ए० अरौक्षीत् उसने तोडा.

३४ भुज् (भुजो कौटिल्ये) कुटिलता करना ।

लट्–भुजति वह कुटिलता करता है । रुजवत् ।

३५ विश् (विश प्रवेशने) प्रवेश करना ।

लट्–प्र० ए० विशति वह प्रवेश करता है ।

३६ मृश् (मृश आमर्शने) स्पर्श करना ।

लुङ्–प्र० ए० अम्राक्षीत्,[३९७।३३४।५८६।४८६।५००] अमार्क्षीत् अमृक्षत्[३८] उसने छुआ ।

अनुदात्तस्य, चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् जो धातु उपदेशमें अनुदात्त हो उसकी उपधामें ऋ हो तो (६९६) से विकल्प करके अम् होता है।

३७ सद् (षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु) अवयवोंका पृथक् करना, जाना, दुखी होना।पर० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० सीदति[५३] वह दुखी होता है । लङ्–प्र० ए० असदत

३८ शद् (शद्लृ शातने) छीलना, विशीर्ण होना ।

(७०६) शदेः शितः । १ । ३ । ६० ॥

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः ॥

शद् धातुसे परे जब शित् प्रत्यय आनेको हो तब उससे आत्मनेपदप्रत्यय (तङ् और आन) हों।

लट्–प्र० ए० शीयते[५२३] वह विशीण होता है.	**लङ्–प्र० ए० अशीयत** वह विशीर्ण हुआ.
	लिङ्–प्र० ए० शीयेत वह विशीर्ण हो..

जब शित् प्रत्यय न हुआ तब परस्मैपद हुआ–

लिट्–प्र० ए० शशाद वह विशीर्ण हुवा	**लुङ्–प्र० ए० अशदत्**[५४३] वह विशीर्ण हुआ.
लुट्–प्र० ए० शत्ता वह विशीर्ण होगा	**लङ्–प्र० ए० अशत्स्यत्** जो वह विशीर्ण हो.
लृट्–प्र० ए० शत्स्यति वह विशीर्ण होगा	
लोट्–प्र०ए०शीयताम् वह विशीर्ण हो.	

३९ कॄ (विक्षेपे) छितराना।

(७०७) ऋत इद्धातोः । ७ । १ । १०० ॥

ऋदन्तस्य धातोरंगस्य इत् स्यात् ॥

ऋकारान्त धातु अंगको इकार हो।

लट्–प्र० ए० किरति वह छितराता है	**लिट्–प्र० ब० चकरुः** उन्होने छितराया.
लिट्–प्र० ए० चकार[६५४ ४५०] उसने छितराया	**लुट्–प्र० ए० करिता, करीता**[६५५] वह छितरावेगा.
लिट्–प्र० द्वि० चकरतुः[६५४] उन दोने छितराया	**लिङ्–प्र०ए०कीर्यात्**[६५२] ईश्वर० वह छितरावे.

(७०८) किरतौ लवने । ६ । १ । १४० ॥

उपात्किरतेः सुट् छेदने ॥

छेदनअर्थवाचक कॄ धातु जो उप उपसर्गसे परे आवे तो उसको सुट्का आगम हो।

लट्–प्र० ए० उपस्किरति वह काटता है। **लिट्–प्र० ए० उप+क+कॄ–**

(७०९) अडभ्यासव्यवायेऽपि । ६ । १ । १३६ ॥

अट् (४१८) अथवा अभ्यासका व्यवधान हो तो भी (७०८) से सुट् होता है।

(७१०) सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम् ॥

सुट्का आगम कॄ धातुके कसे पूर्व हो ऐसा कहना चाहिये।

उपचस्कार उसने काटा.

लङ्–प्र० ए० उपास्किरत् उसने काटा.

(७११) हिंसायाँ प्रतेश्च । ६ । १ । १४१ ॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् ॥

हिंसार्थ कधातु प्रति तथा उपसर्गसे परे आवे तो उसे सुट्का आगम हो ।

लट्--प्र० ए० उपस्किरति, प्रतिस्किरति वह हिंसा करता है.

४० गॄ (निगरणे) निगलना ।

लट्--प्र० ए० गॄ+अति=गिर् (७०७)+अ+ति--

(७१२) अचि विभाषा । ८ । २ । २१ ॥

गिरते रेफस्य वा लोऽजादौ प्रत्यये परे ॥

अजादि प्रत्यय परे हुए सन्ते गॄ धातुके रेफके स्थानमें लकार विकल्प करके हो ।

गिलति, गिरति वह निगलताहै। **लिट्--प्र० ए० जगाल जगार** वह निगल गया. **लिट्--म०ए०जगलिथ, जगरिथ । लुट्--प्र०** { **गलिता, गलीता** / **गरिता, गरीता,** } वह निगलैगा तूने निगला ।

४१ प्रच्छ्--(प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्) पूछना ।

लट्-- प्र० **पृच्छति** वह पूछता हैं,	लुट्--प्र० ए० **प्रष्टा** वह पूछैगा.
लिट्--प्र० ए० पप्रच्छ उसने पूछा.	**लृट्--प्र० ए० प्रक्ष्यति** वह पूछैगा.
लिट्--प्र० ए० पप्रच्छतुः उन दोने पूछा	**लुङ्--प्र० ए० अप्राक्षीत्** उसने पूछा.
लिट्--प्र० ब० पप्रच्छुः उन्होंने पूछा	**लृङ्--प्र० ए० अप्रक्ष्यत्** जो वह पूछे.

४२ मृ (मृङ् प्राणत्यागे) मरना ।

लट्--प्र० ए० मृ+अ+ल--

(७१३) म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च । १ । ३ । ६१ ॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र ॥

लुङ् लिङ् और शित् प्रत्यय परे हुए सन्ते मृधातुसे परे तङ् (आत्मनेपद) प्रत्यय हो (४१०) अन्यत्र नहीं.

म्रियते आत्मने० वह मरता है.

लिट्--प्र० ए०	**ममार**	(परस्मै०)	वह मरा.
लुट्--प्र० ए०	**मर्ता**	(परस्मै०)	वह मरैगा.
लृट्--प्र० ए०	**मरिष्यति**	(परस्मै०)	वह मरेगा.
२ लिङ्--प्र० ए०	**मृषीष्ट**	(आत्म०)	ईश्वर करे वह मरैं.
लुङ्--प्र० ए०	**अमृत**	(आत्म०)	वह मरा.

४३ पृ (पृङ् व्यायामे) उद्योग करना । आत्मनेपदी। **(प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः)** बहुधा इस धातुसे पूर्व वि और आङ् उपसर्ग रहते हैं.

लट्-प्र० ए० वि+आ+प्रियते **व्याप्रियते** वह उद्योग करता है.

लिट्-प्र० ए० व्यापप्रे[५४२] उसने उद्योग किया.

लिट्-प्र० द्वि० व्यापप्राते उन दोने उद्योग किया.

लृट्-प्र० ए० व्यापरिष्यते[५२३] वह उद्योग करेगा.

लुङ्-प्र० ए० व्यापृत[५८२।५८३।४९८] उसने उद्योग किया.

लुङ्-प्र० द्वि व्यापृषाताम्[५८२।४९८।१६९] उन दोने उद्योग किया.

४४ जुष् (जुषी प्रीतिसेवनयोः) प्रीति तथा सेवा ।

लट् प्र० ए० जुषते वह प्रीति करताहै। **लिट्-प्र० ए० जुजुषे** उसने प्रीति की.

४५ विज् (ओविजी भयचलनयोः) भय तथा कंपन। **प्रायेण उत्पूर्वः** । इस धातुके पूर्व प्रायः उद् उपसर्ग रहता है ।

लट्-प्र० ए० उद्विजते वह भय करताहै.

लुट्-प्र० ए० उत्+विज्+इ+ता-

(७१४) विज इट्। १ । २ । २ ॥

विजेः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत् ॥

विज्धातुसे परे इडादि (जिसके आदिमें इट् है) प्रत्यय आवे तो ङिद्वत् (६२९) हो **उद्विजिता**[४४८] वह भय करेगा ।

॥ इति तुदादयः समाप्ताः ॥ ६ ॥

अथ रुधादयः।

१ **रुधू** (रुधिर् आवरणे) आवरण करना, घेरना । उभयपदी, सक० अनिट् ।

(७१५) रुधादिभ्यः श्नम् । ३ । १ । ७८ ॥

शपोऽपवादः ।

रुधादि धातुसे परे श्नम् होय। यह शप्का अपवाद है। श्नम्मेंसे न् शेष रहा। रुन्+ध्+ति-

	परस्मैपद	आत्मनेपद	
लट्-प्र० ए०	**रुणद्धि**[२६५।१५७।५८७।२५।]	**रुन्द्धे**[६१२] (९८२)	वह घेरता है.
लट्-प्र० द्वि०	**रुन्द्धः**[६१२।५८७।२५।९५।९६]	**रुन्धाते**	वे दो घेरते हैं.
लट्-प्र० ब०	**रुन्धन्ति**	**रुंधते**[५६०]	वे घेरते हैं.

		रुन्त्से[९५।९०।९६]	तू घेरता है.
लट्-म० ए०	रुणत्सि[९०]	रुन्धाथे	तुम दो घेरते हो.
लट्-म० द्वि०	रुन्द्धः[५८७।२५।९।९४]	रुन्ध्वे[८]	तुम घेरते हो.
लट्-म० ब०	रुन्ध	रुन्धे	मैं घेरता हूं.
लट्-उ० ए०	रुणध्मि	रुन्ध्वहे	हम दो घेरते हैं.
लट्-उ० द्वि०	रुन्ध्वः	रुन्ध्महे	हम घेरते हैं.
लट्-उ० ब०	रुन्ध्मः	रुरुधे	उसने घेरा.
लिट्-प्र० ए०	रुरोध	रोद्धा	वह घेरेगा.
लुट्-प्र० ए०	रोद्धा[४८६।५८७।२५]	रोत्स्यते[९०]	वह घेरैगा.
लृट्-प्र० ए०	रोत्स्यति	रुन्धाम्	वह घेरे.
लोट्-प्र० ए०	रुणद्धु रुन्धात्[४४५]	रुन्धाताम्	वे दो घेरैं.
लोट्-प्र०द्वि०	रुन्द्धाम्	रुन्धताम्	वे घेरैं.
लोट्-प्र० ब०	रुन्धन्तु	रुन्त्स्व	तू घेर.
लोट्-म० ए०	रुन्धि (८९)	रुणधै	मैं घेरूं.
लोट्-उ० ए०	रुणधानि	रुणधावहै	हम दो घेरैं.
लोट्-उ०द्वि०	रुणधाव	रुणधामहै	हम घेरैं.
लोट्-उ० ब०	रुणधाम	अरुन्ध	उसने घेरा.
लङ्-प्र० ए०	अरुणत्[१६५], अरुणद्	अरुन्धाताम्	उन दोने घेरा.
लङ्-प्र० द्वि०	अरुंधाम्	अरुन्धत	उन्होंने घेरा.
लङ्-प्र० ब०	अरुन्धन्	अरुन्धाः	तूने घेरा.
लङ्-म० ए०	अरुणः, अरुणत्,	रुन्धीत	वह घेरे.
लिङ्-प्र० ए०	रुन्ध्यात्	रुत्सीष्ट[६९७]	ईश्वर करे वह घेरे.
२लिङ्-प्र०ए०	रुध्यात्	अरुद्ध	उसने घेरा.
लुङ्-प्र० ए०	अरुधत्[६६०], अरौत्सीत[५००]	अरोत्स्यत	जो वह घेरे.
लृङ्-प्र० ए०	अरोत्स्यत		

२ भिद् (भिदिर् विदारणे) तोडना ।

३ छिद् (छिदि् द्वैधीकरणे) दो टुकड़े करना । उभ० सक० अनिट् ।

४ युज् (युजिर् योगे) मिलाना । उभय० सक० अनिट् ।

इन तीनों धातुओंके रूप रुध्धातुके समान जानने परन्तु युज्में (९९, ९६) से परसवर्ण होताहै ।

५ रिच् (रिचिर् विरेचने) पेट चलाना । उमय० अक० अनिट् ।

परस्मैपद	आत्मनेपद	
लट्-प्र० ए० रिणक्ति	रिङ्क्ते[६।२८।५८।२६]	वह पेट चलाताहै.
लिट्-प्र० ए० रिरेच	रिरिचे	उसने पेट चलाया.
लुट्-प्र० ए० रेक्ता	रेक्ता	वह पेट चलावैगा.
लृट्-प्र० ए० रेक्ष्यति	रेक्ष्यते	वह पेट चलावैगा,
लङ्-प्र० ए० अरिणक्-ग्[१११] [१६]	अरिङ्क्त	उसने पेट चलाया.
लुङ्-प्र० ए० अरिचत्[६।९१।५००]	अरैक्षीत्, अरिक्त[६२७।५१४]	उसने पेट चलाया.

६ विच् (विचिर पृथग्भावे) पृथक् होना । उमय० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० विनक्ति   आ० विङ्क्ते   वह पृथक् होता है.

७ क्षुद् (क्षुदिर् संपेषणे) पीसना । उमय० सक० अनिट् ।

परस्मैपद	आत्मनेपद	
लट्-प्र० ए० क्षुणत्ति	क्षुन्ते	वह पीसता है.
लुट्-प्र० ए० क्षोत्ता	क्षोत्ता	वह पीसेगा.
लुङ्-प्र० ए० अक्षुदत्, अक्षौत्सीत्	अक्षुत्त[६२७।४६८।५१४]	उसने पीसा.

८ छृद् (उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः) चमकना वा खेलना । उभ० सेट् ।

परस्मैपद	आत्मनेपद	
लट्-प्र० ए० छृणत्ति	छृन्ते	वह चमलता है.
लिट्-प्र० ए० चच्छर्द	चच्छृदे	वह चमका.
लिट्-म० ए० चच्छर्दिथ । चच्छृदिषे	चच्छृत्से	तू चमका.
लुट्-प्र० ए० छर्दिता	छर्दिता	वह चमकैगा.
लृट्-प्र० ए० छर्दिष्यति छर्त्स्यति,	छर्दिष्यते छर्त्स्यते,	वह चमकैगा.
लुङ्-प्र० ए० अच्छृदत् अच्छर्दीत्,	अच्छर्दिष्ट	वह चमका.

९ तृद् (उतृदिर् हिंसानादरयोः) हिंसा करना, अनादर करना । उभ० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० तृणत्ति   आ० तृन्ते   वह हिंसा करता है.

१० कृत् (कृती वेष्टने) घेरना । परस्मै० सक० सेट् ।

लट्-प्र०ए०कृणत्ति वह घेरता है । लुट्-कर्तिता।लृट्-कर्तिष्यति कर्त्स्यति ।

११ तृह (तृह् हिंसायाम्) हिंसा करना । स० सेट्० पर० ।

लट्-प्र० ए० तृणह्+ति—

(७१६) तृणह इम् । ७ । ३ । ९२ ॥

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति ।

हलादि पित् प्रत्यय परे हुए सन्ते तृहको इम्का आगम हो जब श्नम् (७१९) स्थापन किया गया हो ।

तृणेढि[३५।२७६।५८७।७८।५८८] — वह हिंसा करता है.

लट्–प्र० द्वि० तृण्ढः[५५७][६१२।२७६।५८७।७८।५८८।९५-९६] — वे दो हिंसा करते हैं.

लट्–प्र० ब० तृंहन्ति — वे हिंसा करते हैं

लिट्–प्र० ए० ततर्ह — उसने हिंसा की.

लुट्–प्र० ए० तर्हिता — वह हिंसा करेगा.

लङ्–प्र० ए० अतृणेट्[४९९][३५।१९९।२७६।८८।१७५] — उसने हिंसा की.

१२ हिन्स (हिसि हिंसायाम्) हिंसाकरना । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० हिनस्ति (४९८, ७१८) — वह हिंसा करता है.

लिट्–प्र० ए० जिहिंस — उसने हिंसा की.

लुट्–प्र० ए० हिंसिता — वह हिंसा करैगा.

लङ्–प्र० ए० अहिन् न् स ति (७१८, ४९९)

(७१७) तिप्यनस्तेः[६] । ८ । २ । ७३ ॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः । ससजुषोरुरित्यस्यापवादः ।

तिप् परे रहते पदान्त सकारको दकार हो अस् धातुको छोडकर यह सूत्र (१२४) का वाधक है ।

अहिनत् अहिनद् (१६९, १९९)

अहिंस्ताम् अहिंसन् । अहिन्न्+स्+सि (४९९, ७१८, १९९)

(७१८) [६]सिपि धातो[१६९]रुर्वा । ८ । २ । ७४ ॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुर्वा स्यात् ।

धातुके पदान्त सकारको विकल्प करके रु हो ।

अहिनः । अहिनत् (८२)–द् (१६९) लङ्–अहिंसीत् ।

१३ उन्द् (उन्दी क्लेदने) भिजोना ।

लट्–प्र० ए० उनत्ति[७१८] — वह भिजोता हैं.

लट्–प्र० द्वि० उन्त्तः[७१८][६१२-८५।९५।९६] — वे दो भिजोते हैं.

लट्–प्र० ब० उन्दन्ति[७१८।११२] — वे भिजोते हैं.

लिट्–प्र० ए० उन्दाञ्चकार[५४७] — उसने भिजोया.

लङ्–प्र०	ए०	औनत् [७१८।४७५।२१८]	उसने भिजोया.
लङ्–प्र०	द्वि०	औन्ताम् [७१८।६१:।८९।९५।९६]	उन दोने भिजोया.
लङ्–प्र०	ब०	औन्दन् [७१८।६१२]	उन्होंने भिजोया.
लङ्–म०	ए०	औनः [७१८], औनत्-द्	तूने भिजोया.
लङ्–उ०	ए०	औनदम् [७१८]	मैंने भिजाया.

१४ अञ्जू (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकांतिगतिषु)प्रकाश करना, तेल लगाना, सुन्दर होना, जाना। पर० वेट्।

लट्–प्र०	ए०	अनक्ति [७१८] [३३३]	वह प्रकाश करता है.
लट्–प्र०	द्वि०	अङ्क्तः [७१८।६१२] [३३३]	वे दो प्रकाश करते हैं.
लट्–प्र०	ब०	अञ्जन्ति [७१८] [६१२]	वे प्रकाश करते हैं.
लिट्–प्र०	ए०	आनञ्ज [४२७।४२९।४७८।४९९]	उसने प्रकाश किया.
लिट्०म०	ए०	आनञ्जिथ, आनङ्क्थ [५१२]	तूने प्रकाश किया.
लुट्०प्र०	ए०	आञ्जिता, अङ्क्ता [५१२]	वह प्रकाश करेगा.
लोट्–म०	ए०	अङ्ग्धि [५९४]	तू प्रकाश कर.
लोट्–उ०	ए०	अनजानि (७१८)	मै प्रकाश करूं.
लङ्०–प्र०	ए०	आनक् (१९९)	उसने प्रकाश किया.
लुङ्–प्र०	ए०	आञ्जू+स्+ईत् (४७३, ४७९)	

(७१७) अञ्जेः सिचि । ७ । २ । ७१ ॥

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात ॥

अञ्जु धातुसे परे सिच् आवे तो उसे नित्य इट्का आगम हो।

आञ्जीत् (४८१) उसने प्रकाश किया।

१५ तञ्चू (तञ्चु संकोचने) संकोचित होना। पर० वेट्।

लट्–प्र०	ए०	तनक्ति [७१८।३८०]	वह संकुचित होताहै।
लुट्–प्र०	ए०	तङ्क्ता तञ्चिता [५१२]	वह संकोचित होगा.

१६ विजू (ओविजी भयचलनयोः) भय करना, कम्पित होना। पर० अक० सेट्।

लट्–प्र०ए० विनक्ति (३३३) वह कांपताहै

लट्–प्र०द्वि० विङ्क्तः वे दो कांपते हैं

लिट्–म० ए० विविजिथ [७१४।८] तू कांपा

लुट्–प्र० ए० विजिता [४६८] वह कांपेगा.

लङ्–प्र० ए० अविनक् [१९९।३३३] वह कांपा.

लुङ्–प्र० ए० अविजीत् [४८१] वह कांपा.

१७ शिषू (शिष्लृ विशेषणे विशेष करना। पर० सक० अनिट्।

---

१ विज इडिति ङित्त्वम् (७१४) से इट् आगम ङित् (४६८) माना जाता है।

लट्-प्र० ए० शिनष्टि वह विशेष करताहै
लट्-प्र०द्वि० शिंष्टः[६१२।१९५] वे दो विशेषकरतेहैं
लट्-प्र० ब० शिंषन्ति[६१२।९५] वे विशेष करतेहैं
लट्-म० ए० शिनक्षि[५८५] तू विशेष करताहै
लिट्-प्र०ए० शिशेष उसने विशेष किया
लिट्-म०ए० शिशेषिथ[५१५] तूने विशेषकिया
लुट्-प्र० ए० शेष्टा वह विशेष करैगा
लृट्-प्र० ए० शेक्ष्यति[५८६।१७९] वह विशेष करैगा.
लो०म.ए.शिण्ढि,शिण्ड्ढि[७९४।७८।८२।६१२।८९।९५।९] तू विशेषकर.
लोट्-उ ए० शिनषाणि[१५७] मैं विशेषकरूं.
लङ्-प्र.ए.अशिनट्[८२।१६५]-ड् उसनेविशेषकिया
लिङ्-प्र० ए० शिंष्यात्[७१८।१६५] वह विशेष करै
२ लिङ्-प्र० ए० शिष्यात् ईश्वर करै वह विशेष करै.
लुङ्-प्र०ए०अशिषत्[३] उसने विशेषकिया.

१८ पिष् (पिष्ऌ संचूर्णने) पीसना. दलना । पर० सक० अनिट् ।

इस धातुके रूप शिष् धातुके समान जानने ।

१९ भञ्ज् (भञ्जो आमर्दने) तोडना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० भन * न्ज्+ति-

(७१८) श्नान्नलोपः । ६ । ४ । २३ ॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् ॥

श्नम् से परे नकार हो तो उसका लोप हो ।

		भनक्ति (३३३) (७१८)	वह तोडता है.
लिट्-प्र०	ए०	बभञ्ज	उसने तोडा.
लिट्-म०	ए०	बभञ्जिथ (५१८) बभङ्क्थ (५१७)	तूने तोडा.
लुट्-प्र०	ए०	भङ्क्ता[३३३।९५।९६]	वह तोडैगो.
लृट्-प्र०	ए०	भङ्क्ष्यति	वह तोडेगा.
लोट्-प्र०	ए०	भनक्तु	वह तोडै,
लोट्-म०	ए०	भङ्ग्धि	तू तोड.
लुङ्-प्र०	ए०	अभाङ्क्षीत्[५००।३३३।९५।९६।४८०]	उसने तोडा.

२० भुज् (भुज पालनाभ्यवहारयोः) पालन, खाना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० भुनक्ति वह पालता है
लुट्-प्र० ए० भोक्ता वह पालैगा
लृट्-प्र० ए० भोक्ष्यति वह पालैगा.
लङ्-प्र० ए० अभुनक् उसने पाला.

---

* "नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु । सकारजश्शकारश्चे षाट्टवर्गस्तवर्गजः ॥" इति नकारोऽत्र नकारो बोध्यः । धातुओंमें झल् पर रहते अनुस्वार और वर्गोंके पञ्चमवर्ण :नकारज (नकारसे जायमान) जानना । चपर रहते शकारको सकारज, तथा रेफ षकारसे पर टवर्गको तवर्गज जानना. इसीसे यहां ञको 'न' मानकर कार्य होता है ॥

(७१९) भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

तङानौ स्तः ॥

भुज् धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय होय जो उसका अर्थ पालनसे भिन्न होय तो । **लट्–प्र० पु० ए० व० भुङ्क्ते** वह खाता है, यथा "ओदनं भुङ्क्ते" (वह भात खाता है) यहां पालन अर्थ नहीं है इससे आत्मनेपद हुआ.

अनवने किम् ? पालन अर्थमें निषेध क्यों किया ? **महीं भुनक्ति** वह पृथ्वीको पालता है । यदि पालनका निषेध न करते तो यहां भी आत्मनेपद हो जाता, यहां पालन है।

२१ इन्धू (ञिइन्धी दीप्तौ) चमकना । आत्मने० अक० सेट् ।

लट्०प्र० ए० इन्द्धे[७१८।६१२।५४४] वह चमकता है.
लट्–प्र० द्वि० इन्धाते[७१८ ६१२] वे चमकते हैं.
लट्–प्र० ब० इन्धते[७१८।५६२९४४] वे चमकते हैं.
लट्–म० ए० इन्त्से तू चमकता है.
लट्–म० ब० इन्द्ध्वे[७१ ६१२ ८९०९५-९८] तुम चमकते हो.
लिट्–प्र० ए० इन्धाञ्चक्रे[५४७] वह चमका.
लुट्–प्र० ए० इन्धिता वह चमकैगा.

लोट्--प्र० ए० इन्धाम्[७१८।६१२।५५३] वह चमकै.
लोट्–प्र० द्वि० इन्धाताम्[७१८।६१२] वे दो चमकैं.
लोट्–उ० ए० इनधै[७१८।५५५।२१८।४५१] मैं चमकूं.
लङ्–प्र० ए० ऐन्ध वह चमका.
लङ्–प्र० द्वि० ऐन्धाताम् वें दो चमकैं.
लङ्–म० ए० ऐन्धाः तू चमका.
लुङ्–प्र० ए० ऐन्धिष्ट वह चमका.

२२ विदू (विद विचारणे) विचार करना । आ० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० विन्ते वह विचार करता है। लुट्–प्र० ए० वेत्ता वह विचार करैगा.

॥ इति रुधादयः समाप्ताः ॥ ७ ॥

अथ तनादयः ।

१ तनु (तनु विस्तारे) विस्तार करना । उभ० सक० सेट् ।

(७२०) तनादिकृञ्भ्य उः । ३ । १ । ७९ ॥

शपोपवादः ॥

तनादि तथा कृ धातुसे परे उ प्रत्यय हो । यह शप्‌का अपवाद है ।

लट्–प्र०	ए०	तनोति[४२१]	आ० तनुते[५३६।४६८।५४४]	वह विस्तार करता है.
लिट्–प्र०	ए०	ततान	तेने[४९५]	उसने विस्तार किया.
लुट्–म०	ए०	तनितासि	तनितासे	तू विस्तार करेगा.
लृट्–प्र०	ए०	तनिष्यति	तनिष्यते	वह विस्तार करेगा.

लोट्-प्र०	ए०	तनोतु	तनुताम्	वह विस्तार करे.
लङ्-प्र०	ए०	अतनोत्	अतनुत	उसने विस्तार किया.
१ लिङ्-प्र०	ए०	तनुयात्	तन्वीत	वह विस्तार करै.
२ लिङ्-प्र०	ए०	तन्यात्	तनिषीष्ट	भगवान् करै वह विस्तार करै.
लुङ्-प्र०	ए०	अतनीत्.	अतानीत्	आ० अतन्+स्+त—

(७२१) तनादिभ्यस्तथासोः । २ । ४ । ७९ ॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः ॥

त तथा थास् प्रत्यय परे हुए सन्ते तन् आदि धातुओंसे परे सिच् (४७३) का लोप विकल्प करके हो ।

अतत अतनिष्ट उसने विस्तार किया.

लुङ्-म० ए० अतानीः, अतनीः, अतथाः अतनिष्ठाः तूने विस्तार किया.

लृङ्-प्र० ए० अतनिष्यत् अतनिष्यत जो वह विस्तार करे.

२ षणु (षणु दाने) देना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० सनोति, सनुते वह देता है । २ लिङ्-प्र० ए० सन्+या+त्—

(७२२) ये विभाषा । ६ । ४ । ४३ ॥

जन्सन्खनामात्त्वं वा यादौ क्ङिति ॥

जन् (उत्पन्न करना), सन् (देना), खन् (खोदना) इन धातुओंसे परे यकारादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो धातुको आत्त्व हो—

सायात, सन्यात सनिषीष्ट ईश्वर करे वह दे.

लुङ्-प्र० ए० असानीत् असनीत्, उसने दिया । असन्+स्+त—

(७२३) जनसनखनां सञ्झलोः । ६ । ४ । ४२ ॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति ॥

जन, सन् और खन् धातुओंसे परे सन् प्रत्यय (७५३) अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो धातुओंको आकार हो ।

लुङ्-आ० प्र० ए० असात, असनिष्ट उसने दिया.

लुङ्-म० ए० असानीः, असनीः, असाथाः, असनिष्ठाः तूने दिया.

३ क्षणु (क्षणु हिंसायाम्) हिंसा करनी । उभय० सक० सेट् ।

---

१ थासा साहचर्यादेकवचनन्तशब्दो गृह्यते तेनेह न यूयमतनिष्ट इति ।

थास्के साहचर्य्यसे एकवचन त शब्दका ग्रहण होता है अन्यका नहीं तिससे परस्मैपद म० व० 'अतनिष्ट' यहां सिच्लुक् न हुआ ।

लट्-प्र० ए० क्षणोति क्षणुते वह हिंसा करता है,
लुङ्-प्र० ए० अक्षणीत् अक्षत अक्षणिष्ट उसने हिंसा की.
लुङ्-म० ए० अक्षणीः अक्षथाः अक्षणिष्ठाः तूने हिंसा की.

४ **क्षिणु** (क्षिणु च हिंसायाम्) मारना । उम० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० क्षिणोति* क्षेणोति[४८६] क्षिणुते वह हिंसा करता है,
लुट्-प्र० ए० क्षेणिता क्षेणिता वह हिंसा करेगा.
लुङ्-प्र० ए० अक्षेणीत् अक्षित[७२१।५९७।५३६।४६८] अक्षेणिष्ट उसने हिंसा की.

५ **तृणु** (तृणु अदने) खाना । उमय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० तृणोति, तर्णोति । तृणुते, तर्णुते वह खाता है.

६ **कृ** (डुकृञ् करणे) करना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० **करोति** वह करता है। कर्+उ+ते (९४४, ४२१, ९३६)

(७२४) अत उत् सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० ॥

उप्रत्ययान्तकृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति ॥

उ प्रत्ययान्त कृ धातुके अर्थात् करु (७२०) के अकारके स्थानमें उकार हो जो कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होय तो। **कुरुते** वह करता है.

लट्-प्र० द्वि० कृ+उ+तः=कुरुतः=
कुरुतः[७२४] **कुर्वन्ति**[६५२।७२५।४२१।२२०] वे दो करते हैं।

लट्-प्र० ब० कृ + उ + अन्ति=कुर्[७२४] उ + अन्ति यण् होनेपर (६९२) से दीर्घता प्राप्त हुई—

(७२५) न भकुर्छुराम् । ८ । २ । ७९ ॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया न दीर्घः ॥

भ (१८९) संज्ञक तथा कृ धातु और छुर् (काटना) इनकी उपधाको दीर्घ (६९२) न हो.

---

* ' क्षिणु च ' चकारसे हिंसा अर्थ गृहीत होता है। ' उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा '–उ प्रत्यय परे हुए सन्ते लघूपध धातुको गुण विकल्प करके हो विवरण यह है कि, उप्रत्य० यह वाक्य सूत्र वार्तिक वा भाष्यमें नहीं है किन्तु कल्पित है इसका मूल यह है कि " सञ्ज्ञापूर्वको विधिरनित्यः " इस वचनसे किसीके मतमें संज्ञा सूत्रकी अपेक्षा रखनेवाले सूत्र अनित्य हैं इस कारण क्षिणोति में गुण (४८६) न होगा कारण कि (४८६) वां जो विधिसूत्र है सो (२२) वें संज्ञा सूत्रकी अपेक्षा रखता है किसीका मत है कि इसमें प्रमाण नहीं है इससे गुण नित्यही है इससे क्षिणोतिमें गुण होगा इन अभिप्रायोंको लेकर विद्वानोंने एक वाक्यकी कल्पना की है कि, उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा।

कुर्वन्ति कुर्वते वे करते है.

लट् उ० द्वि० कृ+उ+वः-

(७२६) नित्यं करोतेः । ६ । ४ । १०८ ॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः ॥

मकार वकार परे रहते कृधातुके प्रत्ययरूप उकारका नित्य लोप हो ।

कुर्वः कुर्वहे हम दो करते हैं
लट्-उ० ब० कुर्मः कुर्महे हम करते हैं
लिट्-प्र० ए० चकार चक्रे उसने किया
लुट्-प्र० ए० कर्ता कर्ता वह करैगा
लृट्-प्र० ए० करिष्यति करिष्यते वह करैगा.

लोट् प्र० ए० करोतु कुरुताम् वह करै.
लङ्-प्र० ए० अकरोत् (४२१) अकुरुत (७२४) उसने किया
१ लिङ्-प्र० ए० कृ+उ+या+त्

(७२७) ये च । ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये परे ॥

यकारादि प्रत्यय परे हुए सन्ते कृ धातुसे पर उका लोप हो ।

	कुर्यात्	कुर्वीत	वह करै.
२ लिङ्-प्र० ए०	क्रियात्	कृषीष्ट	ईश्वर करै वह करै.
लुङ्-प्र० ए०	अकार्षीत्	अकृत	उसने किया.
लृङ्-प्र० ए०	अकरिष्यत्	अकरिष्यत	जो वह करै.

(७२८) सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे । ६ । १ । १३७ ॥

सम् अथवा परि उपसर्ग पूर्वक भूषणार्थ कृधातुको सुट्का आगम हो.

(७२९) समवाये च । ६ । १ । १३८ ॥

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद्भूषणे संघाते चार्थे ॥

सम अथवा परि उपसर्ग सहित समूहवाचक कृधातुकोभी सुट्का आगमहो ।

लट्-प्र० ए०	संस्करोति	संस्कुरुते	वह अलंकृत करता है.
लट्-प्र० ब०	संस्कुर्वन्ति	संस्कुर्वते	वे इकट्ठे होते हैं.

---

१ पहले वकारका उच्चारण करना उचित था क्योंकि वस् प्रत्यय मस् प्रत्ययसे पूर्व है परन्तु पहले वका उच्चारण करते तो 'लोपो व्योर्वलि' करके वका लोप हो जाता केवल मैं रहनेसे सन्देह होता इसीलिये मकारका उच्चारण पहले किया ।

संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्, संस्कृतम्भक्षा इति ज्ञापकात् ॥

कृधातुसे पूर्व सम् उपसर्ग रहे तो कहीं भूषण अर्थ न हो तो भी सुट् होता है जैसे पाणिनिके सूत्र (संस्कृतं भक्षाः ११२०) में भूषण अर्थ नहीं है, किन्तु संस्कार किया हुआ ऐसा अर्थ है और सुट्भी हुआ है इसीसे उपरोक्त वार्ता जानी गई कि अभूषण अर्थमें भी सुट् होता है ।

(७३०) उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषुं च ।६।१।१३९ ॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः ।

प्रतियत्नो गुणाधानम्, विकृतमेव वैकृतं विकारः, वाक्याध्याहार आकांक्षितैकदेशपूरणम् ॥

उप उपसर्ग (४८) से परे प्रतियत्न, वैकृत और वाक्याध्याहार अर्थमें कृधातुको सुट्का आगमहो । इस सूत्रमें चकार करनेका प्रयोजन यह है कि (७२८, ७२९,) में कहे हुए भूषण और समुदाय अर्थमेंभी कृधातुसे पूर्व उप उपसर्ग आवे तो सुट्का आगमहो । गुण ग्रहण करनेका नाम प्रतियत्न है । विकृतको वैकृत कहते हैं, और कहनेमें छूटी हुई बातोंके पूरा करनेको वाक्यका अध्याहार कहते हैं, (७२८, ७२९, ७३०) इन सूत्रोंमें जो पांच अर्थ कहे हैं उनके वाचक कृधातुसे पूर्व उप उपसर्ग आया है और सुट् हुआ सो उदाहरणमें देखो—

१ **उपस्कृता कन्या**	कन्या अलंकृत हुई (भूषणार्थ)
२ **उपस्कृता ब्राह्मणाः**	ब्राह्मण इकट्ठे हुए (संघात)
३ **एधो दकस्योपस्कुरुते**	लकडी जलके गुणको ग्रहण करतीहै(प्रतियत्न)
४ **उपस्कृतं भुङ्क्ते**	वह विकृत खाता है (विकृत)
५ **उपस्कृतं ब्रूते**	वह वाक्योंका अध्याहार करके बोलता है (वाक्याध्याहार)

केवल आत्मनेपदी क्रिया.

७ वन् (वनु याचने) मांगना । आत्मने०सक० सेट् ।

लट्—प्र०ए० वनुते वह मांगता है । **लिट्—प्र० ए० ववने** उसने मांगा.

८ मन् (मनु अवबोधने) जानना, मानना, बोध करना । आत्मने०सक० सेट् ।

लट्—प्र० ए० मनुते वह मानता है	१ **लिङ्—प्र० ए० मन्वीत** वह माने.
लिट्—प्र०ए० मेने[५५] उसने माना	२ **लिङ्—प्र० ए० मनिषीष्ट** ईश्वर करे वह माने.
लुट्—प्र० ए० मनिता वह मानेगा	
लृट्—प्र० ए० मनिष्यते वह मानेगा	**लुङ्—प्र०ए० अमत अमनिष्ट** उसनेमाना
लोट्—प्र० ए० मनुताम् वह माने	**लृङ्—प्र०ए० अमनिष्यत** जो वह माने.
लङ्—प्र० ए० अमनुत उसने माना	

॥ इति तनादयः समाप्ताः ॥ ८ ॥

अथ क्र्यादयः ।

१ क्री (डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये) उभयपदी । द्रव्य बदलना अर्थात् अपना द्रव्य देकर दूसरेका लेना.

(७३१) क्र्यादिभ्यः श्ना । ३ । १ । ८१ ॥

शपोपवादः ।

क्री आदि धातुओंसे परे श्ना प्रत्यय हो । यह सूत्र, शप (४२०) का अपवाद है.

लट्-प्र० ए०	क्रीणाति[१५७]	क्रीणीते[६५८]	वह मोल लेता है.
लट्--प्र० द्वि०	क्रीणीतः[६५८]	क्रीणाते[६५९]	वे दो मोल लेते हैं.
लट्-प्र० ब०	क्रीणन्ति[६५९]	क्रीणाते[६५९]	वे मोल लेते हैं.
लट्-म० ए०	क्रीणासि	क्रीणीषे	तू मोल लेता है.
लट्-म० द्वि०	क्रीणीथः	क्रीणाथे[६५९]	तुम दोनों मोल लेते हो.
लट्-म० ब०	क्रीणीथः	क्रीणीध्वे	तुम मोल लेते हो.
लट्-उ० ए०	क्रीणामि	क्रीणे[६५९]	मैं मोल लेता हूं.
लट्-उ० द्वि०	क्रीणीवः	क्रीणीवहे	हम दो मोल लेते हैं.
लट्-उ० ब०	क्रीणीमः	क्रीणीमहे	हम मोल लेते हैं.
लिट्-प्र० ए०	चिक्राय[२०२।२१]	चिक्रिये	उसने मोल लिया.
लिट्-प्र० द्वि०	चिक्रियतुः[२२]	चिक्रियाते	उन दोने मोल लिया.
लिट्-प्र० ब०	चिक्रियुः[२२०]	चिक्रियिरे	उन्होंने मोल लिया.
लिट्-म० ए०	चिक्रेथ[५१६], चिक्रियिथ[५१८]	चिक्रियिषे	तूने मोल लिया.
लुट्-प्र० ए०	क्रेता	क्रेता	वह मोल लेगा.
लृट्-प्र० ए०	क्रेष्यति	क्रेष्यते	वह मोल लेगा.
लोट्-प्र० ए०	क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	वह मोल ले.
लङ्-प्र० ए०	अक्रीणात्	अक्रीणीत[६५९]	उसने मोल लिया.
लिङ्-प्र० ए०	क्रीणीयात्[६५८]	क्रीणीत[६५९]	वह मोल ले.
आ०लिङ्-प्र०ए०	क्रीयात्	क्रेषीष्ट	ईश्वर करे वह मोल ले.
लुङ्-प्र० ए०	अक्रैषीत्[५२०]	अक्रेष्ट	उसने मोल लिया.
लृङ्-प्र० ए०	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यत	जो वह मोल ले.

२ प्री (प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) तृप्त करना वा शोभा पाना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्—प्र० ए० प्रीणाति[१५७]　प्रीणीते　वह तृप्त करता है.

३ श्री (श्रीञ् पाके) पाक करना । उभय० सक० अनिट् ।

लङ्—प्र० ए० श्रीणाति　श्रीणीते[१५७]　वह पाक करता है.

४ मी (मीञ् हिंसायाम्) मारना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्--प्र० ए० मीनाति　मीनीते　प्रमीनाति—

(७३२) हिनुमीना[६] । ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात् ॥

उपसर्गस्थ निमित्त (रेफषकार) से परे हिनु तथा मीना शब्दोके नकारको णकार हो ।

लट्--प्र० ए० प्रमीणाति　प्रमीणीते　वह हिंसा करता है.
लिट्--प्र० ए० ममौ[६८१।५२४।४१]　मिम्ये　उसने हिंसा की.
लिट्--प्र० द्वि० मिम्यतुः[२२१]　मिम्याते　उन दोने हिंसा की.
लिट्--म० ए० ममिथ[६८१।५१८।५२५]　ममाथ मिमीषे　तूनेहिंसा की.
लुट्--प्र० ए० माता[६८]　माता　वह हिंसा करैगा.
लृट्—प्र० ए० मास्यति　मास्यते　वह हिंसा करैगा.
२ लिङ्—प्र०ए० मीयात्　मासीष्ट[६८१]　ई० वह हिंसा करै.
लुङ्—प्र० ए० अमासीत्[६८१।५३१]　अमास्त[६८]　उसने हिंसा की.
लुङ्—प्र० द्वि० अमासिष्टाम्　अमासाताम्　उन दोने हिंसा की.

५ षि (षिञ् बन्धने) बांधना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्—प्र० ए० सिनाति सिनीते[६५८]
वह बांधता है.
लिट्--प्र० ए० सिषाय सिष्ये[२२१।१७९]
उसने बांधा.

लुट्--प्र ०ए० :सेता सेता वह बांधैगा

६ स्कु (स्कुञ् आप्लवने) उछलना और उद्धार करना । उभ० सक० अनिट् ।

(७३३) स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च[६]।३।१।८२ ॥

एभ्यः धातुभ्यः श्नुः स्यात् चात् श्ना ।

स्तन्भ् स्तुन्भ् स्कन्भ् स्कुन्भ् और स्कुञ् इन धातुओंसे परे श्नु (६८८) प्रत्यय हो पक्षमें श्ना भी हो.

लट्०प्र० ए० स्कुनोति, स्कुनाति। स्कुनुते, स्कुनीते (६९८) वह कूदकर जाता है।
लिट्-प्र० ए० चुस्काव चुस्कुवे वह कूदकर गया.
लुट्-प्र० ए० स्कोता स्कोता वह कूदकर जायगा.
लुङ्-प्र० ए० अस्कौषीत् अस्कोष्ट वह कूदकर गया.

स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः ॥

स्तुन्भु आदि चार धातु सूत्रमेंही पढे हैं धातुपाठमें नहीं इनका अर्थ रोकना है इनसे परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। **लोट्-म० ए० स्तभ्ना+हि (४४८)—**

(७३४) हलः श्नः शानज्झौ । ३ । १ । ८३ ॥

हलः परस्य श्नः शानच् आदेशः स्यात् हौ परे ॥

हि परे रहते हल्से परे श्ना प्रत्ययके स्थानमें शानच् आदेश हो.

स्तभान तू रोक.

लुङ्-प्र० ए० अस्तम्भ्+च्लि+त्—

(७३५) जॄस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च । ३ । १। ५८ ॥

च्लेरङ् वा स्यात् ॥

जॄ (वृद्ध होना), स्तम्भ् (रोकना), म्रुच् (जाना), म्लुच् (जाना), ग्रुच् (चुराना), ग्लुच् (चुराना), ग्लुञ्च् (जाना), श्वि (जाना), इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें अङ् विकल्प करके हो।

अस्तन्भ्+अ+त्=**अस्तभत्, अस्तम्भीत्** उसने रोका। वि+अस्तभ्+अ+त—

(७३६) स्तन्भेः । ८ । ३ । ६७ ॥

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् ॥

सूत्रमें पठित स्तन्भ् (७३३) धातुके सकारको षकार हो उपसर्गमें स्थित रेफ वा षकार रूप निमित्तसे परे हो तो। **व्यष्टभत्** (३६३) उसने रोका.

७ **यु** (युञ् बन्धने) बांधना। उभ० स० अनि०।

लट्-प्र० ए० युनाति, युनीते वह बांधता है। **लुट्-प्र० ए० योता, योता** वह बांधेगा.

८ **क्नू** (क्नूञ् शब्दे) शब्द करना। उभ० सेट्।

लट्-प्र० ए० क्नूनाति, क्नूनीते वह शब्द करता है। **लुट्-प्र० ए० क्नविता क्नविता** वह शब्द करेगा.

९ दॄ (दॄञ् हिंसायाम्) हिंसा करनी । उभ० स० सेट् ।

लट्–प्र० ए० दॄणाति[२] , दॄणीते वह हिंसा करता है.

१० द्रू (द्रूञ्) हिंसा करनी । उभ० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० द्रूणाति , द्रूणीते[१५७] वह हिंसा करता है.

लुङ्–प्र० ए० अद्रावीत अद्रविष्ट उसने हिंसाकी.

११ पू (पूञ् पवने) शुद्ध करना । उभय० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० पू+नाँ[७२३]+ति—

(७३७) प्वादीनां ह्रस्वः[६] । ७ । ३ । ८० ॥

पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वृञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ कॄ ॠ गॄ ज्या री ली व्ली प्ली एषां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः ।

शित् प्रत्यय परे रहते पू आदि चौवीस धातुओंको ह्रस्व हो.

१ पू शुद्ध करना	९ वॄ स्वीकार करना	१७ कॄ हिंसा करना
२ लू काटना	१० भॄ डरदेना	१८ ॠ जाना
३ स्तॄ ढकना	११ मॄ हिंसा करना	१९ गॄ शब्द करना
४ कॄञ् हिंसा करना	१२ दॄ विदारण करना	२० ज्या बूढा होना
५ वृ स्वीकार करना	१३ जॄ वृद्ध होना	२१ री हिंसा करना
६ धू कंपाना	१४ झॄ वृद्ध होना	२२ ली मिलना
७ शॄ हिंसा करना	१५ धॄ वृद्ध होना	२३ व्ली स्वीकार करना
८ पॄ पालना वा पूरा करना	१६ नॄ प्राप्त करना	२४ प्ली जाना

लट्–प्र० ए० पुनाति पुनीते वह पवित्र करता है । लुट्–प्र० ए० पविता पविता वह पवित्र करेगा.

१२ लू (लूञ् छेदने) काटना । लट्–प्र० ए० लुनाति, लुनीते वह काटता है.

१३ स्तॄ (स्तॄञ् आच्छादने) ढकना । उभ० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० स्तृणाति (२३५) स्तृणीते वह आच्छादन करता है.

लिट्–प्र० ए० तस्तार[४२०।६०१] तस्तरे[६५४] उसने आच्छादन किया.

लिट्–प्र० द्वि० तस्तरतुः[६५४] तस्तराते उन दोने आच्छादन किया.

लुट्–प्र० ए० स्तरीता, स्तरिता, स्तरीता स्तरिता वह आच्छादन करेगा.

१ लिङ्–प्र० ए० स्तृणीयात् स्तृणीत (६५९) वह आच्छादन करे.

२ लिङ्–प्र० ए० स्तीर्यात्[८७०७।६५२॥] स्तॄ+सी+स्+त—

(७३८) लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु । ७ । २ । ४२ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड्वास्यात्तङि ॥

वृ (वृङ्) (सेवा करनी), वृ (वृञ्) (स्वीकार करना) और ॠदन्त धातुओंसे परे आत्मनेपद विषयक लिङ् तथा सिच् आवे तो उसे विकल्प करके इट्का आगम हो । स्तॄ+इ+सी+स्+त=स्तरिषीष्ट-(६९९) से तरि अन्तर्गत इको दीर्घता प्राप्त हुई तब-

(७३९) न लिङि । ७ । २ । ३९ ॥

वत इटो लिङि न दीर्घः ॥

लिङ् परे हुए सन्ते वृङ् अथवा वृञ् अथवा ॠदन्त धातुओंसे परे इट्को दीर्घ (६९९) न हो

स्तरिषीष्ट[738] स्तीर्षीष्ट,[582, 707, 652] ईश्वर करे वह ढके.

लुङ्-प्र० ए० अस्तारीत् । आ० अस्तरीष्ट,[655] अस्तरिष्ट,[638, 582, 270, 652] अस्तीर्ष्ट उसने आच्छादन किया.

लुङ्-प्र० द्वि० अस्तारिष्टाम्[656, 452] आ० अस्तरीषाताम्, अस्तरिषाताम्, अस्तीर्षाताम् उन दोने आच्छादन किया.

लुङ्-प्र० ब० अस्तारिषुः अस्तरीषत, अस्तरिषत, अस्तीर्षत उन्होंने आच्छादन किया

१४ कॄ (कॄञ् हिंसायाम्) हिंसा करनी । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० कृणाति[737] कृणीते वह हिंसा करता है.

लिट्-प्र० ए० चकार चकरे[654] उसने हिंसा की.

१५ वॄ (वॄञ् वरणे) स्वीकार करना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० वृणाति वृणीते[737] वह स्वीकार करता है.

लिट्-प्र० ए० ववार ववरे[654] उसने स्वीकार किया.

लुट्-प्र० ए० वरीता[654] वरिता, वरीता वरिता, वह स्वीकार करेगा.

२ लिङ्-प्र० ए० वूर्यात्,[582, 652] वरिषीष्ट[738] वूर्षीष्ट[582, 651, 652] ईश्वर करे वह स्वीकार करे.

लुङ्-प्र० ए० अवारीत्, अवरीष्ट,[738, 655] अवरिष्ट,[738] अवूर्ष्ट[582, 651, 652] } उसने स्वीकारकिया.

लुङ्-प्र०द्वि०अवारिष्टाम् { अवरीषाताम्,अवरिषाताम्,अवूर्षाताम् उन दोने स्वीकार किया.

१६ धू (धूञ् कम्पने) कँपाना । उभय०सक० सेट् । प्वादि ।

लट्-प्र० ए० धुनाति धुनीते वह कँपाता है.

लुट्-प्र० ए० धविता, धोता धविता, धोता वह कँपावेगा.

लुङ्-प्र० ए० अधावीत अधविष्ट, अधोष्ट उसने कँपाया.

१७ ग्रह् (ग्रह उपादाने) लेना । उभय० सक० सेट् ।

	प०	आ०
लट्-प्र० ए०	गृह्णाति (६७६)	गृह्णीते वह लेता है.
लिट्-प्र०ए०	जग्राह	जगृहे उसने ग्रहण किया.

लुट्-प्र० ए० ग्रह+इ+ता-

(७४०) ग्रहोऽलिटि दीर्घः । ७ । २ । ३७ ॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि ॥

एकाच् ग्रह धातुसे किये हुएको इट्का आगम हो तो उसे दीर्घ हो परन्तु लिट्में दीर्घ न हो ।

ग्रहीता, ग्रहीता वह लेगा । **लोट्-प्र० ए० गृह्णातु, गृह्णीताम्** वह ग्रहण करे, लोट्-म० ए० ग्रह्+ना+हि-

(७४१) हलः श्नः शानज्झौ । ३ । १ । ८३ ॥

हलः परस्य श्नः शानजादेशो हौ ।

हि परे हुए सन्ते हल्से परे श्ना (७३१) को शानच् आदेश हो. शानच्मेंसे (१९९, ९, ७) से आन शेष रहा-

प०	आ०
गृह+आन+हि=गृहाण	गृह्णीष्व तू ग्रहण कर.
२ लिङ्-प्र० ए० गृह्यात्	ग्रहीषीष्ट ईश्वर करे वह ग्रहण करे.
लुङ्-प्र० ए० अग्रहीत्	अग्रहीष्ट उसने ग्रहण किया.
लुङ्-प्र० द्वि० अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषाताम् उन दोनोंने ग्रहण किया.

१८ कुष् (कुष निष्कर्षे) बाहर खैंचना, निखोलना । पर० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० **कुष्णाति** वह निखोलता है

लुट्-प्र० ए० **कोषिता** वह निखोलैगा.

लुङ्-प्र० ए० **अकोषीत्** उसने निखोला

१९ अश् (अश भोजने) भोजन करना । पर० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० **अश्नाति** वह जीमता है

लिट्-प्र० ए० **आश** उसने जीमा

लुट्-प्र० ए० **अशिता** वह जीमेगा

लृट्-प्र० ए० **अशिष्यति** वह जीमेगा.

लोट्-प्र० ए० **अश्नातु** वह जीमे.

लोट्-म० ए० **अशान** तू भोजन कर.

२० मुष् (मुष स्तेये) चुराना । पर० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० **मुष्णाति** वह चुराता है । लिट्-प्र० ए० **मुमोष** उसने चुराया.

लुट्-प्र० ए० मोषिता वह चुरावेगा । लोट्-म० ए० मुषाण[४९।४४।५१।१५७] तू चुरा.

२१ ज्ञा (अवबोधने) जानना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र०ए०जानाति(६८२)वहजानताहै
लिट्-प्र० ए० जज्ञौ[५२४] उसने जाना,
लङ्-प्र०ए० अज्ञासीत् उसने जाना.

२२ वृ (वृङ् संभक्तौ) सेवा करनी । आत्म० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० वृणीते वह सेवा करताहै.
लिट्-म०ए० वव्रृषे तूने सेवा की.
लिट्-म०ब० वव्रृढ्वे तुमने सेवा की.
लुट्-प्र० ए० वरीता[६५५] वरिता वह सेवा करैगा.
लुङ्-प्र०ए० अवराष्ट[६५५] / अवरिष्ट[५८२।५८३] अवृत[३८] } उसनेसेवाकी.

इति क्र्यादयः समाप्ताः ॥ ९ ॥

अथ चुरादयः ।

१ चुर् (चुर स्तेये) चुराना । उभय० सक० सेट् ।

(७४२) सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् । ३ । १ । २५ ॥

एभ्यो णिच् स्यात् स्वार्थे । चूर्णान्तेभ्यः 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषां ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् तिप्शबादि ॥

सत्याप (आपुक्सहित सत्यशब्द), पाश (फांसी), रूप (आकार रंग), वीणा (वीन), तूल (रुई), श्लोक (पद्य, यश), सेना (फौज), लोमन् (बाल), त्वच् (चर्म), वर्मन् (कवच), वर्ण (रंग), चूर्ण (चूरन) इन प्रातिपदिकोंसे तथा चुरादि धातुओंसे परे स्वार्थमें णिच् प्रत्यय हो। चूर्णान्त अर्थात् सत्यापादि चूर्णान्त शब्दोंसे तो 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' (प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें हो) इसीसे सिद्ध था फिर यहां ७४२ में उनका ग्रहण (प्रपञ्चार्थम्) स्पष्टताके लिये है । चुरादि धातुओंमें जिनकी उपधा लघु है उनको (४८६) से णिच् निमित्त मानकर गुण हो और (६०३) से जिन धातुओंके अन्तमें णिच् प्रत्यय होता है वे प्रत्ययसहित धातुसंज्ञक होते हैं इस कारण उनके आगे तिप् आदि प्रत्यय आते हैं.

चुर्+णिच्=चोर्[६] +इ[३]=चोरि इसकी धातु संज्ञा हुई.

लट्-प्र० ए० चोरि+अ[३३] +ति=चोरयति[२९] वह चुराता है.

(७४३) णिचश्च। १। ३। ७४॥

णिजन्तात् आत्मनेपदं कर्तृगामिनि क्रियाफले॥

जब कि क्रियाका फल कर्ताको पहुँचता हो तब णिच् प्रत्ययान्तसे परे आत्मनेपद प्रत्ययहो.

लट्--प्र० ए० चोरयते वह चुराता है (अपने निमित्त)

लिट्-चोरयाञ्चकार चक्रे चोरयाम्बभूव चोरयामास उसने चुराया..

लुट्-प्र० ए० चोरयिता चोरयिता वह चुरावेगा.

२ लिट्-प्र० ए० चोर्यात् चोरयिषीष्ट ईश्वर करै वह चरावै.

लुङ्-प्र० ए० अचुर+इ+च्लि+त् (४८६) से गुण हुआ.

(५६३) से च्लिके स्थानमें चङ् हुआ (९६५) से ओ उपधाको ह्रस्व. हुआ तब अचुर रूप हुआ (९६६) से द्वित्व (४२९) से रका लोप तव अचुचुर्+ई+अ+त्(९६९) से अभ्यासके चुको दीर्घ हुआ तब अचूचुर् (९६४) अ+त्=**अचूचुरत् अचूचुरत** उसने चुराया.

२ कथ (वाक्यप्रबन्धे) कहना । **अदन्तः** । उभ० सक० सेट्० ।

कथ+इ-(४३७) से णिच् आर्धधातुक प्रत्यय परे हैं इस कारण (९०६) से थ अन्तर्गत अका लोप हुआ. कथ्+इ--

लट्-प्र० ए० कथ्+इ+अ+ति (४९०) से वृद्धि प्राप्त हुई--

(७४४) अचः परस्मिन्पूर्वविधौ। १। १। ५७॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः।

किसी परवर्णको निमित्त मानकर जो कोई आदेश अच्के स्थानमें हुआ हो तो वह आदेश जिस अच्के स्थानमें हुआ हो उसीके तुल्य माना जाय, जिस समय कोई विधि (सूत्र) उस अच्के पूर्व वर्णमें लगनेवाला हो।

कथके थ अन्तर्गत अकारसे परे परवर्ण णिच् प्रत्यय का इ है (९०६) से अकारका लोपरूप आदेश हुआहै उससे पूर्व क अन्तर्गत अको (४९०) से वृद्धिकी प्राप्ति है इसकारण थ अन्तर्गत लोपरूप अकारको स्थानिकद्भाव हुआ तो ऐसा जानो कि वह अकार फिर होगया (१९६) से क अन्तर्गत अकारकी उपधा संज्ञा न रहनेसे वृद्धि न हुई अर्थात् काथ् न हुआ तब **कथयति** (४२१, २९) वह कहता है । **कथयाञ्चकार** उसने कहा। **लुङ्-प्र० ए०** कथ+इ+अ+चङ् । (५६३)+त्(९०६)से थ अन्तर्गत अकारका लोप होता है। **अग्लोपित्वादीर्घसन्वद्भावौ न**। इससे (९६९) से जो दीर्घता पाई थी सो न हुई क्योंकि अकार अक् प्रत्याहारके अन्तर्गत है इससे कथ धातु अग्लोपी है तब(९६७)से

सन्बद्भाव करनेसे जो कार्य होता है सो न हुआ, द्वित्व हुआ अचकथत् अचकथत उसने कहा (५६८, ५६९) सूत्रका कार्य न हुआ.

३ गण (संख्याने) गिनना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० **गणयति** **गणयते** वह गिनता है.

लुङ्-प्र० ए० अजगण्+इ+अ (चङ्) त्-

(७४५) ई च गणः । ७ । ४ । ९७ ॥

गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ्परे णौ ॥

चङ्परक णि परे होय तो गण् धातुके अभ्यासको दीर्घ ईकारहो, सूत्रमें जो चकार है उससे विदित होता है कि पक्षमें अकार भी हो ।

अजीगणत् अजगणत्, अजीगणत, अजगणत उसने गिना.

॥ इति चुरादयः समाप्ताः ॥ १० ॥

अथ णिजन्तप्रक्रिया ।

(७४६) स्वतन्त्रः कर्ता । १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ॥

किसी क्रियामें जिसकी स्वतन्त्रतासे विवक्षा हो कि यह क्रियाका करनेवाला है सो कर्तृसंज्ञक हो । रसोई करनेके कार्यमें यह कह सकते हैं कि आग रांधता है, या भोजन बनानेवाला रांधताहै, वा ईंधन पकाताहै. आग, पाक करनेवाला, और ईंधन ए तीनों वक्ताकी इच्छासे कर्ता हो सकतेहैं परन्तु जो स्वतन्त्रतासे करनेवाला है वही कर्ता कहा जा सकता है.

(७४७) तत्प्रयोजको हेतुश्च । १ । ४ । ५५ ॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च ॥

कर्ता (७४६) की प्रेरणा करनेवाला हेतु तथा कर्तृसंज्ञावाला हो ।

(७४८) हेतुमति च । ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ च वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् ॥

प्रयोजकव्यापारमें प्रेरणा (प्रेषणा), अध्येषणा (प्रार्थना) और विज्ञापना इनमेंसे किसी प्रकार की प्रेरणा प्रकाशित करनी होय तो उसधातुसे परे णिच् (७४२) प्रत्यय हो । चाकर सेवक आदिका प्रेरण **प्रेरणा** कहलाती है. अपने बराबर तथा गुरुआदिको प्रेरणा करना **अध्येषणा** कहाती है और राजा स्वामी आदिको प्रार्थनापूर्वक प्रेरण करना **अनुमति** वा **विज्ञापना** कहाती है, यह तीनों प्रेरण शब्दसेभी ग्रहण किये जाते हैं ।

लट्–प्र० ए० भू+इ (णिच्) (५०३, २०१) से भौ+इ+अ[३३०]+ति=भाव्+ए[४२१]+ति= **भावयति** वह होनेवालेको प्रेरण करता है (कर्तृगामी क्रियाफलमें 'णिचश्च' करके आत्मनेपदभी होता है तब **भावयते** इत्यादि रूप जानने)

लिट्–प्र० ए० **भावयाञ्चकार भावयाम्बभूव भावयामास** उसने होवाया.

लुट्–	प्र०	ए०	**भावयिता**	वह होवावेगा.
लृट्–	प्र०	ए०	**भावयिष्यति**	वह होवावेगा.
लोट्–	प्र०	ए०	**भावयतु**	वह होवावै.

लङ्–प्र० ए० **अभावयत्** उसने होवाया। **लिङ्**–प्र० ए० **भावयेत्** वह होवावै. २ **लिङ्**–प्र० ए० **भाव्यात्** ई० वह होवावै.

लुङ्–प्र० ए० अ+भू+इ[७४७]+अ[५६३] (चङ्) त्[४५९]=*अबुभू[५६६।४३२]+इ+अ+त् (५६७) से सन्वत् हुआ—

(७४९) ओः पुयण्ज्यपरे । ७ । ४ । ८० ॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः ॥

सन् पर रहते जो अङ्ग उसका अवयव जो आभ्यासका उकार उसको इकार हो अवर्ण जिनसे पर हो ऐसे पवर्ग, यण् (य व र ल) और जकार परे रहते ।

अबीभवत्[५६९।५६४] उसने होनेवालेको प्रेरणा की । **लृङ्–अभाविष्यत्** जो वह होवावेगा.

स्था (ष्ठा गतिनिवृत्तौ) स्थिति करना, रहना ।

लट्–प्र० ए० ष्ठा+इ+ति=स्था* (२८०) +इ+अ+ति–

(७५०) अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ । ७ । ३ । ३६ ॥

ऋ (जाना), ह्री (लजाना), व्ली (स्वीकार करना), री (मारना), क्नूयी (शब्दकरना) क्ष्मायी (कँपाना), इन धातुओंसे परे तथा आकारान्त धातुओंसे परे णि आवे तो इन धातुओंको पुक्का आगम हो । पुक्में उक् का लोप होकर प् शेष रहा–

स्था+प्+इ+अ+ति **स्थापयति**[४२।२९] वह स्थित कराता है.

लुङ्–प्र० ए० अ+स्था+प्+इ+अ (चङ्)+त्–

---

* 'णिच्यच आदेशो न स्याद्द्वित्वे कर्तव्ये' इति वचनाद्वृद्धेरभावे भू इत्यस्य द्वित्वम् ।

' द्वित्व कर्तव्य रहते णिच्की परता अच्को आदेश नही होता ' इस वचनसे द्वित्वसे पहले वृद्धि न हुई तो भूको द्वित्व हुआ ।

* निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः । जब निमित्तका नाश होजाता है तब, नैमित्तिककाभी नाश होजाता है षकारका नाश होनेसे तन्निमित्त ठकारकाभी नाश होगया.

(७६१) तिष्ठतेरित् । ७ । ४ । ५ ॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ ॥

चङ् है परे जिससे ऐसी णि परे हुए सन्ते स्था धातुकी उपधाके स्थानमें इकार हो। अ+स्थि प्+इ+अ+त् (५६६) से स्थि स्थि हुआ (४२९) से थकारका लोप प्राप्त हुआ परन्तु (६९१) शर् प्रत्याहारगत सकारसे परे खय्का थकार है उसका लोप न होकर सकारका हुआ, तब अभ्यासकी थि शेष रही (४३२) से थिके स्थानमें ति हुई (५६४) से इस (णि) का लोप हुआ (५६९) से स्थिके सकारके स्थानमें ष् हुआ (७८) से थ्के स्थानमें ठ् हुआ तब **अतिष्ठिपत्** उसने स्थित कराया.

घट (घट चेष्टायाम्) चेष्टा करनी।

लट्-प्र ए० घट्+इ+अति (४९०) से घ अन्तर्गत अ उपधाको वृद्धि हुई तब घाट्+इ+अ+ति-**घटादयो मितः** । इस वचनसे यह धातु मित् है तब-

(७६२) मितां ह्रस्वः । ६ । ४ । ९२ ॥

घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः ॥

घट् आदि तथा ज्ञप् आदि धातु जो मित् हैं उनको णिच् मानकर जो वृद्धि हुई हो उसके स्थानमें ह्रस्व हो—

घट्+ए+अ+ति=घट्+अय्+ति **घटयति** वह चेष्टा कराता है.

ज्ञप्० (ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च) जानना वा जनाना.

लट्-प्र० ए० **ज्ञपति** वह जानता है.

लुङ्-प्र० ए० **अजिज्ञपत्** उसने जाना.

॥ इति णिजन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ १ ॥

अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।

(७६३) धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा । ३ । १ । ७ ॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् ।

जिस समय क्रियाका कर्ता और इच्छाका करनेवाला दोनों एकही हों पृथक् न हों तब इच्छा अर्थमें धातुसे परे विकल्प करके सन् प्रत्यय हो; यदि इच्छारूप क्रियाका वह धातु कर्म हो तो।

पठ (व्यक्तायां वाचि) पढना ।

लट्-प्र० ए० पठ्+स-

(७६४) सन्यङोः । ६ । १ । ९ ॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य ॥

सन् (७९३) प्रत्ययान्त तथा यङ् (७९९) प्रत्ययान्त धातुके एकाच् प्रथमभागको द्वित्व हो परन्तु प्रथम भाग अजादि होय तो द्वितीय एकाच् भागको द्वित्व हो (४२७) =पपठ=पिपठ (५६८)+इ+स+अ+ति=**पिपठिषति** (४७४, १६९) वह पढनेकी इच्छा करता है.

(७९३) में धातु इच्छारूप क्रियाका कर्म हो ऐसा लिखा है (**कर्मणः किम् ?**) इसका कारण यह है कि (**गमनेनेच्छति**) गमनसे कुछ करनेकी इच्छा करता है, इसमें गमनरूप क्रिया इच्छारूप क्रियाका कर्म नहीं है किन्तु कारण (क्रियाका साधन) है इस कारण सन् प्रत्यय न हुआ, **समानकर्तृकात् किम् ?** जब क्रियाका कर्ता और इच्छा करनेवाला दोनों एक हों ऐसा क्यों कहा ? उत्तर यह है कि, **शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः** 'गुरु इच्छा करता है कि शिष्य पढैं' इस वाक्यमें पठनरूप क्रियाके कर्ता शिष्य और इच्छा करनेवाला गुरु दोनों एक नहीं हैं, इस कारण इससे सन् प्रत्यय न हुआ । **वाग्रहणाद्वाक्यमपि** । वाग्रहण करनेका यह प्रयोजन है कि, सन्प्रत्ययान्तका अर्थ वाक्यान्तरसे भी प्रकाश किया जायगा, आशय यह कि 'पिपठिषति' आदि वाक्योंके अर्थमें **पठितुमिच्छति** आदिवाक्यान्तरभी होते हैं ।

अद् (अद भक्षणे) खाना ।

(**लुङ्सनोर्घस्लृ**) अद् धातुको घस्लृ आदेश (५९६) से हो सन् परे रहते ।

७५४ ४२५ ४८९ ५६८

लट्—प्र० ए० घस्+स+अ+ति=जिघस् + स+अ+ति—

(७६५) सः स्यार्धधातुके । ७ । ४ । ९ ॥

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके ॥

जिसके आदिमें स् हो ऐसे आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते सके स्थानमें त हो । **जिघत्सति** (३००) वह भोजन करनेकी इच्छा करता है (५११) से इट्का आगम न हुआ ।

कृ (डुकृञ् करणे) करना ।

लट्—प्र० ए० कृ+स+अ+ति—

(७६६) अज्झनगमां सनि । ६ । ४ । १६ ॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ॥

अजन्त धातु हन् (मारना) धातु तथा अच्रूप अर्थात् जाने अर्थमें इण् धातु

और इक् इनके स्थानमें जो गम् आदेश हो उसको झलादि सन् प्रत्यय परे रहते दीर्घ हो ।

कृ+स+अ+ति—

(७५७) इको झल् । १ । २ । ९ ॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित्स्यात् ॥

इक् है अन्तमें जिसके ऐसे धातुसे परे झलादि सन् कित् हो । (७०७) से ऋके स्थानमें इर् हुआ (६१२) से दीर्घ हुआ तब **चिकीर्षति** (७५४, ४२९, ४३०, ४८९), वह करनेकी इच्छा करता है ।

भू-(सत्तायाम्) होना ।

लट्-प्र० ए० बुभू+स+अ+ति (४३४) से इट्का आगम प्राप्त हुआ परन्तु—

(७५८) सनि ग्रहगुहोश्च । ७ । २ । १२ ॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण्न स्यात् ॥

ग्रह (लेना), गुह (ढकना) तथा उक् प्रत्याहारान्त जो धातु इनसे परे सन् प्रत्यय आवे तो इट्का आगम न हो **बुभूषति** वह होनेकी इच्छा करता है ।

॥ इति सन्नन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ २ ॥

अथ यङन्तप्रक्रिया ।

(७५९) धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् । ३ । १ । २२ ॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् ॥

क्रियाका वारंवार करना अथवा उसकी अधिकता प्रकाश करनी हो तो एकाच् हलादि धातुसे परे यङ् हो (९, ७) से यङ् में य् शेष रहता है ।

भू—होना.

लट्-प्र० ए० भू+य=(७५४, ४३२,) बुभूय+अ+ते*

(७६०) गुणो यङ्लुकोः । ७ । ४ । ८२ ॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च ॥

यङ्परे हुए सन्ते अथवा यङ्का लुक् (७६६) से हुआ होय तो अभ्यासको (४२८) गुण हो. बुके स्थानमें वो हुआ तब **बोभूयते** (३००) वह वारंवार वा अतिशय करके होता है । **ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्** । यङ् ङित् है इस कारण यङन्त धातुओंसे (४११) आत्मनेपद होता है ।

---

* बुभूय यह रूप हुआ तो (५०३) से धातुसंज्ञा हुई.

लिट्–प्र० ए० बोभूयाञ्चक्रे । वह वारंवार हुआ ।

लुङ्–प्र० ए० अबोभूयिष्ट वह वारंवार हुआ ।

(७६१) नित्यं कौटिल्ये गतौ । ३ । १ । २३ ॥

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यात् न तु क्रियासमभिहारे ॥

गति अर्थवाले धातुसे परे जो यङ् प्रत्यय हो वह नित्य टेढेही अर्थमें हो क्रियाके वारंवार (७५९) करने और अतिशय अर्थमें न हो ।

व्रज्–(गतौ) जाना ।

लट्–प्र० ए० व्रज्+य=व्रज्य (७५४) वव्रज्य+अ+ते–

(७६२) दीर्घोऽकितः । ७ । ४ । ८३ ॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्यङ्लुकोः ॥

जब यङ् परे हो अथवा उसका लुक् हुआ हो तो जो अभ्यास कित् न हो उसे दीर्घ हो

वाव्रज्यते (३००) वह टेढा जाता है.

लिट्–प्र० ए० वाव्रज्य+आम्+कृ^५०८ —

(७६३) यस्य हलः । ६ । ४ । ४९ ॥

हलः परस्य यस्य लोप आर्धधातुके ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते हल्से परे यकारका लोप हो । वाव्रज्यमें यकारका लोप हुआ (८८) से य् अ (य) में से यके प्रथमभाग य्का लोप हुआ अ शेष रहा और उसका (९०६) से लोप हुआ. **वाव्रजाञ्चक्रे** (७६२) वह टेढा गया.

लुट्–प्र० ए० वाव्रजिता वह टेढा जायगा.

वृत् (वृतु वर्तने) रहना ।

लट्–प्र० ए० वृवृत्+य+ते–

(७६४) रीगृदुपधस्य च । ७ । ४ । ९० ॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्यङ्लुकोः ॥

यङ् परे हुए सन्ते अथवा उसका लोप हुआ हो तो जिस धातुके उपधामें ऋ हो उसके अभ्यासको रीक्का आगम हो रीक्मेंसे (६, ७) से री शेष रही—

वरीवृत्य+अ+ते (१३०) से र्का लोप हुआ–

वरीवृत्यते वह वारवार वर्तता है.

लिट्–प्र० ए० वरीवृताञ्चक्रे । वह वारंवार वर्ता ।

लुट्–प्र० ए० वरीवृतिता वह वारंवार वर्तेगा.

नृत् (नृती) नाचना ।

लट्–प्र० ए० नृनृत्+अ+ते=**नरीनृत्यते** (१५७) से नृ अन्तर्गत न्के स्थानमें ण् प्राप्त हुआ परन्तु–

(७६५) क्षुम्नादिषु च । ८ । ४ । ३९ ॥

णत्वं न ॥

क्षुम्नाति इत्यादि क्षुम्नादिपठित धातुओंके नकारके स्थानमें णकार न हो । **नरीनृत्यते** वह वारंवार नाचता है

ग्रह—लेना—

लट्—प्र० ए० गृगृह+य्+अ+ते-**जरीगृह्यते** (७६४) वह वारंवार लेता है.

॥ इति यङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ ३ ॥

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया ।

(७६६) यङोऽचि च । २ । ४ । ७४ ॥

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात् चकारात् तं विनापि क्वचित् । अनैमित्तिकोऽयम् । अन्तरंगत्वादादौ भवति ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम् अभ्यासकार्यम् । धातुत्वाल्लडादयः । शेषात् कर्तरीति परस्मैपदम् । चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक् ।

अच् (८३८) प्रत्यय परे हुए सन्ते यङ्का लुक् हो । सूत्रमें चकार है उससे विदित होता है कि कहीं अच् परे न होतेभी यङ्का लोप हो । यह लोप अनैमित्तिक है कारण कि, इसके होनेके निमित्त किसी निमित्तकी आवश्यकता नहीं है. अत एव अन्तरंग है, इस कारण पहलेही होता है तब यङ्के लोप होनेपरभी (२१०) सूत्रके अनुसार यङन्तमाननेसे (७९४) से धातुको द्वित्व होता है और फिर यथायोग्य अभ्यासके कार्यभी होते हैं, अर्थात् प्रथम लुक् फिर द्वित्व फिर अभ्यासके कार्य होते हैं (९०३) से यङन्तकी धातुसंज्ञा होकर उससे लट् आदि प्रत्यय होते हैं (४१३) से परस्मैपद प्रत्यय होते हैं (६३७) से यङ्लुगन्तकी गणना अदादिगणमें की है तो (९९०) से शप्का लुक्भी होता है.

(७६७) यङो वा । ७ । २ । ९४ ॥

यङ्लुगन्तात् परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात् । भूसुवोरिति निषेधो यङ्लुकि भाषायां न, बोभूतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात् ॥

जिस धातुसे परे यङ्का लुक् हुआहो, उससे परे हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय आवे तो उसे ईट्का आगम विकल्प करके हो. वेदके विना दूसरे शास्त्रोंमें जहां यङ्का लुक् होता है

वहां (४७९) से गुणका निषेध नहीं होता यह इससे जाना जाता है कि 'बोभूतु' तथा 'तेतिक्ते' यह सूत्रकारने निपातन किया है अर्थात् वेदमें यङ्लुक्में गुणाभाव करके रूप सिद्ध किया है जो (४७९) वां निषेधका सूत्र यहां भी लगता तो यह निपातन करनेकी आवश्यकता क्या थी ? इससे जाना जाता है कि वेदमें यङ्लुगन्त प्रयोगमें गुण नहीं होता और लोकमें (४७९) के न लगनेसे गुण होता ही है ।

लट्-प्र० ए० बोभवीति, बोभोति — वह वारंवार होता है.

लट्-प्र० द्वि० बोभूतः — वे दो वारंवार होते हैं,

लट्-प्र० ब० बोभुवति[६४६।२२०] — वे वारंवार होते हैं.

लट्-म० ए० बोभवीषि, बोभोषि — तू वारंवार होता है

लट्-उ०ए० बोभवीमि, बोभोमि — मैं वारंवार होता हूं.

लिट्-प्र० ए० बोभवाञ्चकार, बोभवामास-म्बभूव — वह वारंवार हुआ.

लुट्-प्र० ए० बोभविता — वह वारंवार होगा.

लृट्-प्र० ए० बोभविष्यति — वह वारंवार होगा.

लोट्-प्र० ए० बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात् — वह वारंवार हो.

लोट्-प्र० द्वि० बोभूताम् — वे दो वारंवार हों.

लोट्-प्र० ब० बोभुवतु — वे वारंवार हों.

लोट्-म० ए० बोभूहि[४४८] — तू वारंवार हो.

लोट्-उ० ए० बोभवानि[४५२] — मैं वारंवार होऊं.

लङ्-प्र० ए० अबोभवीत्, अबोभोत् — वह वारंवार हुआ.

लङ्-प्र० द्वि० अबोभूताम् — वे दो वारंवार हुए.

लङ्-प्र० ब० अबोभवुः — वे वारंवार हुए.

लिङ्-प्र० ए० बोभूयात् — वह वारंवार हो.

लिङ्-प्र० द्वि० बोभूयाताम् — वे दो वारंवार हों.

लिङ्-प्र० ब० बोभूयुः — वे वारंवार हों.

२ लिङ्-प्र०ए० बोभूयात् — ईश्वर करे वह वारंवार हो.

२लिङ्-प्र०द्वि० बोभूयास्ताम् — ई० वे दो वारंवार हों.

२लिङ्-प्र०ब० बोभूयासुः — ई० वे वारंवार हों.

लुङ्-प्र०	ए०	अबोभूवीत्* / अबोभोत	वह वारंवार हुआ.
लुङ्-प्र०	द्वि०	अबोभूताम्	वे दो वारंवार हुए.
लुङ्-प्र०	ब०	अबोभूवुः	वे वारंवार हुए.
लृङ्-प्र०	ए०	अबोभविष्यत्	जो वह वारंवार हो.

॥ इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ ४ ॥

अथ नामधातुप्रक्रिया ।

(७६८) सुप आत्मनः क्यच् । ३ । १ । ८ ॥

इषिकर्मणः एषितुः सम्बंधिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यज् वा ॥

जिस सुबन्तका इच्छा करनेवालेके साथ आत्मसम्बन्ध होय तथा वह इष् धातुका कर्म होय तो उस सुबन्तसे परे विकल्प करके क्यच्[1] प्रत्यय हो. जैसे कोई अपने पुत्रके होनेकी इच्छा करता है तब पुत्रवाचक शब्द इष् धातुका कर्म है कारण कि इष् धातुका अर्थ इच्छा करना है उसका विषय पुत्रवाचक शब्द है और जिसे इच्छा है उसका आत्मसम्बन्धभी है कारण कि वह प्राणी अपने निमित्त पुत्रकी इच्छा करता है दूसरेके निमित्त नहीं. तो पुत्र+य (९०३) से धातुसञ्ज्ञा हुई तब-

(७६९) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः । २ । ४ । ७ ॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक् ॥

जो सुप् धातुका अथवा प्रातिपदिक (१३९) का अवयव हो उसका लुक् हो । पुत्रम् य इसमें अम् धातुका अवयव है क्योंकि (९०३) से क्यजन्तको धातु सञ्ज्ञा हुई है उसका लोप हुआ तब-

पुत्र+य+अ+ति-

*गातिस्थेति सिचो लुक् । यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्वुक् । (७४४) के अनुसार लुङ्में सिच्का लुक् हुआ और (७६७) से जिस पक्षमें इट्का आगम होताहै उस पक्षमें गुण (४२१) को बाधके (४२६) से वुक्का आगम होताहै, कारण कि वुक् नित्य है इस कारण गुणसे अधिक बलवान् है और नित्यविधि वह कहाता है जो विरोधी सूत्रकी प्रवृत्तिके होनेपर भी उदाहरणमें लगसके.

१ क्यच्में (१५५, ५) क् च् का लोप होकर य शेष रहता है ।

(७७०) क्यचि च । ७ । ४ । ३३ ॥

अवर्णस्य ईः ॥

क्यच् (६६८) प्रत्यय परे हुए सन्ते अवर्णके स्थानमें ई हो.

पुत्रीय+अति=**पुत्रीयति** वह अपने निमित्त पुत्रकी इच्छा करता है.

राजानम् आत्मनः इच्छति=राजन्+अम्+य=राजन्य-.

(७७१) नः क्ये । १ । ४ । १५ ॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत् ॥

क्यच् और क्यङ् प्रत्यय परे हुए सन्ते नकारान्तकी ही पद संज्ञा हो दूसरेकी नहीं. पद संज्ञा होकर (२००) से नकारका लोप हुआ तब **राजीयति** वह अपने राजा होनेकी इच्छा करता है । **नान्तमेवेति किम् ?** केवल नकारान्तको क्यों कहा, तो **वाच्यति** वह वाणीकी इच्छा करता है यहां वाच् शब्द नकारान्त नहीं है चकारान्त है इस कारण वाच्की पदसंज्ञा न हुई, जो होजाती तो (३३२) से च्को क् होता ।

हलि च गीर्यति । पूर्यति

गिरम् आत्मनः इच्छति=गिर् अम्+य+अ+ति-

पुरम् आत्मनः इच्छति=पुर् अम्+य+अ+ति-

इसमें (७६९) अम्का लोप होकर गिर्+यति, पुर्+यति रूप हुआ-

(६९२) से दीर्घ हुआ गीर्-यति । पूर्+यति-

गीर्यति वह वाणीकी इच्छा करता है.

पूर्यति वह नगरकी इच्छा करता है.

धातोरित्येव, नेह दिवमिच्छति दिव्यति वह स्वर्गकी इच्छा करता है. दिव् शब्द स्वर्गवाचक प्रातिपदिक है धातु नहीं इससे (६९२) से दीर्घ न हुआ तब दिव्यति सिद्ध हुआ ।

समिधमिच्छति समिध्यति वह लकडीकी इच्छा करता है.

लुट्-प्र० ए० समिध्+य+इता-

(७७२) क्यस्य विभाषा । ६ । ४ । ५० ॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते हल्से परे क्यच् तथा क्यङ्का विकल्प करके लोप हो (८८) से केवल यकारका लोप हुआ (९०) से अकारका लोप हुआ और अकार

लोपके स्थानिवद्भाव करनेसे (४८६) से गुण जो प्राप्त हुआ था सो न हुआ तब **समिधिता** वा **समिधिषिता** वह इंधनकी इच्छा करैगा.

(७७३) काम्यच्च । ३ । १ । ९ ॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात् ॥

(७६८) में कहे अर्थमें काम्यच् प्रत्यय हो.

लट्–प्र० ए० पुत्रकाम्यति वह पुत्रकी इच्छा करता हैं.

लुट्–प्र० ए० पुत्रकाम्यिता वह पुत्रकी इच्छा करैगा.

(७७४) उपमानादाचारे । ३ । १ । १० ॥

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् ॥

उपमानवाचक जो कर्मसंज्ञक सुबन्त उससे परे आचरण अर्थमें क्यच् प्रत्यय हो

लट्–प्र० ए० पुत्रीयति छात्रम्=(पुत्रमिवाचरति) वह शिष्यको पुत्रके समान मानता है.

लट्–प्र० ए० विष्णूयति द्विजम्=(विष्णुमिवाचरति) वह ब्राह्मणको विष्णुके समान मानता है.

(७७५) सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः ॥

सब प्रातिपदिकोंसे विकल्प करके क्विप् प्रत्यय (७७४) के विषयमें हो यह कहना चाहिये । जहां पदसंज्ञा नहीं है वहां (३००) लगता है, क्विप्का, प (१९९,१३०)

कृष्ण इवाचरति=कृष्ण+अ+ति–

लट्–प्र० ए० कृष्णति वह कृष्णके समान आचरण करता.

लट्–प्र० ए० स्वाति (स्व इव आचरति.) वह अपने समान आचरण करताहै.

लिट्–प्र० ए० सस्वौ[५२४] उसने अपने समान आचर किया.

लट्–प्र० ए० इदम्+क्विप्+अ+ति–

(७७६) अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ।६।४। १५ ॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति ॥

क्विप् अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहते अनुनासिकान्तकी उपधाको दीर्घहो

इदामति (इदमिवाचरति) वह इसके समान आचरण करता हैं.

लट्–प्र० ए० राजानति (राजेवाचरति) वह राजाके समान आचरण करता है.

लट्–प्र० ए० पथीनति (पन्था इवाचरति) वह पथके समान आचरण करताहै.

(७७७) कष्टाय क्रमणे। ३। १। १४॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्॥

चतुर्थ्यन्त कष्टशब्दसे परे उत्साह अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो।

लट्-प्र० ए० कष्टाय+य (क्यङ) अ+ते-

(७६९) से सुप्का लुक् हुआ उसके पीछे (९१९) से दीर्घ हुआ-

कष्टायते-(कष्टाय क्रमते पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः) वह पाप करनेको उत्साह करता है.

(७७८) शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे। ३। १। १७॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्॥

शब्द (वचन, आवाज, बोल), वैर (विरोध), कलह (झगडा), अभ्र (बादल), कण्व (पाप), मेघ (बादल) ये शब्द जब कर्म हों तब इनसे परे कर्ता अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो।

लट्-प्र० ए० शब्दम्+य—

(७६९) से विभक्तिका लोप (९१९) से दीर्घ हुआ। शब्दाय+अ+ते=**शब्दायते-(शब्दं करोति)** वह शब्द करता है। **(वैरं करोति) वैरायते**। इत्यादि जानना।

(७७९) (तत्करोति तदाचष्ट) इति णिच्॥

वह अमुक कार्यको करता है, अथवा अमुक बातको कहता है, इन अर्थोंमें णिच् प्रत्यय हो। णिच् हुआ. प्रश्न—जब (७८०) से णिच् सिद्धही है तब फिर (७७९) का क्या प्रयोजन है? उत्तर—(७७९) जो है सो (७८०) हीका 'प्रपञ्च' हैं अर्थात् उसीके अर्थमेंसे स्पष्टार्थ इतना अलग कर लिखा है?

(७८०) प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च॥

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात् इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावर-भावटिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्व-ण्णावपि स्युः। इत्यलोपः। घटं करोत्याचष्टे वा घटयति।

धातुके अर्थमें प्रातिपदिकसे परे णिच् प्रत्यय हो और जब वह णिच् परे हो तब इष्ठन् (१३०७) प्रत्ययके तुल्य कार्य हों अर्थात् जैसे इष्ठ परे रहते स्त्रीलिंगको पुँल्लिंग होता है ऋको र् आदेश, टि (९२) का लोप, विन् (१२८२) प्रत्ययका, और मतुप् (१२६९) प्रत्ययका लोप होता है, यण् आदिका लोप और प्रियशब्दको 'प्र' स्थिरशब्दको

'स्थ' स्फिर शब्दको 'स्फ' इत्यादि आदेश होते हैं तथा भ (१८९) संज्ञा होती है, तैसेही णिच् पर रहते भी कार्य्य हों। लट्-प्र० ए० घटइ+अ+ति णिच् प्रत्यय परे रहते इष्ठन् (१३०७) के तुल्य कार्य हो यह मानकर घट शब्दके टि (९२) संज्ञक अकारका लोप हुआ तब घटि+अति=घटे+अति (४२१)=घटयति (२९) वह घडा बनाता है अथवा घडेको कहाता है।

॥ इति नामधातवः समाप्ताः ॥ ९ ॥

अथ कण्ड्वादयः।

(७८१) कण्ड्वादिभ्यो यक्। ३। १। २७॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे॥

कण्डूञ् आदि गणके धातुओंसे परे स्वार्थमें यक् प्रत्यय नित्य हो।

कण्डू (कण्डूञ् गात्रविघर्षणे) खुजलाना।

लट्-प्र० ए० कण्डू+य (यक्)+अँ+ति (अथवा) ते=**कण्डूयति** वा **कण्डूयते** वह खुजलाता है।

॥ इति कण्ड्वादयः समाप्ताः ॥ १० ॥

अथाऽऽत्मनेपदप्रक्रिया।

(७८२) कर्तरि कर्मव्यतिहारे। १। ३। १४॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम्। व्यतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः॥

जब क्रियाका अदलबदल प्रकाश करना हो तब कर्ता अर्थमें आत्मनेपद प्रत्यय हो। **लूञ्** (छेदने) यह धातु उभयपदी है उसके अदलबदलका प्रकाश करना वि तथा अति उपसर्ग लगाकर होता है। वि+अति+लूञ्=व्यति+लु+ना (७३१) व्यतिलुनी (६९८)+ते= **व्यतिलुनीते** वह दूसरेके उचित काटनेके कामको स्वयं करता है।

(७८३) न गतिहिंसार्थेभ्यः। १। ३। १५॥

गति तथा हिंसार्थक धातुओंसे परे (७८२) से आत्मनेपद प्रत्यय न हो।

लट्-प्र० ब० व्यतिगच्छन्ति वे परस्पर विरुद्ध जाते हैं.

लट्-प्र० ब० व्यतिघ्नन्ति वे परस्पर मारते हैं.

इन दोनों उदाहरणोंके वाक्योंमें भी कर्मका व्यतिहार है, क्योंकि जब वे उनके निकट गमन करते हैं तब बदलेमें वे उनके पास जाते हैं जब वे उन्हें मारते हैं तब पलट कर वे मारते हैं भाष्यकारने इस उलट पलटको भी कर्मव्यतिहार माना है इससे यह न समझना चाहिये कि दूसरेके योग्य कार्यको दूसरा करै, इसी क्रियाके अदलबदलको कर्मव्यतिहार कहते हैं, किन्तु किसी प्रकारका भी क्रियासम्बन्धी उलट पलट हो सो कर्मव्यतिहार कहाता है ।

(७८४) नेर्विशः । १ । ३ । १७ ॥

निपूर्वक विश् धातुसे परे आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों ।

लट्-प्र० ए० निविशते=वह प्रवेश करता है ॥

(७८५) परिव्यवेभ्यः क्रियः । १ । ३ । १८ ॥

परि, वि अथवा अव उपसर्गसे परे क्री धातु आवे तो आत्मनेपद प्रत्यय हो ।

लट्-प्र० ए० परिक्रीणीते वह मोल लेता है । **विक्रीणीते** वह बेचता है । **अवक्रीणीते** वह मोल लेता है ।

(७८६) विपराभ्यां जेः । १ । ३ । १९ ॥

वि अथवा परा उपसर्गसे परे जि (जये) धातु आवे तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हों

लट्-प्र० ए० विजयते वह विजय करता है ।

पराजयते वह पराजय करता है ।

(७८७) समवप्रविभ्यः स्थः । १ । ३ । २२ ॥

सम् अव प्र अथवा वि से परे स्था धातु आवे तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हों ।

लट्-प्र० ए० संतिष्ठते वह भली प्रकार स्थित होता है

लट्-प्र०ए० अवतिष्ठते वह स्थित होताहै

लट्-प्र०ए० प्रतिष्ठते वह यात्रा करता है।

लट्-प्र०ए० वितिष्ठते वह विशेष करके स्थित होता है.

(७८८) अपह्नवे ज्ञः । १ । ३ ।४४ ॥

ज्ञा धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो झूठा करने अर्थमें ।

लट्-प्र० ए० शतमपजानीते (अपलपतीत्यर्थः) वह सौ रुपयेको झूठा करता है ।

(१) (७८९) अकर्मकाच्च । १ । ३ । ४५ ॥

ज्ञा धातु अकर्मक हो तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो.

सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तेत इत्यर्थः ।

घृत उपायसे वह प्रवृत्त होता है ।

(२) (७८९) उदश्चरः सकर्मकात् । १ । ३ । ५३ ॥

जिसके प्रथम उद् उपसर्ग हो ऐसे सकर्मक चर् धातुसे आत्मनेपद प्रत्यय हों । **धर्ममुच्चरते । धर्ममुल्लंघ्य गच्छतीत्यर्थः ।** वह धर्मको उल्लंघन कर जाता है ।

(७९०) समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ५४ ॥

सम् उपसर्ग जिसके पूर्व हो ऐसे तृतीयान्त पदसे युक्त चर् धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । यथा **रथेन सञ्चरते** वह रथद्वारा सुखसे जाता है.

(७९१) दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे । १ । ३ । ५५ ॥

सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे ।

सम् उपसर्ग जिसके पूर्व हो ऐसा दा (दाण्) धातु जो तृतीयान्तपदसे युक्तहो और वह तृतीया चतुर्थीके अर्थमें हुई हो तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । यथा **दास्या संयच्छते कामी** कामी भोगकी इच्छासे दासीको देता है ।

(७९२) पूर्ववत् सनः । १ । ३ । ६२ ॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् ॥

आत्मनेपदी धातुसे परे सन् प्रत्यय आवे तो सन्नन्तसे परे भी आत्मनेपद प्रत्यय हो । एध् धातु आत्मनेपदी है उससे परे सन् प्रत्यय किया फिर उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हुआ- **एदिधिषते** (४३४, ७५४) वह वृद्धिकी इच्छा करता है ।

(७९३) हलन्ताच्च । १ । २ । १० ॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित् ।

इक्समीपवाले हल्से परे झलादि (इट् विना) जो सन् प्रत्यय सो कित् हो । नि विशस (सन्)+ते=**निविविक्षते** वह प्रवेश करनेकी इच्छा करता है । इस प्रयोगमें प्रथम अवस्थामें अर्थात् सन्के पूर्व (७८४) से आत्मनेपद होता है तो सन्नन्त से भी (७९२) से हुआ ।

(७९४) गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः । १ । ३ । ३२ ॥

(गन्धनम् सूचनम्)चुगलीकरना । **(अवक्षेपणम्-भर्त्सनम्)**डराना । **(सेवनम्-सेवा करणम्)** सेवा करनी । **(साहसिक्यम्-सहसा प्रवृत्तिः)**बलात्कार । **(प्रतियत्नः-गुणाऽधानम्)** गुण ग्रहण करना । **(प्रकथनम्-प्रकर्षेण कथनम्)** अच्छी तरहसे कहना । **(उपयोगः धर्म्मार्थ विनियोगः)**धर्म्मार्थ दान । इन अर्थोमें कृधातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो

उत्कुरुते-सूचयतीत्यर्थः=वह चुगली करता है.
श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते-भर्त्सयतीत्यर्थः=बाज बटेरको भय देता है.
हरिम् उपकुरुते-सेवत इत्यर्थः=वह नारायणको सेवता हैं.
परदारान् प्रकुरुते-तेषु सहसा प्रवर्तते=वह अन्यकी स्त्रीके साथ बलात्कार करताहै.
एधो दकस्योपस्कुरुते-गुणमाधत्त इत्यर्थः=लकडी जलका गुण लेती है.
कथाः प्रकुरुते-कथयतीत्यर्थः=वह कथा कहता है.
शतं प्रकुरुते-धर्मार्थं विनियुङ्क्ते वह धर्मार्थ सौ मुद्रा बाँटता है.
एषु किम् ? इन्हीं अर्थोंमें कृधातुसे आत्मनेपद प्रत्यय हो ऐसा क्यों कहा ? **कटं करोति** वह चटाई बनाता है, यहां गन्धन आदि अर्थ नहीं है इससे आत्मनेपद प्रत्यय न हुआ.
भुजोऽनवने (७१९) भुज भोजन अर्थवाचक होय तो उससे परे आत्मने पद प्रत्यय होय यथा **ओदनं भुङ्क्ते**=वह भात खाता है **अनवने किम् ?** और जहां पालन अर्थ है वहां परस्मैपद होता है यथा-**महीं भुनक्ति**=वह पृथ्वीका पालन करता है.

॥ इति आत्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ परस्मैपदप्रक्रिया।

(७९५) अनुपराभ्यां कृञः । १ । ३ । ७९ ॥

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् ॥

जिस क्रियाका फल कर्तामें पहुंचता हो तथा (७९४) के गन्धनादि अर्थोंमेंसे कोई अर्थ हो तो अनु तथा परा उपसर्गसे परे कृधातुसे परस्मैपद प्रत्ययहो.

अनुकरोति अनुकरण करता है,
पराकरोति पराजय करता है.

(७९६) अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः । १ । ३ । ८० ॥

अभि, प्रति तथा अति उपसर्गोंसे परे क्षिप् धातुसे परस्मैपद प्रत्यय हो। **क्षिप्** फेंकना यह धातु स्वरितेत् है (४१२) होनेसे उभयपदी है.

अभिक्षिपति वह सब प्रकार फेंकता है.

(७९७) प्राद्वहः । १ । ३ । ८१ ॥

प्र उपसर्गसे परे वह् धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो। **प्रवहति** वह नदी वहती है.

(७९८) परेर्मृषः । १ । ३ । ८२ ॥

परि उपसर्गसे परे मृष (सहना) धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो। **परिमर्षति** ह सहता अथवा क्षमा करता हैं।

(७९९) व्याङ्परिभ्यो रमः । १ । ३ । ८३ ॥

वि आङ् तथा परि इन उपसर्गोंसे परे रम् (रमु—क्रीडा करना) धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो । **विरमति** वह निवृत्त होता है । नागेशभट्टने इस धातुको उकार-रहित माना है.

(८००) उपाच्च । १ । ३ । ८४ ॥

उप उपसर्गसे परे जो रम् धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो । यथा—**यज्ञदत्तम् उपरमति—उपरमयतीत्यर्थः** वह यज्ञदत्तको निवृत्त करता है । **अन्तर्भावितण्यर्थोयम्** । इस धातुमें णि (७४८) का अर्थ अन्तर्भूत है इस कारण यहां उपपूर्वक रम् धातुका अर्थ निवृत्त होना नहीं किन्तु निवृत्त करना है ।

॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

इति पदव्यवस्था ॥ ७ ॥

अथ भावकर्मप्रक्रिया ।

(८०१) भावकर्मणोः । ३ । १ । १३ ॥

लस्यात्मनेपदम् ।

जब भाव अथवा कर्म अर्थमें लकार हो तो धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो ।

(८०२) सार्वधातुके यक् । १ । ३ । ६७ ॥

धातोर्यक् प्रत्ययः स्यात् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके ।

भाव अथवा कर्मवाचक सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते धातुसे परे यक् प्रत्यय हो ।

भावः क्रिया, सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः, त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ।

भाव क्रियाको कहते हैं, वह क्रिया भाव अर्थमें हुए लकारसे (४०६) अनुवाद की जाती है कारण कि भाव धातुका वाच्य है । भावमें लकार करनेपर लकारके स्थानमें प्रथमपुरुषही होता है मध्यम उत्तम नहीं, कारण कि जब भावमें लकार हुआ तब लकारका अर्थ तो भावही है और युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे कर्ताका बोध होता है इससे समानाधिकरण (४१६) नहीं है तब (४१६, ४१७) के मध्यमपुरुष तथा उत्तमपुरुषके सूत्र नहीं लगते और युष्मद् अस्मद्के साथ एकाधिकरणताके अभावसेही मध्यम और उत्तम पुरुषका अविषय है इसीसे प्रथमपुरुषही होता है और द्रव्यवाचकसे द्विवचन वा

बहुवचन होसकता है यहां तिङवाच्य क्रिया द्रव्य नहीं है इसीसे द्विवचनादि न होकर एकवचनही होता है, जहां द्वित्वादि संख्याकी प्रतीति न हो वहां एकवचन स्वभावहीसे होता है. जिसमें लिङ्ग संख्या और कारक रहैं उसे द्रव्य कहते हैं। लट् भू+य (८०२)+ते (८०१) भूयते=त्वया मया अन्यैश्च भूयते=तुझसे मुझसे और अन्योंसे हुआ जाता है अर्थात् तू होता है, मैं होताहूँ, दूसरे लोग होते हैं। लिट्-प्र० ए० बभूवे (४३३) वह हुआ। लुट्-प्र० ए० भू+तास्+आ+ (डा)=भूता—

(८०३)स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च । ६ । ४ । ६२ ॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च ॥

स्य (४३६), सिच् (४७३), सीयुट् (९९६), अथवा तासि (४३६) इनको परे हुए सन्ते जो धातु उपदेशकालमें अजन्त हों उनको और हन्, ग्रह और दृश इन धातुओंको चिण् (८०४) प्रत्यय परे रहते जैसे अंगसंज्ञानिमित्तक कार्य होते हैं तैसे विकल्प करके हों और जब लकार भावमें वा कर्ममें हुआ होतो। स्यआदि प्रत्ययको इट्का आगमभी हो। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद्वृद्धिः। जिस पक्षमें चिण्वद्भाव होता है उसी पक्षमें इट्का आगमभी होताहै। चिण्वद्भाव होनेसे वृद्धि (२०२) होती है। भू+तास् में चिण्वद्भाव हुआ (२०२) से वृद्धि, इट्का आगम हुआ तब. भौ+इ+ता रूप हुआ=भाव्+इता=भाविता। चिण्वद्भाव न किया तो (४३४) से इट् हुआ=भविता उससे हुआ जायगा.

लृट्-प्र०	ए०	भाविष्यते, भविष्यते	उससे हुआ जायगा.
लोट्-प्र०	ए०	भूयताम्	उससे हुआ जाय.
लङ्-प्र०	ए०	अभूयत	उससे हुआ गया.
१लिङ्-प्र०	ए०	भूयेत	उससे हुआ जाय.
२लिङ्-प्र०	ए०	भाविषीष्ट, भविषीष्ट	ईश्वर करे उससे हुआ जाय.
लुङ्-प्र०	ए०	अ+भू+च्लि+त—	

(८०४) चिण् भावकर्मणोः । ३ । १ । ६६ ॥

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे ॥

भाव अथवा कर्म वाचक त प्रत्यय परे हुए सन्ते च्लिके स्थानमें चिण् हो। चिण्में इ शेष रहती है (१४८, ९, ७)

अभू+इ+त=अभौ+इ+त=अभाव्+इ+त=अभावि उससे हुआ गया.

लृङ्-प्र० ए० अभाविष्यत, अभविष्यत जो उससे हुआ जायगा.

अकर्मकोप्युपसर्गवशात्सकर्मकः । अकर्मक धातुभी उपसर्गके संयोगसे सकर्मक होजाता है । सकर्मक धातुओंसे यहां कर्ममें प्रत्यय होता है । कर्मको युष्मद् अस्मद्के साथ सामानाधिकरण्य रहता है और कर्म्ममें एकत्वादि संख्याकी प्रतीति भी होती है इससे सकर्मकसे सब पुरुष और सब वचन होते हैं ।

लट्–प्र० ए० अनु+भूयते=**अनुभूयते आनंदश्चैत्रेण त्वया मया च ।**

चैत्र नामक पुरुषसे तुझसे और मुझसे आनन्द अनुभव किया जाता है.

लट्–प्र० ब० अनुभूयन्ते चैत्र नामक पुरुषसे तुझसे और मुझसे बहुत आनंद अनुभव किये जाते हैं.

लट्–म० ए० त्वम् अनुभूयसे किसीसे तू अनुभव किया जाता है.

लट्–उ० ए० अनुभूये किसीसे मैं अनुभव किया जाताहूँ.

लुङ्–प्र० ए० अन्वभावि किसीसे वह अनुभव किया गया.

लुङ्–प्र० द्वि० { **अन्वभाविषाताम्** / **अन्वभविषाताम्** } किसीसे वे दो अनुभव–किये गये.

णिलोपः । भू धातुसे परे (७४८) से णिच् किया (९६४) से णिच्का लोप होकर नीचे लिखा रूप हुआ–

लट्–प्र० ए० भाव्यते उससे वह होआया जाता है ।

लिट्–प्र० ए० भावयाञ्चक्रे, भावयाम्बभूवे, भावयामासे किसीसे वह होआया गया.

लुट्–प्र० ए० (भाविता) चिण्वदिट् (८०३) से चिण्वद्भाव और इट्का आगम होता है **भाविता** किसीसे वह होआया जायगा.

आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः । इस उदाहरणमें (९६४) से णिका लोप हुआ कारण कि (६००)से (९६४) के सामने (८०३) का कार्य्य असिद्धहै (८०३) वेंके दूसरे पक्षमें **भावयिता** (४३४, २०२, २९) किसीसे वह होआया जायगा.

२लिङ् प्र० ए० भावयिषीष्ट ईश्वर करै किसीसे वह होआया जाय.

लुङ्–प्र० ए० अभावि किसीसे वह होआयागया.

लुङ्–प्र० द्वि० { **अभाविषाताम्** (५६४) / **अभावयिषाताम्** } किसीसे वे दो हो-आये गये.

(७६१) से सन्नन्तधातुसे परे यक् प्रत्यय करनेसे नीचे लिखे अनुसार रूप होते हैं—

लट्–प्र० ए० बुभूष्यते उससे होनेकी इच्छा की जाती है.

लिट्–प्र० ए० बुभूषाञ्चक्रे उससे होनेकी इच्छा की गई.

लुट्–प्र० ए० बुभूषिता उससे होनेकी इच्छा की जावेगी.

लृट्–प्र० ए० बुभूषिष्यते उससे होनेकी इच्छा कीजावेगी.

यङन्त (७१९) से परे यक् करनेसे नीचे लिखे रूप होते हैं–

लट्–प्र० ए० बोभूय्यते उससे वारंवार हुआ जाता है.

लृट्–प्र० ए० बोभूयिष्यते उससे वारंवार हुआ जायगा.

यङ्लुक्में–

बोभूयते उससे अतिशय करके वा वारंवार हुआ जाता है.

ष्टु (स्तुति करना)

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः (९१९) से दीर्घ होकर–

लट्–प्र० ए० स्तूयते[८०२] **विष्णुः** किसीसे विष्णुस्तुति किया जाता है.

लुट्–प्र० ए० स्ताविता[८०३]**, स्तोता** किसीसे वह स्तुति किया जायगा.

लृट्–प्र० ए० स्ताविष्यते,[८०३] **स्तोष्यते** किसीसे वह स्तुति किया जायगा.

लुङ्–प्र० ए० अस्तावि किसीसे वह स्तुति किया गया.

लुङ्–प्र० द्वि० अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम् किसीसे वे दो स्तुति किये गये.

ऋ (जाना)

गुणोर्तीति गुणः। (९३४) से गुण होता है।

लट्–प्र० ए० अर्यते किसीसे वह गमन किया जाता है।

स्मृ (स्मरण करना)

लट्–प्र० ए० स्मर्यते[५३४] किसीसे वह स्मरण किया जाता है।

लिट्–प्र० ए० सस्मरे किसीसे वह स्मरण किया गया.

* **उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्।** ऋ तथा स्मृ धातु उपदेशमें अजन्त हैं इस कारण (८०१) से चिण्वद्भाव और इट्का आगम होता है–

लुट्–प्र० ए० आरिता[८०२]**, अर्ता** किसीसे वह गमन किया जायगा.

लुट्–प्र० ए० स्मारिता, स्मर्ता किसीसे वह स्मरण किया जायगा.

स्रंसु (गिरना)

अनिदितामिति नलोपः (३६३) से इसके नकारका लोप होता है. **स्रस्यते** उससे गिरा जाता है.

---

* " **परत्वान्नित्यत्वाच्च गुणे रपरत्वे च कृतेऽजन्तत्वाऽभावेऽपीत्यादिः** " आरिता इत्यादि प्रयोगोंमें गुण और चिण्वदिट् इन दोनोंकी साथ ही प्रवृत्ति होती है परन्तु परत्व और नित्यत्वसे पहले गुणही होता है और ऋके स्थानमें होनेसे र परभी होता है तब तो अजन्त न रहनेसे चिण्वदिट् कैसे ? इसका उत्तर यह है कि (५०३) में 'उपदेशे' पद पड़ा है उसका अर्थ यह है कि उपदेशमें जो धातु अजन्त हो तो यहाँ गुण होनेपर अजन्त नहीं है पर उपदेशमें तो हुई है इसीसे चिण्वदिट् होता है।

परन्तु (**इदितस्तु**) आनंदित होना या बढना इस अर्थवाले नन्द (नदि) धातुके तुल्य जो धातु इदित् हैं उनके नकारका लोप (३६३) से नहीं होता क्योंकि सूत्रमें (**अनिदिताम्**) जो इदित् न हों ऐसा कहा है—

लट्—प्र० ए० नन्द्यते उससे आनन्दित हुआ जाताहै.

यज् (देवपूजा करना.)

सम्प्रसारणम्—यज् धातुके यण्को (९८९) के अनुसार सम्प्रसारण (२८१) से इकार होता है कारण कि यक् प्रत्यय कित् है—

लट्—प्र० ए० इज्यते किसीसे वह पूजा जाता है.

तन् (विस्तार करना)

लट्—प्र० ए० तन्+यते=

(८०५) तनोतेर्यकि । ६ । ४ । ४४ ॥

आदन्तादेशो वा ॥

तन् धातुसे परे यक् प्रत्यय (८०१, ८०२) आवे तो धातुके नकारके स्थानमें विकल्प करके आकार हो ।

तआ+य+ते=**तायते** अथवा **तन्यते** किसीसे वह विस्तार किया जाता है.

तप् (संताप पाना, पश्चात्ताप करना)

लट्—प्र० ए० तप्यते उससे तापित हुआ जाता है.

लुङ्—तप+च्लि+त (८०४) से च्लिको चिण् प्राप्त हुआ परन्तु—

(८०६) तपोऽनुतापे च । ३ । १ । ६५ ॥

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च ॥

संतापवाचक तप् धातुका जब कि कर्मही कर्ता रहे (८१०) तो अथवा तप् धातुका अर्थ पश्चात्ताप होय तो उससे परे च्लिके स्थानमें चिण् न हो । **अन्वतप्त पापेन** पापीने पछताया यहां भाव अर्थमें लकार हुआ और कर्म अर्थमें लकार करनेसे यह अर्थ होता है कि पापरूप कर्तासे वह संतापित हुआ यह उदाहरण अनुताप अर्थमें है, कर्मकर्ता अर्थमें नहीं ।

दा (देना), **धा** (धारण करना)

घुमास्थेतीत्वम् (६२६) में कहे घुसंज्ञक आदि धातुओंको इकार हो—

लट्—प्र० ए० दीयते किसीसे वह दिया जाता है.

लट्—प्र० ए० धीयते किसीसे वह धारण किया जाता है.

लिट्—प्र० ए० ददे किसीसे वह दियागया.

लुट्—प्र० ए० दा+ता=तासि प्रत्यय परे होनेसे (८०३) चिण्वद्भाव हुआ । तब

(८०७) आतो युक् चिण्कृतोः । ७ । ३ । ३३ ॥

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च ।

चिण् अथवा ञित् णित् (३२९) कृत् प्रत्यय परे हुए सन्ते आकारान्त धातुको युक्का आगम हो ।

दा+य् (युक्) ता=दाय्ता (८०३) इट् हुआ **दायिता दाता** किसीसे वह दिया जायगा.

२ लिङ्–प्र० ए० **दायिषीष्ट**, **दासीष्ट** ईश्वर करै कि वह किसीसे दिया जाय.

लुङ्–प्र० ए० **अदायि** किसीसे वह दियागया.

लुङ्–प्र० द्वि० **अदायिषाताम्** (८०३) किसीसे वे दो दियेगये.

भञ्ज् (तोडना)

लट्–प्र० ए० **भज्यते** किसीसे वह तोडा जाता है.

लुङ्–प्र० ए० अभन्ज्+इ(चिण्)+त्–

(८०८) भञ्जेश्च चिणि । ६ । ४ । ३३ ॥

नलोपो वा स्यात् ।

चिण् परे हुए सन्ते भञ्ज् धातुके नकारका लोप विकल्प करके हो.

अभाजि, अभञ्जि किसीसे वह तोडागया.

लभ् (पाना)

लट्–प्र० ए० **लभ्यते** किसीसे वह पाया जाता है.

लुङ्–प्र० ए० अ+लभ्+इ (चिण्) त–

(८०९) विभाषा चिण्णमुलोः । ७ । १ । ६९ ॥

लभेर्नुमागमो वा स्यात् ॥

चिण् अथवा णमुल् प्रत्यय परे हुए सन्ते लभ धातुको विकल्प करके नुमका आगम हो ।

अलन्भि=**अलम्भि अलाभि** किसीसे वह पायागया.

इस प्रक्रियाके अर्थमें कर्ताके आगे जो (से) रक्खा गया है सो कर्तृप्रत्ययान्त और कर्मप्रत्ययान्त प्रयोगोंके भेद जाननेके निमित्त है वास्तवमें तो कर्तृप्रत्ययान्तके सदृश यहां भी अर्थ करना उचित है ।

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया समाप्ता ॥ ८ ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

(८१०) यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च लकारः ॥

जब कि कर्महीको कर्ता माननेकी इच्छा हो तब सकर्मक धातुभी अकर्मक हो जाते हैं, पीछे उन कर्महीन धातुओंसे परे (४०९) से कर्ता अथवा भाव अर्थमें लकार होते हैं ।

(८११) कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः । ३ । १ । ८७ ॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात् कार्यातिदेशोयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः ॥

कर्ममें स्थित जो क्रिया उसके समान जिस कर्ताकी क्रिया हो सो कर्ता कर्मके तुल्य हो, आशय यह कि उसको कर्मके कार्य हों इस कारण यक् (८०२) आत्मनेपद प्रत्यय (८०१) च्लिके स्थानमें चिण् (८०४) तथा चिण्वद्भाव और इट् (८०३) होतेहैं । **कालः पचति फलम्** इसमें पकजाना व्यापाररूप क्रिया फलरूप कर्ममें है और जब कालरूप कर्ताकी अविवक्षा हुई फलरूप कर्महीको कर्ता माना तब पकजानारूप क्रिया कर्मकर्ता (फल) में है तो कर्ममें रहनेवाली क्रियाके तुल्य (उसी) क्रियावाला कर्ता फल होगया तो कर्मवद्भाव होता है । पच् धातु सकर्मक है उसको कर्ममें कर्ताकी विवक्षा हुई तो (८१०) से अकर्मक मान कर्ता अर्थमें लकार कर (८०२) से यक् हुआ, (८०१) से आत्मनेपद प्रत्यय होकर पच्+य+ते=**पच्यते** हुआ; ऐसेही **भिद्यते** जानो।

लट्-प्र० ए० पच्यते फलम् फल स्वयं पकता है.
लट्-प्र० ए० भिद्यते काष्ठम् काष्ठ स्वयं फटता है.
लुङ्-प्र० ए० अपाचि[८०४।६८४।४९०] वह आपसे पका.
लुङ्-प्र० ए० अभेदि[४८८] वह आपसे फटा.

भावे तु-भिद्यते काष्ठेन काष्ठसे फटा जाता है । **पच्यते फलेन** फलसे पका जाता है

जब लकार भावको प्रकाश करता है तब कर्ता अनुक्त होजाता है इस कारण कर्तृवाचकसे तृतीया आती है । 'फलेन' 'काष्ठेन' इत्यादि ॥

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्ता ॥ ९ ॥

अथ लकारार्थप्रक्रिया ।

(८१२) अभिज्ञावचने लट् । ३ । २ । ११२ ॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लट् ॥

जब स्मरणवाचक कोई शब्द धातुका उपपद हो तो अनद्यतनभूत अर्थमें धातुसे परे लट् (४२१) लकार हो यह सूत्र लङ् (४९७) का अपवाद है ।

वस् (निवास करना)

लट्–प्र० ए० वस्+स्य+मस्—

स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः[४२३] कृष्ण तुम्हें याद है कि हम गोकुलमें रहते थे. यहां स्मरणवाचक प्रयोग होनेसे लट् लकार हुआ. **एवं बुध्यसे । चेतयसे इत्यादि प्रयोगेऽपि** इसी प्रकार **बुध्यसे** क्या तू स्मरण करता है ? **चेतयसे** क्या तू चेत करता है ? इन प्रयोगोंके योगमें भी लट् होता है कारण कि यहां बुध और चिती धातुका स्मरण अर्थ है ।

(८१३) न यदि । ३ । २ । ११३ ॥

यद्योगे उक्तं न ॥

यद् शब्दके साथमें जब स्मरणवाचक शब्द हो तो (८१२) से धातुसे परे लट् न हो । यथा—**अभिजानासि यद्वने अभुञ्ज्महि** (लङ प्र० ब०) तुम्हें याद है ? जो बनमें हमने भोजन किया था. यहां लङ् ही हुआ ।

(८१४) लट् स्मे । ३ । २ । ११८ ॥

लिटोऽपवादः ॥

जो 'स्म' शब्दका योग धातुके साथ हो तो उससे परे लट् (४०७) हो यह सूत्र लिट् (४२४) का अपवाद है इससे यह सिद्ध होता है कि यह लकार भूत और अनद्यतन परोक्ष कालकी भी अपेक्षा रखता है । यथा **यजति स्म युधिष्ठिरः** युधिष्ठिरने यज्ञ किया । यहां **यजति** यह वर्तमान काल है परन्तु स्मके योगसे भूतकालका अर्थ हुआ ।

(८१५) वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा । ३ । ३ । १३१ ॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः ॥

वर्तमान अर्थमें जो प्रत्यय कहे हैं, सो वर्तमानके समीप भूत और भविष्य अर्थमें भी विकल्पसे किये जांय.

यथा **कदाऽऽगतोसि** तू कब आया ? इसके उत्तरमें **अयमागच्छामि** मैं अभी आया हूं अथवा **आगमम्** मैं अभी आयाहूं और **कदा गमिष्यसि** तू कब जायगा ? उत्तर-**एष गच्छामि** अभी जाता हूं. वा **गमिष्यामि** अभी जाताहूं.

(८१६) हेतुहेतुमँतोर्लिङ् । ३ । ३ । १५६ ॥

वा स्यात् ॥

जहां कार्यकारणभाव प्रकाश करना होय वहाँ धातुसे परे लिङ् (४६०) विकल्प करके हो।

कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् (वा) **कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति** जो कृष्णको नमस्कार करै तो सुख पावै । **भविष्यत्येवेष्यते** । यह विधि केवल भविष्यकाल-मेंही लगता है इससे **नेह** आगे लिखे उदाहरणमें नहीं लगता-**हन्तीति पलायते** वह मारता है इससे दूसरा भागता है ।

विधिनिमन्त्रणेतिलिङ् (४६०) से विधि तथा निमन्त्रण आदि अर्थोंमें धातुसे परे लिङ् लकार हो.

१ विधिः-प्रेरणम् भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । आज्ञा करना ' विधि ' जैसे किसी पराधीन भृत्यआदि क्षुद्र मनुष्यको किसी कार्यमें प्रवृत्त करना यथा-**यजेत** वह पूजा करै।

२ निमन्त्रणं-नियोगकरणम्=आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् । भोजनादि करानेका आदेश ' निमन्त्रण ' जैसे आवश्यक श्राद्धभोजनादिमें धेवते आदिको प्रेरणा करना यथा-**इह भुञ्जीत** वह यहां खाय ।

३ आमन्त्रणं-कामचारानुज्ञा=किसीको उसकी इच्छाके अनुसार अनुमति देना ' आमन्त्रण ' यथा-**इहासीत** यदि इच्छा हो तो यहां बैठो.

४ अधीष्टं-सत्कारपूर्वको व्यापारः=आदरपूर्वक प्रेरणा ' अभीष्ट' जैसे कोई गुरुसे शिष्टाचारपूर्वक प्रेरणा करे कि-**पुत्रमध्यापयेत भवान्** आप हमारे पुत्रको पढाइये.

५ संप्रश्नः-संप्रधारणम्=किसीसे उचित वा अनुचित वार्ताका पूँछना ' संप्रश्न,' यथा-**किम् भो ! वेदमधीयीय उत तर्कम् ?** कहिये मैं वेद पढूं या न्यायशास्त्र.

६ प्रार्थनम्-याच्ञा=मांगना ' प्रार्थन ' यथा-**भो भोजनं लभेय** । हे अमुक ! मैं भोजन पाऊं अर्थात् मुझको भोजन दो । **एवं लोट्** । इसी प्रकार लोट् (४४२) कामी विधान होता है ।

॥ इति लकारार्थप्रक्रिया समाप्ता ॥ १० ॥

॥ इति तिङन्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया।

अब वह कृदन्तप्रक्रिया लिखते हैं जिसमें शब्दोंके अन्तमें कृत्संज्ञक प्रत्यय होते हैं।

(८१७) धातोः। ३। १। ९१॥

आ तृतीयाध्यायसमाप्तेः ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः।
कृदतिङ् इति कृत्संज्ञा॥

अष्टाध्यायीमें 'धातोः' इस सूत्रसे आरम्भकर तीसरे अध्यायके अन्ततक जो प्रत्यय कहे हैं वे सब धातुओंसे परे हों। (३२९) से सब प्रत्ययोंकी कृत्संज्ञा होती है॥

(८१८) वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्। ३। १। ९४॥

अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना॥

(८१७) सूत्रके अधिकारमें किसी प्रत्ययका दूसरा असमान (भिन्नरूप) कोई अपवाद प्रत्यय हो तो वह स्त्रीके अधिकारवालों (९१९) को छोडकर उत्सर्ग अर्थात् बाध्यको विकल्प करके बाधे॥

(८१९) कृत्याः। ३। १। ९५॥

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक्कृत्यसंज्ञाः स्युः॥

इस सूत्रसे प्रारम्भकर 'ण्वुल्तृचौ' (८३६) सूत्रके पूर्व जिन प्रत्ययोंका विधान हैं वे कृत्य प्रत्यय कहलावें।

(८२०) कर्तरि कृत्। ३। ४। ६७॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्॥

कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्ता अर्थमें हो। इससे सब कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थमें प्राप्त हुए पर—

(८२१) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः। ३। ४। ७०॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः॥

कृत्य (८१९) क्त (८६७) और खल् प्रत्ययके अर्थमें होनेवाले जो प्रत्यय (९३४) हैं वे भाव तथा कर्म अर्थमें हों।

(८२२) तव्यत्तव्यानीयरः। ३। १। ९६॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः॥

तव्यत्[1] तव्य और अनीयर् ए प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थमें धातुसे हों। तव्यत् तथा अनीयर्

---

१ इसका तकार स्वर (अर्थात् 'तित्स्वरितम्' से स्वरित) होनेके लिये है।

मेंसे त् तथा र्का (९, ७) से लोप हुआ, जैसे एध् धातु वृद्धि अर्थमें है उससे परे भावार्थ प्रत्यय तव्य (त्) अथवा तव्य किया तब **एध्+तव्य** ऐसी स्थिति हुई (४३७) तव्यकी आर्धधातुक संज्ञा हुई (४३४) से इट्का आगम हुआ **एध्+तव्य=एधितव्य**-रूप हुआ इसके अन्तमें तव्य यह कृत्प्रत्यय है (१३६) से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई (१३७) से विमक्ति प्रत्यय लगा **'भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वंच'** भाव अर्थमें स्वाभाविक एकवचन तथा नपुंसकलिंगका व्यवहार होता है इससे प्रथमा विमक्तिके प्रथम पुरुषके एकवचन सुप्रत्ययके स्थानमें (२९८) से अम् किया तो **एधितव्य+अम्=एधितव्यम्** (१९४) रूपहुआ त्वयाका योग करके **त्वया एधितव्यम्**=तुझे बढना उचित है, और एध् धातुसे भावअर्थमें अनीयर् प्रत्यय करके **एध्+अनीय** रूप हुआ उससे परे **प्र० वि० ए० व०** प्रत्ययके स्थानमें अम् कर त्वयाके साथ **त्वया एधनीयम्**-तुझे बढना उचित है ।

चि (संचय करना) धातुसे कर्म अर्थमें प्रत्यय करनेसे नीचे लिखे अनुसार रूप हुए-

चि+तव्य=(४३७, ४२१) चेतव्य=चेतव्यः (१३६, १३७)

चि+अनीय=(४३७, ४२१)=चयनीय=चयनीयः ।

प्र० पु० ए० चेतव्यः (अथवा) **चयनीयः धर्मस्त्वया**=तुझे धर्म संचय करना चाहिये ।

(८२३) केलिमर उपसंख्यानम् ॥

वार्तिककार कहते हैं कि ऊपर लिखे (८२२) सूत्रमें भाव तथा कर्म अर्थमें जो प्रत्यय विधान किये हैं उनमें केलिमर प्रत्ययकाभी विधान करना । इससे भाव तथा कर्ममें केलिमर् प्रत्यय होता हैं,

पच् (पकाना) धातुसे परे कर्ममें केलिमर् प्रत्यय करके (१९९) से क् तथा र् का(९, ७) लोप हुआ. **पच्+एलिम=पचेलिम** रूप हुआ इसका पुँल्लिगप्रथमाके बहुवचन 'माषाः (उडद) के साथ संयोग किया तो पु० प्रथमाके बहुवचनका प्रत्यय (जस्=आः) लगाया तो **पचेलिमाः माषाः**=उडद रांधने योग्य हैं ।

इसी प्रकार मिद् धातुसे केलिमर् करके भिदेलिम रूप हुआ उसका योग पुँल्लिग प्रथमाके बहुवचन 'सरलाः' (देवदारु) के साथ करके **भिदेलिमाः ४८६, ४६८ सरलाः**= देवदारु काटने योग्य हैं ।

(८२४) कृत्यल्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ ॥

कृत्य (८१९) संज्ञक तथा ल्युट् प्रत्यय बहुतप्रकारसे होते हैं ।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥ १ ॥

जहां इनके लगनेका सूत्र विधान नहीं करता वहां लगजाते हैं और जहां उनके आनेके लिये सूत्रविधि करता है कभी वहां नहीं लगाये जाते, कभी उनका विधान विकल्पसे होता है, और कभी इन तीनों प्रकारसे भिन्न विधान होता है, कितने सूत्रं भिन्न प्रकारके काम करते देखे जाते हैं इस कारण उनके चार भेद हैं। 'ल्युट्में (१९९, ९, ७) से यु शेष रहा ।

स्ना (शुद्ध करना) धातुसे परे 'अनीयर्' प्रत्यय कृत्संज्ञक किया (८२२)

स्नाअनीय=स्नानीय+अम् स्नानीयम् न० प्र० ए० स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्=जिससे स्नान कियाजाय उबटन आदि ।

दा (देना)

दा+अनीय=दानीय पु० प्र० ए० दानीयः। दीयतेस्मै **दानीयो विप्रः** जिसके लिये दियाजाय अर्थात् ब्राह्मण (८२१) से कृत्यसंज्ञक अनीयर् प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थमें होता है, परन्तु ऊपरके उदाहरणोंमें आचार्योंने उसके विपरीत व्यवहार किया है, पहले उदाहरणमें चूणरूप करणकारकमें और दूसरे प्रयोगमें विप्ररूप संप्रदानकारकमें प्रत्यय हुआ है.

(८२५) अचो यत् । ३ । १ । ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत्स्यात् ।

अजन्तधातुसे परे यत् प्रत्यय हो ।

चि संचय करना । **चि+य=चे**[४२१] **+य=चेय+अम्=चेयम्** (न० प्र० ए०)संचय करनेके योग्य । इस स्थानमें कृत्संज्ञक यत् प्रत्यय योग्य अर्थमें हुआ है ।

दा (देना) **दा+य—**

(८२६) ईद्यति । ६ । ४ । ६५ ॥

यति परे आत ईत् स्यात् ।

यत् प्रत्यय परे हुए सन्ते धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो **दीय=देय** (४२१)**=देय+अम्=देयम्** जो देनेके योग्य है। इसी रीतिसे **ग्ला** (ग्लानि करना) **ग्लीय्=ग्लेय अम्=ग्लेयम्**=जो ग्लानि करनेके योग्य है ।

(८२७) पोरदुपधात् । ३ । १ । ९८ ॥

पवर्गान्तादुपधाद्यत् । ण्यतोऽपवादः ।

जो धातु पवर्गान्त होय उसकी उपधामें अकार हो तो उससे परे यत् प्रत्यय हो ।

(८३२) से ण्यत् होता है उसका अपवाद यह यत् होता है.

शप्+य=शप्य+अम्=शप्यम्=जो शपथ करनेके योग्य है.

लभ्+य+लभ्य+अम्=लभ्यम्=जो प्राप्त करनेके योग्य है.

(८२८) एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् । ३ । १ । १०९ ॥

एभ्यः क्यप् स्यात् ।

इण् (जाना), ष्टु (स्तुति करना), शास् (शिक्षा करनी), वृ (स्वीकार करना), दृ (आदर करना) और जुष् (सेवा अथवा प्रीति करना) इन धातुओंसे परे क्यप् प्रत्यय हो । क्यप्मेंसे (१९९, ९, ७) से य शेष रहा.

(८२९) ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् । ६ । १ । ७१ ॥

जिसका पकार इत्संज्ञक हो ऐसा कृत् प्रत्यय परे हो तब धातुके ह्रस्वको तुक्का आगम हो—

इ+त+य=(४८६, ४६८) **इत्य=इत्यः**=जो जाने योग्य है.

स्तु+त+य=स्तुत्य=स्तुत्यः=जो स्तुति करनेके योग्य है.

शास् (शासु अनुशिष्टौ) शासन करना.

(८३०) शास इदङ्हलोः । ६ । ४ । ३४ ॥

शास उपधाया इत् स्यादङि हलादौ क्ङिति ।

अङ् प्रत्यय (६३९) अथवा हलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हुए सन्ते शास् धातुकी उपधाको इकार हो ।

शिस् (शिष्) (५९२)+य=शिष्य=शिष्यःपु०प्र०ए०**शासितुं योग्यः**= जो सिखानेके योग्य है.**वृ+त्**[८२९]**+य=वृत्य=वृत्यः**—जो स्वीकार करनेके योग्य है ।**आदृत्यः** जो आदरके योग्य है । **जुष्यः**—जो सेवा करनेके योग्य है.

(८३१) मृजेर्विभाषा । ३ । १ । ११३॥

मृजेः क्यप् वा ।

शुद्ध करने अर्थमें जो मृज् धातु है उससे परे विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो । **मृज्यः**— शुद्ध करनेके योग्य.

(८३२) ऋहलोर्ण्यत् । ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् ।

ऋकारान्त तथा हलन्तधातुसे परे ण्यत् प्रत्यय हो ।

कृ+य (ण्यत्)=कार्य (२०२)+अम्=कार्यम् करनेके योग्य.

हृ+य=हार्य (२०२)+अम्=हार्यम्=हरनेके योग्य.
धृ+य=धार्य (२०२)+अम्=धार्यम्=धारण करनेके योग्य । मृज्+यँ[३२]—

(८३३) चजोः कु घिण्ण्यँतोः । ७ । ३ । ५२ ॥

चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे ।

धातुके अन्तके च् तथा ज्से परे घित् अथवा ण्यत् (८३२) प्रत्यय आवें तो च् और ज्के स्थानमें कवर्ग हो ।

(८३४) मृजेर्वृद्धिः । ७ । ४ । ११४ ॥

मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।

सार्वधातुक अथवा आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते मृज् धातुके इक्को वृद्धि हो । मृज्+य=मृग्[८३३]+य=मार्ग्य+सु (सु)=मार्ग्यः=शुद्धकरने योग्य ।

(८३५) भोज्यं भँक्ष्ये । ७ । ३ । ६९ ॥

भोग्यमन्यत ।

भक्षण करनेयोग्य अर्थमें भुज् धातुका रूप **भोज्य** होता है और अन्य अर्थमें **भोग्य** होता है । अर्थात् भक्षण करनेयोग्य (भक्ष्य) अर्थमें (८३३) से कुत्व नहीं होता. अन्य अर्थमें होता है ।

कृत्संज्ञक प्रत्यय **शक्य, योग्य, प्रेरणा, आमंत्रण, प्राप्तकाल** इतने अर्थोंमें होते हैं । इनका विस्तार सिद्धान्तकौमुदीमें देखो ॥

॥ इति कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ पूर्वकृदन्तम् ।

(८३६) ण्वुल्तृचौ । ३ । १ । १३३ ॥

धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ।

(८२०) धातुसे ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय हों । सा 'कर्तरि कृत्' से कर्ता अर्थमें हों.

(८३७) युवोरनाकौ । ७ । १ । १ ॥

यु वु एतयोरनाकौ स्तः ।

प्रत्ययके यु तथा वुके स्थानमें अन तथा अक क्रमसे हों । कृ+ण्वुल्=ण्वुल्में (१,४८ ९, ७) से ण् तथा ल् का लोप होकर वु शेष रहा, उसके स्थानमें अक आदेश हुआ—

कृ+अक=(१६३, २०२) कारक+सु (सु)=कारकः=करनेवाला । कृ+तृच्=च् जाता रहा तृ शेष रही । कृ+तृ=कर्तृ (४२१)+सु (सु)=कर्ता (२२६ । २२७ । २९९ । २००)

(८३८) नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः । ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादेर्ल्युः ग्रह्यादेः णिनिः पचादेरच् स्यात् ॥

नन्द (टुनदि) आदि धातुओंसे परे कर्ता अर्थमें ल्यु प्रत्यय हो, और ग्रह आदि धातुओंसे परे णिनि प्रत्यय हो, पच् आदि धातुओंसे परे अच् प्रत्यय हो । (४९८) नन्द्+ल्यु=ल्युमेंसे (१९९) ल् जाता रहा यु शेष रहा उसके स्थानमें (८३७) से अन आदेश हुआ-

नन्द्+अन=नन्दन+स् (सु)=नन्दनः=जो आनन्द करता है.

जनम् अर्दयति=जन शब्द उपपद रहते पीडा अर्थमें अर्द धातुसे ल्यु प्रत्यय हुआ और उसके स्थानमें अन आदेश हुआ; षष्ठी समास होकर विभक्तिका लुक् हुआ तब-

जन अर्द् (पीडावाचक)+**अन**[८३]=**जनार्दन+स (सु)=जनार्दनः**=दुष्ट जनके मारनेवाले विष्णु भगवान् ।

लू (काटना) **अन**[८३८।८३७]=**लवण**[४२११३६]**+स=(सु)=लवणः**=लोन. **ग्रह्+णिनि**=णिनिमें से (१४८, ३६) इन् शेष रहा-

ग्रह्+इन्=ग्राहिन्+स=ग्राही[१२६।१२८।१९९।१९७।२००]=ग्रहण करनेवाला.

इसी प्रकार **स्था+इन्=स्थायी (८०७)** स्थित होने वाला. **मन्त्र (मन्त्रि) इन्=मन्त्री**=गुप्त कहनेवाला (सलाही)

पचादिराकृतिगणः=पचादि आकृतिगण है.

(८३९) इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । ३ । १ । १३५ ॥

एभ्यः कः स्यात् ।

जिन धातुओंकी उपधामें इक् हो तथा **ज्ञा** (जानना), **प्री** (तृप्ति करना) तथा **कॄ** (फेंकना) इन धातुओंसे परे क (अ) प्रत्यय हो ।

बुध्+अ[१५५।४८५।४६८] **=बुध+स्=(सु)=बुधः**	जाननेवाला,
कृश्+अ[४८६।४६८] **=कृश्+स्=कृशः**	दुबला.
ज्ञा+अ=ज्ञ[५२५] **+अ=ज्ञ+स् (सु) =ज्ञः**	जाननेवाला.
प्री+अ=प्र्+इय्[२२०]**+अ=प्रिय+स्=प्रियः**	प्रीति करनेवाला.
कॄ+अ=किर्[७०७] **+अ=किर+स्=किरः**	फेंकनेवाला,

(८४०) आतश्चोपसर्गे ३ । १ । १३६ ॥

उपसर्ग उपपद (१०२२) वाले आकारान्त धातुओंसे परे कर्ता अर्थमें क (८३९) प्रत्यय हो.

---

१ लवणमें णकार आदेसका निपातन है ।

प्र+ज्ञा+अ+सु=प्रज्ञः=पंडित । सु+ग्ला+अ+सु=सुग्लः=ग्लानि करनेवाला. ग्लै धातुको (५२९) से ग्ला हुआ है ।

(८४१) गेहे कः । ३ । १ । १४४ ॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात् ।

गृह ही जब कर्ता हो तब ग्रह धातुसे परे कर्ता अर्थमें क प्रत्यय हो ।

गृह्+अ+अम्+गृहम् [६७६।४८६।४६८।९१४] धान्य आदिका ग्रहण करनेवाला—घर.

(८४२) कर्मण्यण् । ३ । २ । १ ॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् ।

जब किसी धातुका उपपद कर्म हो तो उस धातुसे परे कर्ता अर्थमें अण् प्रत्यय हो ।

कुम्भं करोति=कुम्भ+कृ+अ (अण्)+कुम्भकारः (१०२२, १०२३ । ७१९ । २०२)=घडा बनानेवाला कुम्भार.

(८४३) आतोऽनुपसर्गे कः । ३ । २ । ३ ॥

अणोऽपवादः ।

जब आकारान्त धातुका उपपद उपसर्ग न हो कर्मही उपपद हो तो उससे परे क प्रत्यय हो। यह सूत्र अण् (८४२) का अपवाद है ।

गाम् ददाति=गो [७३९]+दा+अ+ः=गोदः [५२९]=गौ देनेवाला.

इसी प्रकार धनदः=धन देनेवाला । कम्बलदः=कम्बल देनेवाला।अनुपसर्गे किम् ? उपसर्गके विना कहनेका यह कारण कि गोसम्प्रदायः (८०७) इस उदाहरणमें सम् उपसर्ग उपपद है इससे क न होकर अण् प्रत्यय हुआ ।

(८४४) मूलविभुजादिभ्यः कः ॥

मूलविभुज आदि गणपठितोंसे परे क प्रत्यय हो । मूलानि विभुजतीति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोयम् । मूलविभुज्+अ मूलविभुजः=वृक्षोंकी जड टेढा करनेवाला रथ । यह आकृति गणहै इसीसे=

महीं धरति=मही+धृ+अ (क)+ः=महीध्रः (२१)=पृथ्वी धारण करनेवाला (पर्वत) ।

कुं धरति=कु+धृ+अ+ःकुध्रः=पर्वत.

(८४५) चरेष्टः । ३ । २ । १६ ॥

अधिकरणे उपपदे ।

जब अधिकरण सप्तम्यन्त उपपद (१०२२) हो तब चर् धातुसे परे ट (अ) प्रत्यय हो ।

कुरुषु चराति=कुरु+चर्+अ+(ट)+-=कुरुचरः [१०२३।७६९]=कुरुदेशमें फिरनेवाला।

(८४६) भिक्षासेनादायेषुँ चँ । ३ । २ । १७ ॥

भिक्षा, सेना और आदाय यह चर् धातुके उपपद हों तो उससे परे ट प्रत्यय हो ।

भिक्षां चराति=भिक्षा+चर्+अ+ः=भिक्षाचरः (१०२३ । ७६९)= भिक्षाके निमित्त भ्रमनेहारा (भिखारी) । इसी प्रकार **सेनां चराति=सेनाचरः**=जो सेनाको जावे । आ+दासे अन्तमें (९४२) से ल्यप् प्रत्यय हुआ तब आदाय हुआ **आदाय चरती-ति=आदायचरः**=लेकर जानेवाला.

(८४७) कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषुँ । ३ । २ । २० ॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् ।

जब **हेतु, ताच्छील्य** (स्वभाव) अथवा **अनुकूलता** प्रकाश करनी हो तब कृधातुसे परे ट प्रत्यय हो ।

(८४८) अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य । ८ । ३ । ४६ ॥

अकारादुत्तरस्य अनव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु ।

कृ (करना) **कमि** (इच्छा करनी) **कंस** (कटोरा) **कुम्भ** (घडा) **पात्र** (बासन) **कुशा** (डाभ) **कर्णी** (कान) इनमेंसे कोई शब्द परे हो तो समासके विषे अकारसे परे जो विसर्ग हो और वह किसी अव्यय (३९९) का अवयव न हो तो विसर्गके स्थानमें सकार हो-

यशस्करी [१०२३।७६९] [१३४४] **विद्या**=यशदेनेवाली विद्या **(हेतु)** । **श्राद्धकरः** [१०२३।७६९]=जिसका श्राद्धकरनेका स्वभाव है **(ताच्छील्य)** । **वचनकरः** (१०२३।७३९) आज्ञाकारी **(अनुकूलता)**

(८४९) एजेः खश् । ३ । २ । २८ ॥

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् ।

एज् (कांपना) धातु ण्यन्त (७४८) हो तो उससे परे खश् प्रत्यय हो । खश्मेंसे (१९९) ९ । ७) अ शेष रहा—

(८५०) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ ॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य । शित्त्वाच्छवादिः ।

अरुष् (मर्मस्थान) द्विषद् (शत्रु) तथा अजन्त इन शब्दोंके जब अव्यय उपपद

न हो तो खित् प्रत्ययान्त धातु परे हुए सन्ते मुम्का आगम हो । मुम्मेंसे म् शेष रहा यथा—
जनम् एजयति (१०२३ । ७६९) जन+एज्+इ (७४८) + अ (८४९)
(४१९) से खश् शित् है फिर सार्वधातुकसंज्ञा होकर (४२०) से शप् प्रत्यय हुआ, जन+म्
(८५०) एज्+इ+अ+अ+स् (सु)=जनमेजयः (४२१ । ९ । ३००)
मनुष्योंको कँपानेवाला (परीक्षितके पुत्रका नाम है)

(८५१) प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ ॥

वद् (बोलना) धातुका उपपद प्रिय अथवा वश हो तो उससे खच् (अ) प्रत्यय हो।
प्रियम् वदति=प्रिय+वद्+अ=प्रिय+म्+वद्+अ+स् (सु)=प्रियंवदः=
प्रिय बोलनेवाला.

इसी रीतिसे **वशंवदः**=अधीनता स्वीकार करनेवाला.

(८५२) आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ ॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् ।

मन् (मानना) धातुका उपपद सुबन्त हो और 'स्वकर्मक मानना' इस आत्मसम्बन्धका बोध होय तो कर्ता अर्थमें उससे परे खश् (अ) प्रत्यय हो ।

चाणिनिः । सूत्रमें चकारका पाठ है इससे यह जाना जाता है कि कर्ता अर्थमें णिनि (८९७) प्रत्ययभी हो ।

यथा—**पण्डितमात्मानं मन्यते**=पंडितं मन्+अ×सु (७६९ । ८९० । ६७०)
पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी[८९७]=जो अपनेको पंडित मानता है ।

(८५३) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । ३ । २ । ७५ ॥

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः ।

मनिन् क्वनिप् वनिप् तथा विच् ए प्रत्यय आकारान्त धातुके विना और धातुओंसेभी देखे जाते हैं । मनिन्मेंसे मन् क्वनिप्मेंसे वन् और विच्मेंसे व् शेष रहा—

(८५४) नेड्वशि कृति । ७ । २ । ८ ॥

वशादेः कृत इण्न ।

जिस कृत् प्रत्ययके आदिमें वश् प्रत्याहारमेंका कोई अक्षर हो तो उसे इट्का आगम (४३४) न हो.

सु+शॄ (हिंसा करना) मन् (८५३ मनिन्) +सुशर्मन् (४२१) सु=
सुशर्मा[१२७४ । १९६ । २००] अच्छी रीतिसे हिंसा करनेवाला । **प्रातर्**+इ (इण्—जाना +) वन् (क्वनिप्) प्रातरिवन्=प्रातरि+त्+वन्+सु=**प्रातरित्वा**[१२७१ । १९६ । २००] =प्रातःकाल जानेवाला.

---

१ अर्थात् पाप वा अज्ञानताका नाश करनेवाला ।

(८९५) विड्वनोरनुनासिकस्यात्। ६ । ४ । ४१ ॥

अनुनासिकस्यात् स्यात्। विजायत इति विजावा । ओणृ अपनयने अवावा ।

विट् अथवा वन् (८९३) प्रत्यय परे हुए सन्ते अनुनासिकके स्थानमें आकार हो । जन् (प्रादुर्भाव होना) **वि+जन्+वन्=वि+जाँ[८५५]+वन्+सु=विजावा**[१९९।१९७।२००] =जो उत्पन्न हो । **ओणृ** (दूर करना) **वन्[८५३]=ओ+आँ[८५५]=वन्+सु=अवावा (२९ । १९९। १९७ । २००)**=पाप दूर करनेवाली ब्राह्मणी.

रुष् (हिंसा करना)**+वँ[८५३]=रोष्**[४८६।३३०] **+सु=रोट्**[१९९।८२।१६५]=हिंसा करनेवाला.

रिष् (हिंसा करना)**+व्=रेष्**[३३०] **+सु=रेट्** (१९९।८२।१६५)=हिंसा करनेवाला. **सु+गण्** (गिनना)**+वँ[८५३]+स्=सुगण्** (३३० । १९९)=जो अच्छी रीतिसे गिनताहै.

(विवरण) रुष् और रिष् में विच् जोड़ देनेसे (४८६) से गुण (३३०)से व्का लोप करनेसे रोष् और रेष् हुआ फिर सुबन्तकी रीतिसे रोट् और रेट सिद्ध हुआ ।

(८९६) क्विप् च । ३ । २ । ७६ ॥

अयमपि दृश्यते ।

कर्ता अर्थमें धातुओंसे परे क्विप् प्रत्यय भी दीखता है. (१९९ । ३३० ।३६ । ९) से क्विप्का सर्वापहारी लोप होता है ।

उखायाः[१०२३] स्रंसते=उखा[७६९]+स्रंस्+०(क्विप्)+सु=उखास्रत्[३६३।१२८।१९९] =जो हंडियासे गिरता है।

पर्णात् ध्वंसते=पर्ण+ध्वंस्+०+सु=पर्णध्वत्[३६३।१२८।१९९] जो पत्तोंसे गिरता है ।

वाहात् भ्रंसते=वाह+भ्रंस्+०+सु=वाहभ्रट्[३६३।३३४।८२।१६५] -ड्=जो घोडेसे गिरता है ।

(८९७) सुँप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये। ३ । २ । ७८ ॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये ।

जातिवाचक अर्थ न हो तथा सुबन्त उपपद (१०२२) हो तब स्वभावप्रकाश अर्थमें धातुसे परे णिनि प्रत्यय हो । णिनिमेंसे (१४८ । ३६) इन् शेष रहा-

उष्णं भुङ्क्ते उष्णंभुज्+इन्=उष्णभोजी[७६९।४८६।१९७।१९९।२००] =जिसका स्वभाव गरम भोजन करनेका है ।

(८९८) मनः । ३ । २ । ८२ ॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् ।

सुबन्त उपपद हुए सन्ते **मन्** (मानना) धातुसे परे णिनि प्रत्यय हो । **दर्शनीय+मन्+इन्=दर्शनीयमानी**[४९०।१९७।२००।१९९] =जो सुन्दर मानता है.

(८५९) खित्यँनव्ययस्यँ । ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः ।

खित् प्रत्ययान्त परे हुए सन्ते अव्ययभिन्न पूर्व पदको ह्रस्व हो ।

कालीम्मन्यते=काली+मन्+अ (खिँश्)[८५२]+यँ[८८०]=कालिम्मन्या[१३४२]=जो स्त्री अपने को कालीदेवी मानती है.

(८६०) करँणे यजँः । ३ । २ । ८५ ॥

करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः कर्तरि ।

जो उपपद करण (तृतीयान्त) हो तो भूतार्थमें **यज्** (पूजा करना) धातुसे परे कर्ता अर्थमें णिनि हो ।

सोमेन ईष्टवान्[१०२३]=सोम+यज्+इन्=सोमयाजी=[४२०।१९७।२००।१९९]जिसने सोम करके यज्ञ किया । इसी प्रकार, **अग्निष्टोमयाजी**=अग्निष्टोम यज्ञ करके अपने इष्टकी भावना की.

(८६१) दृशेः क्वनिप् । ३ । २ । ९४ ॥

कर्मणि भूते ।

कर्म उपपद होतो दृश धातुसे परे भूत अर्थमें क्वनिप् प्रत्यय हो ।

यथा—पारम्+दृष्टवान्=पार+दृश्+वन्=पारदृश्वा[१९७।३०१।१९९]=जिसने पार देखा ।

(८६२) राजँनि युधिकृञँः । ३ । २ । ९५ ॥

क्वनिप् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः ।

राजन् शब्द उपपद होय तो युध् तथा कृ धातु (८६१) से परे क्वनिप् प्रत्यय हो युध धातुमें ण्यर्थ अन्तर्भूत है ।

राजानं योधितवान् राजयुध्वा[१९८।१९९] (२००)=जिसने राजाको लड़वाया । **राजकृत्वा** (८२९)=जिसने राजा किया ।

(८६३) सँहे चँ । ३ । २ । ९६ ॥

सह योधितवान् । कर्मणोऽति निवृत्तम् ।

सह उपपद हुए सन्ते युध् तथा कृ (धातु (८६१) से परे क्वनिप् प्रत्यय हो । यहां कर्म उपपदकी निवृत्ति हुई ।

सह+युध्+वन्+सु=(१९७ । १९९ । २००) **सहयुध्वा**=जिसने साथ लड़वाया.

सहकृत्वा=जिसने दूसरेकी सहायता की.

(८६४) सप्तम्यां जनेर्डः । ३ । २ । ९७ ॥

जिसका सप्तम्यन्त उपपद होय ऐसे जन् धातुसे परे ड प्रत्यय हो (२६७) से जन्की टि अन्का लोप होकर ज् रहा—

(८६५) तत्पुरुषे कृति बहुलम् । ६ । ३ । १४ ॥

ङेरलुक् ।

तत्पुरुष समास (९८३) में कृत् प्रत्ययान्त उत्तरपद परे रहते सप्तमीके एकवचन ङिका लुक् (७६९) न हो । **सरसि+ज्+अ+अम्=सरसिजम्** (अथवा) **सरस्+ज्+अ=सरोज+अम्=सरोजम्** (१०२३ । ८३४) =सरोवरमें उत्पन्न होनेवाला कमल.

(८६६) उपसर्गे च संज्ञायाम् । ३ । २ । ९९ ॥

प्रजा स्यात्सन्ततौ जने ।

उपसर्ग उपपद हुए सन्ते जन् धातुसे परे ड प्रत्यय (८६४) हो परन्तु डप्रत्ययान्त किसी संज्ञाका वाचक हो तो ।

प्रजन्+अ=प्र+ज्+अ=प्रज्+आ+प्रजा=सन्तान अथवा प्रजा लोग.

(८६७) क्तक्तवतू निष्ठा । १ । १ । २६ ॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ।

क्त तथा क्तवतु इन प्रत्ययोंकी निष्ठा संज्ञा है ।

(८६८) निष्ठा । ३ । २ । १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः ।

भूत अर्थमें धातुसे परे निष्ठा (८६७) संज्ञक प्रत्यय हों । इनमें क्त प्रत्यय (८२१) से भाव तथा कर्ममें होता है और क्तवतु (८२०) से केवल कर्ता अर्थमें होता है । **स्ना** (स्नानकरना)=**स्ना+क्त** (१५५) **स्नातं मया**=मैंने न्हाया । **स्तुतस्त्वया विष्णुः**=तुझसे विष्णु स्तुति किया गया । **कृ+क्तवतु** (१९९ । ३६ । ३१६ । १९७ । १९०) **विश्वं कृतवान् विष्णुः**=विष्णुने संसारको बनाया.

(८६९) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः । ८ । २ । ४२ ॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च ।

र् तथा द् से परे निष्ठा (८६७) के तकारको और निष्ठासे पूर्व धातुके दकारकोभी नकार हो । **शॄ** (हिंसा करना) **शॄ+क्त** (१९९ । ७०७ । ३७) **शिर्+त**=(६९२)

शीर्+त=(६८९) शीर्+न=(१९७) शीर्णः=जो मारा गया. इसीप्रकार भिद् (विदीर्ण करना) भिन्नः=जो विदीर्ण किया गया । छिद् (छेदन करना): छिन्नः= जो काटा गया.

(८७०) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः । ८ । २ । ४३ ॥

निष्ठातस्य नः स्यात् ।

जो आकारान्त धातुकी आदिमें संयोग हो और धातुमें यण् प्रत्याहारका वर्ण हो तो उससे परे निष्ठा (८६७) प्रत्ययके त्के स्थानमें नकार हो ।

द्रा+त=द्रा+न+सु=द्राणः=जिसने कुत्सित गति की । ग्लै (ग्लानि पाना) ग्लानः=जिसने ग्लानि की.

(८७१) ल्वादिभ्यः । ८ । २ । ४४ ॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत् ।

लूञ् आदि जो इक्कीस धातु हैं तिनसे परे पूर्वोक्त कार्य्य (८६९) हो ।

लू+त=लू+न=लून+ः=लूनः=जो काटा गया.

ज्या धातुमें (६७६) से संप्रसारण इ हुई (२८१ । २८३) जि+त (८६८)–

(८७२) हलः । ६ । ४ । २ ॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्संप्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः ।

अङ्गका अवयव जो हल् उससे परे जो सम्प्रसारण तदन्तको दीर्घ होय । जी+न= जीन+ः=जीनः=जीर्ण होगया.

(८७३) ओदितश्च । ८ । २ । ४५ ॥

जिस धातुका ओकार इत् हो उससे परे निष्ठा (८६७) के त्को न् हो ।

यथा भुजो (कुटिलता करना) इसमें ओकार इत् है. भुज्+त=भुग्+न+सु= भुग्नः=टेढा किया गया.

टुओश्वि=(वढ़ना अथवा जाना) इसमें श्वि (४९७ । ३६) शेष रहा उसके पूर्व उद् उपसर्ग करनेसे । उद्+श्वि+त (८६९)=उद्+शू उ (९८९)+त=उच्छू (७६)=छू ऊ (९२, ८७२)+न (८७३)=उच्छूनः ।

(८७४) शुषः कः । ८ । २ । ५१ ॥

निष्ठातस्य कः स्यात् ।

शुष् (सूखना) धातुसे परे निष्ठाके त् को क् हो ।

शुष्+त (८६८)=शुष्=क (८७४)+ः=शुष्कः=सूखा हुआ,

(८७५) पचो वः । ८ । २ । ५२ ॥

पच् (पकाना=रांधना) धातुसे परे निष्ठामें त् को व् हो ।

पच्+त=पक्+व (८७९)+स्=पक्वः=पका हुआ ।

(८७६) क्षायो मः । ८ । २ । ५३ ॥

क्षै (दुबला होना) धातुसे परे निष्ठाके त् को म् हो ।

क्षै+त=क्षा+म+ः=क्षामः=दुबला.

(८७७) निष्ठायां सेटि । ६ । ४ । ५२ ॥

णेर्लोपः ।

जब इट्सहित निष्ठासंज्ञक प्रत्यय परे रहे तो णि (७४८) का लोप हो ।

भू+इ+त=भौ+इ+त=भाव्+इ+त=भाव्+इ+इ+त=भाव+इ+त+ः=भावितः=होनेको प्रेरणा किया गया (इसी प्रकार) भू+इ तवत भावितवान् जिसने होवाया.

दृह्=(हिंसा करना)-

(८७८) दृढः स्थूलबलयोः । ७ । २ । २० ॥

स्थूले बलवति च निपात्यते ।

दृह् धातुके रूप स्थूल मोटा और बलवान् अर्थमें पाणिनि सूत्रसे दृढः यह निष्ठाप्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध होता है ।

दृह्+त=दृढ्+त=दृढ्=ध=दृढ्+ढ=दृढ+ः=दृढः=स्थूल वा बलवान्.

(८७९) दधातेर्हिः । ७ । ४ । ४२ ॥

तादौ किति ।

धा (धारण करना) धातुसे परे तकारादि कित् प्रत्यय हो तो धाके स्थानमें हि हो ।

धा+त=हि+त+अम् (न० प्र० ए०)=हितम्=धारण किया गया.

(८८०) दो दद्धोः । ७ । ४ । ४६ ॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात्तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः ।

जिसके आदिमें त् हो ऐसे कित् प्रत्यय परे हुए सन्ते घुसंज्ञक (६१३) दा धातुके स्थानमें दद् आदेश हो ।

दा+त=दद्+त=दत्त+ः=दत्तः=दिया गया.

(८८१) लिटः कानज्वा । ३ । २ । १०६ ॥

लिट् (४२४) के स्थानमें कानच् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

(८८२) क्वसुश्च । ३ । २ । १०७ ॥

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः । तङानावात्मनेपदम् । चक्राणः ।

लिट्के स्थानमें कानच् तथा क्वसु प्रत्यय विकल्प करके हो । (४१०) से कानच् आत्मनेपद संज्ञक है इससे आत्मनेपदी धातुओंसे होता है । और क्वसु परस्मैपदियोंसे होता है ।

कृ (करना) **आन** (**कानच्**) **चकृ**[४२०।४२७।४८९] **+आन+ः=चक्राणः**[२१।१५७]=जिसने किया।

(८८३) म्वोश्च । ८ । २ । ६५ ॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः । जगन्वान् ।

मकारान्त धातुको नकार हो जब कि म् अथवा व् परे हो यथा **गम्+वस्** (क्वसु)= **जगम्=वस्=जगन्वस्=(सु) जगन्वान्**=(३७२, ३१६, २६)=जो जा चुका ।

(८८४) लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ।३।२।१२४॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः ।

अप्रथमान्तके साथ लकारका समान अधिकरण हो तो लट्के स्थानमें शतृ तथा शानच् प्रत्यय विकल्प करके हों । शतृमेंसे अत् और शानच्मेंसे आन शेष रहता है । शतृ तथा शानच् ए दोनों प्रत्यय शित् हैं इस हेतुसे ये जिन धातुओंसे परे होते हैं उनसे (४१९, ४२०) से सार्वधातुक संज्ञा होनेसे शप् होता है । **पचन्तं चैत्रं पश्य** (पाक करते हुए चैत्रको देखो) यहां पच् धातुसे परे शतृ प्रत्यय करनेसे **पच्+अत्** ऐसी स्थिति हुई उसके आगे शप्का अ हुआ= **पच्+अ+अत्=पचत्** (३१६) से नुम्का आगम **पचन्त्** रूप हुआ, अप्रथमान्तके साथ लट्को समानाधिकरण है क्योंकि चैत्रशब्द द्वितीयान्त है यह लट् जिस कर्ता अर्थमें आया है उसका वाचक चैत्र है इससे द्वितीयाका प्रत्यय लाये । **पचन्त+अम्=पचन्तम् चैत्रं पश्य ।**

(८८५) आने मुक् । ७ । २ । ८२ ॥

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे ।

आन (शानच् कानच्) प्रत्यय परे हुए सन्ते अदन्त अङ्गको मुक्का आगम हो । मुक्मेंसे म् शेष रहा । **पच्+अ+आन=पच्+आन=पच्+म्+आन=पचमान+अम्=पचमानं चैत्रं पश्य**=पाक करनेवाले चैत्रको देखो ।

लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येपि क्वचित् । सन् द्विजः । (४०७) सूत्र ३,२,१२३ वां है और उसमें लट् पदका ग्रहण है (८८४) वां सूत्र ३, २, १२४ है यह पूर्वसूत्रके पश्चात् है इसमें पूर्वसूत्रकी अनुवृत्ति आसकती है फिर

इसमें लट्के ग्रहण करनेका प्रयोजन क्या है ? तो इसके ग्रहण करनेका कारण यह है कि प्रथमान्तके साथ लट् लकारका सामानाधिकरण्य होय तो भी कभी धातुसे परे शतृ तथा शानच् प्रत्यय हों। यथा। अस् (विद्यमान रहना) अस्+अ (३००) +अत=सन् त (६१२, ३१६, २६)+स्=सन् द्विजः=विद्यमान ब्राह्मण ।

(८८६) विदः शतुर्वसुः । ७ । १ । ३६ ॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा ।

विद् (जानना) धातुसे परे शतृके स्थानमें वसु आदेश विकल्प करके हो। वसुमेंसे वस् रहा। यथा विद्+वस्=विद्वस्=विद्वन्स्+स्=विद्वान् (अथवा) विद्+अ+अत=विदअत=विदन्त्+स (सु)=विदन्=जाननेवाला.

(८८७) तौ सत् । ३ । २ । १२७ ॥

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ।

शतृ तथा शानच् (८८४) की सत्संज्ञा हो ।

(८८८) लृटः सद्वा । ३ । ३ । १४ ॥

व्यवस्थितविभाषेयम्, तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् ।

लृट् (४४१) के स्थानमें सत्संज्ञक प्रत्यय (८८७) विकल्प करके हों। यह व्यवस्थित विभाषा है इस कारण अप्रथमाके सामानाधिकरण्यमें और प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते सम्बोधनमें लक्षणहेतुमें नित्यही (सत्) होते हैं। यथा—करिष्यन्तम् (अथवा) करिष्यमाणम् पश्य=उसको देखो जो करनेको है.

कृ+स्य+अत्=करिष्यन्त्+अम्=करिष्यन्तम् । कृ+स्य+आन=करिष्यमाण+अम्=करिष्यमाणम् ।

(८८९) आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । ३ । २ । १३४॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ।

इस सूत्रसे प्रारंभकर क्विप् (८९४) तक जितने प्रत्यय उच्चारण किये जांय वे सब जिन कर्ताओंमें किसी प्रकारका स्वभाव प्रकाश करना हो वा कोई धर्मप्रकाश करना हो वा किसी क्रियाकी सुन्दरता प्रकाश करनी हो तिन अर्थोंमें हों ।

---

१ करिष्यन्तम् करिष्यमाणं पश्य, करिष्यतोपत्यं कारिष्यतः । करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन् । अर्जयिष्यन् वसति इत्युदाहरणानि ।

(८९०) तृन् । ३ । २ । १३५ ॥

तच्छील आदि (८८९) अर्थमें धातुओंसे परे तृन् प्रत्ययहो । तृन्मेंसे तृ शेष रही । कृ+तृ=कर्[४७१]तृ=कर्[३३६]तन्+सु=कर्ता[११९७।११९८।२००] कटान्=चटाई वनानेका जिसका स्वभाव है इत्यादि सब अर्थ जानना.

(८९१) जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् । ३ । २ । १५५ ॥

जल्प (वकवाद करना), **भिक्ष** (भीख मांगना), **कुट्ट** (कूटना), **लुण्ट** (लूटना) **वृङ्** (सेवा करना) इन धातुओंसे परे तच्छील आदि (८८९) अर्थोंमें षाकन् प्रत्यय हो । षाकन्मेंसे आक (८९२ । ७) शेष रहा—

(८९२) षः प्रत्ययस्य । १ । ३ । ६ ॥

प्रत्ययस्यादिः षः इत्संज्ञः स्यात् ।

प्रत्ययके आदिके षकारकी इत्संज्ञा हो ।

जल्प्+आक=जल्पाक+सु=जल्पाकः=जिसका वकवाद करनेका स्वभाव है. **भिक्षाकः । कुट्ट+आकः=कुट्टाकः । लुण्ट्+आकः=लुण्टाकः । वृ+आक=वर्-आक+सु=वराकः**=जिसका सेवा करनेका धर्म है, नीच कंगाल । **वराकी**—नीच नारी

(८९३) सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ ॥

सन्नन्त (७९३) धातुओंसे परे तथा आङ्पूर्वक **शंसु** (स्तुति करना) तथा **भिक्ष** (भीख मांगना) धातुसे परे तच्छील आदि (८८९) अर्थोंमें उ प्रत्यय हो ।

चिकीर्ष+उ=चिकीर्षु+सु=चिकीर्षुः=जिसका करनेकी इच्छाका स्वभाव है । इसी प्रकार **आशंसुः**=जिसका स्तुति करनेका स्वभाव है । **भिक्षुः**=जिसका भीख मांगनेका स्वभाव है ।

(८९४) भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ।३।२।१७७॥

भ्राज् (चमकना), **भास्** (चमकना), **धुर्व्** (हिंसा करना), **द्युत** (चमकना), **ऊर्ज्** (बलवान् होना), **पॄ** (पूर्ण करना), **जु** (जाना) और पाषाणवाची **ग्रावन्** शब्द पूर्वक—**ष्टु** (स्तुति करना) इन धातुओंसे परे तच्छील आदि (८८९) अर्थोंमें क्विप् प्रत्यय हो । क्विप्का (१९९।३३० । ३६ । ९ । ७) से सर्वलोप हुआ—

वि+भ्राज्+०=विभ्राट्[३३५।८३।१९६५।१९९]=चमकनेवाला.

भास्+०=भाः=जो चमके अर्थात् कान्तिवाला । **धुर्व्+क्विप्+सु**–

(८९५) राल्लोपः । ६ । ४ । २१ ॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति च । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः ।

कि (८९६ । ३२९) प्रत्यय अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हुए सन्ते रेफ से परे छ् वा व् का लोप हो । किसे क्विप् और क्विन् जानना ।

धुर्व्+०=धुर्+सु=धूः =घबराहट वा मार.

वि+द्युत्+०=विद्युत्+सु=विद्युत् =बिजली

ऊर्ज्+०=ऊर्क्+सु=ऊर्क् =बलवान्

पॄ+०=पुर्+सु=पूः =नगरी.

जु+०+सु=जूः=शीघ्रगामी । (८९३) में 'दृश्यन्ते' जो पद है उसकी अनुवृत्तिसे महाभाष्यके अनुसार जुको दीर्घ होता है इस कारण जूः हुआ ।

ग्रावन्+ष्टु+०=ग्रावस्तुत्=पाषाणकी प्रशंसा करनेवाला ऋत्विक्.

(८९६) क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥

वच् (बोलना), **प्रच्छ्** (पूछना) **आयतशब्दपूर्वक-स्तु** (बहुत स्तुति करना), **कटप्रु** (चटाईके बीचसे जाना), **जु** (गमन करना) और **श्रि** (सेवा करना) इन धातुओंसे परे क्विप् प्रत्यय हो और दीर्घ हो तथा संप्रसारण (६७६, ९८९) न हो ।

वच्+०=वाच्+सु=वाक् =बोलनेवाला इन्द्रिय.

(८९७) च्छ्वोः शूडनुनासिके च । ६ । ४ । १९ ॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श् ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति ।

तुक् (१२०) सहित छ् तथा व् को क्रमसे श् तथा ऊठ् आदेश हों जो कि प्रत्यय अथवा अनुनासिक आदिमें हो जिसके ऐसा प्रत्यय अथवा झलादिकित् वा ङित् प्रत्यय परे हो तो ।

पृच्छतीति प्राट्=प्रच्छ+०=प्राट् =जो पूछता है, पूछनेवाला.

आयतं स्तौति=आयतस्तु+०+सु=आयतस्तूः=बहुत स्तुति करनेवाला ।

कटं प्रवते=कटप्रु+०+सु=कटप्रूः=कीडा जो चटाईके बीचमें हो जाता है.

जु+०+जूः (८९९)

श्रयति+हरिम्=श्रि+०+सु=श्रीः=जो हरिकी सेवा करती है (लक्ष्मी)

(८९८) दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे । ३ । २ । १८२ ॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे ।

दाप् (काटना), **णी** (ले जाना), **शस्** (हिंसा करना), **यु** (जोडना), **युज्** (जोडना), **ष्टु** (स्तुति करना), **तुद्** (पीड़ा देना वा प्रेरण करना), **षिञ्** (बांधना) **षिच्** (छिड़कना), **मिह** (मूतना), **पत्** (गिरना), **दश्** (दंश, दांतसे काटना) **णह** (बांधना) इन धातुओंसेपरे ष्ट्रन् प्रत्यय करण अर्थमें हो, ष्ट्रन्मेंसे ष् ट् जाकर त् र 'त्र' रहा ।

दात्यनेनेतिदात्रम्=दा+त्र=दात्र+अम्=दात्रम्=जिससे कोई वस्तु काटी जाय हँसुआ आदि । **शस् त्र+अम्** यहां (४३४) से इट्की प्राप्ति हुई ।

(८९९) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च । ७ । २ । ९ ॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न ।

ति (क्तिन् अथवा क्तिच्) तुन्, ष्ट्रन्, तन्, क्थन्, क्स, सु, सरन्, कन्, तथा स, इन कृत्, प्रत्ययोंको इट्का आगम (४३४) न हो ।

शस्+त्र[898]=शस्त्र ×**अम्=शस्त्रम्**=शस्त्र.

यु+त्र=योत्र[429] +**अम्=योत्रम्**=जुएकी रस्सी हलका बंधन.

युज्+त्र=योक्[486।333]+त्र +**अम्=योक्त्रम्**=जुआ.

ष्टु+त्र=स्तो[290]त्र +**अम्=स्तोत्रम्**=स्तोत्र.

तुद्+त्र[486]=तोत्[290]+त्र +**अम्=तोत्त्रम्**=कोडा.

षि+त्र=से[280।429]+त्र +**अम्=सेत्रम्**=बन्धन.

षिच्+त्र=सेक्[486]+त्र +**अम्=सेक्त्रम्**=छिडकनेका पात्र.

मिह्+त्र=मेढ्+त्र[486।783।276।587।198] +**अम्=मेढ्रम्**=लिङ्ग.

पत्+त्र=पत्त्र + **अम्=पत्त्रम्**=वाहन.

दश् (इ)+दंश्[496] ष्[334]+त्र=दं[95]ष्ट्र+आ[1342]+दंष्ट्रा+दाढ़.

णह्+त्र=नध्[493]+ध्[389]+ध्र[56]+ई[1345]=नध्री=चमडेकी रस्सी.

(९००) अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः । ३ । २ । १८४ ॥

ऋ (जाना), **लू** (काटना), **धू** (कँपाना), **षू** (प्रसव करना), **खन्** (खोदना), **षह्** (सहना), **चर्** (जाना) इन धातुओंसे परे करण अर्थमें इत्र प्रत्यय हो.

ऋ+इत्र=अर्[४३४]	+इत्र+अम्=अरित्रम्=पतवार.
लू+इत्र=लो[४२१]	=लव्+इत्र+अम्=लवित्रम्=हंसुआ.
धू+इत्र=धो[४२१]	=धव्[२९]+इत्र+अम्=धवित्रम्=पंखा.
षू+इत्र=सँ[२८०]=सो[४२१]	=सव्[२९]+इत्र+अम्=सवित्रम्=उत्पत्तिकारण.
खन्+इत्र=खनित्र	[३००]+अम्=खनित्रम्=कुदारी.
षह्+इत्र=सँह्[२८०]	+इत्र+अम्=सहित्रम्=धीरज.
चर्+इत्र=चरित्र	+अम्=चरित्रम्=चरित्र.

इत्र यह इकारसहित प्रत्यय इस कारण किया है कि इकारका श्रवण हो नहीं तो (८९९) से इट्के आगमका निषेध हो जाता है इस कारण यहां इट्के इकारके सुन पडनेका संभव नहीं था ।

(९०१) पुवः संज्ञायाम् । ३ । २ । १८५ ॥

पू (पवित्र करना) धातुसे परे संज्ञा अर्थमें इत्र प्रत्यय हो ।

पू+इत्र+पो[४२१]=पव्+इत्र+अम्=पवित्रम्=पैंती.

॥ इति पूर्वकृदन्तम् ॥

अथोणादयः ।

(९०२) कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥

कृ (करना), वा (गमन करना), पा (पीना), जि (जीतना), डुमिञ् (छींटना), ष्वद् (स्वाद लेना), साधू (साधना), अशू (व्याप्त होना) इन धातुओंसे परे उण् प्रत्यय हो । उण् में से उ शेष रहा—

कृ+उ=कार[२०२]	+उ+: (रु)	=कारुः=शिल्पी कारीगर.
वा+उ=वा+य्	+उ+: (रु)	=वायुः=पवन.
पा+उ=पा+य्	+उ+:	=पायुः=गुदा.
जि+उ=जै+जाय्[२९]	+उ+:	=जायुः=ओषधी.
मि+उ=मै[२०२]=माय्[२९]	+उ+:	=मायुः=पित्त.
ष्वद्×उ=स्वँद्[२८०]=स्वाद्[४९०]	+उ+:	=स्वादुः=स्वादयुक्त.
साध्+उ=साधु	+:	=साधुः=श्रेष्ठ पुरुष.
अश्+उ=आश्[४९०]	+उ+:	=आशु=शीघ्र (अव्यय)

(९०३) उणादयो बहुलम् । ३ । ३ । १ ॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः ।

वर्तमानकालमें तथा संज्ञामें उण् आदि प्रत्ययोंका व्यवहार अनेक प्रकारसे हो ।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

अब जो उणादि सूत्रसे विधान नहीं किये गये उनका विधान दिखलाते हैं । जो शब्दशास्त्रमें किसीकी संज्ञाके वाचक हैं और किसी प्रकार सिद्ध नहीं होते तो उनमें ऐसे धातु और उनसे परे ऐसे प्रत्ययोंका तर्क करना जो उनमें हो सकें और गुणादिकार्य जैसे दीखें वैसे अनुबंधकी कल्पना करनी उचित है । यथा कोई शब्द ऋफिड् नामवाला है यह किसीसे सिद्ध नहीं होता तब उणादिमें लाकर गमनार्थ ऋ धातुका अनुमान कर उससे परे फिड् प्रत्ययकी कल्पना की फिर गुणको न देखकर (४१८) फिड्को कित् मान लिया ।

॥ इत्युणादयः समाप्ताः ॥

अथोत्तरकृदन्तम् ।

(९०४) तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् । ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः ।

जब एक क्रियाके निमित्त दूसरी क्रिया उपपद रहे तो भविष्य अर्थमें धातुसे परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हो । मान्तत्वादव्ययत्वम् । जिसके अन्तमें तुमुन् हो सो मकारान्त होकर (४०१) से अव्यय (४००) संज्ञक होताहै, तुमुन्में से तुम् और ण्वुल्में वु शेष रहा । कृष्णं द्रष्टुं याति=इसमें याति क्रियार्था क्रिया उपपद है तो दृश् तुम्=द्रष्टुम् (९११, ६८७, २१, ३३४, ७८,) अथवा कृष्णं दर्शको याति—इसमें ण्वुल् प्रत्यय किया. दृश्+वु=दर्शकः (४८६, ८३७).

(९०५) कालसमयवेलासु तुमुन् । ३ । ३ । १६७ ॥

काल, समय और वेला इन शब्दोंमेंसे जब कोई शब्द उपपद हो तब धातुसे परे तुमुन् प्रत्यय हो । कालो भोक्तुम् (भोजन करनेका समय) इस सिद्धरूपमें भुज् धातुका उपपद 'कालः' शब्द है तब काल+भुज्+तुम्=कालो भोक्तुम् (९११, ६३७, ४८६, ३३३) । समयो भोक्तुम् । वेला भोक्तुम् ।

(९०६) भावे । ३ । ३ । १८ ॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् ।

जब धातुका अर्थ सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो तब उसधातुसे परे घञ् प्रत्यय हो । घञ्मेंसे

अ शेष रहा **पच्+अ=पाकः** (४९०, ८३३) रसोई । जहां सिद्ध पदको दूसरी क्रियाकी आकांक्षा हो वहां सिद्धावस्थापन्न क्रिया रहती है ।

(९०७) अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् । ३ । ३ । १९ ॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् ।

कर्तासे भिन्न कारकमें धातुसे परे संज्ञा अर्थमें घञ् हो ।

(९०८) घञि च भावकरणयोः । ६ । ४ । २७ ॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात् ।

भाव अथवा करण अर्थमें घञ् (९०७) प्रत्यय हो और वह जब रञ्ज (रंगना वाचक) धातु से परे होय तो रञ्ज धातुके नकारका लोप हो । **रञ्ज्+अ+रागः** (३६३ । ४९० ८३३) काम क्रोधादि अथवा जिससे वस्तु रंगीजाती है (रंगनेका यंत्र) **अनयोः किम् ?** भाव और करण अर्थमें क्यों कहा ? (उत्तर) **रज्यत्यस्मिन्निति रंगः** (८३३) **नाटचशाला** । जहां मनुष्योंका वेष भरा जाता है यहां अधिकरण अर्थमें घञ् होकर नकारका लोप न हुआ । भाव और करण अर्थ नहीं है ।

(९०९) निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः । ३ । ३ । ४१ ॥

एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः ।

निवास (रहना), **चिति** (जमा करना), **शरीर** तथा **उपसमाधान** (इकट्ठा करना) इन चार अर्थवाचक चि धातुसे परे घञ् प्रत्यय हो और चि धातुके आदि च्के स्थानमें क् हो । उपसमाधान (इकट्ठा करना) यह धात्वर्थ हैं । शेष तीन अर्थ प्रत्ययार्थदर्शक धातुके उपाधिभूत हैं ।

निवास अर्थमें '**निकायः**' सिद्धरूप है इसमें नि उपसर्गसे परे चि धातु है तब—**नि+चि+अ=निकायः** (२०२, २९. ९०९) निवासस्थान शरीरवाचक । **चि+अ=कायः** (२०२, २९, ९०९) शरीर । इसीप्रकार—**गोमयनिकायः**=गोबरका समूह.

(९१०) एरच् । ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्तादच् ।

इवर्णान्तधातुसे परे अच् प्रत्यय हो ।

चि+अ=चे+अ=चय्+अ+ः=चयः=संग्रह करना, समूह.

जि+अ=जे+अ=जय्+अ+ः=जयः=जीत

(९११) ऋदोरप् । ३ । ३ । ५७ ॥

ऋवर्णान्तादुवर्णान्तादप् ।

ऋवर्णान्त अथवा उकारान्त धातुसे अप् प्रत्यय हो ।

कॄ (छींटना अर्थ)**+अ=कर्+ः=करः**=छींटना.

गॄ (निगलना)+अ=गर्+अ+ः=गरः=विष.

यु (जोडना)+अ=यो[421]=यव्[30]+अ+ः=यवः=जोडना.

ष्टु (स्तुति करना)+अ=स्तु[280]=स्तव्+अ+ः=स्तवः=स्तुति.

लू (काटना)+अ=लो[421]=लव्[30]+अ+ः=लवः=नाज काटना.

पू (पवित्र करना)+अ=पो[451]=पव्[30]+अ+ः=पवः=पवित्र करना वा पछाडना.

(९१२) घञर्थे कविधानम् ॥

घञ् (९०६) के अर्थमें क प्रत्ययभी हो (कमेंसे अ रहा)

प्र+ष्ठा (रहना)+अ+प्र+स्था[280]+अ+ः=प्रस्थः[525]=मापविशेष (सेरभर)

वि+हन् (मारना)+अ=वि+हन्[541]+अ+ः=विघ्नः[314]=विघ्नः=अन्तराय.

(९१३) ड्वितः[8] क्त्रिः[1] । ३ । ३ । ८८ ॥

जिस धातुका डु इत् होय उससे परे क्त्रिप्रत्यय हो ।

(९१४) क्त्रेर्मम्[1] नित्यम् । ४ । ४ । २० ॥

क्त्रिप्रत्ययान्तात् मप् निर्वृत्तेऽर्थे ।

क्त्रिप्रत्ययान्त (९१३) से परे सिद्ध अर्थमें मप् प्रत्यय नित्य हो । (डुपचष्) पच् (पकाना)+त्रि+पक्+त्रि (३३३)=पक्त्रि+ मप्=पक्त्रिमम्=जो पाक करनेसे सिद्ध हुआ । डुवप् (वप्)+त्रि=वप्त्रि (५८९) उप्त्रि+मप्=उप्त्रिमम्=बोनेसे जो सिद्ध हुआ.

(९१५) ट्वितोऽथुच्[1] । ३ । ३ । ८९ ॥

जिस धातुका टु इत् होय उससे परे अथुच् प्रत्यय होय । टु वेपृ (वेप्) कांपना । वेप्+अथु=वेपथु+ः=वेपथुः=कँपकँपी.

(९१६) यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्[1] । ३ । ३ । ९० ॥

यज (पूजना), याच् (मांगना), यत् (यत्न करना), विच्छ् (गमन करना व चमकना), प्रच्छ् (पूंछना), रक्ष् (रक्षा करना) इन धातुओंसे परे नङ् प्रत्यय हो । नङ्-मेंसे न शेष रहा—

यज्+न=यज्+ञ=यज्ञ+ः=यज्ञः=अश्वमेधादि.

याच्+न=याच्=ञ्=याचञ्+आ[1342]=याच्ञा=मांगना.

यत्+न=यत्न+ः=यत्नः=उद्योग.

विच्छ्+न=विश्[1]+न+विश्न+ः=विश्नः=प्रताप.

प्रच्छ्+न=प्रश्[1]+न=प्रश्न+ः=प्रश्नः=सवाल.

रक्ष्+न=रक्ष्+ण=रक्ष्ण+ः=रक्ष्णः=रक्षा.

(९१७) स्वपो नन् । ३ । ३ । ९१ ॥

ञिष्वप् (सोना) धातुसे परे नन् प्रत्यय हो.

ञिष्वप्+न=स्वप्+न=स्वप्न+ः=स्वप्नः (स्वप्ना)

(९१८) उपसर्गे घोः किः । ३ । ३ । ९२ ॥

उपसर्गपूर्वक घु (६६३) संज्ञक धातुओंसे परे कि प्रत्यय हो ।

प्र+धा (धारण करना)+इ=प्र+ध्+इ+ः=प्रधिः=चक्रधारी.

उप+धा (धारन करना)+इ=उप+ध्+इ+ः=उपाधिः=छल.

(९१९) स्त्रियां क्तिन् । ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् ।

स्त्रीलिंगभाव प्रकाश करना होय तो धातुसे परे क्तिन् प्रत्यय हो । **घञोऽपवादः ।** घञ् (९०६) का अपवाद है ।

कृ (करना)+ति=कृति+ः=कृतिः=काम करना.

ष्टु (स्तुति करना)+ति=स्तु+ति+ः=स्तुतिः (४२१ । ४६८)=प्रशंसा.

(९२०) ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः ॥

ऋकारान्त तथा लू आदि (७३७) धातुओंसे परे क्तिन् प्रत्यय निष्ठा (८६७) वत् हो **तेन नत्वम् ।** (९२०) का कार्य्य होनेसे नकार होताहै ।

कॄ (छींटना)+ति+किर्+कीर्+णि (८६९, २९२)+ः=कीर्णिः=छीटना.

लू (छेदना)+ति+लू+नि+ः=लूनिः=काटना.

धू (काँपना)+ति+धू+नि+ः=धूनिः=काँपना.

पू (शुद्ध करना) +ति+पू+नि+ः=पूनिः= विनाश *

(९२१) सम्पदादिभ्यः क्विप् ॥

संपत् आदिसे परे क्विप् प्रत्यय हो । क्विप्में (१९९ । ३३०) कुछभी शेष न रहा-

सम्+पद्+०=सं+पत्+सं=सम्पत्=धन.

वि+पद्+०=विपत्-सं=विपत्=संकट.

आ+पद्+०=आपत्+सं आपत्=दुःखावस्था.

क्तिन्नपीष्यते । इन धातुओंसे परे क्तिन् प्रत्यय की भी विवक्षा की जाती हैं.

सम्+पद्+ति=सं+पत्+ति+ः=सम्पत्तिः=धन

---

* 'पूञो विनाशे' इस वचनसे विनाशही अर्थमें निष्ठातकारको नकार होताहै पवित्रता अर्थमें नहीं इसीसे विनाश अर्थमें 'पूनिः' और पवित्रता अर्थमें 'पूतिः' ऐसे रूप होते हैं ।

वि+पद्+ति=वि+पंत्+ति+ः=विपत्तिः=संकट.

आ+पद्+ति=आ+पंत्+ति+ः=आपत्तिः=दुःखावस्था.

(९२२) ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च । ३ । ३ । ९७ ॥

एते निपात्यन्ते ।

ऊति (रक्षा करनी), **यूति** (जोड़ना); **जूति** (शीघ्रगति), **साति** (ध्वंस) **हेति** (अस्त्र) और **कीर्ति** (यश) ए निपातन किये हैं।

(९२३) ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च । ६ । ४ । २० ॥

एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च ।

ज्वर् (ताप आना), त्वर् (शीघ्रता करनी), स्रिव् (जाना), अव् (रक्षा करना), मव (बांधना) इनकी उपधाको तथा वकारको ऊठ् हो जब कि जिसकी आदिमें अनुनासिक हो ऐसा प्रत्यय अथवा क्वि (क्विप्) अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहे तो ।

ऊय् (इ)+ति+ऊ[864]+ति+ः=ऊतिः=रक्षा करना.

ज्वर्+० (क्विप्)=जूऊर्+सुं[११९]=जूः[१११]=जिसे ज्वर हो.

त्वर्+०+तूऊर्+सुं[११९]=तूः=जो उतावली करनेवाला.

स्रिव्+०+स्रूऊ+ः=स्रूः=स्रुवा पात्र.

अव्+०+ऊ+ः=ऊः=रक्षक.

मव्+०+मुऊ+ः=मूः=बांधनेवाला.

(९२४) इच्छा । ३ । ३ । १०१ ॥

* इषेर्निपातोऽयम् ।

इच्छा यह शब्द इष् धातुसे निपातित होता है। इष धातुसे श प्रत्यय और यक्का अभाव निपाता जाता है। इष्+ अ (श)=(५४० । १२० । ७६ । १३४२) इच्छा ।

(९२५) अ प्रत्ययात् । ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् ।

प्रत्ययान्त धातुओंसे स्त्रीलिङ्गमें अकार प्रत्यय हो । कृ (करना)=स (७९३)= चिकीर्ष (७९७ । ७९६ । ७०७ । ६९२ । ७९४ । ४२९ । ४३० । ४८९ । ११९)+अ=चिकीर्ष[९५०६]+आ[१३४३]=चिकीर्षा=करनेकी इच्छा। इसी प्रकार । पुत्रकाम्या[७७३।५०३।७६०]= पुत्रकी इच्छा.

---

* ईषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते ।

(९२६) गुरोश्च हलः । ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामप्रत्ययः स्यात् ।

गुरुमान् (४८४, ४८९) हलन्त धातुसे परे स्त्रीलिंगमें अ प्रत्यय हो । **ईह्+(इच्छा- करना) अ=ईह्+अ** (९२९) **ईहा**=इच्छा.

(९२७) ण्यासश्रन्थो युच् । ३ । ३ । १०७ ॥

अकारस्यापवादः ।

जिस धातुके अन्तमें णि (७४८) हो उससे परे तथा **आस्** (वैठना), **श्रन्थ्** (ढीला करना) इन धातुओंसे परे-युच् प्रत्यय स्त्रीलिंगमें हो । युच्मेंसे यु शेष रहा । यह सूत्र अकार (९२५ । ९२६) का अपवाद है ।

कृ (करना) **+इ**[748] **=कार्**[202]**+इ+अन** (यु) (८३७) **+कार्+इ**[564] **+अन+कारण**[292]**+आ**[1342]**=कारणा**=करवाना इसी प्रकार **हृ+इ+यु=हारणा**=स्वीकार करना.

(९२८) नपुंसके भावे क्तः । ३ । ३ । ११४ ॥

भाव प्रकाश करना होय तो जब बननेवाला शब्द नपुंसकलिङ्ग हो तो धातुसे परे क्त प्रत्यय हो ।

(९२९) ल्युट् च । ३ । ३ । ११५ ॥

जब बननेवाला शब्द नपुंसकलिङ्ग हो तब भाव (९२८) अर्थमें धातुसे परे ल्युट् (यु)

हस् (हँसना) **+त=हसित**[434]**+अम्=हसितम्**=हँसी.

हस+यु=हस्=अन[837]**=हसन+अम्=हसनम्**=हँसी.

(९३०) पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण । ३ । ३ । ११८ ॥

जब बननेवाला शब्द संज्ञा और पुँल्लिङ्ग हो तब बहुधा धातुसे परे घ प्रत्यय हो ।

(९३१) छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य । ६ । ४ । ९६ ॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे ।

दो आदि उपसर्गसे हीन **छाद्** (ढाकना) धातुसे परे घ प्रत्यय रहते छाद्को ह्रस्व हो ।

दन्ताश्छाद्यन्ते अनेन–छद्+इ[748] **+छाद्**[490]**+इ+अ=छद्**[931]**+इ**[564] **+अः=छदः=दन्त**[120]**-च्छदः**[76]=जिससे दांत ढकेजाते हैं (ओष्ठ)

आकुर्वन्त्यस्मिन्निति आकरः–कृ (करना) आ+कृ+अ=आकर[431]**+अ+ः= आकरः**=खान.

(९३२) अवे तॄस्त्रोर्घञ् । ३ । ३ । १२० ॥

अव उपसर्ग उपपद रहते तॄ (तरना) तथा स्तॄ (फैलाना) धातुओंसे परे घञ् प्रत्यय हो ।

अव+तॄ+अ=अवतार+अ+ः=अवतारः=अवतार घाट.

अव+स्तॄ+अ=अवस्तार+अ+ः=अवस्तारः=कनात.

(९३३) हलश्च । ३ । ३ । १२१ ॥

हलन्ताद् घञ् । घापवादः ।

हलन्त धातुसे परे घञ् प्रत्यय हो (९३०) घका अपवाद है.

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति+रम् (रमना) +अ=राम+ः=रामः=जिसमें योगी रमण करते हैं.

अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति–अप्+आ+मृज्+अ=अपामार्ग्+अ+ः=अपामार्गः=रोगादि नाशक औषधी (चिचैड़ा)

(९३४) ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । ३ । ३ । १२६ ॥

एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् । करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च ।

जिस समय दुःख अर्थमें दुर् और सुख अर्थ में ईषद् वा सु उपपद रहे तब धातुसे परे खल् प्रत्यय हो । यहां करण और अधिकरणकी निवृत्ति हुई । (८२१) से खल् प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थमें होताहै ।

दुर्+कृ+अ (खल्)=दुष्कर+ः=दुष्करः (दुष्करः कटो भवता) (दुःख अर्थमें) आपसे चटाईका बनना कठिन है ।

ईषद्+कृ+अ=ईषत्कर+अ+ः ईषत्करः जो विना परिश्रम बनसकता हैं (सुख अर्थमें)

सु+कृ+अ=सुकर्+अ+ः=सुकरः=जो सुगमतासे बनसकता है.

(९३५) आतो युच् । ३ । ३ । १२८ ॥

खलोऽपवादः ।

आकारान्त धातुसे परे युच् प्रत्यय हो । खल्का अपवाद है.

दुर्+पा+यु=दुर् पा+न+दुष्पानः=कठिनतासे किया जा सकता है.

ईषद्+पा+यु=ईषत्पा=अन+ःईषत्पानः=अनायास पिया जा सकता है.

ईषत्पानः सोमो भवतः=आप सोम रस अनायास पी सकते हो.

सु+पा+यु+सु=पा+अन+ःसुपानः=सुगमतासे पिया जा सकता है.

(९३६) अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचांग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः । दोदद्धोः ।

निषेध अर्थवाचक अलम् तथा खलु जिसके उपपद हों उस धातुसे क्त्वा प्रत्यय हो । **प्राचाम्** (प्राचीनों) का ग्रहण आदरके निमित्त है । (४०१) उपपद समास नहीं हुआ क्योंकि **'अमैवाव्ययेन'** यह सूत्र नियम करताहै कि अम् प्रत्ययान्तही अव्ययके साथ उपपद समास होताहै और क्त्वा इत्यादिके साथ नहीं इससे यहां उपपद समास नहीं होता।

अलम्+दा+त्वा=अलम्+द्द्+त्वा=अलं दत्त्वा=मत दो.

खलु+पा+त्वा=खलु+पी[६२६]**+त्वा=खलु पीत्वा**=मत पिओ.

अलंखल्वोः किम् ? अलं तथा खलु उपपद रहते क्त्वा हो ऐसा क्यों कहा ? (उत्तर) इनके विना क्त्वा नहीं होता है सो होनेलगैगा जैसे **मा कार्षीत्** (४७०) वह मत करे, यहां मा उपपद रहतेभी क्त्वा होजायगा । **प्रतिषेधयोः किम् ?** निषेध अर्थ क्यों कहा ? **अलंकारः** यहां भूषण अर्थ रहनेसे कृ धातुसे क्त्वा न हुआ ।

(९३७) समानकर्तृकयोः पूर्वकाले । ३ । ४ । २१ ॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् ।

जब अनेक धातुओंका कर्ता एक हो तो उनमें जो धातुका अर्थ पूर्वकालमें हो उससे परे क्त्वा प्रत्यय हो ।

ष्णा (शुद्ध होना)**+त्वा=स्नात्वा व्रजति**=स्नान करके जाता है. अर्थात् पहले स्नान करता फिर जाता है ।

'द्वित्वमतन्त्रम्' (९३७) सूत्रमें द्वित्व अविवक्षित है अर्थात् **'समानकर्तृकयोः'** इससे यह अर्थ होताहै कि एक कर्तावाले जो दो धातु उनमें पूर्व जिसका व्यापार हो उससे क्त्वा हो पर अविवक्षा करनेहीसे ऊपर लिखा हुआ अर्थ होताहै इसीसे=**भुज्+क्त्वा**[३३३]**= भुक्त्वा** (४६८) **पीत्वा** (४६८) **व्रजति** खापीकर जाता है ए रूप सिद्ध होते हैं।

(९३८) न क्त्वा सेट् । १ । २ । १८ ॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् ।

इट्के सहित जो क्त्वा सो कित् न हो ।

शीङ् (सोना)**+इ+त्वा=शयित्वा**[४२१।१८]=सोकर.

सेट् किम् ? इट् सहित कहनेका कारण क्या ? (३०) **कृत्वा** (करके) इसमें इट् नहीं (९११) हुआ; इस कारण (४२१) से गुण (४१८) भी न हुआ ।

(९३९) रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च । १ । २ । २६ ॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेरलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः।

जिस धातुकी उपधामें इवर्ण अथवा उवर्ण हो आदिमें हल् और अन्तमें रल् होय उससे परे इट् सहित जो क्त्वा और सन् प्रत्यय वे विकल्प करके कित् हों।

द्युत्+इ+त्वा=द्युतित्वा (वा) द्योतित्वा=चमककर.

लिख+इ+त्वा=लिखित्वा (वा) लेखित्वा=लिखकर.

व्युपधात् किम् ? उपधामें इवर्ण उवर्ण क्यों कहा ? (उत्तर) **वृत्+त्वा=वर्तित्वा** (रहकर) इसमें (९३८) के अनुसार (४८६) से जो नित्य गुण होता है सो विकल्प करके हो जायगा। **रलः किम् ?** अन्तमें रल्से परे क्यों कहा। (उत्तर) **सेवित्वा** (सेवा करके) इस प्रयोगमें (९३९) से विकल्प कित् होनेसे (४८६) से गुण भी विकल्प हो जायगा सिद्धान्तमें तो इससे नित्य होता है। **हलादेः किम् ?** आदिमें हल् हो यह क्यों कहा ? **एषित्वा**–(जाकर) इस प्रयोगमें पक्षान्तरमें 'इषित्वा' ऐसा गुणरहित प्रयोग हो जायगा. इससे आदिमें हल् कहा। **सेट् किम् ?** इट्युक्त कहनेका कारण क्या ? **भुक्त्वा** (खाकर) यहां भुज् धातु अनिट् होनेसे (९३९) वां न लगा, इससे कित् मान कर (४६८) से गुण (४८६) का निषेध हो जाता है। **शमु+क्त्वा**–

(९४०) उदितो वा । ७ । २ । ५६ ॥

उदितः परस्य क्त्व इड्वा।

जिस धातुमें उ इत्संज्ञक हो तिससे परे क्त्वाको विकल्प करके इट्का आगम हो।

शमु (उ)+इ	**+त्वा=शमित्वा**	=शान्त होकर.
शम्	**+त्वा=शान्त्वा (७७६)**	=शान्त होकर.
दिव् (खेलना)	**+त्वा=देवित्वा**	=खेलकर.
दिव्	**+त्वा=दिव् द्यूत्वा**	=खेलकर.
धा (धारण करना)	**+त्वा=हित्वा (८७९)**	=धारण करके.

दधातेर्हिः (८७९) धाको हि आदेश होताहै।

(९४१) जहातेश्च क्त्वि । ७ । ४ । ४३ ॥

ओहाक् (त्याग करना) धातुको हि (८७९) आदेश हो।

हा+त्वा=हित्वा=त्याग करके। **हाङस्तु** गमन अर्थमें हासे क्त्वा होनेपर–

ओहाङ्+हा+त्वा=हात्वा=जाकर ऐसा रूप होताहै।

प्र+कृ+त्वा–

(९४२) समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् । ७ । १ । ३७ ॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् ।

समास होनेपर जब उसका पूर्वपद नञ्भिन्न अव्यय हो तब उससे परे क्त्वाके स्थानमें ल्यप् आदेश हो । प्र और कृका समास करके क्त्वाके स्थानमें ल्यप्मेंका य शेष रहा, तब **प्रकृ+य=** (११३) से ल्यप् को कित् मानकर (८२९) से तुक्का आगम हुआ **प्रकृत्+य=प्रकृत्य**=आरम्भ करके । **अनञ् किम् ?** नञ्भिन्न पूर्वपदका कारण क्या ? (उत्तर) **अकृत्वा**-(न करके) यहां नञ्पूर्वपद होनेसे ल्यप् नहीं होताहै सो होजायगा । **अव्ययपूर्वपदे किम् ?** समास के पूर्वपद अव्यय होनेसे क्यों कहा ? **परमकृत्वा** (श्रेष्ठ करके) इसमें पूर्वपद परम है यह अव्यय नहीं है इससे ल्यप् न हुआ ।

(९४३) आभीक्ष्ण्ये णमुल् च । ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् क्त्वा च ।

जब कोई क्रियाके वारंवार होनेका प्रकाश करना हो तो उससे व्यवधानरहित पूर्व सूत्र (९४२) के विषयमें क्त्वा और णमुल् दोनों प्रत्यय हों ।

(९४४) नित्यवीप्सयोः । ८ । १ । ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् ।

जब कोई क्रिया वारंवार प्रकाश करनी हो अथवा वीप्सा (बहु इच्छा) प्रकाश करनी होय तो उस पदको द्वित्व हो । तिङन्त तथा अव्ययसंज्ञक कृदन्त (४०१) के विषय वारंवार करना अर्थ रहता है उसेही द्वित्व हो=यथा **स्मारं स्मारं नमति शिवम्** (९४३ । २०२ । ९४) वारंवार स्मरण कर शिवको नमस्कार करता है । **स्मृ+अम्** (**णमुल्**) =**स्मार+अम्=स्मारम्** । **स्मृ+त्वा=स्मृत्वा**=वारंवार स्मरण करके । **पायं पायम्** (८०७) वारंवार पीकर । **भोजं भोजम्** (४८१) वारंवार भोजन करके । **श्रावं श्रावम्** (२०२) वारंवार सुनकर ।

(९४५) अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् । ३ । ४ । २७॥

एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवंभूतश्चेत् कृञ्, व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्ह इत्यर्थः ।

अन्यथा (दूसरी रीतिसे) **एवम्** (ऐसा) **कथम्** (कैसे) और **इत्थम्** (इस प्रकारसे) । ए शब्द जब उपपद हों तब कृञ् धातुसे परे णमुल् हो, उस अवस्थामें जब कि कृञ् धातुसे कुछ अर्थ न निकलता हो अर्थात् निरर्थक हो इससे उसका प्रयोग करना अयोग्य हो । यथा

अन्यथाकारं भुङ्क्ते—वह अन्य रीतिसे खाता है। **एवंकारं भुङ्क्ते**—वह ऐसे खाता है। **कथंकारं भुङ्क्ते**—वह कैसे खाता है। **इत्थंकारं भुंक्ते**—वह ऐसे खाता है, इन उदाहरणोंमें कृञ् धातुसे परे णमुल् (अम्) प्रत्यय किया है। यथा—**कृ+अम्=कार्** (२०२) **+अम्=कारम्**—रूप सिद्ध हुआ, इन प्रयोगोंमें कृधातु निरर्थक है इसीसे ण्वुल् हुआ है। **सिद्धेति किम् ?** जो कृञ् धातुका अप्रयोग सिद्ध हो ऐसा क्यों कहा ? तो—**शिरोन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते**—वह शिरको अन्यथा करके खाता है। **कृत्वा**—(कृ+त्वा) इसमें कृञ् धातु अर्थयुक्त है इससे ण्वुल् न होकर क्त्वा हुआ क्योंकि यहां कृञ्को किसी प्रकारसे नहीं छोड़ सकते ॥ इत्युत्तरकृदन्तम् ॥

॥ इति कृदन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कारकप्रकरणम्।

(९४६) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा । २ । ३ । ४६ ॥

नियतोपस्थितिकः[1] प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः प्रातिपदिकार्थमात्रे लिंगमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् । प्रातिपदिकार्थमात्रे=उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम् । लिंगमात्रे=तटः, तटी, तटम् । परिमाणमात्रे=द्रोणो व्रीहिः । वचनं=संख्या=एकः, द्वौ, बहवः ।

प्रातिपदिकके कथन मात्रसेही जो अर्थ नियमसे प्रादुर्भूत होता है उसे **प्रातिपदिकार्थ** कहते हैं। सूत्रमें जो मात्र शब्द है सो प्रातिपदिकार्थ, लिङ्ग, परिमाण और वचन इन चारोंमें लगता है जिस शब्दमें केवल प्रातिपदिकार्थ होय अथवा उसके उपरान्त केवल लिङ्ग अर्थ अधिक होय अथवा केवल परिमाण अर्थ अधिक हो, अथवा जो शब्द केवल संख्यावाचक हो उससे परे प्रथमा विभक्ति हो। (केवल प्रातिपदिकार्थमें)—**उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्** यहां प्रातिपदिकार्थमात्रमें प्रथमा हुई, यहां इनसे जो जो अर्थ निकले सो नियमसे निकले हैं ॥ अब केवल लिङ्ग अर्थमें प्रातिपदिकार्थके उपरान्त लिखते हैं—**तटः पु० तटी स्त्री० तटम् न०** नदीका किनारा। इनमें नदीका किनारा यह अर्थ तो नियमसे सिद्ध है परन्तु तीनों लिंग नहीं इससे तीनों लिङ्गकी अधिकता कहनेमें प्रथमा हुई ॥ प्राति—पदिकार्थके उपरान्त केवल परिमाण अर्थकी अधिकताका उदाहरण=**द्रोणो व्रीहिः** द्रोण

१ यस्मिन्प्रातिपदिके उच्चारिते सति यस्यार्थस्य तियमेनोपस्थितिः स नियतोपस्थितिकः।

एक प्रकारका नाप है. द्रोण (१६ सेर भर चावल) यह प्रातिपदिकार्थ है, इससे परे प्रथमाका एकवचन सु प्रत्यय (जिसका अर्थ परिमाण है) आया तो प्रातिपदिकका अर्थ जो पात्रविशेष है उसके साथ परिमाण अर्थवाले सु प्रत्ययका अर्थ अभेदबोधरूप हुआ तब **द्रोणः** इस पदका अर्थ (द्रोणरूप नाप) हुआ अर्थात् परिमाण । परिमाण (नापनेके पात्र) से परिमेय (जिसका माप हो) की आकांक्षा होती है इस कारण परिच्छेद्य (व्रीहि) परिच्छेदक (द्रोण) सम्बन्धसे व्रीहिपदके साथ ऐसा बोध होगा कि द्रोणरूप परिमाणसे परिच्छिन्न चावल ॥ वचनका अर्थ संख्या है यथा एक दो बहुत । वचन शब्द सूत्रमें ग्रहण किया है इसका यह कारण है कि एक शब्दसे परे सु, द्विसे औ, और बहुसे जस् धरा जाय यदि ऐसे न कहते तो यह विभक्ति नहीं धर सकते, कारण कि जो अर्थ शब्दसेही निकलता है उसके प्रगट करनेको फिर किसी प्रत्ययके लगानेकी क्या आवश्यकता है, यथा एक शब्दके आगे उसीके अर्थमें प्रथमाके एकवचनके सु प्रत्ययका लगाना, द्वि शब्दके आगे उसीके अर्थमें औ, और बहु शब्दसे परे उसीके अर्थमें जस् प्रत्ययका लगाना व्यर्थ होजाता इससे संख्यावाचक प्रातिपदिकके आगे संख्यामेंभी प्रथमा हो । **एकः**—एक, **द्वौ**—दो, **बहवः**—बहुत ।

(९४७) सम्बोधने च । २ । ३ । ४७ ॥

इह प्रथमा स्यात् ।

सम्बोधन अर्थमें प्रथमा हो । **हे राम** (१९३) ॥ (इति प्रथमा) ॥

(९४८) कर्तुरीप्सिततमं* कर्म । १ । ४ । ४९ ॥

कर्तुः क्रिययाप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

कर्ताकी क्रियासे सम्बन्ध करनेको जो अधिक इष्ट (इच्छाविषय) सो कारकसंज्ञक हो तो वह **कर्म**सञ्ज्ञक हो । कर्ता और कर्मके नाम भेद करनेवालेको कारक कहते हैं ।

(९४९) कर्मणि द्वितीया । २ । ३ । २ ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा ।

जब कर्म किसी प्रत्ययसे उक्त न हो तब उस कर्मसे परे द्वितीया हो । यथा—**हरिं भजति**—हरिको भजता है । इस उदाहरणमें तिप् प्रत्यय कर्मदर्शक नहीं किन्तु कर्ताको प्रकाश करता है इससे हरि अनुक्तकर्म है इससे हरिके आगे अम् कर्ममें द्वितीया हुई । परन्तु जब किसी प्रत्यय (तिङ्, कृत्, तद्धित, समास) से कर्म आदि

---

* प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारप्रयोज्यप्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वयोग्यताविशेषशालित्वम्-ईप्सिततमत्वम् ।

उक्त हों तब उनसे परे प्रथमा ही हो । यथा=**हरिः सेव्यते**=हरि सेवा किया जाता है इस उदाहरणमें तिङ् प्रत्यय से कर्महीका बोध होता है (४०६) से उक्त कर्म होकर हरिशब्दके आगे प्रथमा हुई ।

लक्ष्म्या सेवितः=लक्ष्मीसे सेवा किया गया । इस उदाहरणमें कृत् प्रत्यय (८६८ । ८२१) से कर्म उक्त होनेसे उससे परे प्रथमा हुई ।

शतेन क्रीतः शत्यः=सौ रुपयेसे खरीदा हुआ । इस उदाहरणमें तद्धित प्रत्ययसे कर्म उक्त होकर प्रथमा हुई है ।

प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः—प्राप्त हुआ है आनन्द जिसको ऐसा । इस उदाहरणमें समाससे कर्म उक्त है इससे कर्ममें प्रथमा हुई ।

(९५०) अकथितं च । १ । ४ । ५१ ॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

अपादान (पंचमी), **संप्रदान** (चतुर्थी). **करण** (तृतीया), **अधिकरण** (सप्तमी) इनकी जब विवक्षा न होय (९९१) तब यह कारकसंज्ञक होकर कर्मसंज्ञक हों

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थ्मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

दुह् (दुहना), **याच्** (मांगना), **पच्** (पाक करना), **दण्ड्** (दण्ड देना), **प्रच्छ** (पूछना), **चि** (इकट्ठा करना), **ब्रू** (व्यक्त बोलना), **शास** (शिक्षा करना), **जि** (जीतना), **मन्थ्** (मथना), **मुष्** (चुराना) इन धातुओंसे तथा **नी** (पहुंचाना), **हृ** (प्राप्त करना), **कृष्** (खैंचना), **वह्** (पहुँचाना) इन धातुओंके कर्मके साथ जिसका योग हो और अपादानादि विभक्ति जो कही हैं जब इनकी विशेष कर विवक्षा न हो तब यह कारक कर्मसंज्ञक हों ।

गां दोग्धि पयः=वह गायसे दूध दुहता है । इसमें दुह् धातुसे दोग्धि क्रियापदके पय कर्मके साथ गोशब्दकी पंचमी विभक्तिका योग है परन्तु यहां उसकी विवक्षा न होनेसे गोशब्दकी कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई ।

इसी प्रकार **बलिं याचते वसुधाम्**—बलिसे पृथ्वीको मांगता है । इस उदाहरणमें याच् धातुका कर्म वसुधा है उसका योग बलि शब्दकी चतुर्थी विभक्तिके साथ है, परन्तु चतुर्थी करनेकी इच्छा नहीं है इस कारण बलिशब्दकी कर्मसंज्ञा होकर (९४९) से द्वितीया हुई ।

तण्डुलान् ओदनं पचति=वह चावलको पका कर भात करता है, इसमें पच् धातुका कर्म ओदन है उसका तण्डुल शब्दकी तृतीया विभक्तिके साथ सम्बन्ध है उसके करनेकी इच्छा न की तो कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया हुई ।

गर्गान् शतं दंडयति=वह गर्गोंसे सौ मुद्रा दण्ड लेता है, इसमें चतुर्थी विभक्ति न होकर द्वितीया कर्ममें हुई ।

व्रजमवरुणद्धि गाम्=वह गोशालामें गौको घेरता है, इसमें व्रजशब्दकी सप्तमीके स्थानमें कर्ममें द्वितीया हुई ।

माणवकं पन्थानं पृच्छति=वह बालकके लिये मार्ग पूछता है, यहां चतुर्थीके स्थानमें द्वितीया हुई है ।

वृक्षमवचिनोति फलानि=वृक्षसे फल इकट्ठा करता है.

माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा=वह बालकको धर्म बताता वा सिखाता है ।

शतं जयति देवदत्तम्=वह देवदत्तसे सौ मुद्रा जीतता है.

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति=क्षीरसागरसे अमृत मथता है ।

देवदत्तं शतं मुष्णाति=देवदत्तसे सौ रुपया चुराता है ।

ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा=वह बकरीको गांवपर ले जाता, प्राप्त करता, खैंचता वा पहुंचाता है ।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा=वह ऊपर लिखे जो दुह् आदि सोलह धातु हैं उनके रूपकी कर्मसंज्ञामें प्रयोजन नहीं किन्तु इनके अर्थ इस कर्मसंज्ञामें कारण हैं इस कारण इन धातुओंके तुल्य अर्थ दूसरे धातुओंके रहते (९५१) वां सूत्र लगता है । यथा—

बलिं भिक्षते वसुधाम्=बलिसे धरती मांगता है, इस उदाहरणमें भिक्षधातु याचना अर्थमें है सो पंचमीके अर्थमें द्वितीया हुई ।

माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते, वक्ति इत्यादि=बालकको वह धर्म कहता है इत्यादि । यहां भाष धातु ब्रूके अर्थमें है ॥ ॥ (इति द्वितीया) ॥

(९६१) स्वतंत्रः कर्ता । १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातंत्र्येण विवक्षितोर्थः कर्ता स्यात् ।

क्रियामें जो स्वतंत्रतासे विवक्षित अर्थ सो (क्रियाका करनेवाला) कर्ता हो ।

(९६२) साधकतमं करणम् । १ । ४ । ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ।

क्रियाकी सिद्धिमें कर्ता (७४६) का जो अत्यन्त उपकारक कारक है उसकी **करण** संज्ञा हो ।

(९६३) कर्तृकरणयोस्तृतीया । २ । ३ । १८ ॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् ।

जब कि कर्ता और करण तिङ् आदि प्रत्ययोंसे उक्त न हों तब उनमें तृतीया हो ।

रामेण बाणेन हतो वाली=रामने बाणसे वालीको मारा, यहां तृतीया रामसे अनुक्त कर्त्तामें और बाणसे अनुक्त करणमें हुई ॥ (इति तृतीया) ॥

क्रि०

(९६४) कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम् । १ । ४ । ३२ ॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानसंज्ञः स्यात् ।

दानरूप क्रियाके कर्मके संग जिसको सयुक्त करनेकी इच्छा करे सो कारक संज्ञाको प्राप्त होकर संप्रदानसंज्ञावाला हो ।

(९६५) चतुर्थी संप्रदाने । २ । ३ । १३ ॥

संप्रदानमें चतुर्थी विभक्ति हो । यथा **विप्राय गां ददाति**=ब्राह्मणके निमित्त गौ देता है ।

(९६६) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्-योगाच्च । २ । ३ । १६ ॥

एभियोंगे चतुर्थी स्यात् ।

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट् इनके योगमें चतुर्थी हो ।

हरये नमः=हरिके निमित्त नमस्कार । **प्रजाभ्यः स्वस्ति**=प्रजाके निमित्त मङ्गल हो। **अग्नये स्वाहा**=अग्निके निमित्त हवन हो । **पितृभ्यः स्वधा**=पितरोंके निमित्त स्वधा हो. **अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्** । अलंशब्दका अर्थ यहां परिपूर्ण शक्तिदर्शक लेना; न कि केवल अलम् शब्द इस कारण उसके पर्यायवाचक शब्दोंके योगमें भी यही सूत्र लगता है। यथा **दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्तः**=दैत्योंके लिये हरि परिपूर्ण हैं, प्रभु हैं, समर्थ हैं, शक्तिमान् हैं, ए अलम्के पर्याय हैं इससे इनके योगमें चतुर्थी हुई. जहां अलं समर्थवाची न हो वहाँ चतुर्थी न हो यथा **'अलं महीपाल तव श्रमेण' इति रघुवंशे**॥ (इति चतुर्थी)॥

(९६७) ध्रुवमपायेऽपादानम् । १ । ४ । २४ ॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तद-पादानसंज्ञं स्यात् ।

अपाय (विभाग) साधनेमें जो ध्रुव (अवधिभूत) हो सो कारक संज्ञक होकर **अपादान** संज्ञक हो ।

(९६८) अपादाने पञ्चमी । २ । ३ । २८ ॥

अपादानमें पंचमी विभक्ति हो । **ग्रामादायाति**=वह ग्रामसे आता है । **धावतोऽश्वात्प-**

तति=वह दौड़ते हुए घोड़ेसे गिरता है। यहां ग्रामसे आनेवालेका वियोग और दौड़ते हुए घोड़ेसे गिरनेवालेका वियोग है इस वियोग (अपाय) में ध्रुव (अवधि भूत) ग्राम और अश्व हैं इनको (९९७) से अपादान संज्ञा होकर (९९८) से पञ्चमी हुई ॥ (इति पञ्चमी) ॥

(९५९) षष्ठी शेषे । २ । ३ । ५० ॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी ।

कारक तथा प्रातिपदिकके अर्थसे भिन्न जो स्वस्वामिभाव (स्वत्वस्वामित्वरूप) आदि संबन्ध सो यहां शेष कहा है उस शेषमें षष्ठी हो । यथा**राज्ञः पुरुषः**=राजाका पुरुष, इस उदाहरणमें राजा स्वामी और पुरुष उसका स्व (स्वकीय) है, राजामें स्वामित्व और पुरुषमें स्वत्व हुआ यही सम्बन्ध स्वत्व स्वामित्वरूप (स्वस्वामिभावसम्बन्ध) कहाता है ।

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव-कर्म आदिकाभी जब केवल सामान्य संबधरूपसे विवक्षा कीजाय तब षष्ठी हो । यथा-

सतां गतम्=श्रेष्ठ पुरुषोंका गमन ।

सर्पिषो जानीते=वह घृत संबन्धसे प्रवृत्त होता है ।

मातुः स्मरति=माताका स्मरण करता है ।

एधो दकस्योपस्कुरुते=लकडी जलका नवीन गुण लेती हैं ।

भजे शम्भोश्चरणयोः=मैं शिवके चरणोंको सेवताहूँ ॥ (इति षष्ठी) ॥

(९६०) आधारोऽधिकरणम् । १ । ४ । ४५ ॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ।

कर्ता तथा कर्मके द्वारा कर्ता और कर्मकी क्रियाका आधार कारकसंज्ञक होकर अधिकरणसंज्ञक हो । वह कमरेमें है इस प्रयोगमें रहनारूप क्रियाका आधार कमरा है । वह कसेरीमें चावल पकाता है इसमें चावल कर्म है और पकानारूप क्रियाका आधार कसेरी है

(९६१) सप्तम्यधिकरणे च । २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात् । चकाराद्दूरान्तिकार्थेभ्यः ।

अधिकरणमें सप्तमी हो । सूत्रमें चकारका यह आशय है कि दूर और निकट वाचक शब्दोंसेभी परे सप्तमी हो ।

औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । आधार तीन प्रकारका है औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक । जिसका किसी अवयवसे संयोग हो उसे औपश्लेषिक कहते हैं । यथा-**कटे आस्ते**=वह चटाई पर बैठता है अर्थात् किसी अवयवमें सोता है सबमें नहीं । **स्थाल्यां पचति**=कसेरीमें रांधता हैं यहां १ उदाहरणमें कर्ताकी

क्रिया (बैठना) के आधार (कट) को अधिकरण सञ्ज्ञा हुई और २ उदा० में कर्म (तंडुल आदि) की क्रिया (पकना) के आधार (स्थाली) को अधिकरण सञ्ज्ञा हुई है इसी लिये दो उदाहरण दियेगये हैं। जिससे विषयका बोध हो वह वैषयिक आधार है । यथा—**मोक्षे इच्छास्ति**=उसकी मोक्षमें अभिलाषा है, आशय यह कि उसकी इच्छाका विषय मोक्ष है. जिसमें आधेय संपूर्ण रूपसे व्याप्त हो वह अभिव्यापक आधार कहाता है। यथा—**सर्वस्मिन्नात्मास्ति**=आत्मा सबमें व्याप्त है, यह आधेय पूर्णरूपसे व्याप्त है । **वनस्य दूरे अन्तिके वा**=वनके दूर वा वनके निकट ॥ (इति सप्तमी) ॥

॥ इति कारकप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ समासप्रकरणम् ।

(९६२) समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः, स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः १ । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः २ । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः ३ । तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः । कर्मधारयभेदो द्विगुः । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः ४ । प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ५ ॥

समास पांच प्रकारका है, बहुत पदोंका एक होना समासका अर्थ है। जिसका कोई विशेष नाम नहीं उसे **केवलसमास** कहते हैं वह पहला १ है । जिसके पूर्वपदका अर्थ प्रायः प्रधान रहता है वह **अव्ययीभाव** (९६७) समास कहाता है यह दूसरा २ है। जिसके उत्तरपदका अर्थ प्रायः प्रधान रहता है वह तीसरा ३ **तत्पुरुष** (९८३) समास कहाता है, तत्पुरुषका एक भेद **कर्मधारय** (१००३) समास है, इसमें दोनों विभक्ति समान और विशेष्यविशेषणभाव होता है। कर्मधारयका एक भेद **द्विगु** (१००४, ९८४) है इसके पूर्व संख्यावाचक शब्द होता है। जिसमें प्रायः समासके पदोंको छोडकर किसी और पदका अर्थ प्रधान रहै वह चौथा ४ **बहुव्रीहि** (१०३९) समास है । जिसमें प्रायः दोनों पदोंका अर्थ प्रधान रहै वह पांचवां ५ **द्वन्द्व** (१०९९) समास कहाता है।

(९६३) समर्थः पदविधिः । २ । १ । १ ॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ।

जो विधि पदसे सम्बन्ध रखनेवाला है सो समर्थके अधीन हो, यहां एकार्थीभावका नाम समर्थ है ।

(९६४) प्राक्कडारात्समासः । २ । १ । ३ ॥

'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्राक्समास इत्यधिक्रियते ।

समास यह जो शब्द है इसका अधिकार यहांसे लेकर 'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्रके पूर्वतक किया जाता है ।

(९६५) सह सुपा । २ । १ । ४ ॥

सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात्पूर्वनिपातः ।

एक सुबन्तके साथ दूसरे सुबन्तका समास विकल्प करके हो । जिन पदोंका समास होताहै उनके समूहकी (१३६) से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है । (७१९) से सुप्का लुक् होता है । समास यह वृत्तिका एक भेद है । पृथक् २ अवयवोंसे जो एक अर्थ निकले उससे भिन्न एकरूपसे अर्थके प्रगट करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं । वृत्ति पांच प्रकारकी है—१ कृत् (३२९), २ तद्धित (१०९८), ३ समास (९६२), ४ एकशेष (१४९), और ५ सनाद्यन्तधातु । (५०३) वृत्तिके अर्थका बोधक जो वाक्य है उसे **विग्रह** कहते हैं । वह **लौकिक, अलौकिक** भेदसे दो प्रकारका है । यथा—**भूतपूर्वः**=(पहले हुआ) इस वाक्यमें लौकिक विग्रह **पूर्वम्+भूतः** है और अलौकिक विग्रह—**पूर्व+अम्+भूत+सु है,** इस उदाहरणमें कालवाचक जो पूर्व शब्द है यह भूत इस क्रिया शब्दका विशेषण है इससे पूर्वशब्द लौकिक उपसर्जन है इस कारण (९७०) से पूर्वशब्दका पूर्व प्रयोग पाया परन्तु इसके विरुद्ध भूत पदको पहले रक्खा है इसका आशय यह है कि पाणिनिका एक सूत्र **'भूतपूर्वे चरट्'** है इसमें पहले भूत शब्दका प्रयोग देखा गया है इससे प्रथम स्थापन किया ।

(९६६) इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च ॥

इव (सदृश) शब्दके साथ सुबन्तका समास हो और सुप्का लोप न हो । यथा—

वागर्थाविव । वागर्थौ+इव=वागर्थाविव । शब्द और अर्थके समान ।

॥ इति केवलसमासः समाप्तः ॥ १ ॥

अथाऽव्ययीभावसमासः ।

(९६७) अव्ययीभावः । २ । १ । ५ ॥

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ।

अव्ययीभाव इस पदका अधिकार (९८३) सूत्रके पूर्वतक है ।

(९६८) अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु । २ । १ । ६ ॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः । प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः । प्रायेणास्वपदविग्रहो वा । विभक्तौ । हरि+ङि+अधि इति स्थिते-

विभक्तिके अर्थका प्रकाश करनेवाला, समीपवाचक, समृद्धिवाचक, घटती, वस्तुका अभाव, नाश, असम्प्रतिवाचक (नहीं लगना), शब्दप्रादुर्भावप्रकाशक, पीछे, यथावाचक, क्रमवाचक, समकालवाचक, सदृशवाचक, प्राप्तिवाचक, सम्पूर्णतावाचक और अन्त्यवाचक अव्ययोंका समास सुबन्तके साथ नित्य हो । प्रायः नित्यसमासके विषे विग्रह (९६९) नहीं होता । और जो कदाचित् नित्यसमासमें विग्रह हो तो समस्यमानपदोंसे भिन्न उन्ही पदोंके अर्थवाचक पदोंके साथ विग्रह होता है । विभक्तिके अर्थमें अव्ययीभावका उदाहरण जैसे-**हरि+ङि+अधि** इस विग्रहमें अधि अव्यय है, और ङिके सम्बन्धसे उसका अर्थ होता है ।

(९६९) प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् । १ । २ । ४३ ॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ।

समासविधायक शास्त्रमें जो प्रथमाके रूपसे निर्दिष्ट हो उसकी उपसर्जन संज्ञा हो । **हरि+ङि+अधि**=इसमें समास सूत्र (९६८) में प्रथमा निर्दिष्ट अव्यय (अव्ययम्) पद है तो इससे उसीको उपसर्जन संज्ञा होगी, अधि अव्यय है इसकारण उसकी **उपसर्जन** संज्ञा हुई ।

(९७०) उपसर्जनं पूर्वम् । २ । २ । ३०

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक् । अधिहरि ।

समासमें उपसर्जन पहले रक्खाजाय । लौकिक शास्त्रीय दो प्रकारके उपसर्जन होते हैं

लौकिक उपसर्जन विशेषणका नाम है और (९१९) सूत्रसे जिसकी उपसर्जनसंज्ञा है वह शास्त्रीयहै इस कारण अधिका प्रयोग हरिशब्दसे पहले हुआ तब **अधि+हरि+ङि** ऐसी स्थिति हुई (७१९) से सुप्का लुक् हुआ तो **अधि+हरि** रूप हुआ। जिसका कोई एक अवयव विकारको प्राप्त होजाता है वह सम्पूर्णतासे औरही नहीं बन जाता (यथा १८१) इस कारण सुप् ङिका लोप होकर यद्यपि कुछ विकृति हुई है तथापि यह प्रातिपदिकसंज्ञकही है इसीसे सुप् प्रत्यय (१३७) फिर होते हैं—**अधि+हरि+सु**=(४०२) से सुका लोप हुआ कारण कि (४०२) से अव्ययीभाव समास अव्यय है तब **अधिहरि** (हरिविषे) रूप सिद्ध हुआ।

(९७१) अव्ययीभावश्च । २ । ४ । १८ ॥

अयं नपुंसकं स्यात् । गाः पातीति गोपाः । तस्मिन्निति अधिगोपम् ।

अव्ययीभाव समास नपुंसकलिंग हो। **गोपः** (गाय चरानेवाले) इसमें अधि अव्यय जोडकर **अधि+गोपा अधिगोप+अम्=अधिगोपम्** (९७०।२६९।९७२) गाय चरानेवालेके विषय, यह उदाहरणभी विभक्ति अर्थकाही है।

(९७२) नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः । २ । ४ । ८३ ॥

अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक् तस्य पंचमीं विना अमादेशः ।

अदन्त अव्ययीभाव समाससे परे सुप्का लुक् न हो और पंचमीको छोड़कर शेष विभक्तियोंको अम् आदेश हो।

(९७३) तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् । २ । ४ । ८४ ॥

अदन्तादव्ययीभावात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलममूभावः । उपकृष्णम् । उपकृष्णेन ।

अदन्त अव्ययीभाव समाससे परे तृतीया और सप्तमीको अम् आदेश (९१२) नाना प्रकार (विकल्पसे) हो। यथा—**उप+कृष्ण=उपकृष्ण+अम्=उपकृष्णम् उप+कृष्ण=उपकृष्ण+इन (टा) उपकृष्णेन** } कृष्णके निकटसे।

मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा संप्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

अब (९१८) के और उदाहरण लिखते हैं—

---

१ सूत्रमें संज्ञाविधान करनेसे शास्त्रीय उपसर्जन होताहै।

(समृद्धि) सु+मद्र=सुमद्र+अम्=सुमद्रम्=मद्रदेशवालोंकी वृद्धि.
(घटती) दुर्+यवन=दुर्यवन+अम्=दुर्यवनम्=यवनोंकी घटती.
(अभाव) निर्+मक्षिका=निर्मक्षिक+अम्=निर्मक्षिकम्=मक्खियोंका अभाव.
(नाश) अति+हिम=अतिहिम+अम्=अतिहिमम्=हिमका नाश.
(असंप्रति) अति+निद्रा=अतिनिद्र+अम्=अतिनिद्रम्=(२६९)निद्रा नहींआती,
(प्रादुर्भाव) इति+हरि=इतिहरि+सुँ=इतिहरि=हरिशब्दोंका प्रकाश जो भक्तोंको हो.
(पीछे) अनु+विष्णु=अनुविष्णु+सुँ=अनुविष्णु=विष्णुके पीछे ।

यथा अव्ययके चार अर्थ हैं=१ योग्यता (लायकी), २ वीप्सा (अनेक सम्बन्ध), ३ पदार्थानतिवृत्ति (कोई पदार्थका उल्लंघन न करना), ४ सादृश्य (तुल्यता) ।

(१) अनु+रूप=अनुरूप+अम्=अनुरूपम्=रूपके योग्य (योग्यता) ।
(२) प्रति+अर्थ=प्रत्यर्थ+अम्=प्रत्यर्थम्=सब अर्थोंमें (वीप्सा) ।
(३) यथा+शक्ति+यथाशक्ति+सु=यथाशक्ति=अपनी शक्तिके अनुसार अर्थात् शक्तिको उल्लंघन न करके (पदार्थानतिवृत्ति) ।

(४) सह+हरि-

(९७४) अव्ययीभावे चाकाले । ६ । ३ । ८१ ॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादृश्यं सहरि ।

अव्ययीभावसमासमें सहको स आदेश हो उत्तरपद कालवाचक न होय तो ।

सह+हरि=सहरि+सु=सहरि=हरिसमान.

ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत्सचक्रम । सदृशः सख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति । अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ।

(९६८) में कहे अनुपूर्व इत्यादि अर्थोंके उदाहरण—

(क्रम) अनु+ज्येष्ठ+अम्=अनुज्येष्ठम्=ज्येष्ठके क्रमसे.
(युगपत्) सह+चक्र+अम्=सचक्रम्=चक्रके समकाल.
(सादृश्य) सह+सखि+सु=ससखि=मित्रके तुल्य.
(सम्पत्ति) सह+क्षत्र+अम्=सक्षत्रम्=क्षत्रियोंकी पूर्णता.
(साकल्य) सह+तृण+अम्=सतृणम् (अत्ति)=तृणको भी न छोड़कर खा जाताहै.
(अवधि) सह+अग्नि+सु=साग्नि=अग्निप्रतिपादक ग्रंथतक वेद पढ़ता है.

(९७५) नदीभिश्च । २ । १ । २० ॥

नदीभिः सह संख्या वा समस्यते । समाहारे चायमिष्यते ।

पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ।

नदीवाचक शब्दोंके साथ संख्यावाचक शब्दोंका समास विकल्प करके हो । भाष्यकारका अभिप्राय है कि यह सूत्र समाहार (१००९) में लगता है और जगह नहीं ।

पञ्च+गंगा=पञ्चगंगा+सुँ=पञ्चगंगम् (पञ्चानां गंगानां समाहारः) पांच गंगाका समुदाय.

द्वि+यमुना=द्वियमुना+सुँ=द्वियमुनम् (द्वयोर्यमुनयोस्समाहारः) दो-यमुनाका समुदाय.

(९७६) तद्धिताः । ४ । १ । ७६ ॥

आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

इससूत्रके प्रारंभसे अष्टाध्यायीके पांचवें अध्यायकी समाप्ति (तद्धित) तक इस पदका अधिकार हो ।

(९७७) अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ १०७॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् ।

अव्ययीभावसमासमें शरद् आदिसे परे समासका अन्त अवयव टच् (अ ९७६. १४८) प्रत्यय हो ।

उप+शरद्+अ=उपशरद+अँम्=उपशरदम्=शरद्‌ऋतुके समीप.

प्रति+विपाश्=प्रतिविपाँश्+अ+अम्=प्रतिविपाशम्=विपाशा नदीके निकट ।

(९७८) जराया जरश्च ॥

जरा शब्दके स्थानमें जरस् आदेश (१८१) हो । यथा-

उप+जरा=उप+जरस्+अ+अम्=उपजरसम्=जरा अवस्थाके समीप.

(९७९) अनश्च । ५ । ४ । १०८ ॥

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् ।

जो अव्ययीभाव समासके अन्तमें अन् होय तो उससे परे टच् प्रत्यय हो ।

उप+राजन्+अ-

(९८०) नस्तद्धिते । ६ । ४ । १४४ ॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते ।

तद्धित (९७६) प्रत्यय परें हुए सन्ते भसंज्ञक (१८९) नकारान्त अंगकी टि(५२) का लोप हो ।

उप+राज्+अ+अम्=उपराजम्=राजाके समीप ।

अधि+आत्मन्+अ+अधिआत्म+अ+अम्=अध्यात्मम्=आत्माके विषयमें ।

(९८१) नपुंसकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । १०९ ॥

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा ।

जो अव्ययीभावसमासके अन्तमें नपुंसकलिंगका अन् आवे तो उससे परे टच् प्रत्यय विकल्प करके हो । यथा–

उप+चर्मन्=उपचर्मन्+अ=उपचर्म्+अ+अम्=उपचर्मम् ।

(अथवा) **उपचर्म**=चर्मके समीप.

(९८२) झयः । ५ । ४ । १११ ॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा ।

जिस अव्ययीभावसमासके अन्तमें झय् प्रत्याहारका वर्ण होय उससे परे टच् प्रत्यय विकल्प करके होय ।

उप+समिध्+अ+अम्=उपसमिधम् (अ०) **उपसमित्**=अग्निमें जो हुनी जाती है ऐसी लकड़ीके निकट ॥

इत्यव्ययीभावसमासः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तत्पुरुषसमासः ।

(९८३) तत्पुरुषः । २ । १ । २२ ॥

अधिकारोऽयम् । प्राग्बहुव्रीहेः ।

तत्पुरुष इस पदका अधिकार (१०३९) वेंके पूर्वतक प्रत्येक सूत्रोंमें होय ।

(९८४) द्विगुश्च । २ । १ । २३ ॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात् ।

द्विगुसमास (१००४) भी तत्पुरुषसंज्ञक हो ।

(९८५) द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः । २ । १ । २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स च तत्पुरुषः ॥

कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः इत्यादि ।

श्रित (जिसने आश्रय किया), अतीत (जो अतिक्रमण करके आगे गया), (पतित जो गिरपड़ा), गत (जो गया), अत्यस्त (जो लांघ गया), प्राप्त (जो पहुंचगया),

आपन्न (जो प्राप्त हुआ) इन सुबन्तोंके साथ द्वितीयान्तका समास विकल्प करके होय । **कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः** (जिसने कृष्णका आश्रय किया) इत्यादि ।

लु० ३

(९८६) तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन । २ । १ । ३० ॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः । धान्येन अर्थः धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् ? अक्ष्णा काणः ।

तृतीयान्तके अर्थसे जिस गुणका संपादन किया जाता है उस गुणवाचक शब्दके साथ तथा अर्थशब्दके साथ तृतीयान्तका समास विकल्प करके हो । यथा **शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः** (सरोतेसे किया हुआ खण्ड) यहां तृतीयान्त (शङ्कुलया) के अर्थ (सरोते) से गुण (खण्ड) संपादन किया गया है इससे समास हुआ । इसीप्रकार **धान्येन अर्थः=धान्यार्थः**=धान्यसे जो अर्थ प्राप्त हुआ । **तत्कृतेति किम् ?** तृतीयान्त अर्थसे गुणको संपादन करै ऐसा क्यों कहा तो **अक्ष्णा काणः** एक आंखसे काना इसमें तृतीयान्त (अक्ष्णा) पद काणत्वका संपादक नहीं इससे समास न हुआ ।

(९८७) कर्तृकरणे कृता बहुलम् । २ । १ । ३२ ॥

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् ।

कर्ता अथवा करण अर्थमें जो तृतीया तदन्तसुवन्त अनेक प्रकारसे (८२४) कृदन्तके साथ विकल्प करके समासको प्राप्त हो । यथा **हरित्रातः** (अथवा) **हरिणा त्रातः**= हरिसे रक्षा किया हुआ । **नखभिन्नः** (अ०) **नखैर्भिन्नः**=नखोंसे विदीर्ण किया हुआ । **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्** । इस वचनसे इस सूत्रमें कृत्के ग्रहण करनेसे गति (२२२) अथवा कारक (९४६) जिस कृदन्तके पूर्व हो उसकाभी ग्रहण होता है । **नखैर्निर्भिन्नः नखनिर्भिन्नः**=नखोंसे फाडागया.

(९८८) चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः । २ । १ । ३६ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाय दारु-यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः । तेनेह न रन्धनाय स्थाली ।

जो चतुर्थ्यन्तके निमित्त हो उसके वाचक शब्दके साथ और **अर्थ** (निमित्त), **बलिः** (बलिदान). **हित** (उपकारक), **सुख** (सुख, चैन) तथा **रक्षित** (जिसकी रक्षा की हो) इन शब्दोंके साथ चतुर्थ्यन्त, पूर्वके सदृश अर्थात् विकल्प करके समस्यमान हो । यथा **यूपाय दारु-यूपदारु**—यज्ञस्तंभके निमित्त लकडी । चतुर्थ्यन्तके निमित्त जो

हो उसके वाचक शब्दके साथ, इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि चतुर्थ्यन्तके निमित्त जो शब्द हो उसका कोई विकार होता हो जैसे लकडीका स्तम्भके निमित्त । इसीसे आगेके उदाहरणमें समास न हुआ—**रन्धनाय स्थाली**—रांधनेको कसेरी । स्तम्भमें लकड़ीका रूपान्तर होजाता है, रांधनेसे बटलोईका नहीं होता इसीसे समास न हुआ ।

(९८९) अर्थेन सह नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम्॥

चतुर्थ्यन्त सुबन्तका अर्थ शब्दके साथ नित्य समास हो और विशेष्यके * अनुसार उसका लिङ्ग हो । यथा **द्विजाय अयम्=द्विजार्थः सूपः**+ब्राह्मणके निमित्त दाल । **द्विजार्था यवागूः**—ब्राह्मणके निमित्त लपसी **द्विजार्थं पयः** ब्राह्मणके निमित्त दूध । (९८८) में जो शब्द गिने हैं उनके उदाहरण—**भूतबलिः**=भूतोंके निमित्त बलि । **गोहितम्**=गौके निमित्त हितकारी । **गोसुखम्**=गायके निमित्त सुखकारक । **गोरक्षितम्**=जो गौके निमित्त रखाया गया हो । और जब समास न किया तब—**भूतेभ्यो बलिः** ऐसा विग्रह जानो ।

(९९०) पञ्चमी भयेन । २ । १ । ३७ ॥

भय शब्दके साथ पञ्चम्यन्त सुबन्तका समास हो । यथा **चोरात् भयं=चोरभयम्**=चोरसे भय ।

(९९१) स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन । २ । १ । ३९ ॥

स्तोक (थोडा), अन्तिक (निकट) और दूर इन शब्दोंमें तथा इन शब्दोंके अर्थमें जो शब्द हों सो और कृच्छ्र (कष्टवाचक) शब्द इनमें जो पञ्चम्यन्त हों सो क्तान्त (८६८) के साथ समासको प्राप्त हों । परन्तु—

(९९२) पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः । ६ । ३ । २ ॥

अलुगुत्तरपदे ।

उत्तरपद परे हुए सन्ते स्तोक आदि (९९१) शब्दोंसे परे पञ्चमीका लुक् (७६९) न हो । यथा **स्तोकान्मुक्तः**=थोडेसे छूटा । **अन्तिकादागतः**=समीपसे आया । **अभ्याशादागतः**=निकटसे आया । **दूरादागतः**=दूरसे आया । **कृच्छ्रादागतः**=कष्टसे आया ।

---

* किसी वस्तुका गुण प्रकाश करनेवाले शब्द विशेषण कहाते हैं और वह गुणयुक्त वस्तु विशेष्य कहाती है, जैसे नीला कमल यहां नीला विशेषण और कमल विशेष्य है ।

(९९३) षष्ठी । २ । २ । ८ ॥

सुबन्तेन प्राग्वत् ।

सुबन्तके साथ षष्ठ्यन्त सुबन्तका विकल्प करके समास हो । यथा **राजपुरुषः** (-२०० =राजाका पुरुष ।

(९९४) पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे । २ । २ । १ ॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यंते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी ।

पूर्व (पहलाभाग), **अपर** (पिछलाभाग), **अधर** (नीचेका भाग) तथा **उत्तर** (पिछलाभाग) इन शब्दोंका एकत्व संख्याविशिष्ट अवयवीके साथ विकल्प करके समास हो । **षष्ठीसमासापवादः** । यह सूत्र (९९३) का अपवाद है । एकदेशका एकदेशीके साथ समास हो उसे एकदेशी समास कहते हैं, एकदेश और एकदेशी इनका अधिकरण एक होय तो समास होय. **पूर्वं कायस्य=पूर्वकायः** (९६९ । ९७०)=शरीरका अगला भाग । **अपरकायः**-शरीरका पिछला भाग । **एकाधिकरणे किम् ?** एकत्वसंख्या-विशिष्ट अवयवीको क्यों कहा ? (उत्तर) **पूर्वश्छात्राणाम्**-विद्यार्थियोंमें सबसे पहला । यहाँ समास न हुआ क्योंकि छात्र बहुत्वसंख्याविशिष्ट है । पूर्व कायमें पूर्वकायका अवयव है और काय अधिकरण एक है इससे समास हुआ ।

(९९५) अर्धं नपुंसकम् । २ । २ । २ ॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत् ।

अर्धशब्दका अर्थ जब सम (आधा) हो और अर्द्धशब्द नपुसकलिंग हो तब उसका सुबन्तके साथ समास हो । यथा **अर्धं पिप्पल्याः=अर्धपिप्पली**=आधी पीपल.

(९९६) सप्तमी शौण्डैः[१] । २ । १ । ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् ।

सप्तम्यन्त सुबन्तका शौण्ड (निपुण) आदिगण शब्दोंके साथ विकल्प करके समास हो । यथा **अक्षेषु शौण्डः=अक्षशौण्डः** (पाशेमें निपुण) **इत्यादि** । यह कह आये हैं कि (९८९ । ९८६ । ९८८ । ९९० । ९९६) वेंमें जिन शब्दोंकी गणना की है उनके साथ द्वितीयान्त तृतीयान्त आदिका समास हो परन्तु **द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि द्वितीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः** । गिनेहुए पदोंसे भिन्न पदोंके साथमी समासका प्रयोजन देखा जाता है इसकारण प्रामाणिक ग्रंथोंके अनुसार **द्वितीया, तृतीया** आदिपदोंका अपने २ सूत्रोंमें योगविभाग करनेसे द्वितीयान्त तृतीयान्त आदि दूसरेके साथमी समासको प्राप्त हों ऐसा जानना ।

---

१ शौण्ड, धूर्त, कितव, व्याड, प्रवीण, संवीत, अन्तर, अधि. पटु, पण्डित, कुशल, चपल. निपुण ।

(९९७) दिक्संख्ये संज्ञायाम्। २। १। ५०॥

संज्ञायामेवेति नियमार्थम्।

दिशावाचक अथवा संख्यावाचक सुवन्तके समान अधिकरणवाले सुवन्तके साथ संज्ञा अर्थमें दिशा और संख्यावाचक समासको प्राप्त हों। दिशावाचकका उदाहरण–**पूर्व+इषुकामशमी=पूर्वेषुकामशमी (इषुकामशमी ग्रामविशेषः)**=इषुकामशमी एक किसी गाँवका नाम है। संख्यावाचकका उदाहरण–**सप्त+ऋषयः=सप्तर्षयः**=वसिष्ठादि सात ऋषि। यह (९९७) सूत्र नियम करता है कि दिग्वाचक व संख्यावाचक सुवन्तका सुवन्तके साथ समास हो तो संज्ञाहीमें हो। **तेनेह न**। तिससे यहां (जहां संज्ञा नहीं है) नहीं होता। संज्ञा नहीं है इस कारण **उत्तरा वृक्षाः**=उत्तरवाले वृक्ष यहां समास न हुआ। और **पञ्च ब्राह्मणाः**=पांच ब्राह्मण। पहला दिशावाचक और दूसरा संख्यावाचकमें प्रत्युदाहरण समझना।

(९९८) तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च। २। १। ५१॥

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत्।

जब तद्धित प्रत्यय (९७६) के अर्थकी विषयता हो अथवा उत्तरपद परे हो अथवा समाहार वाच्य हो तो दिशावाचक अथवा संख्यावाचक शब्द विकल्प करके समस्यमान हों। यथा–**पूर्वस्यां शालायां भवः** (जो पूर्वशालामें हुआ) जब इन दो पदों (पूर्व+शाला) का समास होता है तब भवरूप तद्धितके अर्थकी विषयता रहती है (९९९) कारण कि जब ञ प्रत्यय भवरूप अर्थमें होता है सो समास होनेके पीछे आता है तब समास होनेपर **पूर्वा+ङि+शाला+ङि+अ** (९९९) **पूर्वाशाला** (७१९) से विभक्तिका लोप हुआ फिर वा अन्तरगत आ स्त्रीलिङ्ग (९१९) से निकाल डाला क्योंकि **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः**। पांचो वृत्ति जो गिनाई हैं उनमें किसी वृत्तिमें सर्वनाम रहे तो उसका रूप पुँल्लिंगके समान हो तब **पूर्व+शाला** हुआ–

(९९९) दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः। ४। २। १०७॥

अस्माद्भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम्।

जिसका समास किया गया है जब वह पद किसीकी संज्ञा न हो तब उससे परे भव आदि अर्थोंमें तद्धित (९७६) संज्ञक ञ प्रत्यय हो परन्तु जो पूर्वपद समासका अवयव दिशावाचक होय तो तब इससे **पूर्वशाला** (९९८)+**ञ**–

(१०००) तद्धितेष्वचामादेः। ७। २। ११७॥

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात्।

ञित् (९९९) अथवा णित् (१०६९) तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते अचोंमेंके पहले अच्को वृद्धि हो। इस सूत्रसे वृद्धि होकर **पौर्वशाला+अ** रूप हुआ फिर (२६०)

से ला अन्तर्गत आकारका लोप होकर **पौर्वशाल्+अ+ः=पौर्वशालः** (जो पूर्वशालामें हुआ) रूप बना। **पञ्च गावो धनं यस्य** (जिसका धन पांच गाय हैं) इस उदाहरणमें तीनों पद बहुव्रीहि समासके हैं (१०३९) इससे नीचेका वार्तिक लगा—

(१००१) द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥

जब समासमें पदसे परे उत्तरपद आवे तो द्वन्द्व (१०९९) अथवा तत्पुरुष (९८३) समास नित्य हों।

(१००२) गोरतद्धितलुकि । ५ । ४ । ९२ ॥

गोऽन्तात् तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि।

जो तत्पुरुष (९८३) के अन्तमें गो शब्द हो तो उससे परे तद्धित प्रत्ययका लुक् न हुआ होय तो तद्धितसंज्ञक टच् (अ) प्रत्यय समासका अन्त अवयव होय यथा **पंच+गो+अ+धन=पंचगवधनः**=जिसके धन पांच गाय हैं। **पंचभिर्गोभिः क्रीतः=पंचगुः**= जो पांच गायोंसे खरीदा हैं, इस उदाहरणमें क्रीतार्थी ठक् (इक्) प्रत्यय होकर उसका लोप हुआ इससे गो शब्दसे परे तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय न हुआ।

(१००३) तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः । १ । २ । ४२ ॥

जिस तत्पुरुषसमासके पद समान अधिकरणवाले (समान विभक्त्यन्त) हों अर्थात् एकही वस्तुको कहैं तो वह समास कर्मधारय हो।

(१००४) संख्यापूर्वो द्विगुः । २ । १ । ५२ ॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात।

(९९८) वें के लिखे तीन प्रकारमेंसे जिस समासका पूर्वपद संख्यावाचक हो उसकी द्विगुसंज्ञा हो।

(१००५) द्विगुरेकवचनम् । २ । ४ । १ ॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात्।

जो समाहार द्विगुसमास (१००४) से प्रकाश किया जाय उससे परे एकवचन हो।

(१००६) स नपुंसकम् । २ । ४ । १७ ॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्।

समाहार अर्थमें द्विगु (१००४) अथवा द्वंद्व (१०९९) समास नपुंसकलिंग हो।

पञ्चानां गवां समाहारः—पञ्चानां गवां=पञ्च+गो+अ+अम्=पञ्चगवम्= पांच गायोंका समुदाय।

(१००७) विशेषणं विशेष्येण बहुलम्। २। १। ५७॥

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्।

विशेष्यके साथ विषेषण अनेक प्रकार (८२४) विकल्प करके समस्यमान हो (९८९) यथा–**नीलम्+उत्पलम्=नीलोत्पलम्**=नीला कमल।

बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्–अनेक प्रकारसे कहनेका कारण यह है कि किसी स्थान में नित्य हो।

यथा–**कृष्णसर्पः**=काला नाग।

क्वचिन्न–कहीं समास न भी हो। यथा–**रामो जामदग्न्यः**=राम जो जमदग्निके पुत्र

(१००८) उपमानानि सामान्यवचनैः। २। २। ५५॥

जिस वस्तुसे किसीकी उपमा दीजाती है वह 'उपमान' कहलाता है और जिसकी उपमाकी जाती है उसे 'उपमेय' कहते हैं, उपमान और उपमेयमें जो धर्म सामान्य रहता है उसका वाचक सामान्यवाचक कहाता है यथा–राधाका मुख चन्द्रमाके समान है यहां मुख उपमेय चन्द्रमा उपमान है जो सुन्दरता राधाके मुख और चन्द्रमें तुल्य है वह सामान्य धर्म है इस अर्थका कहने हारा सुन्दर शब्द सामान्य वचन है सामान्य वचनके साथ उपमानवाचक शब्दका समास होता है। यथा–**घन इव श्यामः घनश्यामः** मेघके समान श्याम (कृष्ण)

(१००९) शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्॥

शाकपार्थिव इत्यादि समासरूप जो शब्द हैं उन समासरूपकी सिद्धिके निमित्त उत्तरपदका लोप हो ऐसा कहना चाहिये। यथा—**शाकप्रियः पार्थिवः** (शाक खड्ग वा मुष्टि जिसे प्यारे हैं ऐसा राजा) **शाकपार्थिवः** इसमें प्रिय शब्द उत्तरपदका लोप हुआ। इसी प्रकार **देवपूजको ब्राह्मणः=देवब्राह्मणः**=देवताओंका पूजक ब्राह्मण। इसमें पूजक उत्तरपद है उसका लोप हुआ.

(१०१०) नञ्। २। २। ६॥

नञ् सुपा प्राग्वत्।

नञ् अव्ययका सुबन्तके साथ विकल्प करके समास हो।

(१०११) नलोपो नञः। ६। ३। ७३॥

नञो नस्य लोपः स्यात् उत्तरपदे।

उत्तरपद परे हुए सन्ते नञ्के नकारका लोप हो। यथा–**न+ब्राह्मणः=अ+ब्राह्मण=अब्राह्मणः**=जो ब्राह्मण न हो ब्राह्मण के सदृश हो (द्विजबन्धु)।

(१०१२) तस्मान्नुडचि । ६ । ३ । ७४ ॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुट् । अनश्वः ।

नैकधेत्यादौ तु न-शब्देन सह सुप्सुपेति समासः ।

जिस नञ्के नकारका लोप (१०११) हुआ हो उससे परे जो अजादि पद हो तो उस को नुट्का आगम हो । यथा-**न+अश्व=अ(१०११)+अश्व=अन्+अश्व=अनश्वः=** जो घोडासा होनेपरभी घोडा नहीं है वह । **न+एकधा=नैकधा** इस उदाहरणमें पूर्वपद नकार है उसका एकधाके साथ (९६९) समास हुआ है सो न ञित् नहीं है इससे उसका लोप (१०११) न हुआ इससे यहां अन् क्यों नहीं होता यह शंका दूर होगई ।

(१०१३) कुगतिप्रादयः । २ । २ । १८ ॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते ।

कु (३९९) शब्द तथा गतिसंज्ञक (२२२ । १०१४) शब्द तथा प्र (४८) आदि शब्द समर्थके साथ अर्थात् एकार्थीभावकी योग्यता जिसमें हो ऐसे सुबन्तोंके साथ नित्य समस्यमान हों । यथा—**कु+पुरुषः=कुपुरुषः । वा । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः**=बुरामनुष्य ।

(१०१४) ऊर्यादिच्विडाचश्च । १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ।

३९९ ऊरी (अंगीकार) यह शब्द जिस गणकी आदिमें है वह तथा च्वि (१३३३) प्रत्ययान्त, डाच् (१३३९) प्रत्ययान्त शब्दोंकी क्रियाके योगमें गति (२२२)संज्ञा हो । यथा **ऊरी+कृत्य=ऊरीकृत्य** (१०१३।९४२) अंगीकार करके । **शुक्लीकृत्य**=श्वेतकरके **पटत्+पटत्+आ (डाच्)+कृत्य=पटपटाकृत्य** (२१७)=पटत् पटत् शब्द करके **सुपुरुषः**=(१०१३ । ४८) भला मनुष्य.

(१०१५) प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ।

प्र (४८) आदि उपसर्ग जब गतशब्दके अर्थमें हों अथवा गतके सदृश शब्दके अर्थमें हों तब उनका प्रथमान्तके साथ समास हो यथा-**प्र गतः आचार्यः=प्राचार्यः=**

---

१ ऊरी उररी ताली आताली वेताली धूली धर्सी शकला सशकला ध्वंसकला भ्रंसकला गुलगुधा सजूः फल फली विक्ली आक्ली आलोष्टी केवाली केवासी सेवासी शेवाली वर्षाली अत्यमसा वस्मसा मस्मसा मसमसा श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा वन्धा प्रादुस् पाम्पी अत् आविस् ।

कुलपरंपरासे प्राप्त हुआ आचार्य । इससे प्रआदि उपसर्गके साथ जो सुबन्तका समास होताहै वह प्रादिसमास कहाता है ।

(१०१६) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ॥

अति (४८) अथवा अतिके सदृश दूसरे क्रान्तार्थक (अतिक्रमण * अर्थवाले) उपसर्ग हों तो द्वितीयान्त सुबन्तके साथ नित्य समासको प्राप्त हों । यथा **अतिक्रांतो मालाम्**=जिसने मालाको अतिक्रमण किया अर्थात् जो मालासे बढकर है ।

(१०१७) एकविभक्तिर्चापूर्वनिपाते । १ । २ । ४४ ॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनं न तु तस्य पूर्वनिपातः ।

विग्रहमें जिसकी नियत (एक) ही विभक्ति रहती हो उसकी उपसर्जनसंज्ञा हो परन्तु उसका प्रयोग (९७०) से पूर्वपदके स्थानमें न हो । **अति+माला-**

(१०१८) गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । १ । २ । ४८ ॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तश्च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः ।

जो प्रातिपदिकका अन्त अवयव उपसर्जनसंज्ञक गोशब्द होय अथवा स्त्रीप्रत्ययान्त (१३४२) होय सो उसे ह्रस्व हो । **अतिमाल+सु**=(१०१६) में जो समासका विग्रह लिखाहै उसका ऐसा रूप होता है **अतिमालः**=जो सुन्दरतामें मालासे बढ़ गया.

(१०१९) अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ॥

क्रुष्ट (बोलने) अर्थमें अथवा उसके सदृश शब्दोंके अर्थमें अव अथवा अवके सदृश उपसर्ग (४८) आवें तो वह तृतीया सुबन्तके साथ समस्यमान हों । यथा **अवक्रुष्टः कोकिलया=अवकोकिलः**=कोकिलासे जो बुलाया गया **(परिणद्धो वीरुधा=परिवीरुत्)**

(१०२०) पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ।

ग्लान (खेद) अर्थमें अथवा उसके सदृश शब्दोंके अर्थमें परि अथवा परिके सदृश कोई उपसर्ग (४८) हो तो उनका चतुर्थ्यन्त सुबन्तके साथ समास हो ।

यथा-**परिग्लानो अध्ययनाय=पर्य्यध्ययनः**=पढनेके लिये ग्लानियुक्त.

---

* अभि उत् प्रति इत्यादि उपसर्ग क्रान्तार्थक हैं उनका समास नीचे लिखे अनुसार होता है **अधिगतः मुखम्=अधिमुखः**=सम्मुख गया । **उद्गतो वेलाम्=उद्वेलः**=जिसने समय चुका दिया ऐसा । **प्रतिगतः अक्षि=प्रत्यक्षः**=समक्ष ।

(१०२१) निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ॥

जो क्रान्त (गया) इस शब्दके अर्थमें अथवा इसके तुल्य किसी शब्दका अर्थ हो उसमें निर् अथवा निर्के सदृश उपसर्ग हों सो पञ्चम्यन्त सुबन्तके साथ समासको प्राप्त हों ।

निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः=निर्+कौशाम्बिः=निष्कौशाम्बिः=जोकौशाम्बी-नगरीसे निकला है । **उत्क्रान्ता कूलात् उत्कूला**=नदीके तीर अतिक्रमण कर आयी हुई ।

(१०२२) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् । ३ । १ । ९२ ॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ।

(८४२) आदिमें जो 'कर्मणि' इत्यादि सप्तम्यन्त पद हैं उनमें बोध्यतासे विद्यमान जो कुम्भ आदि तिनके वाचक जो पद उनकी उपपद संज्ञा हो । **कुम्भ+कृ+अ** इस स्थितिमें कृसे परे अ (अण्) प्रत्यय है, सप्तम्यन्त कर्मणि (८४२) पदका निर्देश किया है इसमें प्रकृति कृ है इसका अन्वय कुंभके साथ है (किसको करता है कुंभको) इससे यह उपपद अर्थात् निकटका पद, धातुसे अण् प्रत्यय होकर उसके कर्मकी उपपद संज्ञा हुई—

(१०२३) उपपदमतिङ् । २ । २ । १९ ॥

उपपदं समर्थेन नित्यं समस्यतेऽतिङन्तश्च समासः ।

उपपद (१०२२) संज्ञक जो हो सो समर्थ अर्थात् एकार्थीभावयोग्य शब्दके साथ नित्य समासको प्राप्त होता है और यह समास तिङन्तके साथ न होय । **कुम्भं करोति=कुम्भकारः**=(८४२ । ७६९ । २०२) कुम्हार ।

अतिङ् किम् ? तिङन्तके साथ समास न हो ऐसा क्यों कहा ? उत्तर यह कि—**मा भवान्भूत् । माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्**=इस उदाहरणमें मा (माङ्) है (४७०) से सप्तमीके निर्देश कियेजानेके कारणसे माङ उपपदसंज्ञक (१०२२) होता है भूत तिङन्त है इससे समास न हुआ नहीं तो होजाता ।

गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ।

कृदन्तसे परे सुप् प्रत्ययकी उत्पत्तिके पहलेही कृदन्तका गति (२२२, १०१४) कारक (९४६) और उपपद (१०२२) के साथ समास होता है यथा **व्याजिघ्रतीति=वि+आङ्+घ्रा=व्याघ्री**=जो सूंघकर खाती है (शेरनी) इस उदाहरणमें (८४०) से घ्रासे परे क प्रत्यय करके (९२९) से घ्रा अन्तर्गत आकारका लोप होकर व्याघ्र-शब्द सिद्ध हुआ तब (१३७४) से ङीष् स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय उत्पन्न होनेके पहले

समास हुआ । **अश्वेन क्रीता=अश्वक्रीती**=(१३६९) जो वस्तु घोड़ेको देकर खरीदी हो (गाय, भैंस आदि स्त्रीजातिके प्राणी) तृतीयासमाससे अश्वक्रीत होकर पीछे ङीष् स्त्रीलिंगका प्रत्यय लगा, यह उदाहरण कारकका है । **कच्छेन पिबति कच्छ+पी=कच्छपी** (९२९ । १२७४) उपपदके साथ कृदन्तका समास हुआ.

(१०२४) तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः । ५ । ४ । ८६॥

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात् ।

जो तत्पुरुष (९८३) समासके आदिमें संख्यावाचक शब्द हो अथवा अव्यय हो और अन्तमें अंगुलिशब्द हो तो उसको समासान्त अच् प्रत्यय हो । यथा–**द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य=द्विअङ्गुलि+अ**[१०२४] **=द्व्यङ्गुल्**[२६०]**+अ+अम्=द्व्यङ्गुलम्** (दो अंगुलीके प्रमाणका)। **निर्गतम् अङ्गुलिभ्यो=निर्+अङ्गुलि+अ+अम्=निरङ्गुलम्**= जो अंगुलीसे निकल गया अर्थात् अंगुलीसे अधिक ।

(१०२५) अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः । ५ । ४ । ८७॥

एभ्यो रात्रेरच् स्यात् चात् संख्याव्ययादेः ।

अहन् (दिन), सर्व (सब), एकदेश (एक भाग), संख्यात (गिना गया), और पुण्य (पवित्र) इन शब्दोंसे परे रात्रि शब्द आवे तो उससे परे समासका अन्त अवयव अच् प्रत्यय हो । सूत्रमें चकारसे यह विदित होता है कि संख्यावाचक शब्द अथवा अव्यय इनमेंसे कोई रात्रि शब्दके आदिमें आवे तो समासमें अच् प्रत्यय हो ।

अहर्गणम् द्वन्द्वार्थम् । सूत्रमें अहन् शब्दका ग्रहण द्वन्द्वसमासके निमित्त किया है कारण कि अहन् रात्रि इन दोनों शब्दोंमें तत्पुरुष समास नहीं किन्तु द्वन्द्व होता है और उसमें अच्भी हो ऐसा जानना । **अहन्+रात्रि+अ–**

(१०२६) रात्राह्नाहाः पुंसि । २ । ४ । २९ ॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव ।

जिस द्वन्द्व वा तत्पुरुष समासका अन्त अवयव रात्र (१०२९) अथवा अह्न वा अह (१०२८।९८०) शब्द हो तो वह पुँल्लिंग हो । यथा–**अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रः**=

---

१ इन दोनों प्रयोगोंमें क प्रत्यय होनेके उपरान्त समास होता है तब व्याघ्र आदि एकशब्द होकर वाघ आदि जातिके वाचक होते हैं इसनिमित्त ङीप् होता है, और जो क प्रत्ययके उपरान्त समास न होता तो सुप्की उत्पत्तिके पूर्वही टाप् हो जाता, अश्वक्रीतीमें क्तप्रत्ययान्तके साथ समास होता है, सुप्की उत्पत्तिके पीछे नहीं । यदि सुप्की उत्पत्तिके पीछे हो तो '**स्वार्थद्रव्यलिंगसंख्याकारकाणां क्रमिकत्वम्**' इस सिद्धान्तसे कारकोपस्थितिसे पहलेही लिंगोपस्थिति होती है तो समासके विना करणपूर्वक न होनेसे '**क्रीतात्करणपूर्वात्**' इस सूत्रकी प्रवृत्ति न होगी तो टाप् होजानेसे '**अश्वक्रीती**' रूप न बनसकैगा, सुबुत्पत्तिसे पहले समास करनेसे बनजाता है ।

(३९९ । १२१) दिनरात । **सर्वरात्रः**=सारीरात । **संख्यातरात्रः**=गिनीरात पहली दूसरी तीसरी आदि.

(१०२७) संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् ॥

जिसका पूर्वपद संख्यावाचक होय ऐसा रात्रशब्द नपुंसकलिंग (१०२९) हो । यथा- **द्विरात्रम्** (१०२९)=दो रातका समूह । **त्रिरात्रम्** (१०२९)=तीन रातका समूह ।

(१०२८) राजाहःसखिभ्यष्टच् । ५ । ४ । ९१ ॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् ।

राजन् (राजा), अहन् (दिन), सखि (मित्र) इन शब्दोंमेंसे कोई तत्पुरुष समासके अन्तमें होय तो तिसका अन्त्य अवयव टच् प्रत्यय हो । यथा **परम+राजन्+अ (टच्)=परमराजः** (९८०)=मुख्य राजा ।

(१०२९) आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः । ६ । ३ । ४६ ॥

महत आकारोन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रकारवचने जातीयर् । महाप्रकारो महाजातीयः ।

महत् (बडा) शब्दसे परे समानाधिकरण शब्द (समानार्थक) आवे अथवा जातीयर् प्रत्यय आवे तो महत् शब्दको आकार अन्तादेश हो ।

यथा-**महत्+राजन्=महाराजः**=वडा राजा । **प्रकारवचने जातीयर् ।** प्रकार अर्थके विषे **जातीयर्** प्रत्यय हो । **महत्+जातीयर्=महाजातीयः**= बड़े प्रकारवाला ।

(१०३०) द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः । ६ । ३ । ४७ ॥

आत्स्यात् ।

द्वि (दो) तथा अष्टन् (आठ) पदके उत्तरपद संख्यावाचक शब्द हों तो उसको आकार अन्तादेश हो परन्तु यदि बहुव्रीहि (१०३९) समास हो अथवा अशीति (अस्सीवाचक) शब्द परे हों तो न हो । यथा **द्वौ च दश च द्वादश**-बारह । **अष्टन्+आ+विंशति=अष्टाविंशतिः** (२००)=अट्ठाइस ।

(१०३१) परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः । २ । ४ । २६ ॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात् ।

उत्तरपदके लिङ्गके अनुसार द्वन्द्व (१०९९) तथा-तत्पुरुष (९८३) समासका लिङ्ग हो । **कुक्कुटमयूर्यौ**=कुक्कुट और मोरनी । **मयूरीकुक्कुटाविमौ**-मोरनी और कुक्कुट ये है । **अर्धपिप्पली**=पीपलका आधा भाग । इनमें उत्तरपदके समान लिंगहुए हैं ।

(१०३२) द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः॥

द्विगुसमास (१००४) में तथा जिस समासका पूर्वपद प्राप्त, आपन्न अथवा अलम् हो तिसमें अथवा गतिसमास (१०१३) में लिंग उत्तरपदके समान न हो, यह कहना चाहिये। यथा **पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः** (११२०। ९९८) **पुरोडाशः**= पांच सिकोरोंमें संस्कार कियाहुआ यज्ञके होमका शेष यजमानके खानेका भाग। इस उदाहरणमें कपाल शब्द नपुंसक है उसका लिंग समासमें न होकर पुँलिंग हुआ। इस उदाहरणमें तद्धित प्रत्ययका लुक् **'द्विगोर्लुगनपत्ये'** इस सूत्रसे होता है यह सूत्र लघुमें नहीं सिद्धान्तमें है। **प्राप्तो जीविकाम्, आपन्नो जीविकाम्=प्राप्तजीविकः वा आपन्नजीविकः**=जिसने जीविका प्राप्त की है. **अलं कुमार्यै अलंकुमारिः (१०१८)**=जो कुमारीके योग्य वा समर्थ है॥

अत एव ज्ञापकात् समासः।

इसमें अलंपूर्वसमासमें उत्तरपदके अनुसार लिंगका निषेधविधि जो ऊपर कहा है उसीके सामर्थ्यसे समास हुआ है, वह केवल उत्तरपदके अनुसार लिंगका निषेध विधि होनेके ऊपरसेही हुआ है, ऐसे समास होनेका दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। **निष्कौशाम्बिः** (१०१८)= जो कौशांबी नगरीसे निकला है, यह गतिसमासका उदाहरण है।

(१०३३) अर्धर्चाः[१] पुंसि च। २। ४। ३१॥

अर्धर्चादयः पुंसि क्लीबे च स्युः।

अर्धर्च आदिगण पुँल्लिंग और नपुंसकलिंग हो।

---

१ अर्धर्च गोमय कषाय काषार्पण कुतप कुणप कपाट शंख गूथ यूथ ध्वज कवन्ध पद्म ग्रह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म्म कर्म्म मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खालीन पात्रीव (यात्रीव) षष्टिक वारवाण प्रोथ कपित्थ शुष्क शाल शाल शुक्र शीधु कवच रेणु ऋण कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीरकर्ष आकाश अष्टापद मंगल निघान निर्यास जृम्भवृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित शृंग निगड खल मधु मूल मुकुल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक कर्पट शिखर कल्क नाट मस्तक वलय कुसुम तृण पंक कुण्डल किरीट कुमुद अर्वुद अंकुश तिमिर आश्रम भूषण इष्वास मुकुल वसन्त तडाग पिटक विटंक विडंग पिण्याक माष कोष फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्प्पास विषाल चवाल खण्ड दर विपट रणवल मृणाल हस्त आर्द्र हल सूत्र ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर देह फल छल पुर राष्ट्र विम्व अम्वर कुट्टिम मंडल कुक्कुट कडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मंचक पंचक पुङ्ख मध्य वाल छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु उद्यान उद्योग स्नेह स्तन स्तेन स्वर संगम निष्क क्षेम शूक छत्र क्षत्र पवित्र यौवन कलह पालक वल्कल कुञ्ज विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन हल दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमश तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुष मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल मुस्तक इत्यर्द्धर्चादिः।

अर्द्धर्चः । अर्द्धर्चम् । एवं-ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूप-देहा-ऽङ्कुश-कलश-पात्र-सूत्रादयः ।

अर्धर्चः (१०३४) अथवा **अर्द्धर्चम्** (ऋचाका आधा भाग) **ध्वज** (ध्वजा) **तीर्थ** (यात्राका स्थान प्रयागादि), **शरीर** (देह), **मण्डप** (मंढा), **यूप** (स्तंभ), **देह** (शरीर), **अङ्कुश** (आंकुस हाथीके हांकनेका), **कलश** (कलस), **पात्र** (बरतंन), **सूत्र** (तागा) इत्यादि शब्द पुँल्लिंग और नपुंकलिंग होते हैं ।

(१०३४) सामान्ये नपुंसकम् ॥

सामान्य अर्थकी विवक्षामें नपुंसकलिंग हो । यथा **मृदु पचति**=वह कोमल रांधता है । इस उदाहरणमें मृदु सामान्य शब्द है विशेषलिंगघटित पदार्थको विशेषता: नहीं इससे नपुंसक है । **प्रातः कमनीयम्**=प्रातःकाल मनोहर है, यहांभी पूर्ववत् ।

॥ इति तत्पुरुषसमासः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ बहुव्रीहिः समासः ।

(१०३५) शेषो बहुव्रीहिः । २ । २ । २३ ॥

अधिकारोऽयम् प्राग्द्वन्द्वात् ।

यहांसे प्रारम्भकर द्वन्द्वसमास (१०९९) के पूर्वतक यह अधिकार सूत्र है, इसकी अनुवृत्ति होती है । इस सूत्रमें शेषपद तो (९८९ । १०३६) से अधिकृत होता है कारण कि द्वितीया से लेकर सप्तमीतकका समास (९८६ । ९८८ । ९९० । ९९३ और ९९६)में कहा है शेष प्रथमान्तही रहता है परन्तु केवल प्रथमान्तहीके साथ समास नहीं होता औरोंके साथभी होता है इसका कारण (१०३७) में कहेंगे ।

(१०३६) अनेकमन्यपदार्थे । १ । १ । १४ ॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ।

समानाधिकरणवाले अनेक प्रथमान्त पद जो अन्यपद (प्रथमासे भिन्न) द्वितीयान्त आदि किसी पदके अर्थमें वर्तमान हों तो विकल्प करके समासको प्राप्त हों और जो समास हो उसकी बहुव्रीहिसंज्ञा होय ।

(१०३७) सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ । २ । २ । ३५ ॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।

सप्तम्यन्त और विशेषण बहुव्रीहिसमासमें पहले धरे जांय, यथा **चित्रा गावोऽस्येति चित्रगुः**=जिसकी विचित्र गौ हैं । **कण्ठे कालः**=जिसके कण्ठमें काला हो (शिव) । **अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः** । इस सूत्रमें सप्तम्यन्तका प्रयोग जो पूर्वस्थानमें कहाहै उसकी शक्तिसे यह विदित होता है कि कहीं प्रथमाके सिवाय और विभक्त्यन्त पदोंकाभी बहुव्रीहिसमास होताहै । **कण्ठे+कालः**–

(१०३८) हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् । ६ । ३ । ९ ॥

हलन्तादद‌न्तात्सप्तम्या अलुक् ॥

जब समास संज्ञावाचक हो तब उत्तरपद परे रहते पदके अन्तमें हल् अथवा अकार हो तो उससे परे सप्तमीका लुक् (७१९) न हो। यथा **कण्ठेकालः । त्वचिसारः**=जिसका सार त्वचामें हो (बांस) इस उदाहरणमें त्वच् शब्द हलन्त है उससे परे सप्तमीका ङि प्रत्यय हुआ उसका समासमें (७१९) से लुक् होता सो इस सूत्रसे न हुआ । बहुव्रीहि समासके उदाहरण–

प्राप्तम् उदकं यं=प्राप्तोदकः (ग्रामः)=वह ग्राम जिसे जल प्राप्त हुआ है । **(द्वितीयान्तबहुव्रीहिः)** ।

ऊढो रथो येन सः=ऊढरथः (अनड्वान्)=जिसने रथ वहन किया है (बैल)। **(तृतीयान्तबहुव्रीहिः)** ।

उपहृतः पशुः यस्मै=उपहृतपशुः (रुद्रः)=जिसके निमित्त पशु समर्पण किया है (महादेव) **(चतुर्थ्यन्तबहुव्रीहिः)** ।

उद्धृतम् ओदनम् यस्याः=उद्धृतौदना (स्थाली)=जिसमेंसे भात निकाल लियागयाहै (कसैरी) **(पञ्चम्यन्तबहुव्रीहिः)** ।

पीतम् अम्बरम् यस्य=पीताम्बरः (हरिः)=जिसके वस्त्र पीले हैं (विष्णु) **(षष्ठ्यन्तबहुव्रीहिः)** ।

वीरः पुरुषः यस्मिन्=वीरपुरुषः (ग्रामः)=जिसमें वीरपुरुष हैं ऐसा ग्राम । **(सप्तम्यन्तबहुव्रीहिः)** । **(वीरपुरुषको ग्रामः १०५४)**

(१०३९) प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥

प्र (४८) आदिसे परे धातुज (जो पद धातुसे उत्पन्न हुआ हो) सो समासको प्राप्त हो और समासमें उत्तरपदका लोप विकल्प करके हो । यथा–

प्रपतितं पर्णं यस्मात्=प्रपतितपर्णः । यहां उत्तरपदका लोप न किया । और जब लोप किया तो प्रपर्णः=जिसके सब पत्ते गिरपड़ें ऐसा वृक्ष । प्रसे परे पतित शब्दके समास करनेका आशय यह है कि पतित शब्दभी उत्तरपद कहलावै. नहीं तो लोप न होता ।

(१०४०) नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥

नञ् (१०१० से परे विद्यमानतावाचक शब्द आवे तो विकल्प करके समासको प्राप्त हो और जो समास किया जाय तो विकल्प करके उत्तरपदका लोप हो ।

अविद्यमानः पुत्रो यस्य=अविद्यमानपुत्रः अथवा **अपुत्रः**=जिसके पुत्र न हो। इस उदाहरणमें विद्यमानपदका लोप हुआ है और समास होनेसे यह प्रयोजन निकला कि विद्यमान शब्दभी उत्तरपदत्वको प्राप्त हुआ ।

(१०४१) स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु । ६ । ३ । ३४ ॥

(लु॰६)

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः । निपातनात्पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तंपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः ।

जब समासमें समानाधिकरणस्त्रीलिङ्ग उत्तरपद हो और उसका पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग हो, और उससे परे ऊङ् (१३७७) स्त्रीप्रत्ययकी प्राप्ति न हो ऐसा हो तो पूर्वपद पुंवद्भावको पाता है अर्थात् स्त्रीलिंग होनेपर भी पुँल्लिग होजाता है । परन्तु पूरण प्रत्ययान्त स्त्रीवाचक उत्तरपद परे होय तो, अथवा प्रियाआदि गणके शब्द उत्तरपद हों तो पूर्वपदको पुंवद्भाव न प्राप्त हो । (उदाहरण) **चित्रा गावो यस्य सः=चित्रगुः**= जिसकी चितकबरी गाय है, इसमें चित्रा और गो यह दो शब्द हैं इनका एक विशेष्य

---

१ भाषितः पुमान् प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये येन तस्मात्-कहा गया है पुँल्लिङ्ग प्रवृत्ति निमित्तके एकतामें, जिससे (शब्दोंकी प्रवृत्तिका निमित्त क्या है ? उस शब्दका वाच्य अर्थ, सो तुल्य (एक) प्रवृत्तिनिमित्त (अर्थ) में जो पुँल्लिगको कहाहै अर्थात् पुँल्लिंगमें जिस अर्थको कहताहो उसी अर्थको स्त्रीलिंगमें भी कहताहो) सो कहावै भाषितपुंस्क ।

२ प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा भक्ति सचिवा स्वसा कान्ता क्षान्ता समा चपला दुहिता वामा अचला तनया ।

दूसरा पदार्थ है, गोशब्द स्त्रीलिंगवाचक है उसका समानाधिकरण पूर्वपद चित्रशब्दके साथ है सो भाषितपुंस्क चित्र शब्द स्त्रीलिंग है पर ऊङ् प्रत्यय इससे हो सो संभव नहीं क्योंकि चित्र शब्द ऊङ् प्रत्ययके प्रकृतित्वको नहीं प्राप्त होसकता क्योंकि **'ऊङुतः'** इत्यादि सूत्रोंसे उकारान्त ही शब्दोंसे ऊङ्का विधान होताहै तब (१०१८) से गो शब्दको उकार (२७९) होकर और पुंवाचकके सदृश चित्राका चित्र होकर **चित्रगुः** रूप हुआ अन्यथा 'चित्रागुः' ऐसा होता। इसी प्रकार **रूपवती भार्या यस्य=रूपवद्भार्यः**=जिसकी सुन्दर स्त्री हो। **अनूङ् किम् ?** ऊङ् प्रत्यय यदि न रहे तो यह क्यों कहा ? यदि यह न कहते तो **वामोरूभार्यः**=जिस स्त्रीकी जंघा सुन्दर हों, इसमें ऊङ प्रत्यय (१३८१) हुआ है इससे यहां पुंवद्भाव न हुआ।

(१०४२) अप्पूरणीप्रमाण्योः । ५ । ४ । ११६ ॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिंगं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात्।

पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग उत्तरपद हो अथवा प्रमाणी शब्द उत्तरपद हो तो बहुव्रीहिसमासका अन्त्य अवयव अप् प्रत्यय हो। यथा—

कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः=कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः=जिसकी पांचवी रात मंगलदायक है ऐसी रात्रियोंका समुदाय, इस उदाहरणमें पञ्चमी शब्द पूरणार्थकप्रत्ययान्त है इससे कल्याणीशब्दको पुंवद्भाव न हुआ क्योंकि, (१०४२) में कहा है कि पूरणप्रत्ययान्त परे रहते पुंवद्भाव न हो। **स्त्री प्रमाणी यस्य सः=स्त्रीप्रमाणः**=जिसे स्त्री प्रमाण है। **अप्रियादिषु किम् ?** (१०४१) में प्रियादि गणके निषेध करनेका क्या कारण ? (उत्तर) इसका आशय यह कि प्रिया आदि शब्द उत्तरपद रहते कल्याणी आदि शब्दोंको पुंवद्भाव न हो यथा=**कल्याणीप्रियः**=जिसकी प्रिया संगलयुक्त है, इसी प्रकार और भी जानो।

(१०४३) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वांगात्षच् । ५ । ४ । ११३ ॥

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात्।

जिस बहुव्रीहिसमासके अन्तमें सचेतन शरीरके अवयववाचक सक्थि (जांघ), अक्षि (:आंख) शब्दमेंका कोई हो तो उसका अन्त्य अवयव षच् प्रत्यय हो। यथा **दीर्घसक्थः**= जिसकी मोटी लम्बी जांघ है। **जलजाक्षी** (१३४९)=जिसकी कमलसी आंखें हैं। **स्वांगात् किम् ?** सचेतन शरीरके अवयववाचक सक्थि और अक्षि शब्दको क्यों कहा ? (उ०) **दीर्घसक्थि शकटम्**=जिस गाड़ीका फड़ लम्बा हो। यहां षच् प्रत्यय न हुआ कारण कि शरीरका अवयव नहीं है। **स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।** बांसकी छड़ी जिसमें बड़ी बड़ी आंखें अर्थात् गांठोंपर आंखोंकासा चिह्न है यहां (१०६१) से अच् हुआ षच् नहीं हुआ है।

(१०४४) द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः । ५ । ४ । ११५ ॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ ।

जब बहुव्रीहिसमासके अन्तमें द्वि अथवा त्रिसे परे मूर्धन् (माथा) शब्द आवे तो समासका अन्त अवयव ष प्रत्यय हो ।

यथा **द्विमूर्द्धः**:(९८०)=जिसके दो शिर हों । **त्रिमूर्द्धः**=जिसके तीन शिर हों ।

(१०४५) अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः । ५ । ४ । ११७ ॥

आभ्यां लोम्नोऽप्स्याद्बहुव्रीहौ ।

जिस बहुव्रीहिसमासमें अन्तर् अथवा बहिष् शब्दसे परे लोमन् शब्द आवे तो उसके अन्तमें अप् प्रत्यय हो 'अ' शेष रहता है ।

यथा **अन्तर्+लोमन्+अ=अन्तर्+लोम्ँ+अ+सु= अन्तर्लोमः** } जिसके लोम भीतर हों ।

बहिर्+लोमन्+अ=बहिर्+लोम्ँ+अ+सु=बहिर्लोमः } जिसके लोम बाहर हों ।

(१०४६) पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५ । ४ । १३८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादस्य लोपः ।

हस्ति (हाथी) आदि शब्दोंके विना उपमानवाचक शब्दसे परे पाद शब्द आवे तो उसके अन्तका लोप हो ।

यह लोपभी समासका अन्तावयव होता है ऐसा जानना, नहीं तो **व्याघ्रस्य इव पादौ अस्य=व्याघ्रपाद (१०४६)+सु** (१९९) इस समासमें द अन्तर्गत अका लोप होकर उससे परे (१०५४) से कप् प्रत्यय होजायगा । इसी प्रकार (१०४७ । १०४८ । १०४९) वें सूत्रमें भी जानना । **व्याघ्रपाद्**=जिसके पैर व्याघ्रके पैरके समान हों ।

अहस्त्यादिभ्यः किम् ? हस्ति आदिको छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? (उ०) **हस्ति+पाद=हस्तिपाद+स्=हस्तिपादः**=जिसका पद हाथीके पदके समान हो । इसी प्रकार—**कुशूलपादः**=जिसका पैर नाजके कुठलेके समान हो । यहां अन्तका लोप न हुआ ।

द्वौ पादौ+यस्य—

---

१ हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अजकपोत जाल गंड महेला दासी गणिका कुशूल ।

(१०४७) संख्यासुपूर्वस्य । ५ । ४ । १४० ॥

लोपः स्यात् ।

संख्यावाचक शब्द अथवा सुसे परे पादशब्द आवे तो उसके अन्तका लोप (१०४३) हो।
यथा–द्वि+पाद=द्विपाद्+सु=द्विपाद्–त्=दो पैरवाला.
सु+पाद्+सु=सुपाद्–त्=जिसके पैर अच्छे हों.

(१०४८) उद्विभ्यां काकुदस्य । ५ । ४ । १४८ ॥

लोपः स्यात् ।

उद् तथा विसे परे काकुद् (तालु) शब्द आवै तो उसके अन्तका लोप हो ।
यथा–उद्+काकुद=उत्काकुद्–त्=जिसका तालु ऊंचा हो.
वि+काकुद=विकाकुद्–त्=जिसका तालु बिगडा हो.

(१०४९) पूर्णाद्विभाषा । ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्णशब्दसे परे काकुद (१०४८) शब्द आवे तो उसके अन्तका विकल्प करके लोप हो ।

पूर्ण+काकुद=पूर्णकाकुत (अ०) पूर्णकाकुदः=जिसका पूर्ण तालु हो.

(१०५०) सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः । ५ । ४ । १५० ॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः ।

सुहृद् तथा दुर्हृद् शब्द मित्र अमित्र वाचक निपातन किये हैं इस उच्चारणसे ही विदित होता है कि हृदय शब्दको हृद् आदेश हो और वह समासका अन्त्य अवयव कहलावे। अन्तावयव माननेका यह फल है कि (१०५४) वां कप् प्रत्ययका सूत्र न लगे ।

सु+हृदय=सु+हृद्=सुहृद्=मित्र.
दुर्+हृदय=दुर्+हृद्=दुर्हृद्=शत्रु.

(१०५१) उरःप्रभृतिभ्यः कप् । ५ । ४ । १५१ ॥

जिस समासके उत्तरपदमें उरस्आदिगणमेंका कोई शब्द हो तो उससे परे कप् (क) प्रत्यय हो सो समासका अन्तावयव हो । उरस् । सर्पिस् । उपानह् । पुमान् । अनड्वान् । पयः । नौः । लक्ष्मीः । दधि । मधु । शालि–अर्थात् नाज ।

(१०५२) कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८ ।

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः । इति सः ।

कैस्क आदिगणमें इण् प्रत्याहारसे परे विसर्ग आवे तो उसके स्थानमें ष् आदेश हो इण्के विना दूसरे वर्णसे परे विसर्ग आवे तो उसके स्थानमें स् हो ।

व्यूढ+उरः (स्)+कँ+ः=व्यूढोरस्कः=बडी छातीवाला ।

प्रिय+सर्पिः (स्)+कँ+ः=प्रियसर्पिष्कः=जिसको घी प्रिय है.

(१०५३) निष्ठा । २ । २ । ३६ ॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।

जिस शब्दके अन्तमें निष्ठा (८६७) प्रत्यय हो तो वह शब्द बहुव्रीहि समासके विषय पूर्वमें धराजाय ।

यथा—**युक्तयोगः**=जो योगाभ्यासमें लगा हो.

(१०५४) शेषाद्विभाषा । ५ । ४ । १५४ ॥

अनुक्तसमासान्ताद्बहुव्रीहेः कब्वा ।

जिस बहुव्रीहिसमाससे परे समासान्तका विधान न हुआ हो उसके आगे कप् प्रत्यय विकल्प करके अन्तावयव हो ।

महा+यशस्+क+ः=महायशस्कः (अ०) महायशाः=जिसका यश बहुत है.

॥ इति बहुव्रीहिसमासः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ द्वन्द्वसमासः ।

(१०५५) चार्थे द्वन्द्वः । २ । २ । २९ ॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः ।

चकारके अर्थमें जो अनेक सुबन्त वर्तमान हों वे विकल्प करके समासको प्राप्त हों और उनके समासका नाम द्वन्द्व है ।

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः ।

चकारके चार अर्थ हैं उनको कहते हैं—

१ समुच्चय, २ अन्वाचय, ३ इतरेतरयोग और ४ समाहार ।

तत्रेश्वरं गुरुञ्च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः

अनेक पदार्थ जो परस्पर निरपेक्ष हों उनका एक पदार्थमें (अन्वयसम्बन्ध) होना

---

१ कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्क्रीतः सद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुंडिका धनुष्कपालम् बर्हिष्पलम् यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः । आकृतिगणोयम् ।

इसका नाम **समुच्चय** है । यथा **ईश्वरं गुरुञ्च भजस्व**=ईश्वर और गुरुको भज । इस उदाहरणमें ईश्वर और गुरुपद परस्पर निरपेक्ष हैं कोई किसीकी आकांक्षा नहीं रखता और उनका सम्बन्ध ' भजस्व ' इस क्रियाके साथ है ।

भिक्षामट गाञ्चानयेति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोन्वाचयः । एक पदार्थका मुख्य और दूसरे पदार्थका अमुख्य सम्बन्ध जो किसी दूसरे पदार्थमें होय तो उसे **अन्वाचय** कहते हैं । यथा **भिक्षामट गाञ्चानय**=भिक्षाको जाओ और गायको लाओ। इस उदाहरणमें ' अट ' जो क्रिया है उसका भिक्षाके साथ मुख्य अन्वय है और गायके साथ अमुख्य अन्वय है कारण कि उसका मुख्य कार्य तो भिक्षा है और गौ जो कहीं मार्गमें मिले तो लाना नहीं तो नहीं ।

अनयोरसामर्थ्यात् समासो न । समुचय तथा अन्वाचयमें सामर्थ्य न होनेसे समास नहीं होता कारण कि इन शब्दोंका आपसमें सूधा सम्बन्ध नहीं हैं (९१३) ।

धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः । **धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ छिन्धि**=धव और खैरके वृक्षको साथही काटो इस उदाहरणमें जो दोनोंका साथ छेदनरूप क्रियामें सम्बन्ध है उसे **इतरेतरयोग** कहते हैं कारण कि इसका यह अर्थ है कि खैरके साथ धवको वा धवके साथ खैरको काटो परन्तु दूसरेके विना एकको मत काटो ।

संज्ञापरिभाषमिति समूहः समाहारः=अनेक पदार्थोंके समूहको समाहार कहते हैं । यथा **संज्ञा च परिभाषा च संज्ञापरिभाषम्**=संज्ञा और परिभाषाका समूह.

(१०५६) राजदन्तादिषु परम्[1] । २ । २ । ३१ ॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् ।

राजदन्त आदिगणमें जिसका पूर्व प्रयोग (९७०) होना चाहिये उसका प्रयोग उत्तरपदके स्थानमें हो । यथा **दन्तानां राजा=" दन्तराजः "** (९९२) से प्राप्त हुआ परंतु वह न लगकर-**राजदन्तः** (दांतोंका राजा) यह रूप हुआ ।

---

१ राजदंतः । अग्रेवणम् । लिप्तवासितम् । नग्नमुषितम् । सिक्तसंमृष्टम् । मृष्टलुञ्चितम् । अवक्लिन्नपक्वम् । अर्पितोप्तम् । उप्तगाढम् । उलूखलमुसलम् । तण्डुलकिण्वम् । दृषदुपलम् । आरग्वायनबन्धकी । चित्ररथवाह्लीकम् । अवन्त्यश्मकम् । शूद्रार्यम् । स्नातकराजानौ । विष्वक्सेनार्जुनौ । अक्षिभ्रुवम् । दारगवम् । शब्दार्थौ । धर्मार्थौ । कामार्थौ । अर्थशब्दौ । अर्थधर्मौ । अर्थकामौ । वैकारिमतम् । गोजवाजम् । गोपालधानीपूलासम् । पूलासककुरण्डम् । स्थूलपूलासम् । उशीरबीजम् । जिज्ञास्थि । सिञ्जास्थम् । चित्रास्वाती । भार्यापती । दंपती । जम्पती । जायापती । पुत्रपती । पुत्रपशु । केशश्मश्रु । शिरोबीजम् । शिरोजानु । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । आद्यन्तौ । अन्तादी । गुणवृद्धी । द्विगुणौ । आकृतिगणोयम् । धर्मादिगणस्तु राजदंताद्यन्तर्गत एव–धर्मादिगणका समावेश राजदन्तादिगणमें है ।

(१०५७) धर्मादिष्वनियमः ॥

धर्मादिगणमें पूर्वप्रयोगका कोई नियम नहीं है। यथा **अर्थधर्मौ** (अर्थ और धर्म) अथवा **धर्मार्थौ** (धर्म और अर्थ) इत्यादि। **धर्मादिगणस्तु राजदन्ताद्यंतर्गत एव।** धर्मादिगण राजदन्तादिगणके भीतर है।

(१०५८) द्वन्द्वे घि । २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्वे घिसञ्ज्ञं पूर्वं स्यात्।

द्वन्द्वसमासमें घि (१९०) संज्ञक शब्दका पूर्वपदके स्थानमें प्रयोग हो। यथा **हरिहरौ**= विष्णु तथा शिव, इसमें घिसंज्ञक हरिका पूर्वप्रयोग हुआ है।

(१०५९) अजाद्यदन्तम् । २ । २ । ३३ ॥

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्।

जिस शब्दके आदिमें अच् हो और अन्तमें अकारहो सो द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदके स्थानमें प्रयुक्त हो। यथा **ईशकृष्णौ**=शिव तथा कृष्ण।

(१०६०) अल्पाच्तरम् । २ । २ । ३४ ॥

जिस शब्दमें थोड़े अच् हों वह शब्द द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदके स्थानमें धराजाय। यथा **शिवकेशवौ**-शिव तथा कृष्ण।

(१०६१) पिता मात्रा । १ । २ । ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते।

समासमें मातृशब्दके साथ पितृ शब्द आवे तो उसमें विकल्प करके पितृशब्द शेष रहै। यथा **माता च पिता च पितरौ** (अथवा) **मातापितरौ**=माता पिता।

(१०६२) द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । २ । ४ । २ ॥

एषां द्वन्द्व एकवत्।

प्राणी (जीव); तूर्य (बाजा) और सेना (फौज) इन तीनोंके अवयववाचक शब्दोंका एकवचनान्त हो।

पाणिपादम्=हाथ पैर (प्राणीका अवयव वाचक).

मार्दङ्गिकपाणविकम्=मृदंग तथा ढोलके बजानेवाले (बाजा).

रथिकाश्वारोहम्=रथ और घोड़ेके चढ़नेहारे (सेनाङ्ग).

(१०६३) द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे । ५ । ४ । १०६ ॥

द्वन्द्वसमासके अन्त अवयव चवर्ग, द्, ष् अथवा ह् होय तो समाहारवाचक समासमें इनसे परे टच् प्रत्यय हो। **वाक् च त्वक् च**=

वाच्+त्वच्+अ+अम्=वाक्त्वचम्=वाक् और त्वक् इन्द्रियका समूह.

त्वच्+स्रज्+अ+अम्=[1]त्वक्स्रजम्=वल्कल और मालाका समूह.

शमी+दृषद्+अ+अम्=शमीदृषदम्=शमी और पत्थरका समुदाय.

वाक्+त्विष्+अ+अम्=वाक्त्विषम्=वाणी और दीप्तिका समूह.

छत्र+उपानह्+अ+अम्+छत्रोपानहम्=छत्री और जूतोंका समुदाय.

समाहारे किम् ? समाहारवाचक समासमें क्यों कहा?प्रावृट्शरदौ=वर्षा और शरद् ऋतु । प्रावृट्+शरद्+औ=प्रावृट्शरदौ । इसमें समाहार न होनेसे टच् प्रत्यय न हुआ ।

॥ इति द्वन्द्वसमासः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ समासान्तप्रकरणम् ।

(१०६४) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे । ५ । ४ । ७४ ॥

अ अनक्षे इति च्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः । अक्षे या धूस्तदन्तस्य न ।

ऋच् (वेदकी ऋचा), पुर् (नगर), अप् (जल), धुर् (भार) और पथिन् (मार्ग), यह शब्द जिस समासके अन्तमें हों तिसका अन्त अवयव अ प्रत्यय हो परन्तु जिस समासके अन्तमें अक्ष (पहिये) की धुरीमें धुर् शब्द हो उसका अन्त अवयव अ प्रत्यय न हो.

अर्ध+ऋच्+अ+ः=अर्धर्चः=ऋचाका आधा.

विष्णु+पुर्+अ+अम्=विष्णुपुरम्=विष्णुका नगर.

विमल+अप्+अ+अम्=विमलापम् (सरः) निर्मल जलवाला सरोवर.

राज+धुर्+अ+आ=राजधुरा=राजसम्बन्धी भार.

धुर् शब्दका अक्ष (गाडी) के साथ संबन्ध हो तब—

अक्ष+धुर्+सुँ=अक्षधूः=पहियेकी धुरी.

दृढ+धुर्+सुँ=दृढधूः (अक्षः)=जिस पहियेकी धुर् दृढ हो.

सखि+पथिन्+अ+ः=सखिपथः (देशः)=जिस देशका मार्ग मित्र हो.

रम्य+पथिन्+अ+ः=रम्यपथः (देशः)=जिस देशका मार्ग रमणीय हो.

(१०६५) अक्ष्णोऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ ॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् समासान्तः ।

अक्षिन् शब्द जब आंख वाचक न होय तब समासके विषे उससे परे अच् (अ)

---

१ लोकमें नपुंसकलिंग बोलनेका व्यवहार है इससे अम् प्रत्यय हुआ ।

प्रत्यय हो। **गवामक्षीव=गवाक्षः**=जो गौके नेत्रतुल्य हो (झरोखा) यथा-**गो+अक्षिन्+अ+ः=गवाक्षः** (२९।९८०) यहां अक्षिका अर्थ आंख नहीं किन्तु उसके सदृश है इस कारण चक्षुका पर्याय नहीं हो सकता.

(१०६६) उपसर्गादध्वनः । ५ । ४ । ८५ ॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ।

उपसर्ग (४८) से परे अध्वन् (मार्ग) शब्दसे परे समासका अन्त अवयव अच् प्रत्ययहो यथा **प्र+अध्वन्+अ+ः=प्राध्वः** (९८०) (रथः) जो मार्गमें पहुंचा हो अर्थात् रथ ॥

(१०६७) न पूजनात् । ५ । ४ । ६९ ॥

पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः । स्वतिभ्यामेव ।

स्तुतिवाचक शब्दसे परे जो शब्द हैं उनसे परे समासान्त रूप तद्धित प्रत्यय (१०२८) न हो । यथा-**सु+राजन्+सं=सुराजा**=अच्छा राजा । **अति+राजन्=अतिराजा**= सबसे श्रेष्ठ राजा ॥

॥ इति समासान्तप्रकरणं समाप्तम् ६ ॥

अथ तद्धितप्रकरणम् ।

(१०६८) समर्थानां प्रथमाद्वा । ४ । १ । ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत् ।

इस सूत्रके तीनों पदोंका अधिकार (१२८९) सूत्रके पूर्वतक होता है ।

(१०६९) अश्वपत्यादिभ्यश्च[1] । ४ । १ । ८४ ॥

एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ।

अष्टाध्यायीके क्रमसे (१२०४) वेंके पूर्वके पृथक्पृथक् जो प्रत्यय हैं उनके अर्थमें अश्वपति आदि गणके शब्दोंसे परे अण् प्रत्यय हो । यथा-**अश्वपति+अ** (अण्)-

(१०७०) तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ ॥

ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ।

ञित् अथवा णित् तद्धित प्रत्यय परे हुए संते अचोंके आदि अच्को वृद्धि हो ।

---

1 अश्वपति ज्ञानपति शतपति धनपति गणपति स्थानपति यज्ञपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति धान्यपति धन्वपति बन्धुपति धर्मपति सभापति प्राणपति क्षत्रपति ।

यथा–**अश्वपति+अ=आश्वपत्+अ=आश्वपत** (१३६) से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई तब **आश्वपत+अम्=आश्वपतम्**=अश्वपति राजाका सन्तानआदि.

गणपति+अ=गाणपत+अम्=गाणपतम्=गणेशजीका सन्तानआदि.

(१०७१) दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः । ४ । १ । ८५ ॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात् अणोपवादः ।

दिति, अदिति और आदित्य तथा पतिशब्द उत्तरपद हों जिनका तिन शब्दोंसे परे ण्य (य) प्रत्यय होय और (१२०४) के पूर्व जो पृथक्पृथक् प्रत्यय आते हैं तिनके अर्थमें हो ।

दितेः अपत्यं=दिति+य–दैत्य+ः=दैत्यः=दितिका पुत्र.

अदितेः अपत्यादि=अदिति+य=आदित+य=आदित्य+ः=आदित्यः अदितिका पुत्र इत्यादि । **आदित्यस्यापत्यादि=आदित्य्+य=**

हलो यमां यमि लोपः । ८ । ४ । ६४ ॥

इति यलोपः ।

आदित्यः । सूर्यके पुत्र इत्यादि ।

प्रजापति+य=प्राजापत्+य=प्राजापत्य+ः=प्राजापत्यः=प्रजापतिका पुत्र इत्यादि

(१०७२) देवाद्यञञौ ॥

देव शब्दसे परे प्राग्दीव्यतीय अर्थमें यञ् (य) अथवा अञ् (अ) प्रत्यय हो ।

देव+य=दैव्यम् } देवसे उत्पन्न हुआ जो.
देव+अ=दैवम् }

(१०७३) बहिषष्टिलोपो यञ्च ॥

" ईकक् च ॥

बहिष् शब्दकी टि (९२) का लोप हो, और इससे परे प्राग्दीव्यतीय अर्थमें यञ् (य) और ईकक् (ईक) प्रत्यय हों ।

यथा–**बह्+य=बाह्य+ः=बाह्यः**=जो बाहर हो.

बह्+ईक्=

(१०७४) किति च । ७ । २ । ११८ ॥

किति तद्धितेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ।

कित् तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते अचोंके मध्यमें आदि अच्को वृद्धि हो । **बा्+आहीक=बाहीकः**=जो बाहर हो.

(१०७५) गोरजादिप्रसङ्गे यत् ॥

गो शब्दसे परे अजादि प्रत्यय प्राप्त हुआ होय तो उसे बाधकर यत् (य) प्रत्यय हो ।

गोः अपत्यादि=गो+य=गव्+य+अम्=गव्यम्=गायसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु।

(१०७६) उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ ॥

उत्सआदि गणसे परे अञ् (अ) प्रत्यय हो ।

उत्स+अ=औत्स [१०७०।२६०] =उत्सका पुत्र.

॥ इत्यपत्यादिविकारान्तार्थाः प्रत्ययाः ॥

इसप्रकार अपत्यादि (१०७८) विकारान्त (११९६) अर्थात् सन्तान अर्थसे विकारअन्ततकके प्रत्यय पूर्ण हुए ॥

(१०७७) स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् । ४ । १ । ८७ ॥

'धान्यानां भवने०' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः ।

इस सूत्रसे आरंभ कर (१२९०) तक जितने अर्थ गिनाये हैं, उन अर्थोमें स्त्री तथा पुंस् शब्दसे परे क्रमसे नञ् (न) और स्नञ् (स्न) प्रत्यय हों ।

स्त्री+न=स्त्रैण (१०७० । १५७)+ः=**स्त्रैणः**= स्त्रीमें जो अतिप्रेमी होय ।

पुंस् स्न=पौंस्न+ः=पौंस्नः=पुरुषमें जो अतिप्रेमी होय इत्यादि)

(१०७८) तस्यापत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥

षष्ठयन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

जो षष्ठयन्त पदमें संधि हुई हो तथा तद्धित प्रत्ययके अर्थके साथ एकार्थीभाव हो तो उससे परे अपत्य अर्थमें जो प्रत्यय कहे हैं और कहेजांयगे वे हों ।

(१०७९) ओर्गुणः । ६ । ४ । १४६ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते ।

तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते उवर्णान्त भसंज्ञक (१८९) को गुण हो ।

उपगोः अपत्यम्=उपगु=अ [१०६९] [१०७०।१०७९।२९] **=औपगवः**= उपगु ऋषिका पुत्र.

इसी प्रकार **आश्वपतः** (१०७० । २६०)=अश्वपतिका पुत्र । **दैत्यः**=दितिका पुत्र. **औत्सः**=उत्सका पुत्र । **स्त्रैणः** (१०७० । १९७) स्त्रीका पुत्र. **पौस्नः** पुरुषका पुत्र.

---

२ उत्स उदपान विकर विनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन वष्कयासे पृथ्वी धेनु पंक्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद उशीनर भीष्म पीलुकुण उदस्थान भरत (देशे) पृथदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यन्दिन बृहत् महत् सत्वत् कुरु पाञ्चालदेव इन्द्रावसान 'ग्रीष्मादयश्छन्दसि' उष्णिह् ककुभ सुवर्ण

(१०८०) अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ।

संतानरूप करके वक्ताके इच्छाविषय जो पौत्रादि सो गोत्रसंज्ञक हों ।

(१०८१) एको गोत्रे । ४ । १ । ९३ ॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात् ।

जब गोत्रसंज्ञक प्रत्ययकी इच्छा हो तो केवल एकही प्रत्यय हो । यथा **उपगोर्गोत्रापत्यम्=औपगवः**=उपगुका पौत्र अथवा प्रपौत्र आदि संतान । जो यह एक प्रत्ययका नियम न करते तो सब मिलकर अलग अलग (९९) प्रत्यय लग जाते ।

(१०८२) गर्गादिभ्यो यञ् । ४ । १ । १०५ ॥

गोत्रापत्ये ।

गोत्र (१०८०) रूप संतान अर्थमें गर्गआदि गणसे परे यञ् प्रत्यय हो । **गर्ग+य=गार्ग्यः** (१०७०, २६०)=गर्गका पौत्र अथवा प्रपौत्र आदि संतान । इसी प्रकार **वत्स+य=वात्स्यः**=वत्सका पौत्र अथवा प्रपौत्रादि संतान ।

(१०८३) यञञोश्च । २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोः लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ।

गोत्र (१०८०) रूप संतान अर्थमें जो यञन्त तथा अञन्त शब्द उनका अवयव जो

---

१ गर्ग	शक	शकु	तनु	पर्णवल्क	अश्मरथ	दल्भ
वत्स	एक	लिगु	तरुक्ष	अभयजात	शर्कराक्ष	चेकित
वाजासे	धूम	गुहलु	तलुक्ष	विरोहित	पूतिभा	चिकित्सित
संस्कृति	अवट	मन्तु	तंड	वृषगण	स्थूल	देवहू
अज	मनस्	मङ्क्षु	वतंड	बहुगण	अररक	इन्द्रहू
व्याघ्रपाद्	धनंजन	अलिगु	कपि	शंडिल	एलाक	एकलू
विदभृत्	वृक्ष	जिगीषु	कत	चणक	पिंगल	पिप्पलू
प्राचीनयोग	विश्वावसु	मनु	कुरुकत	चुलुक	कृष्ण	बृहदग्नि
अगस्ति	जरमाण	तन्तु	अनडुह	मुद्गल	गोलंद	सुलोहिन्
पुलस्ति	लोहित	मनायी	कण्व	मुसल	उलूक	सुलाभिन्
चमस	संशित	सूनु	शकल	जमदग्नि	तितिक्ष	उक्थ
रेभ	वभ्रु	कत्थक	गोकक्ष	पराशर	भिषज्	कुटीगु
अग्निवेश	वल्गु	कंथक	अगस्त्य	जातूकर्ण	भिष्णज्	
शंख	मंडु	वृक्ष	कुंडिनी	महित	भडित	
श	गंडु	ऋक्ष	याज्ञवल्क	मंत्रित	भंडित	

यञ् (१०८२) तथा अञ् (१०७६) उसका लुक् हो जब गोत्ररूप अर्थमें यञ् प्रत्यय संबन्धी बहुवचन हो परन्तु जो गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीलिंग हो तो न हो । यथा—**गर्ग+य=गार्ग्य** (१०७० । २६०) संतानमें यञ् प्रत्यय हुआ है तो संतानका बहुवचन करनेकी इच्छा है तब य (यञ्) प्रत्ययका लुक् हुआ तब **गार्ग** रूप हुआ यञ्के कारण (१०७०) से वृद्धि हुई फिर उसके लोप होनेसे नैमित्तिक वृद्धिकाभी नाश होगया तब गर्ग रूप रहा, बहुवचन करना है तो **गर्ग+अस्** (जस्)=**गर्गाः**=गर्गका पौत्र अथवा प्रपौत्र आदि सन्तान । इसी प्रकार **वत्स+अञ्=वत्साः**=वत्सका पौत्र प्रपौत्र इत्यादि संतान । **तत्कृते किम् ?** उसका संबन्धी बहुवचन करना होय तो उस प्रत्ययका लुक् हो ऐसा क्यों कहा ? (उ०)—**प्रियगार्ग्याः**=जिसको गर्गकी संतति प्रिय है । इस उदाहरणमें यञ् प्रत्यय संतानवाचक है उसका संबन्धी बहुवचन नहीं है किन्तु जिसे गर्गका संतान प्यारा है ऐसे पुरुषनिमित्तक बहुवचन हुआ है इसकारण यञ् प्रत्ययका लोप न हुआ ।

(१०८४) जीवति तु वंश्ये युवा । ४ । १ । १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात् न तु गोत्रसंज्ञम् ।

जब पिता (बाप), पितामह (दादा), प्रपितामह (परदादा) जीते हों तब चौथी पिढीवाला प्रपौत्र आदि सन्तान युवसंज्ञक हो । (१०८०) से गोत्रसंज्ञा नहीं होती ।

(१०८५) गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् । ४ । १ । ९४ ॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ।

युवन् (१०८४) संज्ञक संतान अर्थमें जो प्रत्यय करना होय तो गोत्र (१०८०) रूप संतान अर्थमें प्रत्यय पहले होले तब उन्हीं पदोंसे युवरूप संतान अर्थमें प्रत्यय हो परन्तु स्त्रीलिङ्गमें युवन् संज्ञा नहीं होती ।

(१०८६) यञिञोश्च । ४ । १ । १०१ ॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात् ।

गोत्र (१०८०) रूप संतान अर्थमें यञन्त अथवा इञन्त शब्दोंसे परे युवन् (१०८४) रूप सन्तान अर्थमें फक् (फ) प्रत्यय हो ।

(१०८७) आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् । ७ । १ । २ ॥

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय्—एते स्युः ।

प्रत्ययके प्रथम अक्षर जो (फ, ढ, ख, छ, घ) इनको क्रमसे आयन्, एय्, ईन्, ईय् और इय् हों ।

यया **गर्गस्य युवापत्यम्=गर्ग+यँ**[१०८२] **=गार्ग्य**[१०७०२६०] **+फ (फूँअँ)**
गार्ग्य+आँयँन्+अ+ः=गार्ग्यायणः=गर्गका प्रपौत्रादि सन्तान । **दाक्षायणः** दक्षका प्रपौत्रादि सन्तान यह भी इसी प्रकार जानना.

(१०८८) अतँ इञ्ँ । ४ । १ । ९५ ॥

अपत्येऽर्थे ॥

सन्तान अर्थमें अदन्तसे परे इञ् (इ) प्रत्यय हो ।

दक्ष+इ=दाक्षिः[१०७०॥२६०] =दक्षकी सन्तान.

(१०८९) बाह्वादिभ्यँश्च । ४ । १ । ९६ ॥

बाहु आदि गणसे परे इञ् (१०८८) प्रत्यय सन्तान अर्थमें हो ।

बाहु+इ=बाहविः[१०७०॥१०७९।१२९] =बाहुका सन्तान.

उडुलोमन्+इँ[१०७०] **औडुलोमन्+इ+सु=औडुलोमिः**=उडुलोमाका सन्तान ।

लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः । लोमन् शब्दसे बहुवचनमें अकार प्रत्ययहो। यदि अपत्य अर्थ होय तो । **उडुलोमाः**=उडुलोमाके सन्तान ।

(१०९०) अनृष्यानन्तर्यँ बिदादिभ्योऽञ्ँ । ४ । १ । १०४ ॥

ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रेऽञ् स्यात् ।

जो शब्द बिद आदि गणका होय और ऋषिवाचक न होय तो अव्यवहित सन्तान रूप अर्थमें अञ् प्रत्यय हो और बिद आदि गणका शब्द ऋषिवाचक होय तो उससे परे गोत्र (१०८०) रूप सन्तान अर्थमें अञ् प्रत्यय हो ।

---

१ बाहु	वृकका	सुमित्रा	कुनामन्	उदंचु	नगरमर्दिन्	गद, प्रद्युम्न
उपबाहु	चूडा	दुर्मित्रा	सुनामन्	शिरस्	प्राकारमर्दिन्	राम
उपवाकु	बलाका	पुष्करसद्	पञ्चन्	माष	लोमन्	उदंक
निवाकु	मूषिका	अनुहरत्	सप्तम्	शराविन्	अजीगर्त	(उदकः
शिवाकु	कुशला	देवशर्मन्	अष्टन्	मरीची	कृष्ण	संज्ञायाम्)
वटाकु	छगला	अग्निशर्मन्	अमितौजसः	क्षेमवृद्धिन्	युधिष्ठिर	(संभूयोम्भसोः
उपविन्दु	ध्रुवका	भद्रशर्मन्		शृंखलतोदिन्	अर्जुन	सलोपश्च)
वृषली	ध्रुवका	सुशर्मन्	सुधावन्	खरनादिन्	सांब	

आकृतिगणोऽयम् । तेन सात्यकिः इत्यादि ।

२ विद	उपमन्यु	कृतभाग	शरद्वत	भोगक	श्यामाक
उर्व	किलात	हर्य्यश्व	शुनक	भाजन	श्यावली
कश्यप	किन्दर्प	प्रियक	धेनु	शमिक	श्यापर्ण
कुशिक	विश्वानर	आपस्तम्ब	गोपवन	अश्वावतान	हरितादिश्च
भरद्वाज	ऋष्टिषेण	कूचवार	शिग्रुविन्द	श्यामाक	

बिदस्य गोत्रम्=बिद+अ=बैदः १०८०।१६० बिदऋषिका गोत्ररूप सन्तान. इस शब्दके **प्र० द्वि० बैदौ** तथा **प्र० ब० बिदाः। पुत्र+अ=पौत्र** १०७०।१६० =पुत्रका पुत्र। इसीप्रकार **प्र० द्वि० पौत्रौ प्र० ब० पौत्राः** होता है कारण कि अञ् प्रत्यय इस स्थानमें सन्तान रूप अर्थमें है गोत्ररूप सन्तान अर्थमें नहीं है इससे (१०८३) से प्रत्ययका लोप न हुआ इससे वृद्धि ज्योंकी त्यौं रही।

एवं दौहित्रादयः। इसी प्रकार **दुहितृ+अ=दौहित्रः** (१०७०।२१)=पुत्रीका पुत्र इत्यादि जानना।

(१०९१) शिवादिभ्योऽण्। ४। १। ११२॥

सन्तान अर्थमें शिवे[1] आदि गणसे परे अण् (अ) प्रत्यय हो।

शिव+अ=शैवः १०७०।२६० (शिवकी सन्तान)। **गंगा+अ=गाङ्गः** १०७ २६० गंगाकी संतान।

(१०९२) ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च। ४। १। ११४॥

ऋषि, अन्धक (यादवकुलका भेद) वृष्णि (यादवकुल भेद), कुरुवंशसम्बन्धी नामोंके शब्दोंसे परे अपत्य अर्थमें अण् (अ) प्रत्यय हो। यथा (ऋषिका नाम)=**वसिष्ठ+अ=वासिष्ठः** (१०७० । २६०)। (विश्वामित्रका सन्तान)=**विश्वामित्र+अ=वैश्वामित्रः** (१०७० । २६०)। (अन्धकवंशका पुरुष)=**श्वफल्क+अ=श्वाफल्कः** (१०७० । २६०)=श्वफल्कका सन्तान। (वृष्णिवंश[illegible] उत्पन्न हुए वसुदेव)=**वसुदेव+अ=वासुदेवः**=[illegible] सन्तान। (कुरुवंशमें उत्पन्न [illegible]ए नकुलसे)=**नकुल+अ=नाकुलः** (१०७० । २६०) नकुलका सन्तान। इसी प्रका[illegible] (कुरुवंशमें उत्पन्न हुए) =**सहदेव+अ=साहदेवः** सहदेवकी सन्तान.

(१०९३) मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः। ४। १। ११५॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च।

संख्यावाचक शब्द अथवा सम्—भद्र—पूर्वक मातृशब्दको उत् आदेश तथा अण् प्रत्यय अपत्य अर्थमें हों (

---

१ शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ अनभिम्लान लोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोध कपिंजल खञ्जन वतण्ड तृण कर्ण क्षीरहृद जलहृद परिल पथिक पिष्ट हैहय पार्षिका गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक मंजीरक वृष्णिक खञ्जार खञ्जाल कर्मार रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तनाक्ष ग्रीवाक्ष विटप विटक पिटाक तृक्षाक नभाक ऊर्णनाभ जरत्कारु पृथा उत्क्षेप पुरोहितिका सुरोहितिका अर्थश्वेत सुपिष्ठ मसुरकर्ण मयूरकर्ण खरकर्ण खर्जूरकर्ण सुदूरक तक्षन् ऋष्टिषेण गङ्गा विपाश यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृण कर्ण पर्ण भलंदन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी (द्व्यचो नद्याः) त्रिवेणी त्रिवणम्। आकृतिगणः॥

यथा-**द्वयोर्मात्रोरपत्यम्=द्वि+मातृ+अ=द्वैमातुर्**[१०७०।१०९३।३७] **+अ+सु=द्वैमातुरः**=जिसकी दो माता हों (गणेश)। **षष्+मातृ+अ=षांड्**[१०७०।८२] **=मातुर्**[१०९३।३७]**+अ+सु=षाण्मातुरः**[८३।८४]**=** जिसके छः माता हों (कार्त्तिकेय) ।

सम्+मातृ+अ+सु=साम्मातुरः (१०७० । १०९३ । ३७) जिसकी अच्छी माता हो ।

भद्र+मातृ+अ+सु=भाद्रमातुरः[१०७०।१०९३।३७]=जिसकी कल्याणी माता हो ।

(१०९४) स्त्रीभ्यो ढक् । ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् ।

स्त्री प्रत्ययान्त (१३४२) शब्दोंसे परे अपत्य अर्थमें ढक् (ढ) प्रत्यय हो । **विनता+ढ=**(१०८७) **वैनत+एय+सु=वैनतेयः** (१०७० । २६०)=विनताका पुत्र (गरुड़)।

(१०९५) कन्यायाः कनीन च । ४ । १ । ११६ ॥

चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ।

कन्या शब्दको अपत्य अर्थमें कनीन आदेश हो, चकारसे अण् प्रत्ययभी हो । **कन्या+अ=कनीन+अ+सु=कानीनः** (१०७० । २६०) कन्याका पुत्र (व्यास तथा कर्ण)।

(१०९६) राजश्वशुराद्यत् । ४ । १ । १३७ ॥

राजन् अथवा श्वशुर शब्दसे परे अपत्य अर्थमें यत् (य) प्रत्यय हो ।

(१०९७) राज्ञो जातावेव ॥

जो स्वजातिसे विवाह कीहुई स्त्रीमें उत्पन्न हुए अपत्यविषे कहना हो तो राजन् शब्दसे परे यत् (१०९६) प्रत्यय हो, नहीं तो न हो देखो (१०९९) सूत्र ।

(१०९८) ये चाभावकर्मणोः । ६ । ४ । १६८ ॥

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः ।

जो तद्धितप्रत्ययकी आदिमें य होय सो जब परे रहैं तब शब्दके अन्तावयव अन्को प्रकृतिभाव हो अर्थात् वह ज्योंका त्यों रहे (९८०) से उसमें कोई विकार नहीं होता । **राजन्+य** (१०९६ । १०९७)**+सु=राजन्यः**=क्षत्रिय । **जातावेवेति किम् ?** स्वजातिकी प्रतीतिमें क्यों कहा ? (उ०) विजातीय होनेसे जो कुछ प्रत्यय होता है वह इस नीचे लिखे सूत्रके अनुसार जानना—

(११९९) अन् । ६ । ४ । १६७ ॥

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे ।

अण् प्रत्यय परे हुए सन्ते शब्दका अवयवजो अन् उसे प्रकृतिभाव हो । **राजन्+अ+सु=राजनः**=राजाका पुत्र जो विवाहिता क्षत्रियासे उत्पन्न न हो ।

(१०९६) से **श्वशुर्यः** श्वशुरका लड़का ।

(११००) क्षत्राद् घः । ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्रियः । जातावित्येव क्षात्रिरन्यत्र ।

क्षत्र शब्दसे परे अपत्य अर्थमें (स्वजातीय विवाहिता स्त्रीका कथन होय तो) घ प्रत्यय हो यथा-**क्षत्र+घ=क्षत्र+इय** (१०८७)**+सु=क्षत्रियः** (२१०) जो क्षत्रिय जातिका हो । और क्षत्रियसे विजाति स्त्रीमें हुआ होय तो **क्षत्र+इ** (१०८८)**=क्षात्रिः** (१०७० २१०) क्षत्रियसे उत्पन्न विजाति स्त्रीका पुत्र ।

(११०१) रेवत्यादिभ्यष्ठक् । ४ । १ । १४६ ॥

रेवती आदि[1] गणसे परे अपत्य अर्थमें ठक् प्रत्यय हो ।

रेवती+ठ=रेवती+ठ्+अ-

(११०२) ठस्येकः । ७ । ३ । ५० ॥

अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात् ।

अङ्गसे परे ठ आवे तो इक् आदेश हो । **रेवती+इक्+अ+सु=रैवतिकः** (१०७० । २१० , रेवतीका अपत्य ।

(११०३) जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् । ४ । १ । १६८ ॥

जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये ।

देशवाचकशब्दसे सम्बन्ध करना होय अर्थात् वह देश क्षत्रियवाचक हो तो 'देशोंका राजा' इस अर्थमें अपत्य अर्थमें अञ् (अ) प्रत्यय हो । यथा-**पञ्चाल+अ+सु=पाञ्चालः** (१०७० । २१०)=पंचालदेशके क्षत्रियकी सन्तान ।

(११०४) क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत् ॥

क्षत्रियवाचक शब्द देशवाचक होय तो 'उस देशके राजा' इस अर्थमें अपत्यवत् प्रत्यय हो अर्थात् (१०७८ । ११०३) में जैसा प्रत्यय अञ् होता है वैसा यहांभी हो । **पञ्चालानां राजा पाञ्चालः । पञ्चाल+अ+सु=पाञ्चालः**=पञ्चाल देशका राजा ।

---

[1] रेवती मणिपाली वृकवञ्चिन् वृकग्राह दण्डग्राह चामरग्राह अश्वपाली द्वारपाली वृकबन्धु कर्णग्राह कुक्कुटाक्ष ।

(११०५) पूरोरणवक्तव्यः ॥

पूरु शब्दसे परे अपत्य अर्थमें अथवा पुरुदेशका राजा इस अर्थमें अण् प्रत्यय हो। पूरु+अ=पौरवः (१०७० । १०७९)=पूरुका अपत्य अथवा पूरुदेशका राजा।

(११०६) पाण्डोर्ड्यण् ॥

पाण्डु शब्दसे परे अपत्य अथवा राजवाचक अर्थमें ड्यण् (य) प्रत्यय हो। यथा-पाण्डु+य=पाण्ड्यः (२६७) पाण्डुका अपत्य अथवा पाण्डुदेशका राजा।

(११०७) कुरुनादिभ्यो ण्यः । ४ । १ । १७२ ॥

कुरु शब्दसे परे तथा जिस शब्दके आदिमें नकार हो उससे परे अपत्य अर्थमें अथवा राजवाचक अर्थमें ण्य प्रत्यय हो। कुरु+य+सु=कौरव्यः (१०७० । १०७९ । ३१)=कुरुका अपत्य वा कुरुदेशका राजा। निषध+य+सु=नैषध्यः (१०७० । २६०)=निषधका अपत्य अथवा निषधदेशका राजा।

(११०८) ते तद्राजाः । ४ । १ । १७४ ॥

अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः।

अञ् आदि (११०३) प्रत्ययोंकी तद्राजसंज्ञा हो।

(११०९) तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् । २ । ४ । ६२ ॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्।

इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः। इत्यादि।

जब बहुवचनकी विवक्षा हो तब तद्राज (११०८) प्रत्ययका लुक् हो परन्तु स्त्रीलिंगमें न हो। यथा—पञ्चाल+अ (११०४)+जस्=पञ्चालाः=पञ्चालदेशके क्षत्रियका अपत्य अथवा पंचाल देशका राजा।

(१११०) कम्बोजाल्लुक् । ४ । १ । १७५ ॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक्।

कम्बोज शब्दसे परे तद्राज (११०८) संज्ञक प्रत्ययका लुक् हो। कम्बोज+अ=कम्बोजाः=कम्बोजदेशके राजाका संतान अथवा कम्बोजदेशका राजा। कम्बोजौ कम्बोज देशके राजाके दो अपत्य।

(११११) कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ॥

(१११०) सूत्रमें जो कहा है उसमें यों कहना चाहिये कि कम्बोजशब्दसे परे अथवा उसके सदृश शब्दोंसे परे तद्राज (११०८) प्रत्ययका लुक् हो। यथा-चोलः=चोलदेशका राजा। शकः=शकदेशका राजा। केरलः=केरलदेशका राजा। यवनः=यवन देशका राजा। इसी प्रकार ऊपर कहे देशोंके क्षत्रियोंका अपत्य अर्थ जानना॥

इत्यपत्याधिकारः समाप्तः ॥

अथ चातुरर्थिकाः ।

(१११२) तेन रक्तं रागात् । ४ । २ । १ ॥

अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति रागः ।

रंगवाचक तृतीयान्त शब्दसे परे रंगगया इस अर्थमें अण् प्रत्यय हो । **कषायेण रक्तं वस्त्रं कषाय+अ=काषायम्** (१०७० । २६०)—गेरूसे रँगाहुआ वस्त्र ।

(१११३) नक्षत्रेण युक्तः कालः । ४ । २ । ३ ॥

अण् स्यात् ।

नक्षत्रवाचक तृतीयान्त शब्दसे परे युक्त अर्थमें अण् प्रत्यय हो जो युक्तपदार्थका कालवाचक के साथ योग हो । **पुष्येण युक्तम् अहः=पुष्य+अ=पौष्य्+अ** (१०७०।२६०)—

(१११४) तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् ॥

नक्षत्र वाचक तृतीयान्त तिष्य अथवा पुष्य शब्द हो और उससे परे अण् (१११३) प्रत्यय हो तो यकारका लोप हो । **पौष्+अ+अम्=पौषम् अहः**=पुष्य नक्षत्रयुक्त दिन ।

(१११५) लुबविशेषे । ४ । २ । ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते ।

साठ घड़ीरूपी कालके अन्तर्गत कालकी प्रतीति न होय तो (१११३) में कहे अण् प्रत्ययका लोप हो । यथा–**अद्य पुष्यः=पुष्य+अ=पुष्य+ः=पुष्यः**=आज पुष्य नक्षत्र है, आजके कहनेसे दिनविशेष वा रात्रिविशेष इसमेंसे किसी कालका बोध नहीं होता कि साठ घड़ीके अन्तर्गत किस समयको कहता है इससे अण् प्रत्ययका लोप हुआ ।

(१११६) दृष्टं साम । ४ । २ । ७ ॥

तेनेत्येव ।

दृष्ट (देखाहुआ) इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् प्रत्यय हो, जो दृष्ट पदार्थ सामवेद होय तो । **वसिष्ठेन दृष्टं साम=वासिष्ठ+अ=वासिष्ठम्** (१०७० । २६०)= वसिष्ठमुनिका देखाहुआ सामवेद ।

(१११७) वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ । ४ । २ । ९ ॥

दृष्ट अर्थमें तृतीयान्त वामदेव शब्दसे परे ड्यत् (य)अथवा ड्य (य) प्रत्यय हो, जो दृष्ट पदार्थ सामवेद होय तो । **वामदेवेन दृष्टं साम=वामदेव=य=वामदेव्यम्** (२६० । २९८)=वामदेव मुनिका देखा सामवेद ।

(११९८) परिवृतो रथः । ४ । २ । १० ॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ।

परिवृत (वेष्टित) अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् प्रत्यय हो जो वेष्टित पदार्थ रथ होय तो । **वस्त्रेण परिवृतो रथः=वस्त्र+अ+सु=वास्त्रः** (१०७० । २६०) **रथः** वस्त्रसे लपेटाहुआ रथ ।

(११९९) तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः । ४ । २ । १४ ॥

तत्रोद्धृत (एकस्थानसे निकालकर दूसरेमें धरागया) अर्थमें पात्रवाचक सप्तम्यन्त पदसे परे अण् प्रत्यय हो **शरावे उद्धृतः ओदनः=शराव+अ+ः=शारावः** (१०७० । २६०)=कसोरेमें रक्खा गया ओदन (भात) ।

(११२०) संस्कृतं भक्षाः । ४ । २ । १६ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः ।

संस्कृत (संस्कार) अर्थमें सप्तम्यन्त पदसे परे अण् प्रत्यय हो जो संस्कार किया हुआ पदार्थ भक्षणके योग्य हो तो । यथा—**भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भक्षाः=भ्राष्ट्र+अ=भ्राष्ट्राः** (१०७० । २६०) **भक्षाः**=जिनका संस्कार भांडेमें किया गया हो, यथा जवकी बहुरी आदि ।

(११२१) सोऽस्य देवता । ४ । २ । २४ ॥

'यह इसका देवता है' इस अर्थमें देवताभेदवाचक प्रथमान्त शब्दसे परे अण् प्रत्यय हो । यथा—**इंद्रो देवता अस्य इति=इन्द्र+अ=ऐन्द्रम्** (१०७० । २६०) **हविः**=इन्द्रदेवताकी जो हवि । (मंत्रवाचक हो तो **ऐन्द्रः**) । **पाशुपतम्** (१०७०।२६०)=जिसका शिव देवता है ऐसी हवि । **बार्हस्पत्यम्** (१०७० । २६०)=जिसका बृहस्पति देवता है ऐसी हवि ।

(११२२) शुक्राद् घन् । ४ । २ । २६ ॥

प्रथमान्त शुक्रशब्दसे परे ('यह इसका देवता है' इस अर्थमें) घन् प्रत्यय हो । **शुक्र+घ्+अ=शुक्र+इय् (१०८७)+अ=शुक्रिय+अम्=शुक्रियम्** (६१९४)=शुक्र जिसका देवता है ऐसी हवि ।

(११२३) सोमाट्ट्यण् । ४ । २ । ३० ॥

'यह इसका देवता है' इस अर्थमें प्रथमान्त सोमशब्दसे परे ट्यण् (य) प्रत्यय हो । **सोम+य=सौम्य** (१०७० । २६०)+**अम्=सौम्यम्**=चन्द्रमा जिसका देवता है ऐसी हवि ।

(११२४) वाय्वृतुपित्रुषसो यत् । ४ । २ । ३१ ॥

'यह इसका देवता है' इस अर्थमें वायु ऋतु पितृ और उषस् इन प्रथमान्त शब्दोंसे परे यत् प्रत्यय हो ।

वायु (७६९)**+य=वाय्व्यम्**=वायु जिसका देवता है ऐसी हवि ।

ऋतु+य=ऋतव्यम्=ऋतु जिसका देवता है ऐसी हवि ।

पितृ+य=पित ऋ+य-

(११२५) रीङ् ऋतः । ७ । ४ । २७ ॥

अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ परे च ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः ।

जब कृत् (३२९) से भिन्न अथवा सार्वधातुक (४१९) से भिन्न यकार अथवा च्वि (१३३३) परे होय तो ऋको रीङ् (री) आदेश हो । **पितरी+य=पित्री+य=** (२१०) **पित्र्य+अम्=पित्र्यम्**=जिसके पितर देवता हैं ऐसी हवि ।

(११२६) पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः । ४ । २ । ३६ ॥

एते निपात्यन्ते ।

पितृव्य (चाचा), मातुल (मामा), मातामह (नाना), पितामह (दादा) यह शब्द निपातन किये हैं, सूत्रमें पठित होनेसे सिद्धरूप जानने ।

पितुर्भ्रातरि व्यत् । पितृ शब्दसे परे पिताके भाई अर्थमें व्यत् (व्य) प्रत्यय हो । यथा-**पितुर्भ्राता=पितृ+व्य=पितृव्यः**=चाचा ।

मातुर्डुलच् । मातृ शब्दसे परे माताके भाई अर्थमें डुलच् (उल) प्रत्यय हो । **मातुर्भ्राता=मातृ+उल=मातुलः** (२६७)=मामा ।

मातृपितृभ्यां पितरि डामहच् । मातृ तथा पितृ शब्दसे परे माके बाप तथा पिताके बाप अर्थमें डामहच् (आमह) प्रत्यय हो । **मातुः पिता=मातृ+आमह=मातामहः** (२१७)=नाना । **पितुः पिता=पितृ+आमह=पितामहः**=दादा ।

मातरि षिच्च । मातृ तथा पितृ शब्दसे माकी मा तथा बापकी मा इस अर्थमें डामहच् (आमह) प्रत्यय हो सो षित् हो, षित् होने (१३४९) से ङीष् होता है **मातुर्माता=मातामही**=नानी । **पितुर्माता=पितामही**=दादी ।

(११२७) तस्य समूहः । ४ । २ । ३७ ॥

षष्ठ्यन्त शब्दसे परे समूह अर्थमें अण् प्रत्यय हो । **काकानां समूहः=काक+अ=काक** (१०७० । २१०)**+अम्=काकम्**=कौओंका समूह ।

(११२८) भिक्षादिभ्योऽण् । ४ । २ । ३८ ॥

भिक्षाआदि षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे समूह (११२७) अर्थमें अण् प्रत्यय हो । **भिक्षा-**

१ भिक्षा क्षेत्र अंगार सहस्र पदादि अथर्वन् भरत श्रोत्र गर्भिणी करीष चर्मन् युवति पद्धति दक्षिणा विषय ।

णां समूहः=भिक्षा+अ=भैक्ष (१०७० । २६० में तपरकरण नहीं है इससे अके अठारह भेद लेने) आका लोप हुआ भैक्ष+अम्=भैक्षम्=भिक्षाका समूह । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् । गर्भिणी+अ=इह 'भस्याढे तद्धित' इति पुंवद्भावे कृते । गर्भिणी+अ यहां (१८९) से भसंज्ञा हुई और ढकारसे भिन्न तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते भसंज्ञकको पुंवद्भाव होता है इससे पुँल्लिङ्गभाव करनेपर स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय ङीप् है उसका अभाव होगया-गार्भिन्+अ=यहां (७८०) से टि संज्ञक (इन्) का लोप प्राप्त हुआ । परन्तु-

(११२९) इनँण्यनपँत्ये । ६ । ४ । १६४ ॥

अनपत्यार्थेऽणि इन् प्रकृत्या । तेन नस्तद्धित इति टिलोपो न ।

अण् प्रत्यय अपत्यअर्थवाचक न होय तो उससे पूर्व इन्को प्रकृतिभाव हो । इससे (९८०) से टिलोप न हुआ ।

गार्भिण्+अ=गार्भिण+अम्=गार्भिणम्=गर्भिणी स्त्रियोंका समूह ।

युवतीनां समूहः=युवति+अ='भस्याऽढे तद्धिते' इससे पुंवद्भाव होनेसे स्त्रीप्रत्ययतिका अभाव हुआ तब युवन्+अ=यौवन (१०८०)+अम्=यौवनम्=युवतियोंका समूह । 'यौवतम्' यह रूप तो 'यु' धातुसे परे शतृ प्रत्यय (अत्) करके ङीप् प्रत्यय किया युवती, इससे समूह अर्थमें अण् करेंगे तब होगा ।

(११३०) ग्रामजनबन्धुभ्र्यस्तल् । ४ । २ । ४३ ॥

ग्राम (गांव), जन (लोक), बन्धु (भाई) इन शब्दोंसे परे समूह अर्थमें तल् (त) प्रत्यय हो ।

तलन्तं स्त्रियाम् । तलन्त स्त्रीलिंग (१३४२) हो ।

ग्राम+त+आ[१३४२]=ग्रामता=गावोंका समूह ।

बन्धु+त+आ=बन्धुता=भाइयोंका समूह ।

जन+त+आ=जनता=लोकोंका समूह ।

(११३१) गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

गज (हाथी), सहाय (मददगार) इन शब्दोंसे परे भी समूह अर्थमें तल् प्रत्यय(११३०) हो ऐसा कहना चाहिये । गज+त+आ=गजता=हाथियोंका समूह । सहाय+त+आ=सहायता=सहायता करनेवालोंका समूह ।

(११३२) अह्नः खः क्रतौ ॥

प्रकृति तथा प्रत्ययके मिलनेसे सिद्ध हुआ शब्द जब यज्ञवाचक होतो षष्ठयन्त अहन् शब्दसे परे समूह अर्थमें ख प्रत्यय हो । अहन्+ख (ख् अ)=अहन्+ईन अ (१०८७)=अह (९८०) ईन=अहीन+सु=अहीनः=अनेक दिनसे साध्य जो यज्ञ ।

(११३३) अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् । ४ । २ । ४७ ॥

अचित्त (अचेतन), हस्तिन् (हाथी), धेनु (गाय), यह शब्द जो षष्ठयन्त हों तो इनसे परे समूह अर्थमें ठक् (ठ) प्रत्यय हो ।

(११३४) इसुसुक्तान्तात्कः । ७ । ३ । ५१ ॥

इसुसुक्तान्तात् परस्य ठस्य कः ।

जिसका अन्त अवयव इस् अथवा उस् हो वा उक् प्रत्याहारमेंका कोई अक्षर हो किंवा त् हो तो उससे परे जो प्रत्ययका अवयव ठ् (११३३) उसको क् आदेश हो । **सक्तु+क् अ (ठ)=साक्तुक** (१०७०)**+अम्=साक्तुकम्**=सत्तुओंका समूह इसीप्रकार **हास्तिकम्**=हाथियोंका समूह । **धैनुकम्**=गायोंका समूह ।

क्रि० क्रि०

(११३५) तदधीते तद्वेद । ४ । २ । ५९ ॥

अधीते (वह पढ़ता है) इस अर्थमें तथा वेद (जानता है) इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **व्याकरणम् अधीते वेद वा=व्याकरण+अ=** (१०७०) से वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु-

(११३६) न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् । ७ । ३ । ३ ॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजागमौ स्तः ।

पदान्त यकार अथवा वकारसे परे अच्को वृद्धि न हो किन्तु उन यकार तथा वकारसे पूर्व क्रमसे ऐकार और औकारका आगम हो । व्याकरणमें जो यकार है सो पदान्त है, कारण कि वि अव्यय (६७ । ३९९) जो पद है उसके अन्तमें है तो **व् ऐ या करण** (२६०) **+अ=वैयाकरण+सु=वैयाकरणः**=व्याकरणका पढ़नेवाला वा जाननेवाला ।

(११३७) क्रमादिभ्यो वुन् । ४ । २ । ६१ ॥

'वह पढ़ता है' अथवा 'जानता है' इस अर्थमें क्रम आदि (क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा, सामन्) शब्दोंसे परे वुन् (वु) प्रत्यय हो । **क्रम+वु=क्रम्** (२६०)**+अक** (८३७) **=क्रमक+सु=क्रमकः**=वेदकी दूसरी विकृतिका जाननेवाला । इसी प्रकार **पदकः**=वेदकी पहली विकृतिका जाननेवाला । **शिक्षकः**=वेदके शिक्षा अङ्गका जानने वाला । **मीमांसकः**=मीमांसा शास्त्रका जाननेवाला ।

(११३८) तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि । ४ । २ । ६७ ॥

प्रथमान्त शब्दका अस्तिक्रियाके साथ सामानाधिकरण्य होय तो उससे परे वह इसमें है इस अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों परन्तु प्रकृति तथा प्रत्यय मिलकर सिद्ध हुआ शब्द तन्नामक देशका जनानेवाला होय तो, यथा-**उदुम्बराः सन्ति अस्मिन्देशे=उदुम्बर+अ= उदुम्बर् (२६०)+अ=औदुम्बरः**(१०७०)**देशः**=जिसमें गूलरके पेड हों ऐसा देश ।

(११३९) तेन निर्वृत्तम् । ४ । २ । ६८ ॥

उससे बनाया हुआ इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी=कुशाम्ब+अ=कुशाम्ब् (२६०) अ=कौशाम्ब (१०७०) +ई (ङीप् १३४४)=कौशाम्बी**=कुशाम्ब नाम राजाकी बनाई हुई नगरी ।

(११४०) तस्य निवासः । ४ । २ । ६९ ॥

षष्ठयन्तशब्दसे परे निवास अर्थमें अण्आदि प्रत्यय हों । **शिबीनां निवासो देशः= शिबि+अ=शिब्(२६०)+अ=शैबः=(१०७०)** शिबि जातिके क्षत्रियोंके रहनेकादेश।

(११४१) अदूरभवश्च । ४ । २ । ७० ॥

प्रकृति तथा प्रत्यय मिलकर सिद्ध शब्द जो देशकी संज्ञा हो तो षष्ठयन्त शब्दसे परे अदूर (समीप) अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों।**विदिशाया अदूरभवं=विदिशा+अ+अम्= वैदिशम्**=विदिशा नगरीसे जो दूर नहीं है ।

(११४२) जनपदे लुप् । ४ । २ । ८१ ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ।

जब देशकी विवक्षा हो तब चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हो । (११३८ । ११३९ । ११४० । ११४१) में कहे जो प्रत्यय हैं जिनके चार अर्थ होते हैं उनका नाम चातुरर्थिक है। **पंचालानां निवासो जनपदः=पंचाल+अ=पंचाल-**

(११४३) लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने । १ । २ । ५१ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिंगवचने स्तः ।

जब प्रत्ययका लुप् (११४२) हुआ होय तब प्रकृतिका लिङ्ग तथा वचन बना रहे । **पंचालाः**=जिसमें पञ्चालवंशवाले रहते हैं ऐसा देश । **कुरवः**=कुरुओंके निवासका देश । **अङ्गाः**=अंगवंशवालोंके रहनेका देश । **वङ्गाः**=बंगालियोंका देश । **कलिंगाः**=कलिंगोंके निवासका देश ।

(११४४) वरणादिभ्यश्च[1] । ४ । २ । ८२ ॥

अजनपदार्थ आरम्भः ।

वरण आदि गणके शब्दोंसे परे प्रत्ययका लुक् हो । और (११४३) मेंके अनुसार प्रकृतिका लिङ्गवचन रहे । जो शब्द देशवाचक नहीं है उसके निमित्त यह सूत्र है ।

वरणानाम् अदूरभवं नगरं=वरण+जस्=वरणाः=वह नगर जो वरणसे दूर नहीं है ।

(११४५) कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् । ४ । २ । ८७ ॥

कुमुद (कूँई), नड (नरकट), वेतस (वेंत) इन शब्दोंसे परे ड्मतुप् (मतु) प्रत्यय हो । **कुमुद+मतुप्=कुमुद (२६७)+मत-**

(११४६) झयः । ८ । ३ । १० ॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः ।

झयन्तसे परे मतुप् प्रत्ययके मकारके स्थानमें वकार हो ।

कुमुद्+वत=कुमुद्वत+सु=कुमुद्वान्=जहाँ कुँई बहुत हों ।

नड+मतु=नड्वान्=जहाँ नरकट भरे हों ऐसा स्थान ।

वेतस्+मतु-

(११४७) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः[2] । ८ । २ । ९ ॥

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः ।

यवादिगणको छोडकर शेष शब्दोंका अन्तावयव अथवा उपधामें मकार अथवा अवर्ण हो तो उनसे परे मतुप् प्रत्यय (११४९) के मके स्थानमें वकार हो । **वेतस्+वत्=वेतस्वत+सु=वेतस्वान्** (३१६ । १९९ । २६ । १९७) जहां वेत उगे हों ऐसा स्थल।

(११४८) नडशादाड् ड्वलच् । ४ । २ । ८८ ॥

नड (नरकट) तथा शाद (घास) शब्दसे परे ड्वलच् (वल) प्रत्यय हो । **नड+वल=नड् (२६७)+वल=नड्वल+सु=नड्वलः**=जो देश नरकटसे भरा है ।

---

१ वरणा शृंगी शाल्मली शण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिंग्यायन जानपदी जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी ।

२ यव दल्मि ऊर्मि भूमी कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि (व्रजि) ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुत् मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु । आकृतिगणोऽयम् ।

(११४९) शिखायां वलच् । ४ । २ । ८९ ॥

शिखाशब्दसे परे चार अर्थों (११३८ । ११३९ । ११४० । ११४१) मेंसे किसी एक अर्थमें वलच् (वल) प्रत्यय हो । **शिखा+वल=शिखावल+सु=शिखावलः**=शिखावाला मोर ।

॥ इति चातुरर्थिकाः समाप्ताः ॥

अथ शैषिकप्रकरणम् ।

(११५०) शेषे । ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः । तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः ।

अपत्य अर्थके प्रारंभसे चातुरर्थिकतक जिन अर्थोंका कथन है उनसे भिन्न अर्थोंका नाम शेष है, उसमेंभी अण् आदि प्रत्यय हों । **चक्षुषा गृह्यते=चाक्षुषम्** (१०७०) **(रूपम्)** चक्षुसे जो जाना जाता है (रूप रंग) ।

श्रावणः (१०७० । २६०) **(शब्दः)** जो कानसे ग्रहण किया जाय (शब्द) ।

औपनिषदः (पुरुषः)=उपनिषद् विद्यासे जो जाना जाता है (आत्मा) ।

दृषदि पिष्टाः=दार्षदाः (१०७०) **(सक्तवः)**=जो पत्थर (चक्की) में पीसा गया है (सत्तू) ।

चतुर्भिः उह्यते चातुरं (१०७०) **(शकटम्)**=चारसे जो वहन किया जाता है (शकट—गाडी) ।

चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं (१०७० । २६०) **(रक्षः)**=जो चौदशके विषय दीखता है (राक्षस) ।

शेषपदका अधिकार (११९६) सूत्रके पूर्वतक है ।

(११५१) राष्ट्रावारपाराद्घखौ । ४ । २ । ९३ ॥

आभ्यां क्रमाद् घखौ स्तः शेषे ।

राष्ट्र (देश) तथा अवारपार (दोनों किनारे) इन शब्दोंसे परे क्रमसे घ तथा ख प्रत्यय हों। **राष्ट्रे जातादिः=राष्ट्र+घ** (घ् अ) **राष्ट्र** (२६०) **+इय् अ (१०८७)=राष्ट्रियः+सु=राष्ट्रियः**=जो देशमें उत्पन्न हुआ हो इत्यादि ।

अवारपार+ख (ख् अ)=अवारपार (२६०) **+ईन् अ** (१०८७) **=अवारपारीन+सु=अवारपारीणः** (१९७)=जो आरपारमें हुआ हो ।

(११६२) अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् ॥

अवारपारशब्दके अवयव अवार और पार इनका पृथक् (एक एक करके) ग्रहण करे अथवा उनके क्रमको उलटकर पूर्वको पर और परको पूर्व करदे तोभी उनसे परे ख (११९१) प्रत्यय हो।

अवार०ख (खअ)=अवार+ईन्अ=अवारीन+सु=अवारीणः=इसपारका.

पार+ख (खअ)=पार+ईन् अ=पारीन+सु=पारीणः=उसपारका.

पारावार+ख (खअ)=पारावार+ईन्अ=पारावारीन+सु=पारावारीणः= दोनों पारका।

इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युटयुलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जाताद्योऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते । इसप्रकरणमें पृथक्पृथक् प्रकृतियोंसे परे घ (११९१) से लेकर ट्युट्युल् (११७२ पर्यन्त जो प्रत्यय कहे जाते हैं तिनके जात (११७३) आदि अर्थ तथा प्रातिपदिकके साथ एकार्थीभावको प्राप्त हुई विभक्तियाँ कही जावेंगी।

(११६३) ग्रामाद्यखञौ । ४ । २ । ९४ ॥

ग्राम शब्दसे परे य अथवा खञ् (ख) प्रत्यय हो। **ग्राम+य=ग्राम् (२६०)+य =ग्राम्य+सु=ग्राम्यः । ग्राम+ख=ग्राम (२६०)+ईन् अ (१०८६)=ग्रामीन+सु=ग्रामीणः** (१९७) जो गांवमें रहता है।

(११६४) नद्यादिभ्यो ढक् । ४ । २ । ९७ ॥

नदी इत्यादि[1] गणके शब्दोंसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय हो। **नदी+ढ (ढअ)=नाद् (१०७४ । २६०)+एय् (१०८७) अ=नादेय+अम्=नादेयम्**=नदीमें जो हुआ अथवा नदीसे जो आया।

मही+ढ (ढअ)=माह (१०७४ । २६०)+एय् (१०८७)+अ= माहेय+अम्=माहेयम्=पृथ्वीमें जो हुआ इत्यादि।

वाराणसी+ढ (ढअ)=वाराणस्+एय् (१०८७)+अ=वाराणसेय+अम्= वाराणसेयम्=काशीमें जो हुआ इत्यादि।

(११६५) दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् । ४ । २ । ९८ ॥

दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दोंसे परे त्यक् (त्य) प्रत्यय हो।

---

१ नदी मही वाराणसी आवन्ती कौशाम्वी वनकौशाम्वी काशपरी काशफरी खादिरी पूर्वनगरी पाठमाया शाल्या दार्वा सेतकी वडवाया वृषे इति नद्यादिः।

दक्षिण+त्य=दाक्षिणात्य[१०७४]+सु=दाक्षिणात्यः=दक्षिणमें जो उत्पन्न हुआ इत्यादि ।
पश्चात्+त्य=पाश्चात्त्य[१०७४]+सु=पाश्चात्त्यः=पश्चिममें जो उत्पन्न हुआ इ०
पुरस्+त्य=पौरस्त्य[१०७४]+सु=पौरस्त्यः=पूर्वमें जो उत्पन्न हुआ इ०

(११५६) द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्[१] । ४ । २ । १०१ ॥

दिव् (आकाश), प्राच् (पूर्व), अपाच् (दक्षिण), उदच् (उत्तर) और प्रतीच् (पश्चिम) इन शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय हो ।

दिव्+य=दिव्य+अम्=दिव्यम् =स्वर्गमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
प्राच्+य=प्राच्य+अम्=प्राच्यम् =पूर्वमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
अपाच्+य=अपाच्य+अम्=अपाच्यम् =दक्षिणमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
उदच्+य=उदीच्य[३६६]+अम्=उदीच्यम् =उत्तरमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
प्रतिच्+य=प्रतीच्य[३६५]+अम्=प्रतीच्यम्[१५४] =पश्चिममें जो उत्पन्न हुआ हो ।

(११५७) अव्ययात्त्यप्[१] । ४ । २ । १०४ ॥

(अमेहक्वतसित्रेभ्य एव)

अमा (साथ), इह (यहां), क्व (कहां) तथा जिनके अन्त अवयव तसि (१२८७ । १२९२) और त्र हों इन्हीं अव्ययोंसे परे त्यप् (त्य) प्रत्यय हो औरोंसे नहीं ।

अमा+त्य=अमात्य+सु=अमात्यः=साथ रहनेवाला—मन्त्री ।
इह+त्य=इहत्य+सु=इहत्यः=जो यहां हो ।
क्व+त्य=क्वत्य+सु=क्वत्यः=कहां जो हो ।
ततस्+त्य=ततस्त्य+सु=ततस्त्यः=तहांसे जो आया ।
तत्र+त्य=तत्रत्य+सु=तत्रत्यः=तहाँ जो हो ।

(११५८) त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् ॥

नि अव्ययसे परे स्थिर अर्थमें त्यप् (त्य) प्रत्यय हो । नि+त्य=नित्य+सु=नित्यः=जो सब कालमें विद्यमान रहै ।

(११५९) वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । १ । १ । ७३ ॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात् ।

जो समुदायके अचोंमें आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो तो वह समुदाय वृद्धसंज्ञक हो ।

(११६०) त्यदादीनि च । १ । १ । ७४ ॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः ।

त्यद् इत्यादि (१७०) शब्द वृद्ध (११५९) संज्ञक हों ।

(११६१) वृद्धाच्छः । ४ । २ । ११४ ॥

वृद्धसंज्ञक (११५९, ११६०) शब्दोंसे परे छ प्रत्यय हो । शाला+छ=शाल्+ (२६०)+ईय (१०८७)=शालीय+सु=शालीयः=शालामें जो हो । तद्+छ= तद्+ईय (१०८७)=तदीय+सु=तदीयः=तिसका जो हो ।

(११६२) वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ॥

नाम वाचक शब्दकी आदिमें वृद्धिसंज्ञक अच् होय अथवा न होय तो विकल्प करके उसकी वृद्धसंज्ञा हो ।

देवदत्त+छ[११६१]=देवदत्त+ईयँअँ=देवदत्तीय+सु=देवदत्तीयः=देवदत्तका ।
अथवा देवदत्त+अ=दैवदत्त्[११५०]+अ+सु=दैवदत्तः=जो देवदत्तका हो ।

(११६३) गहादिभ्यश्च[१] । ४ । २ । १३८ ॥

गह आदि शब्दोंसे परे छ (११६१) प्रत्यय हो । गह+छ (छ्अ)=गह्[२६०]+ईयँअँ=गहीय+सु=गहीयः=गुहामें जो हो इत्यादि ।

(११६४) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च । ४ । ३ । १ ॥

चाच्छः । पक्षेऽण् ।

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंसे परे खञ् (ख) प्रत्यय विकल्प करके हो । चकारसे छ प्रत्यय और पक्षमें अण्भी हो ।

युवयोः युष्माकं वा अयम्=युष्मद्+छ (छ्अ)=युष्मद्+ईयँअँ=युष्मदीय+सु=युष्मदीयः=जो तुम दोनोंका वा तुम सबका हो ।

अस्मद्+छ (छ्अ)=अस्मद्+ईयँअँ=अस्मदीयः=जो हम दोनोंका वा हम सबोंका हो ।

युष्मद्+ख । अस्मद्+ख-

---

१ गह, अन्तस्थ, सम, विषम, मध्य, (मध्यन्दिनं चरणे) उत्तम, अंग, वंग, मगध, पूर्वपक्ष, अपरपक्ष, अधमशाख, उत्तमशाख, एकशाख, समानशाख, समानग्राम, एकग्राम, एकवृक्ष, एकपलाश, इष्वग्र, इष्वनीक, अवस्यन्दन, कामप्रस्थ, खाडायन, काठेरणि, लावेरणि, सौमित्रि, शैशिरि, आसुत, दैवशर्मि, श्रौति, आहिंसि, आमित्रि, व्याडि, वैजि, आध्यश्वि, आनृशंसि, शौङ्गि, आग्निशर्मि, भौजि, वाराटकि, वाल्मीकि, क्षैमवृद्धि, आश्वत्थि, औद्गाहमानि, ऐकबिन्दवि, दन्ताग्र, हंस, तत्त्वग्र, उत्तर, अनन्तर (मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च) (जनपरयोः कुक च) (देवस्य च) (वेणुकादिभ्यश्छण्) (एतानि गणसूत्राणि) सर्वं गहादिः आकृतिगणः

(११६५) तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ । ४ । ३ । २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च ।

जब खञ् अथवा अण् प्रत्यय परे होय तब युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंको युष्माक तथा अस्माक आदेश अनुक्रमसे हों ।

युष्माक+ख+ (खञ)=यौष्माक् ईन् अ=यौष्माकीण+सु=यौष्माकीणः =तुम दोनोंका वा तुम सबोंका जो हो ।

अस्माक+ख (अख)=अस्माक्+ईन् अ=आस्माकीन+सु=आस्माकीनः =हम दोनोंका वा हम सबोंका जो हो । इसीप्रकार जब अण् प्रत्यय हुआ तब=**यौष्माकः**= तुम दोनोंका वा तुम सबोंका जो हो । **आस्माकः**=हम दोनोंका वा हम सबोंका जो हो यह रूप हुए ।

(११६६) तवकममकावेकवचने । ४ । ३ । ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च ।

जब खञ् अथवा अण् प्रत्यय परे होय तब एकार्थवाचक (एक वचन) युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंके स्थानमें तवक तथा ममक आदेश अनुक्रमसे हों ।

तवक+ख (खञ)=तावक्+ईन् अ=तावकीन+सु=तावकीनः
तवक+अ =तावक्+ अ=तावक +सु=तावकः } तेरा।

ममक+ख (खञ)=मामक्+ईन् अ=मामकीन+सु=मामकीनः
ममक+अ= मामक्+ अ=मामक +सु=मामकः } मेरा ।

छे तु ।

जब छ प्रत्यय होता है तब नीचे लिखा सूत्र लगता है ।

(११६७) प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । ७ । २ । ९८ ॥

मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः ।

जब कोई प्रत्यय अथवा उत्तरपद परे होय तब एकार्थवाचक (एकवचन) युष्मद् अस्मद् शब्दोंके मपर्यन्तको त्व तथा म आदेश अनुक्रमसे हों ।

युष्मद्+छ=त्व अद्=ईय् अ=त्वद् ईय्=त्वदीय+सु=त्वदीयः=तेरा ।
अस्मद्+छ=म अद्+ईय् अ=मद् ईय=मदीय+सु=मदीयः मेरा ।
युष्मद्+पुत्र=त्व अद्+पुत्र=त्वत् पुत्र=त्वत्पुत्र+सु=त्वत्पुत्रः=तेरा पुत्र ।
अस्मद्+पुत्र=म अद्+पुत्र=मत् +पुत्र=मत्पुत्र+सु=मत्पुत्रः =मेरा पुत्र ।

(११६८) मध्यान्मः । ४ । ३ । ८ ॥

मध्यशब्दसे परे म प्रत्यय हो ।

मध्य+म=मध्यम+सु=मध्यमः=बीचका ।

(११६९) कालाट्ठञ् । ४ । ३ । ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् ।

कालवाचक शब्दोंसे परे ठञ् (ठ) प्रत्यय हो ।

काले भवम्=काल+ठ (ठ्अ) काल +इक्अ=कालिक+अम्=कालिकम्=समयमें जो हो । **मासि भवम्=मास +ठ (ठ्अ)=मास +इक्अ=मासिक+अम्=मासिकम्**=महीनेमें जो हो । **संवत्सरे भवम्=संवत्सर+ठ (ठ्अ) =सांवत्सर+इक्अ=सांवत्सरिक+अम्=सांवत्सरिकम्**=संवत्सरमें जो हो ।

(११७०) अव्ययानां भमात्रे टिलोपः ।

केवल भसंज्ञक (१२९) अव्ययकी टिका लोप हो ।

सायंप्रातर्+ठ=सायंप्रातर्+इक्अ=सायंप्रात्+इक्=सायंप्रातिक+सु=सायंप्रातिकः=सांझ और सवेरेमें जो हो । **पुनःपुनर्+ठ=पौनःपुनर्+इक्अ=पौनःपुन्+इक्=पौनःपुनिकः**=जो बारंबार हो ।

(११७१) प्रावृष एण्यः । ४ । ३ । १७ ॥

प्रावृष् (वर्षाऋतु) शब्दसे परे एण्य प्रत्यय हो ।

प्रावृष्+एण्य=प्रावृषेण्य+सु=प्रावृषेण्यः=वर्षाऋतुमें जो हो ।

(११७२) सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च । ४ । ३ । २३ ॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च ।

सायम् (सांझ), चिरम् (बहुकाल), प्राह्णे (दिनका पूर्वभाग) और प्रगे (प्रातःकाल) इन चार शब्दोंसे परे तथा कालवाचक अव्ययसे परे ट्यु (यु) और ट्युल् (यु) प्रत्यय हों और उन प्रत्ययोंको तुट् (त्) का आगमभी हो ।

सायम् +यु=सायम्+तुँयुँ+तँअन=सायन्तन+अम्=सायन्तनम्=सायंकालमें जो हुआ हो ।

चिरम्+यु=चिरम्+त् यु=चिरं[१५७४] **+त्अँन=चिरन्तन+अम्=चिरन्तनँम्=** जो बहुत कालसे हो।

प्राह्णेप्रगेऽनयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णे प्रगे इन दोनोंमें एदन्तत्वका निपातन किया जाता है क्योंकि सूत्रमें एकारान्तहीका उच्चारण किया है। **प्राह्णे+यु=प्राह्णे+त् यु=प्राह्णे+त्अँन=प्राह्णेतन+अम्=प्राह्णेतनँम्। प्रगे+यु=प्रगे+त् यु=प्रगे+त्अँन=प्रगेतन+अम्=प्रगेतनँम्**=प्रातःकालमें जो हो।

दोषा+यु+त्यु=दोषा+त्अँन=दोषातन+अम्=दोषातनम्=रात्रिमें जो हो।

(११७३) तत्र जातः। ४। ३। २५ ॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः।

'उत्पन्न हुआ' इस अर्थमें सप्तम्यन्तसमर्थसे परे अण् आदि तथा घ आदि प्रत्यय हों।

स्रुघ्ने जातः=स्रुघ्न+अ=स्रौघ्न[१०७०।२६०] **+अ=स्रौघ्न+सु=स्रौघ्नः**=स्रुघ्नदेशमें जो उत्पन्न हुआ हो।

उत्से जातः=उत्स+अ=औत्स्[१०७०।२०७] **+अ=औत्स+सु=औत्सः** जो झरनेमें उत्पन्न हुआ हो।

राष्ट्रे जातः=राष्ट्रियः[११५१]=जो किसी देशमें उत्पन्न हुआ हो। **अवारपारे जातः=अवारपारीणः (११५१)**=जो आरपारमें उत्पन्न हुआ हो।

(११७४) प्रावृषष्ठप्। ४। ३। २६ ॥

'उत्पन्न हुआ' इस अर्थमें प्रावृष् शब्दसे परे ठप् (ठ) प्रत्यय हो, यह प्रत्यय एण्य (११७१) का अपवाद है।

प्रावृष्+ठ (इक)=प्रावृष्+इँकँअ=प्रावृषिक+सु=प्रावृषिकः=जो वर्षाऋतुमें उत्पन्न हुआ हो।

(११७५) प्रायभवः। ४। ३। ३९ ॥

तत्रेत्येव।

प्रायभव अर्थात् प्रायः (बाहुल्यसे) होता हो इस अर्थमें सप्तम्यन्तसमर्थसे परे अण् आदि प्रत्यय हों। **स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति=स्रुघ्न+अ=स्रौघ्न (१०७० । २६०)+अ=स्रौघ्न+सु=स्रौघ्नः**=जो बहुधा स्रुघ्न देशमें होता हो।

(११७६) सम्भूते। ४। ३। ४१ ॥

संभव अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थसे परे अण् आदि प्रत्यय हों। **स्रुघ्ने सम्भवति=स्रुघ्न+अ=स्रौघ्न् (१०७० । २६०)+अ=स्रौघ्न+सु=स्रौघ्नः**=स्रुघ्नदेशमें जिसका संभव हो।

(११७७) कोशाड्ढञ् । ४ । ३ । ४२ ॥

कोश (रेशमके कीड़ेके रहनेका घर) सप्तम्यन्तसमर्थसे परे संभव अर्थमें ढञ् (ढ) प्रत्यय हो । **कोशे सम्भूतः=कोश+ढ (ढ्ञ) कोश् (१०७० । २६०)+एय्+अ (१०८७)=कौशेय+अम्=कौशेयम् (३००) (वस्त्रम्)** कोशसे जिसका संभव है (रेशमी वस्त्र) ।

(११७८) तत्र भवः । ४ । ३ । ५३ ॥

सप्तम्यन्तसमर्थसे परे भव अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों । **स्रुघ्ने भवः=स्रौघ्नः**=जो स्रुघ्न देशमें हो । इसी प्रकार **उत्से भवः=औत्सः**=जो उत्सदेशमें हो । **राष्ट्रियः**=जो किसी देशमें हो ।

(११७९) दिगादिभ्यो यत् । ४ । ३ । ५४ ॥

'तत्र भवः' (वहां हो) इस अर्थमें दिगादिशब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय हो ।

दिशि भवम्=दिश्+य=दिश्य+अम्=दिश्यम्=दिशामें जो हो ।

वर्गे भवम्=वर्ग+य=वर्ग्[२६]+य=वर्ग्य+अम्=वर्ग्यम्=जो वर्गमें हो ।

(११८०) शरीरावयवाच्च । ४ । ३ । ५५ ॥

हुआ इस अर्थमें सप्तम्यन्त शरीरके अवयववाचक शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय हो । **दन्ते भवम्=दन्त+य=दन्त् (२६०)+य=दन्त्य+अम्=दन्त्यम् (१५४)**=जो दांतमें हो । इसी प्रकार **कण्ठयम्**=जो कण्ठमें हो ।

अध्यात्मादेष्ठञिष्यते=भाष्यकार कहते हैं कि भव अर्थमें अध्यात्म इत्यादि शब्दोंसे परे ठञ् प्रत्यय हो । यथा—**अध्यात्मं भवम्=अध्यात्म+ठ=आध्यात्म् (१०७० । २६०)+इक् अ (११०२)=आध्यात्मिक+अम्=आध्यात्मिकम्**=जो आत्मामें हो ।

(११८१) अनुशतिकादीनां च । ७ । ३ । २० ॥

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च ।

ञित्, णित् अथवा कित् प्रत्यय परे हुए सन्ते अनुशतिक आदि शब्दोंमें पूर्व तथा उत्तर पदके आदि अच्को वृद्धि हो ।

---

१ दिक् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेष यूथ (उदकात्संज्ञायाम्) न्याय वंश वेश काल आकाश.

२ अनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवरण । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहत्य । अस्यहत्य । अस्यहेति । वध्योग । पुष्करसद् । अनुहरत् । कुरुकत् । कुरुपञ्चाल । उदकशुद्ध । इहलोक । परलोक । सर्वलोक । सर्वपुरुष । सर्वभूमि । प्रयोग । परस्त्री (राजपुरुषात् ष्यञि) सूत्रनड । आकृतिगणोऽयम् । तेन अभिगम । अभिभूत । अधिदैव । चतुर्विद्या । इत्यादि ग्राह्यम् ।

अधिदेव+ ठ=आधिदैव+इक्+अ=आधिदैविक+अम्=आधिदैविकम्=देवमें जो हो।

अधिभूत+ठ=आधिभौतिकम्=पञ्चभूतमें जो हो।

इहलोक+ठ=ऐहलौकिकम्=इस लोकमें जो हो

पारलौकिकम् । परलोकमें जो हो।

आकृतिगणोयम् । यह आकृतिगण है।

(११८२) जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः । ४ । ३ । ६२ ॥

'तत्र भवः' (वहां हो) इस अर्थमें जिह्वामूल और अङ्गुलि–सप्तम्यन्तशब्दोंसे परे छ प्रत्यय हो। **जिह्वामूले भवम्=जिह्वामूल (२६०)+ईय्+अ (१०८७)=जिह्वामूलीय+अम् (१५४)=जिह्वामूलीयम्**=जिह्वामूलमें होनेवाला । इसी प्रकार **अङ्गुल्यां भवम्=अङ्गुली+छ=अङ्गुलीयम्**=अङ्गुलीमें जो हो।

(११८३) वर्गान्ताच्च । ४ । ३ । ६३ ॥

जिनका अन्त अवयव वर्गशब्द हो उन सप्तम्यन्त समर्थोंसे परे 'तत्र भवः' (११७८) इस अर्थमें छ प्रत्यय हो।

कवर्गे भवम्=कवर्ग+छ=कवर्गीयम् (१०८७ । २६०)=कवर्गमें होनेवाला।

(११८४) तत आगतः । ४ । ३ । ७४ ॥

'तत आगतः' (तहांसे आया) इस अर्थमें पञ्चम्यन्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों। **स्रुघ्नात् आगतः=स्रौघ्नः** (१०७० । २६०)=स्रुघ्न देशसे जो आया हो।

(११८५) ठगायस्थानेभ्यः । ४ । ३ । ७५ ॥

'तत आगतः' इस अर्थमें राजाके कर लेनेके स्थानके वाचक पंचम्यन्त शब्दोंसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय हो। **शुल्कशालाया आगतः=शौल्कशालिकः** (१०७४ । ११०२ २६०)=जो शुल्कशालासे आया हो।

(११८६) विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् । ४ । ३ । ७७ ॥

जिस शब्दके प्रवृत्तिनिमित्तमें विद्याका सम्बन्ध हो और जिस शब्दके प्रवृत्तिनिमित्तमें योनिका सम्बन्ध हो वे शब्द क्रमसे विद्या और योनिसम्बन्धवाले कहावें। विद्या और योनिसम्बन्धी पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे 'तत आगतः' (वहांसे आया) इस अर्थमें वुञ् (वु) प्रत्यय हो।

उपाध्यायादागतः=उपाध्याय+वु=औपाध्याय (१०७० । २६०)+**अक** (८३७) **औपाध्यायक+सु=औपाध्यायकः**=उपाध्यायसे जो आया हो। इसीप्रकार **पितामह+वु=पैतामहकः**=पितामहसे जो आया है।

(११८७) हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः । ४ । ३ । ८१ ॥

हेतु तथा मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे 'तत आगतः' (वहांसे आया) अर्थमें रूप्य प्रत्यय विकल्प करके हो ।

समात् आगतम्=सम+रूप्य=समरूप्य+अम्=समरूप्यम्[१५४] । **पक्षे गहादित्वाच्छः**=पक्षमें '**गहादिभ्यश्च**' करके छ प्रत्यय होता है ।

सम+छ[११६३]=सम्[२६०]=ईय्[१०८७]अ=समीय+अम्=समीयम्[१५४]=समान हेतुसे जो आया हो ।

विषमादागतम्=विषम्+रूप्य=विषमरूप्य+अम्=विषमरूप्यम् विषम+छ[११६३]=विषम्[२६०]+ईय्[१०८७]अ=विषमीय+अम्=विषमीयम्[१५४] } विषम हेतुसे जो आया हो ।

देवदत्तात् आगतम्=देवदत्त+रूप्य=देवदत्तरूप्य+अम्=देवदत्तरूप्यम्[१५४] । **देवदत्त+अ=दैवदत्त[१०७०][२६०]+अ=दैवदत्त+अम्=दैवदत्तम्[१५४]**=देवदत्तसे जो आया हो

(११८८) मयट् च । ४ । ३ । ८२ ॥

हेतु तथा मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे 'तत[११६४] आगतः' इस अर्थमें मयट् (मय) प्रत्यय हो विकल्प करके ।

सम+मय=सममय+अम्=सममयम्[१५४]=सम हेतुसे जो आया हो ।

देवदत्त+मय=देवदत्तमय+अम्=देवदत्तमयम्=देवदत्तसे जो आया हो ।

क्रि०

(११८९) प्रभवति । ४ । ३ । ८३ ॥

'प्रभवति' (पहलेही प्रकाशित होता है) इस अर्थमें पञ्चम्यन्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों ।

हिमवतः प्रभवति=हिमवत्+अ=हैमवत्[१०७०][२६०]+ई[१३४४]=हैमवती गंगा=हिमालय पर्वतसे जो प्रकाशित हो (गंगा) ।

क्रि०

(११९०) तद्गच्छति पथिदूतयोः । ४ । ३ । ८५ ॥

तद्गच्छति (उस स्थलको जाता है) इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों परन्तु जो जाता हो वह पथ अथवा दूतवाचक होय तो । **स्रुघ्नं गच्छति=स्रौघ्नः** (१०७० । २६०) **पन्था दूतो वा**=जो स्रुघ्न देशको जाता है ऐसा मार्ग अथवा दूत ।

क्रि०

(११९१) अभिनिष्क्रामति द्वारम् । ४ । ३ । ८६ ॥

सन्मुख निकलता है इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों यथा—**स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नम् कान्यकुब्जद्वारम्**=स्रुघ्नद्वार देशके सन्मुख जो निकलता है । यथा—कनौजका दरवाजा ।

(११९२) अधिकृत्य कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ८७ ॥

ग्रन्थवाचक शब्द हों तो किसी विषयका प्रसङ्ग लेकर किया गया हो इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः=शारीरक+छ=शारीरक्+ईय्अ** (१०८७)**=शारीरकीय+सु=शारीरकीयः**=जो ग्रन्थ आत्माका विषय लेकर बनाया गया है ।

(११९३) सोऽस्य निवासः । ४ । ३ । ८९ ॥

वह इसका निवासस्थान है इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **स्रुघ्नः निवासोऽस्य=स्रौघ्नः**=स्रुघ्नदेशमें जिसका निवास है ।

(११९४) तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

उससे कहा है इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **पाणिनिना प्रोक्तम्=पाणिनि+छ=पाणिन्** (२६०) **+ईय्अ** (१०८७) **पाणिनीय+अम्=पाणिनीयम्**=पाणिनिसे कहा हुआ (व्याकरण शास्त्र) ।

(११९५) तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ॥

उसका यह है, इस अर्थमें षष्ठ्यन्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **उपगोः इदम्=उपगु+अ=औपगव** (१०७० । १०७९ । २९) **अण्=औपगव+अम्=औपगवम्** (१९४) उपगुका जो होय ॥

॥ इति शैषिकप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम् ।

(११९६) तस्य विकारः । ४ । ३ । १३४ ॥

विकार अर्थमें षष्ठ्यन्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । विकार अर्थात् प्रकृतिका रूपान्तर जैसे दूधका दही । **अश्मनो विकारः=अश्मन्+अ (अण्)**—

(११९७) अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः ॥

विकारार्थक प्रत्यय परे हुए सन्ते अश्मन् शब्दकी टिका लोप कहना । **अश्म्+अ=आश्म** (१०००)**+सु=आश्मः**=पत्थरका विकार । **भस्म् अन्+अ** (९८०) से भसंज्ञक अन्का लोप प्राप्त हुआ परन्तु (१०९९) से उसका प्रतिप्रसव हुआ । **भस्मन्+अ=भास्मन्+अ+सु=भास्मनः**=भस्मका विकार । **मृत्तिक्+आ=मार्त्तिक** (१०७० । २६०)**+अ=मार्त्तिक+सु=मार्त्तिकः**=मट्टीका विकार ।

(११९८) अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः । ४ । ३ । १३५ ॥

चाद्विकारे ।

अवयव तथा विकारे अर्थमें जीवधारी, औषधि और झाडवाचक षष्ठयन्त शब्दोंसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **मयूरस्य अवयवो विकारो वा=मयूर+अ=मायूरः**(१०७०। २६०)=मोरका अवयव अथवा विकार । **मूर्वा+अ=मौर्वम्** (१०७० । २६०) मूर्वानाम लताकी पोरी वा भस्म । **पिप्पल+अ=पैप्पलम्** (१०७० । २६०) पीपलका अवयव अथवा विकार, पकनेपर जो नष्ट हो जाय सो औषधी है, गेहूं आदि ।

(११९९) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः । ४ । ३ । १४३ ॥

प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्यात् विकारावयवयोः ।

वेदके विना दूसरे ग्रंथोंमें विकार (११९६) तथा अवयव (११९८) अर्थमें सर्व प्रातिपदिकोंसे परे मयट् (मय) प्रत्यय विकल्पसे हो, परन्तु विकार अथवा अवयव भक्षण योग्य अथवा पहिनने योग्य हों तों न हो ।

१ अश्मन्+मय=अश्म+मय+सु=अश्ममयः । } पत्थरका विकार.
१ (अ०) अश्मन्+अ=आश्मन+अम्=आश्मनम् } पत्थरका अवयव.

अभक्ष्येत्यादि किम् ? आहार तथा वस्त्रवाचकमें मयट्का अभाव क्यों कहा ? उत्तर- **मुद्ग+अ=मौद्ग (१०७०, २६०)+अ=मौद्ग+सु=मौद्गः**=मूंगकी दाल । **कर्पास+अ=कार्पास (२६०)+अ=कार्पास+सु=कार्पासः**=कपासका विकार कपड़ा, यहांभी मयट् न हो इसके वास्ते ।

(१२००) नित्यं वृद्धशरादिभ्यः । ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्धसंज्ञक (११९९) शब्दोंसे परे तथा शर आदि (शर, दर्भ, मृत, कुटी, तृण, सोम, बल्वज) शब्दोंसे परे विकार तथा अवयव अर्थमें मयट् (११९९) (मय) प्रत्यय नित्य हो । **आम्र+मय=आम्रमय+अम्=आम्रमयम्**=आमका विकार अथवा अवयव ।

(१२०१) गोश्च पुरीषे । ४ । ३ । १४५ ॥

पुरीष (गोबर) अर्थमें गो शब्दसे परे मयट् हो । **गो+मय=गोमय+अम्=गोमयम्** (१९४)=गायका गोबर ।

(१२०२) गोपयसोर्यत् । ४ । ३ । १६० ॥

गो तथा पयस् (दूध) शब्दसे परे विकार अर्थमें यत् (य) प्रत्यय हो । **गोर्विकारः= गो+य=गव्य (३१)+अम्=गव्यम्**=गायका विकार । **पयस्+य=पयस्य+ अम्=पयस्यम्**=दूधका विकार ।

॥ इति प्राग्दीव्यतीयप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ ठगधिकारः।

(१२०३) प्राग्वहतेष्ठक् । ४ । ४ । १ ॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते।

इस सूत्रसे प्रारंभकर (१२१८) सूत्रके पूर्वतक ठक् प्रत्ययका अधिकार कियाजाता है।

क्रि० क्रि० क्रि०

(१२०४) तेन दीव्यति खनति जयति जितम् । ४ । ४ । २ ॥

अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितं वा आक्षिकः।

उस करके खेलता है, खोदता है, जीतता है अथवा जो वस्तु जीती गई इन अर्थोंमें तृतीयान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय हो। **अक्ष+ठ=आक्ष्** (१०८४,२६०)**+इक् अ** (११०२) **आक्षिक+अम्=आक्षिकम्।** पाशोंसे जो खेलता है, खोदता है, जीतता है वा जो वस्तु जीती गई।

(१२०५) संस्कृतम् । ४ । ४ । ३ ॥

जिसकरके संस्कार किया गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो। **दध्ना संस्कृतम्=दाधिकम्** (१०७४,११०२, २६०)=दहीसे जिसका संस्कार किया हो, वड़े फुलौरी आदि। **मरिच+ठ=मारिचिकम्**=मिरचसे जिसका संस्कार किया गया हो।

क्रि०

(१२०६) तरति । ४ । ४ । ५ ॥

पार जाता है इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो। **उडुपेन तरति= उडुप्+ठ=औडुप्** (१०७४, २६०)**+इक् अ** (११०२)**=औडुपिक+सु=औडुपिकः**=वरनईसे जो पार जाता है।

क्रि०

(१२०७) चरति । ४ । ४ । ८ ॥

जाता है अथवा खाता है इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो। **हस्तिना चरति= हस्तिन्+ठ=हास्त्** (१०७४ ।९८०) **इक् अ** (११०२)**=हास्तिक+सु=हास्तिकः**=जो हाथीद्वारा जाता है। **दध्ना भक्षयति=दधि+ठ=दाध्** (१०७४,२६०) **+इक् अ** (११०२)**=दाधिक+सु=दाधिकः**=दही करके जो खाता है।

(१२०८) संसृष्टे । ४ । ४ । २२ ॥

उससे मिलायागया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **दध्ना संसृष्टः=दाधिकः** (११०२ । १०७४ । २६०)=दही करके जो मिलाया गया ।

क्रि०

(१२०९) उञ्छति । ४ । ४ । ३२ ॥

बीनता है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो । **बदराणि उञ्छति=बादरिकः** (१०७४ । ११०४ । २६०)=जो बेर बीनताहै ।

क्रि०

(१२१०) रक्षति । ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षण करताहै इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **समाजं रक्षति=सामाजिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=जो समाजकी रक्षा करताहै ।

क्रि०

(१२११) शब्ददर्दुरं करोति । ४ । ४ । ३४ ।

शब्द करता तथा दर्दुर करता है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **शब्दं करोति=शाब्दिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०) जो शब्द करता है । **दर्दुरं करोति=दार्दुरिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=मेडक जो करता है-पहली वर्षा ।

क्रि०

(१२१२) धर्मं चरति । ४ । ४ । ४१ ॥

धर्माचरण करताहै इस अर्थमें द्वितीयान्त धर्म शब्दसे परे ठक् प्रत्यय हो । **धर्मम् आचरति=धार्मिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=धर्माचरण जो करताहै ।

(१२१३) अधर्माच्चेति वक्तव्यम् ॥

अधर्मका आचरण करताहै इस अर्थमेंभी द्वितीयान्त अधर्मशब्दसे परे ठक् प्रत्ययहो । **अधर्मम् आचरति=आधर्मिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=अधर्मका जो आचरण करता है ।

(१२१४) शिल्पम् । ४ । ४ । ५५ ॥

हस्तकौशल अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **मृदंगवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=मृदङ्ग बजानेमें जिसका हाथ कुशल है ।

(१२१५) प्रहरणम् । ४ । ४ । ५७ ॥

इसका प्रहरण इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **असिः प्रहरणमस्य=**

आसिकः (१०७४ । ११०२ । २६०)=खड्गधारी । **धनुष् (म्)+ठ=धान्-उष्** (१०७४+क (११३४)=**धानुष्क+सु=धानुष्कः**=धनुषधारी ।

(१२१६) शीलम् । ४ । ४ । ६१ ॥

स्वभाववाचक अर्थमें प्रथमान्त शब्दोंसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो ।

अपूपभक्षणं शीलमस्य=आपूपिकः (१०७४ । ११०२ । २६०)=पुआ खानेका जिसका स्वभाव है ।

क्रि०

(१२१७) निकटे वसति । ४ । ४ । ७३ ॥

निकट रहता है इस अर्थमें सप्तम्यन्त निकट शब्दसे परे ठक् प्रत्यय हो। **निकटे वसति निकट+ठ=नैकट्** (१०७४ । २६०)**+इक अ** (११०२)**+नैकटिक+सु=नैकटिकः (भिक्षुः)**=जो निकट वसता हो भिखारी ॥

॥ इति ठगधिकारः ॥

अथ यदधिकारः ।

(१२१८) प्राग्घिताद्यत् । ४ । ४ । ७५ ॥

तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ।

इस सूत्रसे प्रारंभ कर (१२२७) के पूर्व तक यत् प्रत्ययका अधिकार जाता है।

क्रि०

(१२१९) तद्वहति रथयुगप्रासंगम् । ४ । ४ । ७६ ॥

तिसको लेजाता है इस अर्थमें रथ युग और प्रासंग इन तीन द्वितीयान्त शब्दोंसे परे यत् (१२१८) प्रत्यय हो । **रथं वहति=रथ+य=रथ्**(२६०)**+य=रथ्य+सु=रथ्यः** रथ जो लेजाय, इसीप्रकार **युग्यः**=जुआ जो लेजाय **प्रासंग्यः**=जो अडगडा (जुआ विशेष) लेजाय ।

(१२२०) धुरो यड्ढकौ । ४ । ४ । ७७ ॥

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते ।

तिसको लेजाता है इस अर्थमें द्वितीयान्त धुर् शब्दसे परे यत् अथवा ढक् (ढ) प्रत्यय हो । **धुर्+य**=यहां **'हलि च'** से दीर्घ प्राप्त हुआ तब—

न भकुर्छुराम् । ८ । २ । ७८ ॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् ।

भसंज्ञक तथा कुर् छुर्के उपधाको दीर्घ न हो । इससे दीर्घ का निषेध हुआ तब=**धुर्य+सु=धुर्यः** (अथवा) **धुर्+ढ=धौर्** (१०७४)+**एय् अ** (१०८७)=**धौरेय+सु=धौरेयः**=जो बोझा ढोवे ।

(१२२१) नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्य-प्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु । ४ । ४ । ९१ ॥

नौ (नाव), वयस् (उमर), धर्म (धर्म), विष (जहर), मूल (जड), मूल (जो खरीदा जाय), सीता (हलका फल), तुला (तराजू) यह शब्द तृतीयान्त हो तो इनसे परे यत् प्रत्यय हो जो शब्द सिद्ध हों उनके अर्थ यही होंय तो—तार्य (जो नौकासे तरने योग्य हो अर्थात् जल), तुल्य (सदृश), प्राप्य (प्राप्त होनेयोग्य), वध्य=(मारडालने योग्य), आनाम्य (जो झुकानेके योग्य हो), सम (समान), समित (सम किया गया), संमित (जो तौलागया) । (उदा०) **नावा तार्यम्=नौ+य=नाव्** (३१)+**य=नाव्य+अम्=नाव्यम्** (१९४) जल—जो नौकासे तरने योग्य हो । **वयसा तुल्यः=वयस्यः**=अवस्थामें जो तुल्य हो—मित्र । **धर्मेण प्राप्यम्=धर्म्यम्** (२६०)=धर्मसे प्राप्त करने योग्य। **विषेण वध्यः=विष्यः**=विषसे जो मारडालनेयोग्य है। **मूलेन आनाम्यम् मूल्यम्**=जडसे जो झुकाने योग्य हो । **मूलेन समः=मूल्यः**=मोल लीहुई वस्तुके जो समान दाम हो । **सीतया समितम्=सीत्यम्** (२६०) **(क्षेत्रम्)**, हलके फलसे जो समान किया हो (खेत) । **तुलया संमितम्=तुल्यम्**=तराजूसे जो तोला गया हो अर्थात् सदृश ।

(१२२२) तत्र साधुः । ४ । ४ । ९८ ॥

निपुण अर्थमें सप्तम्यन्तसे परे यत् प्रत्यय हो।**सामसु+साधुः=सामन्+य=सामन्य+सु=सामन्यः**=सामवेदमें जो निपुण हो । **कर्मन्+य=कर्मण्यः**=कर्ममें जो निपुण हो । **शरण+य=शरण्यः** (२६०)=शरणमें जो निपुण हो । **अग्रे साधुः=अग्र्यः**=अगाडीमें चतुरहो ।

(१२२३) सभाया यः । ४ । ४ । १०५ ॥

निपुण अर्थमें सप्तम्यन्त सभाशब्दसे परे यत् प्रत्यय हो । **सभासु साधुः=सभा+य=सभ्** (२६०)+**य=सभ्य+सु=सभ्यः**=सभोंमें जो निपुण हो । यत् (१२१८) की अवधि समाप्त हुई परन्तु नीचेके तीन सूत्र इसीके अन्तर्गत हैं ॥

॥ इति यतोऽवधिः ॥

अथ छयतोरधिकारः।

(१२२४) प्राक् क्रीताच्छः। ५। १। १॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते।

इस सूत्रसे प्रारम्भ कर ' तेन क्रीतम् ' (१२३२) से पहले छ प्रत्ययका अधिकार जाता है।

(१२२५) उगवादिभ्यो यत्। ५। १। २॥

प्राक् क्रीतादित्येव।

उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्यापवादः।

उकारान्तसे परे तथा गोआदि शब्दोंसे परे यत् प्रत्यय हो। यह सूत्र छ (१२२४) प्रत्ययका अपवाद है। **शङ्कवे हितम्=शङ्कु+य=शङ्को** (१०७९)**+य=शङ्कव्** (३१) **+य=शङ्कव्य+अम्=शङ्कव्यम्** (१९४) शङ्कुका जो हितकारक हो (वह लकड़ी जिससे शंकु बनसके)। **गवे हितम्=गो+य=गव्** (३१)**+य=गव्य+अम्=गव्यम्**=गायका जो हितकारक हो. ' तेन क्रीतम् ' इससे पहलेही इस (१२२९) का विषय जानो।

(१२२६) नाभि नभं च॥

नाभि (पहियेके बेलनका छिद्र) शब्दको नभ आदेश हो। (११२९) में ऐसा कहना चाहिये। यथा—**नाभि+य=नभ+य=नभ्** (२६०)**+य+सु=नभ्यः (अक्षः)**=नाभि का हितकारक रथचक्रमें प्रवेश करनेकी धुरी। **नभ्यम्**=(२६०) **(अञ्जनम्)** आँजन।

(१२२७) तस्मै हितम्। ५। १। ५॥

हितकारक अर्थमें चतुर्थ्यन्तसे परे छ प्रत्यय हो। **वत्सेभ्यो हितः=वत्स+ छ=वत्स्** (२६०)**+ईय्अ** (१०८७)**=वत्सीय+सु=वत्सीयः (गोधुक्)**=बछड़ोंका हितकारक—गायका दुहनेवाला जो बछड़ेके निमित्त थोड़ा छोड़दे।

---

१ गो। हविस्। अक्षर। विष। बर्हिस्। अष्टका। स्खदा। युग। मेधा। स्रुच्। **(नाभि नभं च) (शुनः संप्रारणं वा च दीर्घत्वम्, तस्मिन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। ऊधसोऽनङ्)** कूप खद दर खर असुर अध्वन् क्षर वेद बीज दीप्त।

(१२२८) शरीरावयवाद्यत् । ५ । १ । ६ ॥

शरीरके अवयववाचक चतुर्थ्यन्त शब्दसे हितकारक अर्थमें यत् प्रत्यय हो । **दन्तेभ्यो हितम्=दन्त+य+अम्=दन्त्यम्** (२६०) दांतका जो हितकारक हो । **कण्ठ+य+अम्=कण्ठ्यम्**=जो कण्ठका हितकारक हो । **नस्+य+अम्=नस्यम्**=जो नाकको हितकारक हो ।

(१२२९) आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः । ५ । १ । ९ ॥

हितकारक अर्थमें आत्मन् तथा विश्वजन शब्दोंसे परे तथा भोग जिसका उत्तरपद हो ऐसे शब्दसे परे ख प्रत्यय हो । **आत्मने हितम्=आत्मन्+ईन्** (९८०) से भसंज्ञकका लोप प्राप्त हुआ ।

(१२३०) आत्माध्वानौ खे । ६ । ४ । १६९ ॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः ।

जब ख प्रत्यय परे होय तो आत्मन् (आत्मा) और अध्वन् (मार्ग) इन दो शब्दों को प्रकृतिभाव हो । **आत्मन्+ईन् अ** (१०८७) **+अम्=आत्मनीनम्**=जो अपने निमित्त हितकारक हो । इसीप्रकार **विश्वजनीनम्**=जो सब लोकोंका हितकारक हो ॥ **मातृभोगीणः**=माताके सुखके निमित्त जो हितकारक हो ।

॥ इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ॥

तद्धित छ (१२२४) तथा यत् (१२२५) विधिप्रकरण समाप्त ॥

अथ ठञधिकारः ।

(१२३१) प्राग्वतेष्ठञ् । ५ । १ । १८ ॥

तेन तुल्यमिमि वतिं वक्ष्याति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते ।

इस सूत्रसे प्रारंभकर (१२३८) सूत्रके पूर्वतक ठञ् (ठ) का अधिकार है ।

(१२३२) तेन क्रीतम् । ५ । १ । ३७ ॥

उससे खरीदा गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठञ् प्रत्यय हो । **सप्तति+ठअ=साप्तत** (१०७० । २६०)**+इक् अ** (११०२)**=साप्ततिक+अम्=साप्ततिकम्** (१९४) =सत्तरसे जो मोल लिया गया हो । **प्रस्त+ठ+अम्=प्रास्थिकम्** (१०७० । २६० । ११०२) प्रस्थ परिमित धान्य आदिसे जो खरीदा हो ।

(१२३३) तस्येश्वरः । ५ । १ । ४२ ॥

(५ । १ । ४१) सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः ।

ईश्वर अथवा धनी इस अर्थमें सर्वभूमि और पृथिवी इन षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकोंसे परे अण् तथा अञ्प्रत्यय अनुक्रमसे हों ।

सर्वभूमेः ईश्वरः=सर्वभूमि+अ=सार्वभौम् ११८९।।२६० **+अ=सार्वभौम+सु=सार्वभौमः**=सब धरतीका ईश्वर ।

पृथिव्याः ईश्वरः=पृथिवी+अ=पार्थिव् ११७०।१०७३।२६० **+अ=पार्थिव+सु=पार्थिवः**= पृथिवीका धनी ।

(१२३४) पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ५ । १ । ५९ ॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ।

पङ्क्ति (दश वा एक जातिका छन्द), विंशति (बीस), त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पंचाशत् (पचास), षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) और शत (सौ) यह रूढिशब्द निपात किये हैं ।

क्रि०

(१२३५) तदर्हति । ५ । १ । ६३ ॥

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः ।

लाभ करनेके योग्य है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठञ् (१२३१) आदि प्रत्यय हों । **श्वेतच्छत्रमर्हति=श्वेतच्छत्र+ठ=श्वैतच्छत्त्र्** (१०७० । २६०)+इकू अ (११०२) **श्वैतच्छत्रिक+सु=श्वैतच्छत्रिकः**=जो श्वेतछत्रके योग्य हो ।

(१२३६) दण्डादिभ्यो यत् । ५ । १ । ६६ ॥

एभ्यो यत्स्यात् ।

दण्ड आदि शब्दोंसे परे योग्य है इस अर्थमें यत् प्रत्यय हो । **दण्डमर्हति=दण्ड+य=दण्ड्** (२६०)+य=दण्ड्य+सु=दण्ड्यः=दण्ड पाने योग्य जो हो । **अर्घ्यः**=जो अर्घके योग्य हो । **वध्यः**=जो वधके योग्य हो ।

(१२३७) तेन निर्वृत्तम् । ५ । १ । ७९ ॥

निष्पन्न अर्थमें तृतीयान्त से परे ठञ् (१२३१) प्रत्यय हो । **अह्ना निर्वृत्तम्=**

---

१ दण्ड । मुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेघ । मेधा । सुवर्ण । उदक । वध । युग । गुहा । भाग । इभ । भंग

अहन्+ठ=आह्न् (१०७० । २७३)+**इक्** (११०२) **अ=आह्निक+अम्=आह्निकम्** । एक दिन करके जो निष्पन्न हो—नित्यकर्म । इस स्थानमें (९८०) से भसंज्ञक टिका लोप न हुआ क्योंकि **'अह्नष्टखोरेव'** यह नियम सूत्र बाध लेता है ।

॥ इति ठञोऽवधिः ॥

(१२३८) तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः । ५ । १ । ११५ ॥

तुल्य अर्थमें तृतीयान्तसे परे वति (वत्) प्रत्यय हो जिस धर्मके साथ तुलना कीजाय यदि वह क्रिया हो तो ।

ब्राह्मणेन तुल्यमधीते=ब्राह्मण+वत=ब्राह्मणवत् (अधीते)=जो ब्राह्मणके तुल्य अध्ययन करता है ।

क्रिया चेदिति किम् ? जिससे धर्मकी तुलना करे वह क्रिया हो इसके कहनेका क्या कारण ? (उत्तर) **गुणतुल्ये मा भूत्** । जब गुणसे तुलना करे तब यह विधान न लगे । **पुत्रेण तुल्यः स्थूलः**=पुत्रके समान मोटा । यहां वत् प्रत्यय न हुआ ।

(१२३९) तत्र तस्येव । ५ । १ । ११६ ॥

जिसमें सदृश तिसके सदृश इस अर्थमें सप्तम्यन्त और षष्ठयन्त शब्दोंसे परे वति (वत्) प्रत्यय हो (१२३८) ।

मथुरायाम् इव=मथुरा+वत्=मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः=मथुरामें जैसी दीवार है वैसी स्रुघ्नमें भी है ।

चैत्रस्य इव=चैत्र+वत='चैत्रवत् मैत्रस्य गावः' चैत्रकी जैसी गायें हैं वैसी ही मैत्रकी हैं ।

(१२४०) तस्य भावस्त्वतलौ । ५ । १ । ११९ ॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । त्वान्तं क्लीबम् ।

भाव अर्थमें षष्ठयन्त से परे त्व अथवा तल् (त) प्रत्यय हो । प्रकृति अर्थात् घट पट आदि शब्दोंसे घडा वस्त्र आदिके ज्ञान होनेमें घटत्व आदि धर्म जो विशेषणरूप से प्रतीयमान होते हैं उनका नाम भाव है ।

गोः भावः=गो+त्व=गोत्व+अम्=गोत्वम्=गायका जो धर्म है, **'त्वान्तं क्लीबम्'** जो अन्तावयव त्व प्रत्यय हो तो वह नपुंसकलिङ्ग हो ।

(१२४१) आ च त्वात् । ५ । १ । १२० ॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते ।

'ब्रह्मणस्त्वः' जो अष्टाध्यायीका सूत्र है उसके पूर्वपर्यन्त त्व और तल् प्रत्यय क अधिकार होताहै । **अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्** । इस सूत्र के करनेका कारण

यह कि त्व और तल् प्रत्ययके बाधक जो अपवाद प्रत्यय हैं उन अपवादक प्रत्ययोंके साथ उन्हींके तुल्य व्यवहारमें आवें, आशय यह कि इनका और इनके बाधक प्रत्ययोंका भी व्यवहार होगा। **चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः।** सूत्रमें चकार कहनेका आशय यह कि–जैसे प्रयोगमें त्व और तल् प्रत्यय होते हैं वैसेही नञ् और स्नञ् (१०७७) प्रत्यय भी हों यथा=**स्त्रियाः भावः**–

स्त्री+नञ्[१०७७] =स्त्रै (१०७०)+न=स्त्रैण (१५७)+अम्=स्त्रैणम्।

(अ०) स्त्री+त्व=स्त्रीत्व+अम्=स्त्रीत्वम्
स्त्री+त=स्त्रीत+आ[१५३२]=स्त्रीता } स्त्रीका धर्म।

पुंस्+स्नञ्[१०७७] =पौंस+स्न+अम्=पौंस्नम्
पुंस्+त्व=पुंस्त्व+अम्=पुंस्त्वम्
पुंस्+त=पुंस्त+आ[१५३२]=पुंस्ता } पुरुषत्व और पुरुषका धर्म

(१२४२) पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। ५। १। १२२॥

वावचनमणादिसमावेशार्थम्।

पृथु आदि[१] षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकोंसे परे भाव अर्थमें इमनिच् (इमन्) प्रत्यय विकल्प करके हो। विकल्प कहनेका कारण यह कि पक्षमें अण् आदि प्रत्ययभी हों।

(१२४३) र ऋतो हलादेर्लघोः। ६। ४। १६१॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठेमेयस्सु परतः।

हल् जिसके पूर्व हो ऐसे लघु (४८२) ऋकारसे परे इष्ठन् इमन् ईयस् आदि प्रत्यय हों तो ऋको र हो।

(१२४४) टेः। ६। ४। १५५॥

भस्य टेर्लोप इष्ठेमेयस्सु।

इष्ठन् (१३०७) इमनिच् (१२४२) अथवा ईयसुन् (१३११) प्रत्यय परे हुए सन्ते भसंज्ञक टिका लोप हो। **पृथु–मृदु–भृश–कृश–दृढ–परिवृढानामेव रत्वम्।** पृथु (मोटा), मृदु (कोमल), भृश (अत्यन्त), कृश (दुबला), दृढ (मजबूत), परिवृढ (प्रभु), इन्हीं शब्दोंके ऋकारको र् (१२४३) हो। **पृथोः भावः=पृथु+इमन्** (१२४२)=पृथ (१२४४)+इमन्=प्रथ (१२४३)+इमन्=प्रथिमन्+सु= **प्रथिमा** (अथवा) पृथु+अ=पार्थो (१०७०)+अ=पार्थ् अव् (२९)+अ=

---

१ पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु. उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिंचन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र, अणु।

पार्थव+अम्=पार्थवम्=बड़ेका भाव अर्थात् बड़ाई। **मृदोर्भावःमृदु+इमन्(१२४२) म्रदिमा (अथवा) मृदु+अ=मार्दवम्** (१०७०,१०७९) कोमलका भाव—कोमलता।

(१२४५) वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च[1] । ५ । १ । १२३ ॥

चादिमनिच्।

रंगवाचक तथा दृढ आदिगणके षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे भाव अर्थमें ष्यञ् (य) प्रत्यय हो सूत्रमें चकार है इससे [१२४३] इमनिच् भी हो ऐसा जानना।

शुक्ल+य=शौक्ल[१०७०।२६०]+य=शौक्ल्य+अम्=शौक्ल्यम् } श्वेतता—सफेदी
शुक्ल+इमन्=शुक्लिमन्+सु=शुक्लिमा }

दृढ+य=दार्ढ्यम्। दृढ+इमन्[१२४२]=द्रढिमा (१२४३, १२४४)=दृढता।

(१२४६) गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः[2] कर्मणि च । ५ । १ ।१२४॥

चाद्भावे।

गुणवाचक जो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक तथा ब्राह्मणादि षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे कर्म अर्थमें ष्यञ् (य) सूत्रमें चकार है इससे भाव (१२४०) अर्थमें भी ष्यञ् हो ऐसा जानना।

जड+य=जाड्[१०७०।२६०]+य=जाड्य+अम्=जाड्यम् } मूर्खताका भाव
मूढ+य=मौढ्[१०७०।२६०] +य=मौढ्य+अम्=मौढ्यम् } अथवा कर्म।

ब्राह्मण+य=ब्राह्मण्[२००]+य+ब्राह्मण्य+अम्=ब्राह्मण्यम्=ब्राह्मणका भाव (ब्राह्मण-पना) वा कर्म।

(१२४७) सख्युर्यः । ५ । १ । १२६ ॥

भाव तथा कर्म अर्थमें षष्ठ्यन्त सखि शब्दसे परे य प्रत्यय हो। **सख्युर्भावः कर्म वा= सखि+य=सख् (२६०)+य=सख्य+अम्=सख्यम्**=मित्रताका भाव वा कर्म।

---

१ दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कृष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पंडित मधुर मूर्ख मूक।

२ ब्राह्मण। वाडव। माणव। (अर्हतो नुम् च) चोर। धूर्त। आराधय। विराधय। अपराधय। उपराधय। एकभाव। द्विभाव। त्रिभाव। अन्यभाव। अक्षेत्रज्ञ। संवादिन्। संवेशिन्। संभाविन्। बहुभाषिन्। शीर्षघातिन्। विघातिन्। समस्थ। विषमस्थ। परमस्थ। मध्यस्थ। अनीश्वर। कुशल। चपल। निपुण। पिशुन। कुतूहल। क्षेत्रज्ञ। विश्व। बालिश। अलस। दुःपुरुष। कापुरुष। राजन्। गणपति। अधिपति। गडुल। दायाद। विशस्ति। विषम। विपात। निपात। (**सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे**) (**चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च**) शौटीर। **ब्राह्मणादिराकृतिगणः। तेन औचितीत्यादि सिद्धम्।**

(१२४८) कपिज्ञात्योर्ढक् । ५ । १ । १२७ ॥

भाव तथा कर्म अर्थमें षष्ठ्यन्त कपि (वानर) तथा ज्ञाति (जाति) रूप प्रातिपदिकसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय हो ।

कपि+ढ (ढ्अ)=कपि+एय्अ[१०८७]=कापि[१०७४।२६०]+एय् अ=कापेय्+अम्=कापेयम्=वानरका भाव अथवा कर्म । इसी प्रकार ज्ञाति+ढ=ज्ञातेयम् (१०८७,२६०)=ज्ञातिका भाव अथवा कर्म ।

(१२४९) पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ ॥

भाव तथा कर्म अर्थमें षष्ठ्यन्त–पतिशब्दान्त तथा पुरोहित आदि गणके शब्दोंसे परे यक् (य) प्रत्यय हो ।

सेनापति+य=सैनापत्[१०७४।२६०]+य=सैनापत्य+अम्=सैनापत्यम्=सेनापतिका भाव अथवा क्रिया । एवं–पुरोहित+य=पौरोहित्यम्[१०७४।२६०]=पुरोहितका भाव अथवा कर्म ॥

॥ इति नञ्स्नञोरधिकारः ॥

अथ मत्वर्थीयाः ।

(१२५०) धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् । ५ । २ । १ ॥

जिस खेतमें धान्य उत्पन्न होता हो उसके वाचक (धान्यार्थ) षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकसे परे खञ् (ख) प्रत्यय हो । भवत्यस्मिन्निति भवनम्, मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्=मुद्ग+ख=मुद्ग+ईन् अ (१०८७)=मौद्ग (१०७० । २६०) +ईन=मौद्गीन+अम्=मौद्गीनम्=जिसमें मूंग उत्पन्न हो ऐसा खेत ।

(१२५१) व्रीहिशाल्योर्ढक् । ५ । २ । २ ॥

धान्यार्थक षष्ठ्यन्त व्रीहि तथा शालिशब्दोंसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय हो ।

व्रीहि+ढ=व्रैह्[१०७४।२६०।१०८७]+ एय्अ=व्रैहेय+अम्=व्रैहेयम्=व्रीहिकी उत्पत्तिका खेत ।

शालि+ढ=शाल्[२६०]+एय्अ[१०८७]=शालेय+अम्=शालेयम्=धानकी उत्पत्तिका खेत ।

(१२५२) हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् । ५ । २ । २३ ॥

ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशः विकारार्थे खञ्च निपात्यते । दुह्यते इति दोहः क्षीरम्, ह्योगोदोहस्य विकारः=हैयङ्गवीनम् (नवनीतम्)

---

१ पुरोहित (राजासे) ग्रामिका, पिंडिका, सहित, बाल, मन्द, खंडिक, दंडिक, वर्मिक, कार्मिक, धार्मिक, शिलिक, सूतिक, मूलिक, तिलक, अञ्जुलिक, अञ्जनिक, ऋषिक, पुत्रिक, अविक, क्षत्रिक, पर्षिक, पथिक, चार्मिक, प्रतिक, सारथि. आस्तिक, सूचिक, संरक्ष, सूचक, नास्तिक, अजानिक, शाकर, नागर, चूडिक ।

हैयंगवीन (ताजा मक्खन) इस अर्थमें यह शब्द निपातन किया है ह्यस् को हियङ्गु आदेश और विकार अर्थमें खञ् प्रत्यय कर निपातन किया है । जो दुहा जाय उसे दोह (दूध) कहते हैं, व्यतीत दिनमें दुहे हुए दूधका विकार हैयङ्गवीन (मक्खन) कहाताहै ।

(१२५३) तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् । ५ । २ । ३६ ॥

वह इसको उत्पन्न हुआ इस अर्थमें तारका * आदि प्रथमान्त शब्दोंसे परे इतच् (इत) प्रत्यय हो । **तारकाः संजाता अस्य=तारक् आ+इत=तारक्** (२१०)**+इत+अम्=तारकितम्** (**नभः**)=तारे जिसमें उत्पन्न हुए हों ऐसा (आकाश)। **पण्डा संजाता अस्य=पण्ड** (२१०)**+इत+सु=पण्डितः**=जिसे सत्य असत्यके विवेककी बुद्धि उत्पन्न है (पण्डित)। **आकृतिगणोयम्।** यह आकृतिगण है ।

(१२५४) प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः । ५ । २ । ३७ ॥

तदस्येत्यनुवर्तते ।

प्रमाणरूप अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकसे परे द्वयसच् (द्वयस), दघ्नच् (दघ्न) अथवा मात्रच् (मात्र) प्रत्यय हों ।

ऊरुः प्रमाणमस्य=ऊरु+द्वयस+अम्=ऊरुद्वयसम्
" " " ऊरु+दघ्न +अम्=ऊरुदघ्नम्
" " " ऊरु+मात्र +अम्=ऊरुमात्रम्
} जिसकाप्रमाणजांघभरहै.

(१२५५) यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् । ५ । २ । ३९ ॥

परिमाणरूप अर्थमें यद् तद् और एतद् इन प्रथमान्तशब्दोंसे परे वतुप् (वत्) प्रत्यय हों ।

यत् परिमाणमस्य=यद्+वत्+सु=यावान् [३७७। २६। ३१६। १९७] = जो परिमाण है जिसका (जितना)
तत् परिमाणमस्य=तद्+वत्+सु=तावान् [३७७। २६। ३१६। १९७] = वह परिमाण है जिसका (तितना)
एतत् परिमाणमस्य=एतद्+वत्+सु=एतावान् [३७७। २६। ३१६। १९७] = यह परिमाण है जिसका (इतना)

---

* तारका, पुष्प, वर्णक, मञ्जरी, ऋजीष, क्षण, सूत्र, मूत्र, निष्क्रमण, पुरीष, उच्चार, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुसल, मुकुल, कुसुम, कुतूहल, तवक, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, धेनुष्या, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, अंगारक, पूर्णक, द्रोह, दोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्म्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरंग, तिलक, चंद्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, गर्ध, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, गर, रोग, रोमाञ्च, पण्डा, कज्जल, तृष, कोरक, कल्लोल, स्थपुट, फल, कंचुक, शृंगार, अंकुर, शैवल, बकुल, श्वभ्र, आराल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्छा, अंगार, हस्तक, प्रतिक, प्रतिबंब, विघ्नतन्त्र, प्रत्यय, दीक्षा, गर्ज, गर्भाद, प्राणिनि । **तारकादि-राकृतिगणः ।**

(१२९५) किमिदम्भ्यां वो घः । ५ । २ । ४० ॥

आभ्यां वतुप् वकारस्य घश्च ।

किम् और इदम् शब्दसे परे वतुप् (वत्) प्रत्यय हो और वकार को घ आदेशहो । किम्+वत् । इदम्+वत्=किम्+घ । इदम्+घ (१०८७)-

(१२९५) इदंकिमोरीश्की । ६ । ३ । ९० ॥

दृग्दृशवतुषु इदम् ईश्, किमः की ।

दृग्, दृश और वत् प्रत्यय परे रहते इदम् शब्दको ईश् (ई) और किम् शब्दको की आदेश हो । ई+घ= । की+घ=(२६० । १०८७) इयान्=इतना । कियान्=कितना ।

(१२९६) संख्याया अवयवे तयप् । ५ । २ । ४२ ॥

अवयव अर्थमें संख्यावाचक प्रथमान्त प्रातिपदिकसे परे तयप् (तय) प्रत्यय हो । पञ्च अवयवा यस्य=पञ्च+तय+अम्=पञ्चतयम् (२००) जिसके पांच अवयव हों ।

(१२९७) द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा । ५ । २ । ४३ ॥

द्वि तथा त्रि इन प्रथमान्त प्रातिपदिकोंसे परे तयप् (१२९६) प्रत्यय को विकल्प करके अयच् (अय) आदेश हो ।

द्वि+अय+अम्=द्वयम् (अथवा) द्वि+तय+अम्=द्वितयम्=जोड़ा ।

त्रि+अय+अम्=त्रयम् (अथवा) त्रि+तय+अम्=त्रितयम्=जिनके तीन अवयव हों ।

(१२९८) उभादुदात्तो नित्यम् । ५ । २ । ४४ ॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्तः ।

उभ शब्दसे परे तयप् (१२९६) प्रत्ययके स्थानमें उदात्त अयच् आदेश नित्य हो । उभ+अय+अम्=उभयम् (२६०) जिसके दो अवयव हों ।

(१२९९) तस्य पूरणे डट् । ५ । २ । ४८ ॥

'तिसका पूरण करनेवाला' इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकसे परे डट् (अ) १४८।७) प्रत्यय हों । एकादशानां पूरणः एकादशन्+अ=एकादश+सु=एकादशः=ग्यारहवां । (प्रागे कादशभ्योऽच्छन्दसि) इस सूत्रमें एकके स्थानमें 'एका' का उच्चारण किया है इससे दीर्घ होता है ।

(१२६०) नान्तादसंख्यादेर्मट् । ५ । २ । ४९ ॥

डटो मडागमः ।

जो नकारान्त संख्यावाचक प्रातिपदिककी आदिमें कोई अन्य संख्यावाचक शब्द न हो तो उससे परे डट् (१२५९) प्रत्ययको मट् (म्) का आगम हो । **पञ्चानां पूरणः=पञ्चन्+अ (१२५९) (डट्)=पञ्चन्+म्+अ=पञ्चम+सु=पञ्चमः**=पांच संख्याका पूरण करनेवाला (पांचवां) । **नान्तात् किम् ?** नकारान्तप्रातिपदिक हो ऐसा क्यों कहा ? (उत्तर) नकारान्तभिन्न प्रातिपदिकसे परे डट्को मट् नहीं होता है, यदि नान्त न कहेंगे तो होने लगैगा, यथा-**विंशतेः पूरणः विंशति+अ (१२५९ डट्)-**

(१२६१) ति विंशतेर्डिति । ६ । ४ । १४२ ॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे ।

डित् प्रत्यय परे हुए सन्ते भसंज्ञक (१८९) जो विंशति शब्द तिसकी तिका लोप हो । **विंश+अ+सु=विंशः**=(३००) बीसवां । **असंख्यादेः किम् ?** आदिमें कोई अन्य संख्यावाचक न हो यह (१२६०) सूत्रमें क्यों कहा ? (उ०) कारण यह है कि ऐसा शब्द होनेसे मट्का आगम नहीं होता । यथा-**एक+दशन्+अ=एकादशन्+अ** (१२५९)**+सु=एकादशः**=ग्यारहवां । यहां नान्त संख्यावाचकसे पहले संख्यावाचक एक शब्द है इससे मट् न हुआ ।

(१२६२) षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् । ५ । २ । ५१ ॥

एषां थुगागमः स्याड्डटि ।

डट् (१२५९) प्रत्यय परे हुए सन्ते षष् (छ), कति (कितने), कतिपय (कितने एक) और चतुर (चार) इन शब्दोंको थुक् (थ) का आगम हो । **षण्णां पूरणः=षष्+थ** (१२५९)**+सु=षष्ठः** (७८)=छह संख्याका पूरण करनेवाला (छठा) । **कति+थ् अ+सु=कतिथः**=कौनसा । **कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेप्यत एव ज्ञापकाड्डट्** । कतिपयशब्द संख्यावाचक नहीं है तो भी (१२५९) से डट् प्रत्यय होता है इसका कारण यह है कि, थुक्विधायक सूत्र डट्प्रत्ययनिमित्तक है अर्थात् डट् पर रहते उक्त शब्दोंको थुक्का आगम होता है तो यदि डट् न हो तो उसे धर रहते थुक् कैसे हो इसी ज्ञापक (डट् परे रहते थुग्विधान) से डट् होता है । यथा-**कतिपय+थ् अ+सु=कतिपयथः**=कईएकमेंको था । **चतुर्णांपूरकः=चतुर्+थ्+अ+सु=चतुर्थः**=चौथा ।

(१२६३) द्वेस्तीयः । ५ । २ । ५४ ॥

डटोऽपवादः ।

षष्ठयन्त द्विशब्दसे परे पूरण अर्थमें तीय प्रत्यय हो यह डट् (१२५९) का अपवाद है । **द्वयोः पूरणः=द्वि+तीय+सु=द्वितीयः**=दो संख्याका पूरण करनेवाला (दूसरा) ।

(१२६४) त्रेः संप्रसारणं च । ५ । २ । ५५ ॥

पूरण अर्थमें त्रिशब्दसे परे तीय (१२६३) प्रत्यय हो और (२८१) संप्रसारण होकर र-के स्थानमें ऋ हो । यथा=**त्रि+तीय=त् ऋ+तीय=(२८२) तृ+तीय+सु=तृतीयः**=तीन संख्याका पूरा करनेवाला (तीसरा) ।

(१२६५) श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते । ५ । ३ । ८४ ॥

‘ वेदको पढता है ’ इस अर्थमें श्रोत्रियन् शब्द निपातित है अर्थात् छन्दस् शब्दसे ‘ घन् ’ प्रत्यय और छन्दस्को श्रोत्र आदेश निपाता जाता है । **छन्दस्+घन्=श्रोत्र+घन्=श्रोत्र+इय (२६०)=श्रोत्र्+इय+सु=श्रोत्रियः**=वेदपाठी । **वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः ।** अष्टाध्यायीके (५ । २ । ७७) सूत्रमें वा शब्द है इस सूत्रमें उसका अनुवर्तन है इससे दूसरे पक्षमें **छान्दसः** (१०७०) ऐसा रूप होता है ।

(१२६६) पूर्वादिनिः । ५ । २ । ८६ ॥

प्रथमान्त पूर्व प्रातिपदिकसे परे इनि (इन्) प्रत्यय हो जब (अनेन) ‘ इसने ’ इस रूपसे क्रियाका कर्ता विवक्षित हो । यथा-**पूर्वं ज्ञातमनेन=पूर्व+इन्=पूर्विन्** (१९७) से इ उपधा दीर्घ हुई (२००) से नकारका लोप हो=**पूर्वी** (जिसने पहले जाना) सिद्ध हुआ ।

(१२६७) सपूर्वाच्च । ५ । २ । ८७ ॥

प्रथमान्त पूर्व शब्दके पूर्वमें कोई पद विद्यमान हो तो उससे परे (१२६६) में कहे अर्थमें इनि प्रत्यय हो । **कृतं पूर्वमनेन=कृत+पूर्व+इन्=कृतपूर्वी** (१९७, २००)=जिसने पूर्वमें किया ।

(१२६८) इष्टादिभ्यश्च । ५ । २ । ८८ ॥

(१२६६) में कहे अर्थमें इष्ट आदि प्रथमान्त प्रातिपदिकोंसे परे इनि प्रत्यय हो । **इष्टम् अनेन=इष्ट+इन्=इष्टी** (१९७, २००)=जिसने इष्टि की । **अधीतम् अनेन=अधीत+इन्=अधीती** (१९७ । २००)=जिसने अध्ययन किया ।

---

१ इष्ट	निकथित	परिरक्षित	आम्नात	अवकल्पित	अनुपठित
पूर्त	निषादित	अर्चित	श्रुत	निराकृत	व्याकुलित
उपासादित	निपठित	गणित	अधीत	उपकृत	
निगदित	संकलित	अवकीर्ण	अवधान	उपाकृत	
परिगदित	परिकलित	आयुक्त	आसेवित	अनुयुक्त	
परिवदित	संरक्षित	गृहीत	अवधारित	अनुगणित	

क्रि०

(१२६९) तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् । ५ । २ । ९४ ॥

गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति गोमान् ।

'तिसका यह है' वा 'तिसमें यह है' इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकसे परे मतुप् (मत्) प्रत्यय हो । **गावः अस्य वा अस्मिन् सन्ति=गो+मत्=गोमन्त्** (३१६)= **गोमान्** (१९७ । २६) जिसके वा जिसमें गाय हैं ।

(१२७०) तसौ मत्वर्थे । १ । ४ । १९ ॥

तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे ।

मतुप् (१२६९) के अर्थमें हुआ कोई प्रत्यय परे होय तो तकारान्त, सकारान्त प्रातिपदिककी भसंज्ञा हो । **विद्वस्+मत् (मतुप्)**=भसंज्ञा हुई तब (२८१ । ३८२) से संप्रसारण व के स्थानमें उ हुआ । **विदुस्+मत्=विदुष्** (१६९)+**मत्=विदुष्मान्** (१९७ । २०० । २६)=जहां विद्वान् रहते हैं ।

(१२७१) गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः ॥

भाष्यकार पतञ्जलिके मतमें गुणवाचक शब्दोंसे परे मतुप् (१२६९) प्रत्यय का लोप हो । **शुक्लः गुणः अस्य अस्ति=शुक्ल+मत्+सु=शुक्लः (पटः)**=जिसमें सफेदी हो (श्वेतवस्त्र) । इसी प्रकार **कृष्णः**=जिसमें कालिमा हो । **कृष्ण+मत्+सु=कृष्णः (पटः)**=काला (वस्त्र) ।

(१२७२) प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् । ५ । २ । ९६ ॥

प्राणियोंके विषे अवयवाऽवयवीभाव सम्बन्धसे स्थित जो पदार्थ तिनके वाचक आकारान्त शब्दोंसे परे मतुप् (१२६९) के अर्थमें लच् (प्रत्यय) विकल्प करके हो । मनुष्य प्राणियोंमें चूडा (चोटी) यह अवयव रूपसे स्थित पदार्थ है और आकारान्त है तब **चूडा+ल+सु=चूडालः** । अथवा **चूडा+मत्** (१२६९)+**सु=चूडावान्**=जिसके चोटी है । **प्राणिस्थात् किम् ?** प्राणिस्थ पदार्थ क्यों कहा ? (उत्तर) ऐसा न हो तो लच् प्रत्यय न हो मतुप् ही हो । यथा-**शिखा+मत्=शिखावान् (दीपः)**=शिखावाला (दीपक) **प्राण्यंगादेव । नेह ।** प्राणीके अंगसे ही लच् प्रत्यय होता है, प्राणिस्थ पदार्थ है नहीं । यथा-**मेधा** (बुद्धि) यह प्राणियोंमें रहनेवाला पदार्थ है, परन्तु अंग नहीं है इससे लच् न होकर केवल मतुप्ही हुआ । यथा-**मेधा+मत्=मेधावान्**=जिसके धारणकी बुद्धि हो ।

(१२७३) लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। ५।२।१००॥

लोमन् (शरीरके बाल) आदि[1], पामन् (खुजली) आदि[2], और पिच्छ[3] (मांड दही) आदि, प्रातिपदिकोंसे परे श, न और इलच् अनुक्रमसे मतुप् (१२१९) प्रत्ययके अर्थमें हों।

लोमादिभ्यः शः। लोमन् आदिशब्दोंसे श प्रत्यय होता है।

यथा—**लोमन् + श +सु=लोमशः** }
अथवा—**लोमन्+ मत्[१२१९] +सु=लोमवान्** } जिसके शरीरमें बहुत बाल हों।

पामादिभ्यो नः। पामन् आदि शब्दोंसे न प्रत्यय होता है।

पामन्+न+सु=पामनः=जिसको खुजली हो।

(१२७४) अङ्गात्कल्याणे॥

प्रथमान्त अङ्ग शब्दसे परे कल्याणरूप अर्थमें न[१२७३] प्रत्यय हो। **कल्याणमंगमस्याः= अंग+न+आ** (१३४२)=**अंगना**=जिसका अच्छा अंग हो (स्त्री)।

(१२७५) लक्ष्म्या अच्च॥

प्रथमान्त लक्ष्मी शब्दसे परे कल्याणरूप अर्थमें न प्रत्यय हो और अकार अन्तादेश हो। **लक्ष्मी=लक्ष्म+न+सु=लक्ष्मणः** (१९७)=कल्याणयुक्त।

पिच्छादिभ्य इलच्। पिच्छ आदि शब्दोंसे परे विकल्प करके इलच् (१२७३) प्रत्यय मतुप् प्रत्ययके अर्थमें हो।

पिच्छ+इल+सु=पिच्छिलः }
पिच्छ+मत्+सु=पिच्छवान् } मांड दही आदि (चिकनी वस्तु)।

(१२७६) दन्त उन्नत उरच्। ५। २। १०६॥

उन्नत (ऊंचेरूप) अर्थमें प्रथमान्त दन्त शब्दसे परे उरच् प्रत्यय हो।

उन्नताः दन्ताः अस्य=दन्त+उर+सु=दन्तुरः=जिसके दांत ऊंचे हों।

(१२७७) केशाद्वोऽन्यतरस्याम्। ५। २। १०९॥

प्रथमान्त केश शब्द से परे व प्रत्यय विकल्प करके हो।

---

१ लोमन्, रोमन्, बभ्रु, अरि, गिरि, कर्क, कपि, मुनि, तरु।

२ पामन्, वामन्, वेमन्, हेमन्, श्लेष्मन्, कद्रू, वलि, सामन्, ऊष्मन्, कृमि, (अंगातकल्याणे) शाकी। पलाली। दद्रूणां ह्रस्वत्वं च। (विश्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः) लक्ष्म्या अच्च।

३ पिच्छा, उरस, ध्रुवक, ध्रुवक, (जटाघटाकाकाः क्षेपे) वर्ण, उदक, पङ्क, प्रज्ञा।

केश+व+सु=केशवः= } जिसके सुन्दर बाल हों।
केश+इन् (इनि)=(२६०) केशिन्+सु=केशी
केश+ठ (ठन्) 'ठस्येकः' केश्+इक+सु=केशिकः
केश+मत् (मतुप् १२६९) +सु=केशवान्

(१२७८) अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥

(१२७७) में लिखे शब्दके सिवाय और शब्दोंसे भी व प्रत्यय देखा जाता है। मणि+व+सु=मणिवः=जिसकी मणि सुन्दर हो (पातालका एक नाग)।

(१२७९) अर्णसो लोपश्च ॥

प्रथमान्त अर्णस् प्रातिपदिकसे परे व (१२७७) प्रत्यय हो और सकारका लोप हो। अर्ण+व+सु=अर्णवः=जिसमें जल हो ऐसा-(समुद्र)।

(१२८०) अत इनिठनौ[1] । ५ । २ । ११५ ॥

मतुप् (१२६९) के अर्थमें अकारान्त प्रातिपदिकसे परे इनि (इन्) अथवा ठन् (ठ) प्रत्यय हो। दण्डः अस्य अस्ति दण्ड=इन्+सु=दण्डी (१९७) } जिसके पास दण्ड है।
दण्ड+इक (११०२) (ठन्)+सु=दंडिकः

(१२८१) व्रीह्यादिभ्यश्च[2] । ५ । २ । ११६ ॥

व्रीहि आदि शब्दोंसे परे इनि अथवा ठन् प्रत्यय हो।

व्रीहि=व्रीह्+इन्+सु=व्रीही (१८७।२०० } जिसमें चावल हों।
व्रीहि=व्रीह् (२६०)+इक (११०२) (ठन्)+सु=व्रीहिकः

(१२८२) अस्मायामेधास्रजो विनिः । ५ । २ । १२१ ॥

जिसके अन्तमें अस् शब्द होय तिससे परे तथा माया, मेधा और स्रज् इन शब्दोंसे परे विनि (विन्) प्रत्यय हो।

यशस्+विन्+सु=यशस्वी १९७।२०० } जिसमें यश हों।
यशस्+मत्+सु=यशस्वान् (१२६९)
माया+विन्+सु=मायावी १९७।२०० =जिसमें माया हो।

---

१ प्रकृतेनान्यतरस्यांग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणमिनिठनोः समावेशार्थम्। प्रसङ्गसे (१२७२) से 'अन्यतरस्याम्' (वा) की अनुवृत्ति आती ही थी फिर (१२७७) में जो 'अन्यतरस्याम्' पढ़ा इससे मालूम होताहै कि पक्षमें केश शब्दसे इनि और ठन् प्रत्यय भी होते हैं।

२ व्रीहि, माया, शाला, शिखा, माला, मेखला, केका, अष्टका, पताका, चर्मन्, वर्मन्, दंष्ट्रा, संज्ञा वडवा, कुमारी, नौ, वीणा, बलाका, यवखद, नौ, कुमारी, (शीर्षान्नञः) नौकुमार्योरिकार्थौ द्विधा गणे पाठः।

मेधा+विन्+सु=मेधावी[१६७।२००] =जिसके बुद्धि हो।
स्रग्+विन्+सु=स्रग्वी[१६७।२००] =जिसके माला होय।

(१२८३) वाचो ग्मिनिः। ५। २। १२४॥

वाच् शब्दसे परे ग्मिनि (ग्मिन्) प्रत्यय हो। **वाच्+ग्मिन्+सु=वाग्मी** (३३३। १९७। २००) जिसमें बोलनेकी कुशलता हो।

(१२८४) अर्शआदिभ्योऽच्[१]। ५। २। १२७॥

अर्शस्—आदि प्रातिपदिकोंसे परे अच् (अ) प्रत्यय हो। **अर्शोऽस्य विद्यते=अर्शस्+अ+सु=अर्शसः**=जिसे बवासीरका रोग हो। **आकृतिगणोऽयम्**=यह आकृतिगण हैं।

अहंशुभमोर्युस्। ५। २। १४०॥

अहम् और शुभम् शब्दोंसे युस् हो। **अहम्+युस्=अहंयुः**=अहंकारवाला। **शुभम्+युस्=शुभंयुः**=शुभसंयुक्त।

॥ इति मत्वर्थीयाः॥

अथ प्राग्दिशीयाः।

(१२८५) प्राग्दिशो विभक्तिः। ५। ३। १॥

दिक्छब्देभ्य इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः।

इस सूत्रसे प्रारंभकर 'दिक्शब्देभ्यः०' (७। ३। २७) सूत्रसे पहलेतक जो प्रत्यय विधान करनेमें आवें उनमें विभक्तिपदका अधिकार है। अर्थात् वे प्रत्यय विभक्तिसंज्ञावाले हों।

अथ स्वार्थिकाः।

(१२८६) किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः। ५। ३। २॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते।

किम्, सर्वनाम और बहुशब्दोंसे परे विभक्ति (१२८५) संज्ञक प्रत्यय हों परन्तु द्वि आदि (युष्मद्, अस्मद्, भवतु) सर्वनामोंसे परे न हों। यह निषेध किम् शब्दमें नहीं लगता कारण कि सूत्रमें उसका ग्रहण सर्वनामसे अलगही किया हैं। यह अधिकार 'दिक्शब्देभ्यः' सूत्रके पूर्वपर्यन्त किया जाता है।

---

१ अर्शस् तुंद कलित घटा अभ्र कर्दम अम्ल लवण स्वांगाद्धीनात्। वर्णात्। उरस् चतुर जटा घाटा अर्घ आकृतिगणः।

(१२८७) पञ्चम्यास्तसिल् । ५ । ३ । ७ ॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात् ।

किम् आदि पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे तसिल् (तस्) प्रत्यय विभक्तिसंज्ञक विकल्प करके होय ।

(१२८८) कु तिहोः । ७ । २ । १०४ ॥

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः ।

जिस विभक्तिकी आदिमें तकार अथवा हकार हो वह जब परे रहे तब किम् शब्दको कु आदेश हो । **किम्+तस्** (१२८७)=**कु+तस्=कुतः** (१२४ । १११) **किम्+स्मात** (१७३)=**कस्मात्** (२९७) कहांसे ।

(१२८९) इदम इश् । ५ । ३ । ३ ॥

प्राग्दिशीये परे ।

प्राग्दिशीय (१२८९) प्रत्यय परे हुए सन्ते इदम् सर्वनामको इ (इश्) आदेश हो ।
इदम्+तस् (१२८७)=**इ+तस्=इतः** (१२४, १११)=इससे ।

(१२९०) एतदोऽन् । ५ । ३ । ५ ॥

प्राग्दिशीये ।

प्राग्दिशीय प्रत्यय (१२८९) परे हुए सन्ते एतद् सर्वनामको अन् आदेश हो । **अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः ।** (९८) से समस्त पदको आदेश हुआ ।

एतद्+तस्=अ+तस्=अतः (१२४ । १११)=इससे ।

अदस्=अद +तस्=अमु+तस्=अमुतः (१२४ । १११)=उससे ।

यत्=य +तस्=यतः =जिससे ।

तत्=त=तस्+ततः =तिससे ।

बहु+तस्=बहुतः =बहुतोंसे ।

द्व्यादेस्तु, द्वाभ्याम्-(१२८६) का प्रत्यय द्वि-आदि सर्वनामके परे हुए सन्ते नहीं होता । यथा-**द्वि+भ्याम्=द्वाभ्याम्**=दोसे ।

(१२९१) पर्यभिभ्यां च । ५ । ३ । ९ ॥

आभ्यां तसिल् स्यात् ।

परि तथा अभिसे परे तसिल् प्रत्यय हो ।

परि+तस्=परितः= चारों ओरसे ।

अभि+तस्=अभितः= दोनों ओरसे ।

(१२९२) सप्तम्यास्त्रल् । ५ । ३ । १० ॥

किम्–आदि (१२८६) सप्तम्यन्तसे परे विभक्तिसंज्ञक त्रल् (त्र) विकल्प करके हो ।

कस्मिन् इति=किम्+त्र=कु+त्र=कुत्र=किसमें, कहां ।

यस्मिन् इति=यद्+त्र=य+त्र=यत्र=जिसमें वा जहां ।

बहु+त्र=बहुत्र–बहुतोंमें ।

(१२९३) इदमो हः । ५ । ३ । ११ ॥

त्रलोऽपवादः ।

सप्तम्यन्त इदम् शब्दसे परे त्रल् (१२९२) प्रत्ययको बाध कर विभक्तिसंज्ञक 'ह' प्रत्यय विकल्प करके हो ।

इदम्+ह=इ (१२८९)**+ह=इह**=इहां ।

(१२९४) किमोऽत् । ५ । ३ । १२ ॥

वाग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात्, पक्षे त्रल् ।

सप्तम्यन्त किम्–शब्दसे परे विभक्तिसंज्ञक अत् (अ) प्रत्यय विकल्प करके हो । पक्षमें त्रल् हो । **किम्+अ–**

(१२९५) क्वाति । ७ । २ । १०५ ॥

किमः क्वादेशः स्यादति ।

अत् प्रत्यय परे हुए सन्ते किम्–शब्दको क्व आदेश हो । **क्व+अ=क्व** (२६०) (अथवा)–**कुत्र** (१२९२ । १२८८)=कहां ।

क्रि०

(१२९६) इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते । ५ । ३ । १४ ॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते ।

पञ्चम्यन्त (१२८७) तथा सप्तम्यन्तसे विना जो अन्य विभक्त्यन्त, तिनसे परेभी तसिल् आदि प्रत्यय दीखते हैं। **दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव ।** सूत्रमें जो 'दृश्यन्ते' पद है इससे विदित होता है कि भवत् आदि शब्दोंके योगमें ही प्रत्यय होते हैं ।

प्र० स भवान्=तद्+भवान्=तअ+तस्+भवान्=ततो भवान्–सो आप ।

" स भवान्=तद्+भवान्=तअ+त्र+भवान्=तत्रभवान्–पूज्य आप ।

द्वि० तं भवन्तं=तद्+भवन्तम्=तअ+तस्+भवन्तम्=ततो भवन्तम्=सो आपको।

द्वि० तं भवन्तम् =तद्+भवन्तम्=तअ+त्र+भवन्तम्=तत्र भवन्तम्=पूज्य आपको ।

इसी प्रकार—**स दीर्घायुः । ततो दीर्घायुः** (अथवा) **तत्र दीर्घायुः**=बहुत दिन जो जिये । इसी प्रकार **स देवानां प्रियः ततो देवानां प्रियः** (अथवा) **तत्र देवानां प्रियः**=देवताओंका जो प्रिय हो (मूर्ख) । इसी प्रकार—**आयुष्+मत्**=(१२६९) **आयुष्मान्**=जो बहुत दिन जिये । इनमेंभी तसिल् आदि जानना ।

(१२९७) सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा । ५ । ३ । १५ ॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ।

सर्व (सब), एक (१), अन्य (भिन्न), किम् (कौन), यद् (जो), और तद् (सो) इन सप्तम्यन्त प्रातिपदिकोंसे परे कालरूप अर्थमें दा प्रत्यय हो । यथा—**सर्वस्मिन् काले सर्व+दा**–

(१२९८) सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि । ५ । ३ । ६ ॥

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् ।

जो प्राग्दिशीय (१२८९) प्रत्ययके आदिमें द होय और सर्व शब्दसे परे होय तो सर्व शब्दको स आदेश विकल्प करके हो ।

सर्वस्मिन् काले=सर्व+दा=स+दा=सदा (अथवा) **सर्वदा**=सब कालमें, नित्य ।
एकस्मिन् काले=एक+दा=एकदा=एक कालमें ।

अन्यस्मिन्	"	**अन्य+दा=अन्यदा**=	और कालमें ।
कस्मिन्	"	**किम्+दा=क**[२६७]**+दा=कदा**=	कब ?
यस्मिन्	"	**यत्+दा=य**[२९३,३००]**+दा=यदा**=	जब ।
तस्मिन्	"	**तत्+दा=त**[२९३,३००]**+दा=तदा**=	तब ।

काले किम् ? कालरूप अर्थमें दा प्रत्यय हो ऐसा क्यों कहा ? (उत्तर) कारण यह है कि कालभिन्न अर्थमें दा प्रत्यय न हो । यथा—**सर्वस्मिन् देशे=सर्व+त्र** (१२९२)= **सर्वत्र देशे**=सब देशमें ।

(१२९९) इदमो हिंल् । ५ । ३ । १६ ॥

सप्तम्यन्तात् । काले इत्येव ।

सप्तम्यन्त इदम् शब्दसे परे र्हिल् प्रत्यय हो । **अस्मिन् काले=इदम्+र्हिल्**–

(१३००) एतेतौ रथोः । ५ । ३ । ४ ॥

इदम एत इत एतौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे ।

रेफ अथवा थकार जिसकी आदिमें हों ऐसे कालरूप अर्थमें किये हुए प्राग्दिशीय (१२८९) प्रत्यय परे हुए संते सप्तम्यन्त इदम् शब्दको एत अथवा, इत आदेश हों ।

अस्मिन् काले=इदम्+र्हि (र्हिल्)=एत+र्हि=एतर्हि=इसकालमें । **काले किम् ?** कालरूप अर्थ कहनेका कारण यह कि कालरूप अर्थ न हो तो यह विधि न लगे। यथा-**अस्मिन् देशे=इह** (१२९३)=इस देशमें ।

(१३०१) अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ।५।३।२१॥

अनद्यतने कालविषे सप्तम्यन्तसे परे र्हिल् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

यथा-**कस्मिन् काले=किम्+र्हि=क[२९७]=कर्हि**
कस्मिन् काले=किम्+दा=क[२९७]=कदा } कब.
यस्मिन् काले=यद्+र्हि=य[२१३]=[३००]यर्हि
यस्मिन् काले=यद्+दा=य=यदा } जब.
तस्मिन् काले=तद्+र्हि=त[२१३]=[३००]तर्हि
तस्मिन् काले=तद्+दा=त =तदा } तब.

(१३०२) एतदः ।५।३।५॥

एत इत एतौ स्तो रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये ।

रेफ अथवा थकार जिसकी आदिमें हों ऐसे कालार्थक प्राग्दिशीय (१२८९) प्रत्यय परे हुए सन्ते एतद् शब्दको एत इत आदेश हों । **एतस्मिन् काले, एतद्+र्हि=एत+र्हि=एतर्हि** इस कालमें ।

(१३०३) प्रकारवचने थाल् ।५।३।२३॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्य स्थाल् स्यात्स्वार्थे।

तृतीयान्त किम् (१२८१) आदिसे प्रकाररूप अर्थमें थाल् (था) प्रत्यय हो । **तेन प्रकारेण=तद्+था=त अ** (२१३)**+था=तथा** (३००)=उस प्रकारसे ।

(१३०४) इदमस्थमुः ।५।३।२४॥

थालोऽपवादः ।

इदम् प्रातिपदिकसे परे प्रकार अर्थमें थाल् (१३०३) प्रत्ययका अपवाद थमु (थम्) प्रत्यय हो । **अनेन प्रकारेण इदम्+थम्=इत** (१३००)**+थम्=इत्थम्**= इस प्रकार ।

(१३०५) एतदोऽपि वाच्यः ॥

इस स्थानमें यह कहना चाहिये कि तृतीयान्त एतद्प्रातिपदिकसे परेभी प्रकार अर्थमें थमु (१३०४) प्रत्यय हो । **एतेन प्रकारेण एतद्+थम्=इत** (१३०२)**+थम्= इत्थम्**=इस प्रकार ।

(१३०६) किमश्च । ५ । ३ । २५ ॥

प्रकाररूप अर्थमें तृतीयान्त किम्से परे थमु (१३०४) (थम्) प्रत्यय हो ।

केन प्रकारेण=किम्+थम्=क (२९७)+थमु=कथम्=किस प्रकार ।

(१३०७) अतिशायने तमबिष्ठनौ । ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः ।

अतिशयविशिष्टरूप अर्थमें वर्तमान जो प्रथमान्त प्रातिपदिक तिससे परे स्वार्थमें तमप्(तम) तथा इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय हो । **अयम् एषाम् अतिशयेन आढ्यः=आढ्य+तम+सु=आढ्यतमः**=सबमें अतिशय धनी । **अयम् एषाम् अतिशयेन लघुः=लघु+तम+सु=लघुतमः । लघु+इष्ठ+सु=लघिष्ठः** (१२४४)=सबमें लघु ।

(१३०८) तिङश्च । ५ । ३ । ५६ ॥

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ।

अतिशय अर्थ जिसका प्रकाश करना होय तब तिङन्तसे परे तमप् (१३०७) प्रत्यय हो ।

(१३०९) तरप्तमपौ घः । १ । १ । २२ ॥

एतौ घसंज्ञौ स्तः ।

तरप् तथा तमप् प्रत्यय घसंज्ञक हों ।

(१३१०) किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे । ५ । ४ । ११ ॥

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे ।

'किम्, एकारान्त शब्द, तिङन्त तथा अव्यय इनसे परे घ (१३०९) संज्ञक प्रत्यय हो तो तदन्त (घ प्रत्ययान्त) शब्दोंसे परे आमु (आम्) प्रत्यय हो अतिशय अर्थमें, परन्तु द्रव्यके गुणका अतिशयपना बताना होय तो उसमें आमु (आम्) प्रत्यय न हो ।

किम्+तम[१३०७]+आम्=किन्तमाम्= (९४, ९१)=कैसा अतिशय करके ।

प्राह्णे+तम[१३०७]+आम्=प्राह्णेतमाम् =दिवसके पूर्वभागका अतिशयपन ।

पचति+तम[१३०७]+आम्=पचतितमाम् =वह अतिशय करके राँधता है ।

उच्चैः+तम+आम्=उच्चैस्तमाम्–अतिशय ऊंचे स्वरसे बोलता है ।

द्रव्यप्रकर्षे तु–द्रव्यके अतिशय बतानेमें **उच्चैः+तम+सु=उच्चैस्तमः (तरुः)** अत्यन्त ऊँचा (पेड) यहां आमु न हुआ क्योंकि द्रव्य (वृक्ष) का अतिशय बताना है ।

(१३११) द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ । ५ । ३ । ५७ ॥

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः ।

जब द्विवचन विभजनीय उपपद होय उन दोमेंसे एक पृथक् किया जाय, और अतिशय अर्थ बताना होय तो सुबन्त तथा तिङन्तसे परे तरप् तथा ईयसुन् (तर, ईयस्) प्रत्यय होते हैं **'पूर्वयोरपवादः'** यह (१३०७ । १३०८) का अपवाद है ।

अयम् अनयोः अतिशयेन लघुः=लघु+तर+सु=लघुतरः
,, ,, ,, लघु+ईयस्+सु=लघीयान् } इन दोमें यह अतिशय हलका है ।

उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटवः=पटु+तर+जस्=पटुतराः
,, ,, =पटु+ईयस्+जस्=पटीयांसः } उत्तरदेशवाले पूर्व देशवालोंसे अधिक चतुरहैं।

(१३१२) प्रशस्यस्य श्रः । ५ । ३ । ६० ॥

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः परतः ।

इष्ठन् (१३०७) अथवा ईयसुन् (१३११) प्रत्यय परे हुए सन्ते प्रशस्य (स्तुतिपात्र उत्तम) शब्दको श्र आदेश हो ।

प्रशस्य+इष्ठन्=श्र+इष्ठ
प्रशस्य+ईयसु=श्र+ईयसु } २६० सूत्रसे अ (टि) का लोप प्राप्त हुआ परन्तु—

(१३१३) प्रकृत्यैकाच् । ६ । ४ । १६३ ॥

इष्ठादावेकाच् प्रकृत्या स्यात् ।

इष्ठन् अथवा ईयसुन् प्रत्यय परे हुए सन्ते जिसमें एक अच् हो वह ज्यों का त्यों रहे ।

श्र+इष्ठः=श्रेष्ठः (३९) **श्र+ईयसु=श्रेयान्** (३९) सर्वोत्तम ।

(१३१४) ज्य च । ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः इष्ठेयसोः ।

जब इष्ठन् तथा ईयसुन् प्रत्यय परे हो तब प्रशस्य (१३१२) शब्दको ज्य आदेश हो ।

प्रशस्य+इष्ठ=ज्य+इष्ठ=ज्येष्ठः (३९) सर्वोत्तम--बडा ।

प्रशस्य+ईयसु=ज्य+ईयसु—

(१३१५) ज्यादादीयसः । ६ । ४ । १६० ॥

आदेः परस्य ।

ज्यसे परे ईयसुन् प्रत्यय को आ आदेश हो । **ज्य+आ** (८८) **यसु=ज्यायस्=ज्यायान्** (९९ । ३१६ । ३७१ । १९९ । २६)=ज्येष्ठ, सर्वोत्तम ।

(१३१६) बहोर्लोपो भू च बहोः । ६ । ४ । १५८ ॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः ।

इमनिच् (इमन् १२४२) और ईयस्[१३११] प्रत्यय बहु शब्द से परे आवें तो उनका लोप हो (८८) और बहुको भू आदेश हो ।

बहु+इमन्=भू+मन्=भूमा[१९८।२००।१९९] }
बहु+ईयस्=भू=यस्+भूयान् } बहुत.

(१३१७) इष्ठस्य यिट् च । ६ । ४ । १५९ ॥

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद्यिडागमश्च ।

बहु शब्दसे परे जो इष्ठन् प्रत्यय (१३०७) आवे तो उसकी आदिके वर्णका लोप हो और उसे यिट् (यि) का आगम हो । **बहु+इष्ठ=भू (१३१६)+यिष्ठ (१०३)= भूयिष्ठ+सु=भूयिष्ठः**=अतिशय ।

(१३१८) विन्मतोर्लुक् । ५ । ३ । ६५ ॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः ।

इष्ठन् (१३०७) अथवा ईयसुन् (१३११) प्रत्यय परे हुए सन्ते विन् (१२८२) तथा मतु (१२६९) का लुक् हो । **अतिशयेन स्रग्वी=स्रज्+इष्ठ=स्रजिष्ठ+सु= स्रजिष्ठः** । इसी प्रकार **स्रज्+विन्+ईयस्=स्रजीयान्**=जो बहुत माला पहरता है । **अतिशयेन. त्वग्वान् त्वच्+मत्+इष्ठ=त्वच्+इष्ठ=त्वचिष्ठः** (अथवा) **त्वच्+ मत्+ईयस्=त्वचीयान्**=जिसमें अतिशय चमडा हो ।

(१३१९) ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः । ५ । ३ । ६७ ॥

किंचित् (ओछी) असमाप्ति बतानेवाले अर्थमें विद्यमान प्रातिपदिकसे परे कल्पप् (कल्प) देश्य और देशीयर् (देशीय) प्रत्यय हों ।

ईषद् ऊनः विद्वान्=विद्वत्+कल्प=विद्वत्कल्प+सु=विद्वत्कल्पः=जिसके विद्वान् होनेमें थोडी कसर है ।

इसीप्रकार **विद्वत्+देश्य=विद्वद्देश्य+सु=विद्वद्देश्यः** } जिसके विद्वान् होनेमें
विद्वत्+देशीय=विद्वद्देशीय+सु=विद्वद्देशीयः } थोडी कसर है ।

पचति+कल्प=पचतिकल्प+अम्=पचतिकल्पम्=जोकरनेमें थोडी कसर रखताहै ।

(१३२०) विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु । ५ । ३ । ६८ ॥

इषदसमाप्तिविशिष्टेर्थे सुबन्ताद्बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः ।

जो सुबन्त कोई असमाप्तिविशिष्ट अर्थमें विद्यमान हो उससे पूर्व बहुच् (बहु) प्रत्यय विकल्प करके हो ।

ईषत् ऊनः पटुः=बहु+पटु=बहुपटु+सु=बहुपटुः } कुशल होनेमें जिसमें
(अथवा) पटु+कल्प=पटुकल्प+सु=पटुकल्पः } थोडीही कसर है.

सुपः किम् ? सुप् लिखनेका कारण यह है कि तिङन्तसे न हो। यथा—
पचति+कल्प[१३१९]=पचतिकल्प+अम्=पचतिकल्पम्=रसोई करनेमें जो कुछ कची रखता है।

(१३२१) प्रागिवात्कः । ५ । ३ । ७० ॥

इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक्काधिकारः।

इस सूत्रसे आरंभ कर (१३२७) सूत्रतक कप्रत्ययका अधिकार है।

(१३२२) अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः । ५ । ३ । ७१ ॥

कापवादः। तिङश्चेत्यनुवर्तते। "ओकारसकारभकारादौ, सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य"।

प्रागिवीय[१३२१] प्रत्ययके अर्थमें अव्यय तथा सर्वनामकी टि के पूर्व अकच् (अक्) प्रत्यय हो। यह सूत्र क (१३२१) का अपवाद है। तिङ्की भी अनुवृत्ति होती है। "ओकार सकार भकारादि सुप् परे हुए सन्ते सर्वनामकी टिसे पहले अकच् अन्यत्र सुबन्त की टिसे पहले हो।

(१३२३) अज्ञाते । ५ । ३ । ७३ ॥

जो प्रातिपदिक अज्ञातरूप अर्थमें विद्यमान हो। उससे परे क (१३२१) प्रत्यय हो।
(कस्य अयम् अश्वः इति) अज्ञातः अश्वः=अश्व+क=अश्वक+सु=अश्वकः=यह किसका घोडा है इसमें घोडेका स्वामी अज्ञात है।

उच्चैः=उच्च् अक् ऐः=उच्चकैः=क्या वह ऊंचा है।
नीचैः=नीच् अक् ऐः=नीचकैः=क्या वह नीचा है।
सर्वैः=सर्व् अक् ऐः=सर्वकैः=नहीं विदित कि सब कितने हैं।
युष्मकाभिः युष्म्+अक्+अद्+भिस्=युष्मकाभिः=अपरिचित तुम सर्वोंने।
युवकयोः युष्म्+अक्+अद्+ओस्=युवकयोः=अपरिचित तुम दोनोंका।
त्वयका त्वय्+अक्+आ=त्वयका=अपरिचित तुमने।

(१३२४) कुत्सिते । ५ । ३ । ७४ ॥

कुत्सित (बुरा) अर्थविषे विद्यमान प्रातिपदिकसे परे क (१३२१) प्रत्यय हो।
कुत्सितः अश्वः=अश्व+क=अश्वक+सु=अश्वकः=बुरा घोडा।

(१३२५) किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् । ५ । ३ । ९२ ॥

दोमेंसे जब एकका निश्चय करना होय तब किम् यद् और तद् शब्दोंसे परे स्वार्थमें डतरच् (अतर) प्रत्यय हो ।

अनयोः कतरः वैष्णवः=किम्+अतर=क्[२६७]+अतर=कतर+सु=कतरः= इन दोनोंमें कौन वैष्णव है ।

यद्+अतर=य्+अतर=यतर+सु=यतरः=दोमें जो ।

तद्+अतर=त्[२६७]+अतर=ततर+सु=ततरः=दोमें वह ।

(१३२६) वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् । ५ । ३ । ९३ ॥

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात् ।

जातिके प्रश्नमें बहुतमेंसे जब एकका निश्चय करना होय तब किम्[१३२५] आदिसे परे डतमच् (अतम) प्रत्यय विकल्प करके हो । **जातिपरिप्रश्न' इति प्रत्याख्यातमाकरे ।** जातिके प्रश्नमें हो, भाष्यकारने इस बातका खण्डन किया है ।

कतमः भवतां कठः=किम्+अतम=क्[२६७]+अतम+सु=कतमः=आप लोगोंमें कठशाखाका पढ़नेवाला कौन है ।

यद्+अतम=य्[२६७]+अतम=यतम+सु=यतमः=सबमें जो कठशाखाका पढ़नेवाला है ।

तद्+अतम=त्[२६७]+अतम=ततम+सु=ततमः=सबमें वह जो कठशाखाका पढ़नेवाला है ।

वाग्रहणमकजर्थम् । सूत्रमें वाग्रहणसे जाना जाता है कि अकच्[१३२२]भी होता है ।

यत्+अक=य्[२१३,३००]+अक=यक+सु=यकः=सबमें जो कठशाखा पढ़नेवाला है ।

तद्+अक=स्[३३८]+अक=सक+सु=सकः=सबमें वह जो कठशाखाका पढ़नेवाला है ।

॥ इति प्रागिवीयाः ॥

(१३२७) इवे प्रतिकृतौ । ५ । ३ । ९६ ॥

कन्स्यात् ।

प्रतिकृति (प्रतिनिधि) रूप अर्थमें विद्यमान प्रातिपदिकसे परे स्वार्थमें कन् (क) प्रत्यय हो ।

अश्व इव प्रतिकृतिः=अश्व+क=अश्वक+सु=अश्वकः=लकड़ी आदिकी घोड़ेकी प्रतिमा * ।

---

* इस सूत्रमें प्रतिकृति (मूर्ति) का वर्णन है इसके कुछही आगे अष्टाध्यायीका सूत्र 'जीविकार्थे चापण्ये ५ । ३ । ९९' है अर्थ यह है कि जो प्रतिकृति जीविकाके निमित्त हो परन्तु पण्यव्यवहारमें न हो वहां कन् प्रत्ययका लोप होजाता है. यथा-वासुदेवः शिवः स्कन्दः आदि यह उदाहरण-

(१३२८) सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् ॥

स्वार्थमें सब प्रातिपदिकों (१३९ । १३६) से परे कन् प्रत्यय हो।

अश्व+क=अश्वक+सु=अश्वकः=घोड़ा।

(१३२९) तत्प्रकृतवचने मयट् । ५ । ४ । २१ ॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् ।

संपूर्णतासे प्रारम्भ कीहुई वस्तुके कहनेमें समर्थ प्रथमान्तसे परे मयट् प्रत्यय हो । दूसरा अर्थ यह है कि बाहुल्य करके प्रारम्भ कीहुई जो वस्तु उसका कथन जिसकेविषे हो उस अर्थमें विद्यमान प्रातिपदिकसे परे मयट् (मय) प्रत्यय हो । बाहुल्य करके जो आरम्भ कियाजाय उसे 'प्रकृत' कहते हैं और उसके वर्णन करनेको उसका 'वचन', वचन शब्द ल्युट् प्रत्यय लगाकर सिद्ध हुआ है उससे भाव (९२९) (१२४०) और अधिकरणका ज्ञान होता है इससे उसके दो अर्थ होते हैं ।

आद्ये-

पहले भावकी अवस्थामें-

प्रकृतम् अन्नम्=अन्न+मय=अन्नमय+अम्=अन्नमयम्=अन्नका अधिकार.

प्रकृतम् अपूपम्=अपूप+मय=अपूपमय+अम्=अपूपमयम्=भरपूरे पुए.

द्वितीये तु-

प्राचुर्येण अन्नं यस्मिन् सः=अन्न+मय=अन्नमय+सु=अन्नमयः=वह यज्ञ जिसमें अन्नका अधिकार हो । **अपूपमयं पर्व**=वह पर्व जिसमें पुएका अधिकार हो.

(१३३०) प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । ३८ ॥

अण् स्यात् ।

प्रज्ञआदि प्रातिपतिकोंसे परे स्वार्थमें अण् (अ) प्रत्यय हो ।

प्रज्ञ एव=प्रज्ञ+अ=प्राज्ञ[१०७०।२६०] **+सु=प्राज्ञः**=पंडित । **प्राज्ञी**=पंडिता स्त्री ।

देवता एव=देवता+अ=दैवत[१०७०।२६०] **+सु=दैवतः**=देवता ।

बन्धुरेव=बन्धु+अ=बान्धवः=जो स्नेह बांधे (भाई आदि) ।

–भाष्यकारने दिये हैं, यह वासुदेवादिकी मूर्ति जीविकाके निमित है पण्य व्यवहारमें नहीं है इससे प्रतीति है कि देवताओंकी मूर्ति पूजनके निमित्त है जैसा कि वेदादिशास्त्रमें प्रतिपादन किया है दयानन्दसरस्वतीने इस सूत्रका अन्यथा व्याख्यान किया है सो त्याज्य है ।

---

१ प्रज्ञ, वणिज्, उशिज्, उष्णिज्, प्रत्यक्ष, विद्वस्, विदन्, षोडन्, विद्या, मनस्, श्रोत्रशरीरे, जुह्वत्, कृष्णमृगे, चिकीर्षत्, चोर, शत्रु, चक्षुस्, वसु, एनस्, योध, क्रुञ्च, सत्वत्, दशार्ह, महत्, व्याकृत्, असुर, रक्षस्, वयस्, अशनि, कर्षापण, देवता, पिशाच, बन्धु ।

(१३३१) बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । ४२ ॥

बहु अथवा थोड़े अर्थमें विद्यमान कारक (९४१) से परे शस् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

बहूनि ददाति=बहु+शस्+बहुशः=बहुत देता है ।

अल्पं ददाति=अल्प+शस्=अल्पशः=थोड़ा देता है इत्यादि ।

(१३३२) आद्यादिभ्यस्तेरुपसंख्यानम् ॥

आदि इत्यादि प्रातिपदिकोंसे परेभी तसिल् (१२८७) प्रत्यय हो ।

आदौ=आदि+तस्+सु=आदितः=आदिमें । **मध्यतः**=बीचमें ।

अन्ततः=अन्तमें । **पृष्ठतः**=पीछे । **पार्श्वतः**=दायें बायें । **आकृतिगणोऽयम्**=यह आद्यादि आकृतिगण है तिससे--

स्वरतः=स्वर करके । **वर्णतः**=वर्ण करके । यह सिद्ध होते हैं ।

(१३३३) कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः । ५ । ४ । ५० ॥

अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् । विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे ।

जो प्रकृति प्रथम विकारवाली न होकर पीछे विकारको प्राप्त हुई हो उसे विकारार्थमें वर्तमान प्रातिपदिकके योगमें कृ, भू और अस् धातु हों तो उससे परे स्वार्थमें विकल्प करके च्वि प्रत्यय हो । इस सूत्रमें '**अभूततद्भावे**' ऐसा कहना चाहिये । जो सत्य हो उसे भूत और असत्यको अभूत इस प्रसंगमें कहा है अभूतका सत्यभाव अभूततद्भाव कहाता है । अभूततद्भाव गम्यमान हो: तो कृ भू अस् इनमेंसे किसी एकके योगमें सम्-पूर्वक पद् धातुके कर्तामें प्रातिपदिकसे परे च्वि प्रत्यय विकल्प करके स्वार्थमें हो ।

अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति । जो पहले काला नहीं था वह अब काला हुआ । **कृष्ण+०-**

(१३३४) अस्य च्वौ । ७ । ४ । ३२ ॥

अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ । वेर्लोपे च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम् ।

च्वि (१३३३) प्रत्यय परे हुए सन्ते अवर्णको ई आदेश हो । च्वि अन्त होनेसे अव्यय हुआ ।

कृष्ण् अ+०=कृष्ण् ई+०=कृष्णीकरोति=जो पहले काला नहीं था उसे काला करता है ।

इसीप्रकार-**ब्रह्मीभवति (ब्रह्मन् भू)**=वह ब्राह्मण होता है ।

गङ्गीस्यात (गंगा अस्)=वह नद कदाचित् गंगा हो जाय ।

(१३३५) अव्ययस्य च्वावीत्त्वं नेति वाच्यम् ॥

इस स्थानमें यह कहना चाहिये कि च्वि प्रत्यय परे हुए सन्ते अव्ययको ईकार (१३३४) न हो।

दोषाभूतमहः (दोषा+भू)=दिन जो सो रात होगया।

दिवाभूता रात्रिः (दिवा+भू)=रात जो सो दिन होगयी।

(१३३६) विभाषा साति कार्त्स्न्ये । ५ । ४ । ५२ ॥

च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये।

जो साकल्य (सम्पूर्ण) का बोध होता हो और च्वि प्रत्ययकी प्राप्ति रहे तो साति (सात्) प्रत्यय विकल्प करके हो।

(१३३७) सात्पदाद्योः । ८ । ३ । १११ ॥

सस्य षत्वं न स्यात्।

(१६९) मेंके कहे अनुसार साति (१३३६) प्रत्यय के स को तथा पदकी आदिके सकारको षकार न हो।

यथा=**दधि सिञ्चति** (वह दही छिडकता है) इसमें सि अन्तर्गत स् पदकी आदिमें है तो उसको ष् न हुआ। **कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यते=अग्नि+सात्** (१३३६) **अग्निसात् भवति=अग्निसाद् भवति** (८२)=सब शस्त्र अग्नि होजाता है।

(१३३८) च्वौ च । ७ । ४ । २६ ॥

दीर्घः स्यात्।

जब च्वि प्रत्यय (१३३३) परे हो तब अच् को दीर्घ हो।

अग्नि+०=अग्नीभवति=वह सब अग्नि होजाता है।

(१३३९) अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् । ५ । ४ । ५७ ॥

द्व्यजवरं न्यूनं न तु ततो न्यूनम्। अनेकाजिति यावत्। तादृशमर्धं यस्य तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे।

मनुष्य जो नहीं बोलते अर्थात् मनुष्यकी वाणीसे भिन्न अव्यक्त शब्दके अनुकरण (उसके सरीका उच्चारण करना) अर्थमें अनेक अच् होय और जिसके आधेमें दो अच् से कमती न हों तो उस अनुकरण शब्द से कृ भू अथवा अस् धातुके योगमें डाच् (आ) प्रत्यय विकल्प करके हो परन्तु इति शब्द परे हुए सन्ते डाच् प्रत्यय न हो।

पटत् करोति (पट पट करता है) **पटत्+आ**–

(१३४०) डाचि बहुलं द्वे भवतः ॥

डाच् (१३३९) प्रत्यय परे हुए सन्ते प्रातिपादिकको द्वित्व बहुल करके हो ।

पटत्+पटत्+आ+करोति-

(१३४१) नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् ॥

डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात् ।

डाच् प्रत्यय जिससे परे हो ऐसा आम्रेडित परे हुए सन्ते पूर्व परके स्थानमें पररूप एकादेश हो । **इति तकारपकारयोः पकारः ।** इस दशामें पटत् के तकार और दूसरे पटत्-के पकारको पररूप एक पकार हुआ । **पट+पट (२१७)+आ=पटपटाकरोति**-पटपट शब्द करता है । **अव्यक्तानुकरणात् किम् ?** मनुष्यकी वाणीसे भिन्न शब्दके अनुकरण से परे इसका कारण क्या ? तो **दृषत्+करोति=दृषत्करोति**=कोई दृषत् (पत्थर) ऐसा शब्द करता है । **द्व्यजवरार्धात् किम् ?** आधेमें दो अच्से कम न हो यह क्यों कहा ? **'श्रत् करोति'** वह श्रत् (सर्र) शब्द करता है यहां आधेमें दो अच् नहीं एक है इससे डाच् प्रत्यय न हुई । **अवरेति किम् ?** दो अच्से कम न हो यह क्यों कहा ? **खरटखरटा करोति** (वह खरटत् शब्द करता है) यहां दो से अधिक अच् होनेसे भी पूर्वोक्त विधि लगै यह जनाया । **अनितौ किम् ?** इति परे हुए सन्ते डाच् न हो यह क्यों कहा ? **पटत्+इति+करोति=पटिति (१३२९) करोति**=वह पटत् शब्द करता है इस प्रयोगमें **'अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ'** इस सूत्रसे अत् भागको पररूप हुआ है ।

॥ इति तद्धितप्रत्ययाः समाप्ताः ॥

अथ स्त्रीप्रत्ययाः ।

स्त्रियाम् । ४ । १ । ३ ॥

अधिकारोयं समर्थानामिति यावत् ।

समर्थसूत्रपर्यन्त स्त्रीप्रत्ययका अधिकार है ।

(१३४२) अजाद्यतष्टाप् । ४ । १ । ४ ॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् ।

अजादिगणके शब्दोंको तथा अकारान्त शब्दोंको स्त्रीत्व (स्त्रीलिङ्गत्व) प्रकाश करना होय तो उनसे परे टाप् (आ) प्रत्यय हो ।

१ अजा एडका कोकिला चटका मूषिका अश्वा बाला होडा पाकान्तः वत्सा मंदा विलाता पूर्वापहणा अपरापहणा कुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा । आकृतिगणः ।

अजादिगणके सब शब्द अकारान्त हैं उनसे परे टाप् होता है इतने ही कहनेसे पूर्ण हो जाता ऐसा होनेपरभी उसको पृथक् करनेकी आवश्यकता इस कारण पडी है कि (१३७४ । १३६९ । १३९०) के अनुसार ङीष् इत्यादि दूसरे प्रत्यय जो लगते हैं सो नहीं होते, यह प्रगट करनेको नीचेके शब्दोंमें (१३७४) को बाधकर टाप् होता है ।

अज+आ=अजा–वकरी । एडक+आ=एडका–मेढी ।

अश्व+आ=अश्वा–घोडी । चटक+आ=चटका–गौरैया ।

मूषिक[१३५९]+आ=मूषिका–चुही । बाल+आ=बाला–कन्या ।

वत्स+आ=वत्सा–बछिया । होड+आ=होडा–छोकरी ।

मन्द[१३७०]+आ=मन्दा–कन्या । विलात+आ=विलाता–कन्या ।

जो अकारान्त शब्द अजादिगणमें नहीं हैं उनका उदाहरण—

गङ्ग+आ=गङ्गा–गङ्गा नदी । सर्व+आ=सर्वा–सब स्त्री। मेधा (बुद्धि) इत्यादि ।

(१३४३) उगितश्च । ४ । १ । ६ ॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप् ।

जिस प्रातिपदिकमें उक् (उ, ऋ. ऌ) इत् हों और स्त्रीलिङ्ग करना हो तो उससे परे ङीप् हो ।

भवत्[८३६]+ई=भवन्+त्[३१८]+ई=भवन्ती–होती हुई स्त्री ।

पचत्+ई=पचन्त+ई=पचन्ती–रांधती हुई स्त्री ।

(१३४४) टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्-क्करपः । ४ । १ । १५ ॥

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप्स्यात् ।

टित्, ढ प्रत्यय[१०२४], अण्[१०७८], अञ्[१०७६], द्वयसच्[१२५४], दघ्नच्[१२५४], मात्रच्[१२५४], तयप्[१२५६], ठक्[१२०३], ठञ्[१२३१], कञ्[३७६], तथा क्वरप् । ३ । २ । १६३ ।

यह टित् आदि प्रत्यय हैं । उपसर्जन (९७०) के विना टित् आदि प्रत्ययके अवयव रूप अकार जिसके अन्तमें होय ऐसे प्रातिपदिकको स्त्रीत्व करना होय तो उससे परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो ।

कुरुचर +ई=कुरुचरी–स्त्री जो कुरुको जाती है ।

नद[८३८] (ट्) +ई=नदी– नदी ।

देव[८३८] (ट्) +ई+देवी– देवी ।

सौपर्णेय[१०८४।२६०] +ई=सौपर्णेयी-सुपर्णके वंशकी कन्या ।
ऐन्द्र[११ ।२६०] +ई=ऐन्द्री -जिस ऋक्‌का इन्द्र देवता ।
औत्स[१२०६।२६०] +ई=औत्सी -उत्सवंशकी कन्या ।
ऊरुद्वयस[१२५४।२६०] +ई=ऊरुद्वयसी
ऊरुदघ्न[१२५४।२६०] +ई=ऊरुदघ्नी } जिसका प्रमाण जांघभर है ।
ऊरुमात्र[१२५४।२६०] +ई=ऊरुमात्री
पञ्चतय[१२५६।२६०] +ई=पञ्चतयी-जिसके पांच अवयव हों ।
आक्षिक[१२३०।२६०] +ई=आक्षिकी-पासा खेलनेवाली ।
प्रास्थिक[१२३१।२६०] +ई=प्रास्थिकी-प्रस्थके नांपसे नांपी गई ।
लावणिक[१२३४।२६०] +ई=लावणिकी-लवण बेचनेवाली ।
यादृश[३०६।२६०] +ई=यादृशी-जैसी ।
इत्वर +ई=इत्वरी-जानेवाली ।

(१३४५) नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् ॥

नञ्, स्नञ् (१०७७), ईकक् (१०७३). और ख्युन् (यु) । ३ । २ । ५६ । यह प्रत्यय और तरुण, तलुन (युवा) यह प्रातिपदिक इनकीभी गणना (१३४४) में करनी चाहिये स्त्रीत्व करनेमें इनसे ङीप् होय । स्त्री+यु=स्त्री+अन=

स्त्रैण[१०७७।२६०] +ई=स्त्रैणी-स्त्री सम्बन्धिनी ।
पौंस्न+ई=पौंस्नी-पुरुषसम्बन्धिनी ।
शाक्ती[१०७३।२६०] +ई=शाक्तीकी-जो स्त्री बरछी बांधे ।
आढ्यंकरण[९४।२६]+ई=आढ्यंकरणी-जो स्त्री दरिद्रको धनी करे ।

इस उदाहरणमें अष्टाध्यायीके "आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्" (३ । २ । ५६) के सूत्रसे ख्युन् हुआ है और (८९०) से मुम्‌का आगम हुआ है । तरुण+ई=तरुणी । तलुन+ई=तलुनी-जवान स्त्री ।

(१३४६) यञश्च । ४ । १ । १६ ॥

यञन्तात् स्त्रियां ङीप्स्यात् । अकारलोपे कृते ।

स्त्रीलिंग करनेकी इच्छा होय तो यञन्त (१०८२) से परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो । परन्तु उसके अकारका लोप[२६०] करनेके पीछे । गार्ग्य (१०८२)+ई=गार्ग्य (२६०)+ई-

(१३४७) हलस्तद्धितस्य। ६। ४। १५०॥

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईति परे।

ई परे हुए सन्ते हल्से परे तद्धित की उपधाके यकारका लोप हो। **गार्ग+ई=गार्गी**=गर्गवंशकी कन्या।

(१३४८) प्राचां ष्फ तद्धितः। ४। १। १७॥

यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः।

प्राचीनोंके मतमें विकल्प करके यञन्त (१०८२) से परे ष्फ (फ) (८९२) प्रत्यय हो, और उसकी गणना तद्धितमें हो। फ्को आयन् (१०८७) आदेश होता है। **गार्ग्य फ् अ=गार्ग्य (२६०)+आयन्-**

(१३४९) षिद्गौरादिभ्यश्च। ४। १। ४१॥

ङीष् स्यात्।

षित् प्रत्ययान्तसे तथा गौरादिगणसे परे ङीष् प्रत्यय हो।**गार्ग्य+आयन् (२६०)+ई=गार्ग्यायणी** (१९७)=गर्गवंशकी कन्या।**नर्तक+ई=नर्तक्+ई=नर्तकी**=(नृत्य करनेवाली) इस उदाहरणमें **"शिल्पिनि ष्वुन्"** (३, १, १४५) वें अष्टाध्यायी सूत्रके अनुसार ष्वुन् प्रत्यय हुआ है उसमें (८९२) से ष्का लोप हुआ (८३७) से वुन्के स्थानमें अक आदेश हुआ यथा-**नर्त+ष्वुन्=नर्त+अक=नर्तक+ई=नर्तकी** । (२६०,)

गौर+ई=गौर् (२६०)+ई=गौरी=पार्वती।अनडुह+ई=अनडुही=अनड्वाह्+ई=अनड्वाही=गाय।

आमनडुहः स्त्रियाम्वा। गौरादिगणमें अनडुह् शब्द आम्सहित और केवलभी पठित है इससे दो रूप हुए। **आकृतिगणोयम्।**

---

१ गौर मत्स्य मनुष्य शृंग पिंगल हय गवय मुकय ऋष्य पुट तूण द्रूण द्रोण हरिण काकण पटर उणक आमलक कुवल विम्ब बदर कर्कर तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड सनन्द सुषम सुषव अलिन्द गडुल पाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आपच्चिक शष्कुल सूर्म शूर्प सूच यूथ सूप मेथ वल्लक धातक सल्लक मालक मालत साल्वक वेतस वृष अतस उभय भृङ्ग मह मठ छेद पेश मेद श्वन् तक्षन् अनडुह अनड्वाह एषण (करणे) देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औदगाहमानि गौतम पारक अयस्थूण भौरिकि भौलिकि भौलिंगि यान मेघ आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपण आरट नट टोट नोट मुलाट शातन पोतन पातन पानट आस्तरण अधिकरण अधिकार आग्रहायण प्रत्यवरोहिन् सेचन सुमंगल (संज्ञायाम्) अण्डर सुन्दर मंडल मन्थर मंगल पठ पिण्ड षण्ड उर्द गुर्द शमसूद आर्द हद पाण्ड भाण्ड लोहाण्ड कदर कन्दर कदल तरुण तलुन कल्माष बृहत् महत् सोम सौधर्म रोहिणी (नक्षत्रे) रेवती (नक्षत्रे) विकल निष्फल पुष्कल कटी (श्रोणिवचने) पिप्पल्यादयश्च-पिप्पली हरीतकी केशातकी शमी वरी शरी पृथ्वी क्रोष्ट्री मातामही पितामही। आकृतिगणः।

(१३५०) वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० ॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् ङीप् ।

प्रथम वयवाचक अकारान्त प्रातिपदिकसे परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो ।

कुमार+ई=कुमार्+ई=कुमारी=जिसका विवाह न हुआ हो ऐसी कन्या ।

(१३५१) द्विगोः । ४ । १ । २१ ॥

अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् ।

अकारान्त द्विगु (९८४) समाससे परे ङीप् प्रत्यय हो ।

त्रिलोक+ई=त्रिलोक्+ई=त्रिलोकी+तीन लोकका समूह ।

त्रिफला । त्र्यनीका । अजादित्वाट्टाप् । इन दोनों शब्दोंसे ङीप् नहीं होता कारण कि (१३४२) में इन शब्दोंकी गणना अजादिमें की है इससे टाप् प्रत्यय होता है ।

(१३५२) वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः । ४ । १ । ३९ ॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप् तकारस्य नकारादेशश्च ।

उपसर्जनके सिवाय वर्णवाचक प्रातिपदिकके अन्तमें अनुदात्त हो और उपधामें त् हो तिससे परे विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो तथा उपधाभूत त्के स्थानमें विकल्प करके न् हो । **एत** (चित्रविचित्र) यह अनुपसर्जन और वर्णवाचक प्रातिपदिक है इसमें त अन्तर्गत अ अनुदात्त है और उपधा त् है ।

एत+ई=एत्+ई=एन्+ई=एनी (अथवा) **एता**=चित्रविचित्र (मृगी)

रोहित+ई=रोहिन+ई=रोहिनी । =रोहिणी । (अथवा) **रोहिता** । (लाल—हरिणी) ।

(१३५३) वोतो गुणवचनात् । ४ । १ । ४४ ॥

उदन्ताद्गुणवाचिनो वा ङीष्स्यात् ।

उकारान्त गुणवाचक प्रातिपदिकसे परे स्त्रीलिंग करनेकी इच्छा होय तो विकल्प करके ङीष् (ई) प्रत्यय होय ।

मृदु+ई=मृद्व्+ई=मृद्वी । (अथवा) **मृदुः**=कोमल स्त्री ।

(१३५४) बह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ४५ ॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात् ।

बहु आदि गणके शब्दोंसे परे स्त्रीत्व करना होय तो ङीप् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

---

१ बहु पद्धति अञ्चति अंकित अंहति शकटि शक्ति (शस्त्रे) शारि वारि राति राधि शाधि अहि कपि यष्टि मुनि इतः (प्राण्यंगात्) चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशंकट भरुज-

बहु+ई=बह्व् (२१)+ई=बह्वी । (अथवा) **बहुः**=बहुत स्त्री ।

(१३६५) कृदिकारादक्तिनः ॥

क्तिन् (९१९) प्रत्ययान्तभिन्न जो इकरान्त कृत्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक उससे परे स्त्रीत्व द्योत्य होय तो ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

रात्रि+ई=रा[260]त्र्+ई=रात्री (अथवा) **रात्रिः** (रात) ।

(१३६६) सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके ॥

किसी किसी आचार्यका मत है कि अक्तिन्नर्थक कृत् और अकृत् सब इकारान्त (१३६५) शब्दसे परे स्त्रीत्व द्योत्य होय तो ङीप् प्रत्यय हो ।

शकटि+ई=श[260]कट्+ई=शकटी (अथवा) **शकटिः**=गाडी ।

(१३६७) पुंयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ ॥

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् ।

पुँलिंगवाचकशब्दके सम्बन्धसे स्त्रीत्व करना होय तो उस शब्दसे परे ङीष् प्रत्यय हो ।

गोप+ई=गोप् (२६०)+ई=गोपी—ग्वालिनी ।

(१३६८) पालकान्तान्न ॥

जिस शब्दके अन्तमें पालक आवे तिससे परे स्त्रीत्व करना होय तो ङीष् (१३६७) प्रत्यय न हो ।

गोपालक+आ[1342]=गोपाल्+इ[1359]+क+आ=गोपालिका=ग्वालकी स्त्री ।

अश्वपालक+आ[1342]=अश्वपाल्+इ[1359]+क+आ=अश्वपालिका=अश्वपालकी स्त्री ।

(१३६९) प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः । ७ । ३ । ४४ ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि स आप्सुपः परो न चेत् ।

प्रत्ययमें स्थित ककार होय और उससे पूर्व अ होय तो अके स्थानमें इ हो आप् (१३४२) परे होय तो, परन्तु सुप्से परे आप् हो तो न हो ।

सर्वक+आ[1342]=सर्व्+इ+क+आ=सर्विका=कुत्सित जो स्त्री इत्यादि ।

कारक+आ[1342]=कार्+इ+क+आ=कारिका=बनानेवाली स्त्री ।

अतः किम् ? अ के स्थानमें इ हो ऐसा क्यों कहा ? (उत्तर) आशय यह कि उपधाके स्थानमें जो दूसरा स्वर होय तो वैसा न हो । **नौका** (नाव) इसमें औ है इसकारण ऊपर कहा विधि नहीं लगा । **प्रत्ययस्थात् किम् ?** प्रत्ययस्थित ककारके कहनेका

—व्रज चन्द्रभागा (नद्याम्) कल्याण उदार पुराण अहन् क्रोण नख खुर शिखा बाल शफ गुद । आकृतिगणोयम्, तेन भग गल राग इत्यादिग्रहणम् ।

कारण क्या है ? (उत्तर) जिसमें प्रत्ययका ककार न हो तो उपरोक्त विधि न लगै । **शक्नोतीति**=शका । इसमें ककार धातुका अवयव है इससे न हुआ । **असुपः किम् ?** असुप् कहनेका कारण यह है कि सुप् परे हो तो यह नियम न लगे । **बहुपरिव्राजिका**= जिसमें बहुत संन्यासी हों, इसमें सुप्का लुक् हुआ है पीछे स्त्री प्रत्यय हुआ ।

(१३६०) सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः ।

देवी अर्थमें सूर्य शब्दसे परे चाप् (आ) प्रत्यय हो ।

सूर्यस्य स्त्री देवता+सूर्य+आ=सूर्य्[२६०]+आ=सूर्या—सूर्यकी स्त्री जो देवी है । **देवतायां किम् ?** देवी अर्थमें कहनेका कारण यह है कि मनुष्यकी स्त्रीमें यह विधि न लगे ।

(१३६१) सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च ॥

यलोपः । छ प्रत्यय (११६१) अथवा ङी प्रत्यय परे हुए सन्ते सूर्य और अगस्त्य शब्दोंके यकारका लोप हो । यकारका लोप हुआ ।

सूर्य+ई=सूर् (२६०)+ई=सूरी=कुन्ती=सूर्यकी मनुष्यदेहवाली स्त्री । यदि मनुष्य देहवाली स्त्री न होती तो यहां (१३६०) से आप् प्रत्यय होजाता ।

(१३६२) इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् । ४ । १ । ४९ ॥

एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च ।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल, और आचार्य इन शब्दोंसे परे ङीष् प्रत्यय हो और उसके साथ ही आनुक् का आगम भी हो ।

इन्द्रस्य स्त्री=इन्द्र+आन्+ई=इन्द्राणी—इन्द्रकी स्त्री ।
वरुणस्य स्त्री=वरुण+आन्+ई=वरुणानी—वरुणकी स्त्री ।
भवस्य स्त्री=भव+आन्+ई=भवानी—शिवकी स्त्री ।
शर्वस्य स्त्री=शर्व+आन्+ई=शर्वाणी—पार्वती ।

इसी प्रकार—**रुद्राणी, मृडानी** (पार्वती) जानो ।

(१३६३) हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥

हिम और अरण्य शब्दोंको आनुक्का आगम और ङीष् (१३६२) प्रत्यय हो महत् अर्थमें ।

महत् हिमं=हिम्+आन्+ई=हिमानी—बहुत हिम।

महत् अरण्यम्=अरण्य्+आन्+ई=अरण्यानी—महावन।

(१३६४) यवाद्दोषे ॥

यव शब्द से परे ङीष् (१३६२) प्रत्यय और आनुक्का आगम दोष अर्थमें हो। अन्यत्र नहीं। दुष्टः यवः=यव+आन्+ई=यवानी—दुष्ट यव।

(१३६५) यवनाल्लिप्याम् ॥

यवन शब्दसे परे ङीष् प्रत्यय और आनुक्का आगम लिपि अर्थ में हो औरमें नहीं। यवनानां लिपिः=यवन+आन्+ई=यवनानी—यवनोंकी वर्णमाला।

(१३६६) मातुलोपाध्याययोरानुग्वा ॥

मातुल तथा उपाध्याय शब्दों को विकल्प करके आनुक् का आगम हो।

मातुल+आन्+ई=मातुलानी (अथवा) मातुल+ई=मातुली—मामी।

उपाध्याय+आन्+ई=उपाध्यायानी (अथवा) उपाध्याय+ई=उपाध्यायी=उपाध्यायकी स्त्री।

(१३६७) आचार्यादणत्वञ्च ॥

आचार्य शब्द से परे आनुक् (आन्) आगमके (१३६२) न् के स्थानमें ण् (१९७) न हो।

आचार्य+आन्+ई=आचार्यानी=आचार्यकी स्त्री।

(१३६८) अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे ॥

अर्य और क्षत्रिय शब्दोंसे परे स्वार्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् (१३६२) का आगम विकल्प करके हो।

अर्य+आन्+ई=अर्याणी (३६०। १९७)
(अथवा)—अर्य+आ=अर्या। } वैश्य जातिकी स्त्री।

क्षत्रिय+आन्+ई=क्षत्रियाणी
क्षत्रिय+आ=क्षत्रिया। } क्षत्रिय जातिकी स्त्री।

(१३६९) क्रीतात्करणपूर्वात्। ४। १। ५०॥

क्रीतान्तादद्न्तात्करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्।

जिसके पूर्व करणकारकवाचक शब्द होय ऐसा जो अदन्त क्रीत शब्द उससे परे ङीष् प्रत्यय हो वस्त्रक्रीत+ई=वस्त्रक्रीती=जो स्त्री वस्त्र से मोल लीगई हो।

क्वचिन्न—कहीं ऐसा नहीं भी होता। यथा—धनक्रीता=धन से मोल लीहुई स्त्री।

(१३७०) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् । ४ । १ । ५४ ॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्तादन्तात् ङीष् वा ।

जिसकी उपधामें संयोग अक्षर न हो ऐसा शरीरके अवयववाचक उपसर्जन जिस प्रातिपदिकके अन्तमें हो उस अदन्तसे परे ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो ।

केशानतिक्रान्ता=अतिकेश+ई=अतिकेशी }
(अथवा) अतिकेश+आ=अतिकेशा } जिसके बाल सबसे बडे हों ।

चन्द्रमुख+ई=[२६०]चन्द्रमुखी }
चन्द्रमुख+आ=[२६०]चन्द्रमुखा } जिस स्त्रीका मुख चन्द्रमाके तुल्य हो ।

असंयोगोपधात् किम् ? उपधामें संयोगी अक्षर न हो इसके कहनेका कारण यह कि संयोग अक्षरमें ङीष न होकर टाप्ही हो । यथा-**सुगुल्फा** (सुन्दर पदग्रन्थिवाली) यहां ङीष् न हुआ । **उपसर्जनात्किम् ?** उपसर्जन कहनेका कारण यह कि **सुशिखा** (अच्छी चोटी) इसमें शिखा उपसर्जन नहीं है इससे टाप् हुआ ङीष् नहीं ।

(१३७१) न क्रोडादिबह्वचः । ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् ।

क्रोडादि[१] शरीरके अवयववाचक शब्दोंसे परे तथा जिन शरीरके अवयववाचक शब्दोंमें बहुत अच् होंय तिनसे परे ङीष्[१३७०] प्रत्यय न हो । कल्याणक्रोडमें ङीष् न होकर टाप् हुआ **कल्याणक्रोडा**=जिसकी सुन्दर छाती हो ऐसी स्त्री । इसीप्रकार **सुजघन+आ=सुजघना**-जिसकी सुन्दर जंघा हो ऐसी स्त्री, इन उदाहरणोंमें बहुत अच् हैं ।

(१३७२) नखमुखात्संज्ञायाम् । ४ । १ । ५८ ॥

न ङीष् ।

नख तथा मुख शब्दान्त समुदाय संज्ञा अर्थवाचक शब्द होंय तो उनसे परे ङीष् प्रत्यय न हो । यथा-**शूर्पनख+आ=शूर्प+नखा-**

(१३७३) पूर्वपदात् संज्ञायामगः । ८ । ४ । ३ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्संज्ञायां न तु गकारव्यवधाने ।

पूर्वपदके विषय रहनेवाला जो निमित्त (१९७) (र् ष्) तिससे परे न् को ण् हो जब समुदायसे संज्ञा गम्यमान होय तो परन्तु गकारके व्यवधान में न हो ।

---

१ क्रोड नख खुर गाथा उखा शिखा बाल शफ शुक । **क्रोडादिराकृतिगणः । तेन भग गल घोण इत्यादयो ग्राह्याः ।**

शूर्पणखा=जिसके नख सूपके समान हों (रावणकी बहन)। **गौरमुख+आ=गौरमुखा** गोरे मुखवाली स्त्री। **संज्ञायां किम्?** (१३७२) संज्ञाअर्थवाचक शब्द कहनेका कारण यह कि यह न होय तो ङीष् हो। यथा-**ताम्रमुख+ई=ताम्रमुखी कन्या**=जिसका मुख तांबेकी समान लाल हो।

(१३७४) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। ४। १। ६३॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततो ङीष्।

जातिवाचक प्रातिपदिक जो नियम करके स्त्रीलिंग न हो और उसकी उपधामें यकार न हो तो उससे स्त्रीत्व करनेमें ङीष् प्रत्यय हो।

तट+ई=तटी-किनारा।

वृषल+ई=वृषली--शूद्रकी स्त्री।

कठ+ई=कठी-ऋग्वेदकी कठशाखा पडनेवाली जातिकी स्त्री।

बह्वृच+ई=बह्वृची-ऋग्वेदियोंकी जातिकी स्त्री।

जातेः किम्? जातिवाचक कहनेका कारण यह कि जातिवाचक न हो तो टाप् प्रत्यय हो। यथा-**मुण्ड+आ=मुण्डा**--जिसने शिर मुँडाया हो ऐसी स्त्री।

अस्त्रीविषयात् किम्? नियम करके स्त्रीलिंग न हो इसके कहनेका कारण यह कि ऐसा होनेसे टाप् हो यथा--**बलाका**=बगली।

अयोपधात् किम्? उपधामें यकार न हो कहनेका कारण यह कि यकार होनेसे टाप् हो। यथा-**क्षत्रिया**=क्षत्रियजातिकी स्त्री यहां ङीष् न हुआ।

(१३७५) योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेधः॥

जिन शब्दोंकी उपधामें यकार हो उनका निषेध (१३७४) जो किया है उस निषेधमें नीचे लिखे शब्द ग्रहण नहीं किये जाते।

हय+ई=हयी-घोडी। **गवय+ई=गवयी**-नीलगाय।

---

१ "आकृतिग्रहणा जातिः" अनुगतसंस्थानव्यंग्येत्यर्थः-तटी। 'लिङ्गानां च न सर्वभाक्'। 'सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या' असर्वलिङ्गत्वे सति एकस्यां व्यक्तौ कथनाद्व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिरिति लक्षणान्तरम् (वृषली)। "गोत्रञ्च चरणैः सह" औपगवी। कठी।

अवयवरचनाके द्वारा जिसका ज्ञान होता है उसको जाति कहते हैं। मनमें गोकी आकृति स्थित रहनेसे उसके समान दूसरी वस्तु देखनेमें आतेही प्रथमके ज्ञानसे जो गायरूप शब्द जाननेमें आता है उसको जाति कहते हैं। जो शब्द त्रिलिंगवाचक न हो और जिसके एक वार कथनसे अवयवकी रचना समान होते हुए भी फिर विना कथन किये जिसका ज्ञान हो उसको जाति कहते हैं। यथा-शूद्री। इस उदाहरणमें मनुष्य जातिकी स्त्रीके अवयव समान होते हुए शूद्र जातिकी स्त्री है, ऐसा ज्ञान फिर दुवारा कथनके विनाही होता है और इससे ब्राह्मणी नहीं शूद्री है यह विदित होता है।

मुकय+ई=मुकयी=जन्तुविशेष । **मनुष्य+ई=मनुषी** (१३४७) मनुष्य स्त्री । **मत्स्य+ई=मत्सी**-(मछली)-मत्स्य तद्धितान्त नहीं है इसपर भी कात्यायनके मतसे यका लोप हुआ है **"मत्स्यस्य ङ्याम्" यलोपः ।** ङी प्रत्यय परे रहते मत्स्यके यकारका लोप हो ।

(१३७६) इतो मनुष्यजातेः । ४ । १ । ६६ ॥

ङीष् स्यात् ।

मनुष्यजातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिकसे परे स्त्रीत्व करना होय तो ङीष् प्रत्यय हो । **दक्ष+ई=दाक्षी** (१०८८)=दक्षके वंशकी स्त्री ।

(१३७७) ऊङुतः । ४ । १ । ६८ ॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात् ।

जो मनुष्यजातिवाचक उकारान्त प्रातिपदिककी उपधामें यकार न हो तो उसे स्त्रीत्वकी इच्छामें उससे परे ऊङ् (ऊ) प्रत्यय हो । **कुरु+ऊ=कुरूः**--कुरुवंशकी स्त्री। **अयोपधात् किम्?** उपधामें यकार न होय यह क्यों कहा ? इसका कारण यह कि उपधामें यकार होय तो ऊङ् न हो । यथा-**अध्वर्युः ब्राह्मणी**=यजुर्वेदियोंके वंशकी स्त्री ।

(१३७८) पङ्गोश्च । ४ । १ । ६८ ॥

पङ्गु शब्दसे परेभी ऊङ् (१३७७) प्रत्यय हो । **पङ्गु+ऊ=पङ्गूः**-पंगुल स्त्री ।

(१३७९) श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च ॥

श्वशुर शब्दके उकार तथा अकारका लोप हो और ऊङ् (१३७७) प्रत्ययभी हो । **श्वशुर+ऊ=श्वशुर्+ऊ+सु=श्वश्रूः**=सास ।

(१३८०) ऊरूत्तरपदादौपम्ये । ४ । १ । ६९ ॥

उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात् ।

जिस प्रातिपदिकका पूर्वपद उपमानवाचक होय तथा उत्तरपद ऊरु शब्द होय तो स्त्रीत्व करनेमें उससे परे ऊङ् (१३७७) प्रत्यय हो । **करभ+ऊरु=करभोरु+ऊ+सु=करभोरूः**=जिस स्त्रीकी जंघा करभकी समान चढाव उतारवाली हों । (करभ मणिबन्धसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त हाथेलीके बाहरी भागको कहते हैं) ।

(१३८१) संहितशफलक्षणवामादेश्च । ४ । १ । ७० ॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम् ।

संहित (मिला हुआ), शफ (खुर), लक्षण (चिह्न) और वाम (सुन्दर) इनमेंसे कोई आदिमें हो और ऊरु शब्द उत्तरपदमें होय तो स्त्रीत्वकी विवक्षामें प्रातिपदिकसे परे

ऊङ् प्रत्यय (१३७७) हो । जिन प्रयोगों में कोई पूर्वपद उपमानवाचक न हो उसके निमित्त यह सूत्र है ।

संहित+ऊरु=संहितोरु+ऊ+सु=संहितोरूः=जिसकी जंघा जुटी हों ।

शफ+ऊरु=शफोरु+ऊ+सु=शफोरूः=जिसकी जंघा गौके खुरके समान हों ।

लक्षण+ऊरु=लक्षणोरु+ऊ+सु=लक्षणोरूः=जिसकी जंघामेंतिलआदिकाचिह्नहो ।

वाम+ऊरु=वामोरु+ऊ+सु=वामोरूः=जिसकी जांघ सुन्दर हैं ।

(१३८२) शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् । ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादेरञोऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् ।

शार्ङ्गरव आदि * गणके जातिवाचक शब्दोंसे परे तथा अञ् प्रत्यय (१०९०) का अकार जिस जातिवाचक प्रातिपदिकके अन्तमें होय उसे स्त्री करना हो तो ङीन् (ई) प्रत्यय हो ।

शार्ङ्गरव+ई=शार्ङ्गरवी=शृङ्गरु ऋषिके वंश की कन्या ।

बिद+ई=बैदी =(१०९०) बिद ऋषिके वंशकी कन्या ।

ब्राह्मण+ई=ब्राह्मणी= ब्राह्मण जाति की स्त्री । नृ+ई—

(१३८३) नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥

ङीन् प्रत्यय परे हुए सन्ते नृ तथा नर शब्दोंको वृद्धि आदेश हो । नर+ई=नारी=स्त्री ।

(१३८४) यूनस्तिः । ४ । १ । ७७ ॥

युवन्शब्दात्स्त्रियां तिः स्यात् ।

स्त्रीवाचक युवन् शब्दसे परे ति प्रत्यय हो ।

युवन्+ति+सु=युवतिः=युवा स्त्री ।

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

---

* शार्ङ्गरव । कापटव । गौग्गुलव । ब्राह्मण । वैद । गौतम । कामण्डलेय । ब्राह्मणकृतेय । अनिचेय । अतिनिधेय । आशोकेय । वात्स्यायन । मौंजायन । कैकस । काव्य । शैव्य । एहि । पर्य्येहि । आश्मरथ्य । औदपान । अराल । चंडाल । वतण्ड । भोगवत् । गौरिमत् । (एतौ संज्ञायाम्) नृ । नर ।

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

जो दूसरे शास्त्रोंमें प्रविष्ट हैं परन्तु व्याकरण शास्त्रसे अनभिज्ञ हैं उनके तथा बालकोंके उपकार के निमित्त वरदराजने लघुसिद्धांतकौमुदी रची है ॥

नेत्रबाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचिमासे सिते दले ।
सप्तम्यामुशनोवारे टीकापूर्तिमुपागमत् ॥
श्रीमद्विद्यागुरून्नत्वा शास्त्रमार्गप्रदर्शकान् ।
कृता ज्वालाप्रसादेन भाषाटीका मनोरमा ॥

शुभमस्तु ।

इति श्रीमत्कान्यकुब्जकुलतिलकसुखानंदसूनुपण्डित-ज्वालाप्रसाद-मिश्रविरचिता लघुकौमुदीभाषाटीका समाप्ता ॥

समाप्तेयं लघुकौमुदी ।

पुस्तक मिलने का ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.



॥ श्रीः ॥

सूत्रवार्तिकादिसूचीपत्रम् ।

(इ)

(ध)

(न)

॥ इति सूत्रवार्तिकादिसूची समाप्ता ॥

नाम.		की. रु. आ,
रूपमाला–१ व्याकरण षड्लिंगविभागः–अच्छीरीतिसे लिंगबोध होताहै	....	०–६
" २–संधिविभागः–शब्दोंकी पंचसंधि समझनेका सुलभ उपाय	....	०–६
" ३–अव्ययार्थभागः–श्लोकादिके पदोंका अन्वय जानलेतेहैं	....	०–३
" ४–प्रयोगविधिसंग्रहः–कारकसमास तद्धितादिक	....	०–२
" ५–क्रियाकलापः धातुरूपभेदः आख्यातचंद्रिका श्लोकयोजनिकोपायः नामहीसे समझ लेंगे.	...	०–६
समासकुवलयाकर–नियमोंके साथ उदाहरण त्वरासे पदोंका समास करसक्ते हैं	....	०–४
कारकस्वरूप–भाषाटीकासहित कालद्रव्यादिकका बोध होताहै	....	०–६
कारकवादार्थ–(जयरामपंडित प्रणीत) शाब्दबोध, व्याकरण न्यायका शब्दज्ञान होता है	....	०–२
लिंगबोधव्याकरण–भाषाटीकासमेत, इसके अभ्याससे पुँल्लिंग स्त्रीलिंग नपुंसक आदिका ज्ञान जल्दी होता है....	....	०–२
सिद्धान्तचंद्रिका–मूल इसीका प्रचार सर्वत्र हैं	....	०–१०
" तथा सटीक सुबोधिनी और तत्त्वदीपिका समेत संपूर्ण सुन्दर जिल्द	....	३–८
" तथा पूर्वार्द्ध १॥।) तथा उत्तरार्द्ध	....	१–१२
पूर्वपक्षावली–(पाणिनीयव्याकरणे) ≡) तथा उत्तरपक्षावली	....	०–३
सारस्वत तीनोंवृत्ति मूल	....	०–१०
सारस्वत मूल पूर्वार्द्ध ग्लेज	....	०–८
" तथा रफ	....	०–६
सारस्वत प्रसादटीका	....	०–१२
सारस्वत संपूर्ण–चन्द्रकीर्त्तिटीकासह ग्लेज	....	३–०
" तथा रफ	....	२–८
" पूर्वार्द्ध " ग्लेज १) रफ	....	०–१४
" उत्तरार्द्ध " ग्लेज १॥। = रफ	....	१–१२
सारस्वतसुबोधिनी–भाषाटीकासमेत, विद्यार्थी सुगमरीतिसे समझ सक्ते हैं (पूर्वार्द्धमात्र)	....	१–१२

नाम.	की. रु. आ.
लघुव्याकरण पूर्वार्द्ध	०–३
लघुभाष्य–श्रीसरस्वती कृत संपूर्ण व्याकरण सूत्र व्याख्यान सारस्वतके सूत्रोंपर महाभाष्यके अनुसार सर्वोत्तम व्याख्या है	२–८
धातुरूपावली–लघुपाठसहित शीघ्र धातुओंका बोध होता है	०–३
शब्दरूपावली–एकाक्षरीकोषसहित शब्दज्ञान और विभक्तिकी प्रथम श्रेणीकीहै	०–१॥
समासचक्र–नामहीसे ज्ञात होता है	०–॥।
शब्ददीपिका–शब्द ज्ञानमें उत्तम है	०–४
अर्थप्रकाशिका–व्याकरण पढनेवालोंको अतीव उपयोगी है भाषा भाष्यभी है	०–८
बालसंस्कृतबोधिनी–भाषाटीकासमेत विद्यार्थियोंको अतीव उत्तम है ...	०–५
बालसंस्कृतप्रभाकर–भाषाटीका सहित	०–७
संस्कृतारोहण–पं० ज्वालाप्रसादकृत भा० टी० वाक्यरचनामें उत्तमहै	०–६
संस्कृतप्रवेशिका–भाषाटीका सहित	०–१॥
संस्कृतशिक्षामंजरी –)॥ तथा बालकोपदेशमालिका....	०–४
संस्कृतशीघ्रबोधिनी–इस ग्रंथसे संस्कृतका बोध जल्दी होताहै	०–३
सुगमकौमुदी–(प्रथमद्वितीयखंडात्मक प्रथमभागः)	२–०
सिद्धान्तचंद्रिका–उत्तरार्ध भाषाटीकासमेत रफ तथा ग्लेज	३–८
मार्गोपदेशिका–सं० हिन्दी अंग्रजी....	०–८
भाषाव्याकरण–(प्रथमभाग) पं० बनवारीलाल पचौरीजी प्रणीत	०–१०
समासकुवलयाकर	०–४
संस्कृतनामावली–भा० टी०	०–२

काव्यग्रन्थाः।

शिशुपालवध–(माघकाव्य) मल्लिनाथकृतटीकासहित इसमें नारदजीको भगवद्दर्शन शिशुपालवधार्थ उद्धव बलराम श्रीकृष्णको निमंत्रण द्वारका समुद्र-वर्णन रैवतकपर्वतवर्णनादि है यह २० सर्गों अपूर्व काव्य है विद्यार्थी लोग अवश्य पढके प्रसंगोपात उदाहरण देसकते हैं	२–८
” ” तथा पूर्वार्द्ध ९ सर्गमें	१–४